विमल नित्य पाठावली

-: प्रसंग :-

परम पूज्य युगप्रमुख श्रमाचार्य, राष्ट्रसंत, गणाचार्य 108 श्री विरागसागरजी महाराज क "राष्ट्रीय रजत आचार्य पदारोहण महोत्सव" वर्ष 2016-2017 के सुअवसर पर

-: कृति :-

विमल नित्य पाठावली

-: संकलन एवं संपादन:-

प.पू.गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज

-: प्रकाशक :-

श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ

जैन कीर्तिस्तम्भ, बस स्टैण्ड रोड, भिण्ड (म.प्र.)

प्रसंग :- परम पूज्य युगप्रमुख श्रमाचार्य, राष्ट्रसंत, गणाचार्य 108 श्री विरागसागरजी महाराज के ''राष्ट्रीय रजत आचार्य पदारोहण महोत्सव'' वर्ष 2016-2017 के सुअवसर पर

कृति - **विमल नित्य पाठावली**

संकलन/संपादन- प.पू. गणाचार्य श्री १०८ विराग सागर जी महाराज

संस्करण - (I) १००० प्रतियाँ - १९८५ निमाज (राज.)
(II) १००० प्रतियाँ - २००४ कारंजा (महा.)
(III) १००० प्रतियाँ - २००९ गाँधीनगर (गुज.)
(IV) १००० प्रतियाँ - २०१० महेसाना (गुज.)
(V) १००० प्रतियाँ - २०१२ जयपुर (राज.)
(VI) १००० प्रतियाँ - २०१२ जयपुर (राज.)
(VII) १००० प्रतियाँ - २०१६ भिण्ड (म.प्र.)

मूल्य - **७५/- रूपया**

पुण्यार्जक - 1. श्रीमान् वीरसेन जैन-श्रीमती मोतीरानी जैन
अजयकमार, अर्चना जैन अर्चित, कथन जैन, उज्जैन
2. श्रीमान् राजेन्द्रकमार-श्रीमती प्रभा जैन, पन्ना
3. श्रीमानूविपुल कुमार-श्रीमती सारिका जैन
कु. श्रुति जैन, कृति, उत्साह
4. श्रीमान् ऋषि रावका जैन-श्रीमती नेहा जैन
आभा रावका, शोभा रावका, रायपुर (छ.ग.)
5. श्रीमानूपंकज भाई माणकलाल शाह, अहमदाबाद
6. दिगम्बर जैन चैत्यालय मंदिर समिति, भिण्ड (म.प्र.)

प्रकाशक/प्राप्ति स्थल- श्री सम्यग्ज्ञान दिग.जैन विराग विद्यापीठ भिण्ड(म.प्र.)

मुद्रक - **तिलोक प्रिंटिंग प्रेस**
मोहता हॉस्पीटल के पास, मोहता चौक, बीकानेर-334005
मो. 09314962475

21वीं सदी के ज्योति पुंज गणाचार्य विराग सागर जी

डॉ. के.एल. जैन, प्राचार्य

शासकीय कन्या महाविधालय, टीकमगढ़ (म.प्र.)

अपरिमित प्रज्ञा के धनी- 'संत' वह है जिसकी सरलता का कोई अंत न हो। जो संसार से विरक्त होकर स्व-पर कल्याण की भावना में निरत हो, जिसके अन्तःकरण में वात्सल्य और स्नेह का निर्झर सतत् प्रवाहमान हो। जिसकी वाणी से जन-जन के कल्याण की कामना के भाव निसृत हो, जिन्होंने ज्ञान की अतुल्य गहराईयों में उतरकर सृजन के मौलिक स्वरूप को गढ़ा हो। ऐसे अनेक विशेषणों से विभूषित प्रज्ञा के धनी आचार्य विराग सारग जी का इस धरती पर अवतरण इस सदी की एक अन्यतम घटना ही मानी जायेगी।

असाधारण व्यक्तित्व के धारक- एक ऐसा व्यक्तित्व जिसमें जादूई तिलिस्म का आकर्षण हो, यह आकर्षण है उनके त्याग का, साधना का, तप का, चर्चा का और उस असाधारण ज्ञान का जिसके कारण श्रावक दीवानगी की हदों को भी पार कर जाता है आपकी सौम्य मुद्रा के दर्शन मात्र से ही दर्शनार्थियों के कालुष्य का विरेचन हो जाता है। आपके सान्निध्य का सुफल और आशीष का हस्तकमल जीवन को निर्जर और निरामद बना देता है। यही वजह है कि आचार्य विराग सागरजी जहाँ से निकल पड़ते हैं वहाँ के लोग उनके हमेशा-हमेशा के लिए बन जाते हैं।

अनोखे बचपन का विरल सम्मोहन- दमोह (म.प्र.) जिले के पथरिया ग्राम में पाषाणों के बीच इस हीरे का अवतरण 2 मई 1963 (वैशाख शुक्ल वि.सं. 2020) को रात्रि 9 बजे हुआ। पुण्यात्मा सेठ ब्र. श्री कपूरचंदजी (वर्तमान में संघस्थ क्षुल्लक विश्ववंद्य सागर जी महाराज) एवं जननी श्रीमती श्यामादेवी (आपसे ही दीक्षित एवं समाधिस्थ आर्यिका पूज्य श्री विशान्तश्री माताजी) की कोख से एक ऐसा कमल (अरविन्द) खिला जिसमें अपनी अनुपम सुगन्धी से सारे बुन्देलखण्ड को महका दिया। कभी-कभी आगत की आश्चर्य चकित करने वाली घटनाएँ वर्तमान में ही अपना संकेत देने लगती है। कुछ ऐसा ही हुआ बालक अरविन्द के साथ, जब वे बचपन में नग्न अवस्था में खड़े होकर हाथ में झाडू लेकर (पिच्छी का प्रतीक) माँ से बोले- मुनिराज का पड़गाहन करो। क्योंकि कुछ दिन पूर्व उन्होंने इस तरह के दृश्य को देखा था। उक्त दृश्य का आत्म पटल पर अंकन आज आचार्य विराग सागर जी के रूप में परिलक्षित हो रहा है। यह इस धरित्री का पुण्य उदय ही माना जाएगा।

बालक अरविन्द की बाल्य अवस्था की क्रियाएँ सम्मोहने की सीमाएँ लाँघने में समर्थ थीं, सेवा कार्य के हद दर्जे की दीवानगी उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। इसी भावना के कारण बालक अरविन्द सभी को सम्मोहित कर लेते थे। संवेदनशीलता की भावना ने उन्हें प्राणी मात्र की कल्याण कामना से आपूरित कर दिया था। यही कारण है कि आचार्य श्री विराग सागर जी अहर्निश साधना की असीम ऊँचाईयों की ओर अत्यन्त तीव्रता के साथ अग्रसर हो रहे हैं।

अर्जन और सर्जना के विविध सोपान- बालक अरविन्द की प्रारंभिक शिक्षा पथरिया

और इसके उपरांत श्री 'शांति निकेतन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय कटनी' में हुई। निष्णात गुरु पंडित जगन्मोहन लाल जी के सान्निध्य में प्रज्ञा की अन्तजर्योति को जागृत कर दिया। ज्ञानाराधना की ललक और वैराग्य भावना की व्यग्रता ने मनोयोग पूर्वक अर्जन की प्रवृत्ति को परवान चढ़ने का काम किया, परिणाम स्वरूप 16-17 वर्ष की अवस्था में दि. 20 फरवरी 1980 फाल्गुन शुक्ल 5 वि.सं. 2036 बुढ़ार जिला शहडोल (म.प्र.) में परम पूज्य तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मति सागर जी से आपने क्षुल्लक दीक्षा ली तब आपका नाम पू. 105 क्षुल्लक पूर्णसागरजी रखा गया, 20-21 वर्ष की अल्पायु में दि. 9 दिसम्बर 1983 मागशिर शुक्ल 5 वि.सं. 2040 को औरंगाबाद जिला (महाराष्ट्र) में वात्सल्य रत्नाकर परम पूज्य आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज से मुनि दीक्षा ग्रहण की, तब आपका नाम मुनिश्री विराग सागर जी रखा गया। दीक्षा ने शिक्षा के विकास क्रम को गंगा की धारा के समान प्रवाहमान रखने में एक ऊर्जयन्त-ऊर्जा से संचरित रखा, जिससे अल्प समय में आप न्याय, व्याकरण, दर्शन, साहित्य व अध्यात्म के महान चितेरे बन गए।

महाव्रती की महती प्रभावना- आज का वातावरण विसंगतियों और विदूपताओं की कालिमा से कलंकि है। ऐसे वातावरण में मनुष्य का नैतिक विकास हो पाना काफी दुष्कर जान पड़ता है। सर्वत्र हिंसा, अनैतिकता, बेईमानी और झूठ का बोलबाला है, स्वार्थ की संकीर्णताओं ने व्यक्ति को संवेदन शून्य और हृदयहीन बना दिया है, प्रेम और भाईचारे के सद्व्यवहार की अपेक्षाएँ दिनों दिन क्षीण होती जा रही है- ऐसे वातावरण में महाव्रती का संदेश जीवन में ऐसी ऊर्जा का संचार करता है जिससे की जीवन की धारा ही बदल जाती है। आचार्य विराग सागर जी ने भ्रमित युवा पीढ़ी को आचरण और नैतिक मूल्यों की दृष्टि से जो दिशा-दृष्टि प्रदान की है वह इस सदी की श्रेष्ठतम घटनाओं में इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरित की जायेगी।

कुशल संघ संचालक- मोक्ष के आकांक्षी, वीतरागी पथ के पथिक, पदों से अलिप्त मुनि श्री विराग सागर जी महाराज की उत्तरोत्तर साधना, अनुशासन एवं आगमिक प्रणाली से प्रभावित होकर अनेक आत्म हितैषी उनके साथ आत्म-साधना करने के लिए तत्पर हो गये, साथ ही लगभग 10 आचार्य परमेष्ठी उनके मनोज्ञ व्यक्तित्व को देखकर उन्हें अपना आचार्य पद देकर संघ का भार सौंपना चाहते थे तथा कितने ही बार तो अनेक आचार्यो ने उनके आचार्य पद की घोषणाएँ की लेकिन मुनि विराग सागर जी ने 'मैं अभी इस योग्य नहीं हूँ', या 'मेरे गुरु अभी विराजमान है,' ऐसा कहकर उसे स्वीकार न किया, फिर भी समय बड़ा बलवान होता है और ऐसा योग आया कि परम पूज्य आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज की आज्ञा एवं आशीर्वाद तथा आचार्यश्री विद्या सागर जी महाराज एवं आचार्य श्री सुमति सागर जी आदि अनेक आचार्यों के आशीर्वाद से आचार्यत्व के गुणों से परिपूर्ण होने के कारण चतुर्विध संघ, द्रोणगिरि की समाज, पंडित दरबारी लाल जी कोठिया (बीना) आदि अनेक विद्वानों एवं श्रेष्ठियों ने द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र पर दि. 8-11-1992 (कार्तिक शुक्ल 13, वि.सं. 2049 को) उन्हें आचार्य पद से विभूषित कर अपने भाग्य को सजाया था। इस प्रकार साधना-पथ पर उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर विराग सागर जी ने अपने ज्ञान, ऊर्जा और साधना के द्वारा आत्म कल्याण और लोक कल्याण के जिन शीर्ष प्रतिमाओं को स्थापित किया यह असाधारण ही माना जायेगा।

वर्षायोग के अविस्मरणीय क्षण- संयम काल के दौरान आपने संपूर्ण भारत वर्ष में भ्रमण कर प्रभावना करते हुए धर्म की ध्वजा को फहराया तथा इस दौरान जहाँ-जहाँ भी आपका चातुर्मासिक प्रवास रहा, वहाँ आपके सम्मोहक व्यक्तित्व में से जैन जैनत्तरों पर ऐसी गहरी छाप पड़ी कि नास्तिक भी आस्तिक हो गये। प.पू. गुरुवर के वृहद प्रभावना के चातुर्मास (1980-2015 तक क्रमशः दुर्ग (छ. गढ़) 1980), नागपुर महाराष्ट्र (1981), कारंजा (लाड) (महा. 1982 व 83), भावनगर (गुज. 1984), पांचवा (राज. 1985), निमाज (राज. 1986), जयपुर (राज. 1987), भिण्ड (म.प्र. 1988 व 89), टीकमगढ़ (म.प्र. 1990), श्रेयांसगिरि (म.प्र. 1991), द्रोणगिरि (म.प्र. 1992), श्रेयांसगिरि (म.प्र. 1993), बीना (म.प्र. 1994), ललितपुर (उ.प्र. 1995), जबलपुर (म.प्र. 1996), भिण्ड (म.प्र. 1997, 98 व 99), सम्मेद शिखर जी (झारखण्ड 2000), गया (विहार 2001), श्रेयांसगिरि (म.प्र. 2002), भिलाई (छ.गढ़ 2003), कारंजा (लाड) (महा. 2004), मूडबिद्री (कर्नाटक 2005), मेलचित्तामूर (तमिलनाडू 2006), कुंजवन, उदगाँव (महा. 2007), बोरीवली (मुम्बई-महा. 2008), गाँधीनगर (गुज. 2009), लोहारारिया (राज. 2010), अजमेर (राज. 2011), जयपुर (राज. 2012), इंदौर (म.प्र. 2013), अति.क्षे. श्रेयांसगिरि (म.प्र. 2014) पथरिया (म.प्र. 2015), में सम्पन्न हुए।

संयमी सृजकः- पूज्य गुरुओं के प्रति विनय भाव तथा शिष्यों के प्रति वात्सल्य एवं करुणा भाव तथा समाज के सही मार्गदर्शक एवं देव-शास्त्र-गुरु के प्रति परमावगाढ़ श्रद्धा को देख अनेक भक्तों ने आपको अपना गुरु चयन कर आपका शिष्यत्व धारण कर अपने जीवन को मोक्षमार्ग के प्रति समर्पित किया व आपके साथ चलने को तैयार हो गए, आपने संयम काल के 36 वर्षों में भारत के 10 प्रान्तों की लगभग 70,000 कि.मी. से अधिक पैदल यात्रा कर अनेकों सिद्धक्षेत्रों, अतिशय क्षेत्रों एवं नगरों में आध्यात्मिक साधना कर अनेकों भव्यों को दीक्षाएँ, ललितपुर की 21 दीक्षाएँ तथा श्रवणबेलगोला की 25 दीक्षाएँ, उदयपुर में 26 दीक्षाएँ, जयपुर में स्वर्ण जयन्ती पर 25 दीक्षाएँ विरागोदय तीर्थ (पथरिया) में 11 दीक्षाओं ने जन मानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है और जिससे जैन-जैनेत्तरों में महंती प्रभावना हुई। यही कारण है कि आप एक विशाल एवं श्रेष्ठ वटवृक्ष की तरह है जिसकी छत्रछाया में 8 आचार्य, 68 मुनि, 4 गणिनी, 64 आर्यिका, 5 ऐलक, 32 क्षुल्लक, 22 क्षुल्लिकाएँ कुछ 203 शिष्य एवं अभी आपके निर्देशन में लगभग 150 से भी अधिक ऐसे भी विनेय साधक है जो अंतेवासिन के रूप में अपनी साधना में संलग्न है तथा आपके कुशल निर्यापकत्व में 85 साधुओं एवं साध्वियों ने समाधि कर अपने जीवन को सार्थक किया है।

अनुपम अनुशासन एंव चारित्र साधक- चारित्र संवर्धक अनुशासन के पथानुगामी गुरुदेव आप मात्र शिष्यों को दीक्षा ही नहीं देते किन्तु उन्हें शिक्षा दे अनुशासन में भी रहना सिखाते है। जो शिष्य अनुशासनवान होते है उन्हें सतत् संस्कारित कर ऊँचा उठाते है। अपने शिष्यों में आध्यात्मिक संत युवा आचार्य श्री विशुद्ध सागर जी, आचार्य विशद सागरजी, आचार्य विभव सागर जी, आचार्य श्री विमर्श सागर जी, आचार्य श्री विहर्ष सागर जी, आचार्य श्री विनिश्चय सागर जी तथा प्रवचन पटु आचार्य श्री विमद सागर जी एवं मुनि विमर्श सागर जी,

मुनि विनम्र सारग जी को 12 दिसम्बर 2015 बासवाड़ा राजस्थान में आदि को तो आपने 2005 कुंथुगिरि से ही आचार्य पद की घोषणाएँ कर दी थी, किन्तु धन्य है ऐसे शिश्यों को, कि उन्होंने पद की होड़ नहीं की। अपितु उक्त महाराजों में से अभी 3 मुनिराजों को मुनि श्री विशुद्ध सागर, मुनि श्री विभव सागर, मुनि श्री विमद सागर जी को पू. गुरुदेव ने ही अपने हाथों से उन्हें आचार्य पद के योग्य शिक्षा एवं प्रायश्चित्त ग्रंथ पढ़ाने के पश्चात औरंगाबाद में 31 मार्च 2007 को आचार्य पद से विभूषित कर अपने हृदय की उदारता का साकार दर्शन दिया।

अनुशासक वही हो सकता है जो प्रथम स्वयं ही अनुशासन के सांचे में ढ़ला हो, वे अनुशासन में मात्र ढले ही नहीं, किन्तु समग्र शिष्यों को भी अनुशासन में ढ़ाला है यद्यपि अनुशान विहीन ईर्ष्यालु कुछ शिष्यों ने अपना ग्रुप बना दैविक झूठे चमत्कारों की ख्याति अर्जन हेतु अनुचित प्रयत्न किये किन्तु आचार्य श्री उन्हें प्रथम समझाया जब वे नहीं माने तो उन्हें संघ से बहिष्कृत कर दिया जिससे उन लोगों ने समय-समय पर आप पर छींटा-कशी भी की, किन्तु आप उससे जरा भी विचलित नहीं हुए। सूर्य की भाँति प्रकाशमान ही होते रहे हैं तथा अपने अनुशासन में किंचित् भी ढील नहीं दी और न किसी परिस्थिति के सन्मुख घुटने टेके हैं। यही कारण हैं उनमें से कतिपय लोगों ने क्षमायाचना कर प्रायश्चित लिया। यही देख स्वस्ति श्री भट्टारक चारूकीर्ति जी श्रवणबेलगोला के मुख से शब्द प्रस्फुरित हुए कि ''आचार्य विराग सागर जी एवं उनका संघ चलती-फिरती युनिवर्सिटी है।''

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी- वैराग्य को दृढ़ करने एवं संयम साधना को निर्दोष बनो तथा आगमानुकूल चर्या बनाने के लिए, समय का सदुपयोग, धर्म ध्यान की वृद्धि एवं केवलज्ञान की उत्पत्ति में कारणभूत अहर्निश आचार्य प्रणीत शास्त्रों के स्वाध्याय के महत्व को बताकर उन्हें अध ययन के लिए प्रोत्साहित एवं प्रेरित करते रहते हैं, यही कारण है कि आपने षटखण्डागम धवला जी की 5 वर्षों में 16 वाचनायें बुंदेलखण्ड में मूर्धन्य विद्वानों की उपस्थिति में निर्विघ्न पूर्ण की, साथ ही कषायपाहुड़ जय धवल ग्रन्थ भाग-1 की प्रथम भाग की वाचना अहमदाबाद, उस्मानपुरा (गुज.) 2009 और 2016 सिद्ध क्षेत्र तारंगाजी (गुजरात) में भाग-2, 2010 अतिशय क्षेत्र केशरिया जी + लोहारिया (राज.) में भाग-3, 2011 बाँसवाड़ा + केकड़ी (राज.) में भाग-4, 2014-15 ब्रजपुर + श्रेयांसगिरि + दमोह (म.प्र.) भाग-5, 2016 ललितपुर (उ.प्र.) में भाग 6 सिद्धांत ग्रंथ की वाचना 2 तथा सिद्ध क्षेत्र तारंगा जी (गुज.) 2010 में कषाय पाडुड़ भाग-2 में सानंद सम्पन्न हुई। साथ में अनेक स्थानों में सम्यग्ज्ञान शिक्षण शिविर व विद्वत गोष्ठि का सफल आयोजन किया तथा आपने अपने शिष्यों को महापुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, अष्टसहस्त्री, त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति, गोम्मटसार, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, मूलाचार, आचारसार लब्धिसार, तत्वसार, योगसार, भगवती आराधना, मरण कण्डिका, कातंत्र व्याकरण, आप्तमीमांसा, प्रमेयरत्नमाला, छन्द शास्त्र, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, सर्वोदया टीका एवं रत्नत्रय वर्धिनी संस्कृत टीका, पुरुषार्थ सिद्धि उपाय, प्राकृत, रचनानुवाद कौमदी संस्कृत जैसे महान ग्रंथों का अध्ययन कराया, जिससे स्पष्ट है कि आप चारों अनुयोगों के प्रकाण्ड विद्वान हैं।

श्रुतसेवा- ज्ञान के प्रति अभिरूचि होने से आप निरंतर श्रुत सेवा में तल्लीन रहते हैं और आगम के चिंतन एवं मनन के द्वारा तत्व की गहराई में उतरकर उसके गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन कर आगम की पुष्टि करते हुए लोगों की भ्रांति को दूरकर उनके सम्यग्दर्शन को निर्मल करते हैं। इस प्रकार आपने आगम के आधार से अपने साधना काल में अनेक कृतियों का सृजन कर माँ जिनवाणी के भंडार को समृद्ध कर एवं पर के मिथ्यांधकार को दूर कर ज्ञान का प्रकाश किया है, जिसमें मुख्य कृतियाँ सम्यग्दर्शन, व्यसन विचार, जिनेन्द्र दर्शन, जिनेन्द्र पूजन, शुद्धोपयोग, तीर्थंकर दिव्य दर्शन, सल्लेखना से समाधि, आगम चक्खू साहू, परम दिगम्बर जैन मुनि, सर्वोदयी दिगम्बर जैन धर्म आदि हैं। जिसमें शुद्धोपयोग कृति, जिस पर लगभग 150 विद्वानों ने समीक्षा कर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है क्योंकि यह कृति अनेक मिथ्या विकल्पों का निसर्ग करती है। साहित्य सृजन की इस श्रृंखला में प.पू. कुंदकुंदाचार्य स्वामी द्वारा रचित वारसाणु वेक्खा नामक ग्रंथ पर आपके द्वारा लिखी गई संस्कृत ''सर्वोदयी टीका'', एवं रयणसार ग्रंथ पर रत्नत्रय वर्धिनी टीका लिखकर तथा पाहुड इय (शी पाहुड, लिंग पाहुड) पर आपकी अथक लेखनी से लिखी जाने वाली श्रमण प्रबोधिनी संस्कृत टीका, संस्कृत ''रत्नत्रय वर्धनी टीका'' जिन आगम के लिए एक ऐतिहासिक उपलब्धि है क्योंकि प.पू. आचार्य कुंदकुंदस्वामी के इस ग्रंथ पर संस्कृत टीका अभी तक अनुपलब्ध थी साथ ही आपने प्राकृत में अरहंत भक्ति, चौबीस तीर्थंकर भक्ति, चैत्यभक्ति, शांति भक्ति, समाधि भक्ति, नन्दीश्वर भक्ति, निर्वाण भक्ति, आदि 7 भक्तियों को लिख पूज्य आचार्य कुंदकुंद देव के अधूरे कार्य को पूर्ण किया है। श्रुत सेवा में आपका यह महान अवदान युगांत तक सदैव स्मरण किया जायेगा। इस तरह सर्जना के क्षेत्र में लगभग 50 पुस्तकों के द्वारा सरस्वती के भंडार को भरने का आपने जो भागीरथ कार्य किया है वह अनुपम है इनमें भारतीय साहित्य, धर्म, दशर्न, ज्ञान और चारित्र के ऐसे बहुविध रूप देखने को मिलते हैं जिन्हें देखकर आचार्य श्री की बहुमुखी प्रतिभा का सहज ही आकलन किया जा सकता है।

अपकी सत्, प्रेरणा से भी सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ, भिण्ड, अनेकों धार्मिक एवं लौकिक (शिशु, प्राईमरी, मिडिल एवं हाईस्कूलीय) शिक्षायें प्रदान कर रही हैं। इसी प्रकार पन्ना में भी सम्यग्ज्ञान दिग. जैन स्कूल, ब्रजपुर में श्री सम्यग्ज्ञान दिग. जैन विद्यालय भी अपनी मिडित तक की शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। बीना में आचार्य विराग सागरजी बी.एड. कॉलेज ने अल्प समय में बहुत बड़ी सफलता हासिल की है।

धर्म प्रचार- प्रसार के क्षेत्र में विराग वाणी मासिक पत्रिका निरन्तर हर स्तर के आलेखों से भरपूर रहती हुई जन मानस को आकर्षित करती है।

बहु आयामी विशेषताओं से समन्वित पूज्य आचार्य श्री के दर्शन इस रुप में भी करें-

1. जो टी.वी., मोबाइल, लेपटॉप, पंखा, कूलर एवं ए.सी. का प्रयोग नहीं करते हैं।
2. जो बाथरूम में लघुशंका एवं शौचालय में दीर्घ शंका (शौच) नहीं जाते हैं।
3. जो करीब 30 वर्षो से नाखून अपने हाथ से ही निकालते हैं (ब्लेड, नैलकटर या कैंची से नहीं निकालते हैं)
4. जिन्हें कभी थूकते हुए नहीं देखा गया हैं।

5. जो आहार में द्विदल नहीं लेते है।
6. दही, तेल का जिनका आजीवन त्याग है।
7. सभी प्रकार की हरी पत्तियाँ एवं (मटर के अलावा) सभी हरी फलियों का जिनका आजीवन त्याग है।
8. जो प्रत्येक अष्टमी व चतुर्दशी को नीरस करते हैं।
9. जो किसी भी महिला से एकान्त में अकेले चर्चा नहीं करते हैं।
10. जिनका कोई प्रोजेक्ट नहीं है तथा चंदा-चिट्ठा से दूर रहते हैं।
11. जिनके संघ में मोटर, कार, जीप तथा अनावश्यक परिग्रह नहीं है।
12. जिनके संघ में कोई संघ संचालिका नहीं है।
13. जो तंत्र-मंत्र नहीं करते तथा किसी की कुण्डली एवं हाथ आदि नहीं देखते हैं।
14. जो औषध (दवाईयों) को न रखते हैं, न बताते हैं।
15. जिनमें पंथ-परंपरा का कोइ दुराग्रह नहीं हैं।
16. जो गरीब और अमीर को समान रूप से देखते हैं।
17. जो सदैव ज्ञान-ध्यान और तप में लीन रहते हैं।
18. जो किसी की बुराई या निंदा न सुनते हैं और न करते हैं।
19. बड़े-बड़े कष्टों में जिनकी सहिष्णुता देखी गई है।
20. बड़े-बड़े उपसर्गों में भी जिनकी बड़ी धैर्य व समता के दर्शन हुए।
21. जिन्होंने अभी तक विभिन्न मंत्रों की 2 करोड़ से भी अधिक जाप की हैं।
22. जो विहार आदि के समय में भी प्रायः जाप करते रहते हैं।
23. जो श्वासोच्छ्वास से कायोत्सर्ग करते हैं।
24. जो मुनिचर्या के 28 कृतिकर्म प्रतिदिन करते हैं।
25. जो अपने संघस्थ साधुओं को आगम, अध्यात्म, सिद्धांत, व्याकरण, न्याय आदि की शिक्षा के साथ नैतिक शिक्षा भी देते हैं।
26. जो संघस्थ आबाल-वृद्धों का पूरा ध्यान रखते हैं।
27. जिन्होंने अभी तक कर्मदहन, णमोकार पैंतीसी, सर्वदोष परिहार, प्रत्याख्यान, पंचविंशतिका, वचनगुप्ति, नीति सागर, षड्रसी, भक्तामर, समवशरण, चौषठ ऋद्धि, दर्शन विशुद्धि, तत्त्वार्थ सूत्र, जिनगुण सम्पत्ति, कर्म निर्जरा, सहस्रनाम, कल्याण मंदिर, पंचविंशति कल्याण भावना आदि व्रत कर लिये हैं तथा चारित्र शुद्धि व्रत कर रहे हैं।
28. जो प्रत्येक अष्टमी-चतुर्दशी को प्रायः 22 घंटे का मौन रखते हैं। तथा प्रतिदिन जो आवश्यकों के अलावा भी एक घंटे का मौन रखते हैं।
29. विशाल संघ के संचालन की जिनकी अपूर्व ही क्षमता है।
30. जिनका 10 अन्न एवं 15 हरी का आजीवन नियम हैं।

प्रतिभा सम्पन्न गणाचार्य- 16-17 अगस्त 2003 जब उपसर्ग के बादल आप पर मंडराये, तब आपकी एक आसन से 36 घंटे की लगातार निराहार योग ध्यान साधना, अथाह

समता, मेरुवत् संकल्प शक्ति से प्रभावित होकर छत्तीसगढ़ (दुर्ग, भिलाई, वैशाली आदि अनेक स्थानों) की समाज ने आपको **'उपसर्ग विजेता'** की उपाधि से अलंकृत कर अपने जीवन को कृतार्थ किया। 2004 के चातुर्मास काल में आपकी निर्मल साधना से प्रभावित होकर कारंजा समाज ने आपको **'चारित्र शिरोमणी'** की उपाधि से सम्मानित कर अपने आपको गौरवान्वित किया था।

आपने अपनी कुशलता के द्वारा अल्पायु में 126 पथिकों को मोक्ष की राह दिखाकर उनका मोक्षमार्ग प्रशस्त किया इसलिए परम पूज्य गणाधिपति गणधराचार्य श्री कुंथु सागर जी महाराज ने 2005 में 15 आचार्यों एवं 200 साधुओं की उपस्थिति में जनसमूह के समक्ष आपको **'श्रमण रत्नाकर'** की उपाधि से सुशोभित किया था। आपने जो धवला ग्रंथ की 16 पुस्तकों की वाचना लगभग 150 विद्वानों की उपस्थिति में 5 वर्षों में पूर्ण की है इससे प्रभावित होकर 2005 में मूडबिद्री के भट्टारक श्री चारुकीर्ति जी एवं वहाँ की समाज ने आपको **'सिद्धांतरत्न'** की उपाधि प्रदान कर अपना अहोभाग्य समझा था। आपने अपने संयमी जीवन में अनेक आध्यात्मिक ग्रंथों का रसास्वादन किया है, कराया है इसलिए आप उपसर्गों से गुजरकर भी काँटों में गुलाब की तरह विकसित हुए अतः आपकी अध्यात्म साधना से प्रभावित होकर धर्माधिकारी डॉ. वीरेन्द्र कुमार हेगड़े जी ने 2005 धर्मस्थल में **'अध्यात्म योगी'** की उपाधि से विभूषित कर अपना गौरव बढ़ाया है। 2006 मेलचित्तामूर में स्वस्ति श्री लक्ष्मीसेन भट्टारक जी ने **'समता मूर्ति'** की उपाधि से, 2007 औरंगाबाद में त्रय आचार्य पद प्रतिष्ठा के अवसर पर परम पूज्य आचार्य श्री विशुद्ध सागर जी महाराज, परम पूज्य आचार्य श्री विभव सागर जी महाराज, परम पूज्य आचार्य श्री विमद सागर जी एवं वहाँ की समाज ने लगभग 25 संघों के नायक होने से आपको **'गणाचार्य'** तथा 2007 शिरडशाहपुर में हुए श्री मल्लिनाथ श्री मज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक महोत्सव के पावन सुअवसर पर परम पूज्य आचार्य विभव सागर जी एवं सकल दिगम्बर जैन समाज ने **'वात्सल्य रत्नाकर'** की उपाधि से विभूषित कर अपने जीवन में गुरु महिमा का प्रकटीकरण कर अपने जीवन को सौभाग्यशाली बनाया। आपने अपने विगत 27 वर्षों के साधनाकाल में राष्ट्र के लगभग संपूर्ण प्रांतों में भ्रमण कर अहिंसा व शाकाहार का संदेश जन-जन तक पहुँचाया है अतः सन् 2007 में आपके मुनि दीक्षा के 25वें वर्ष में प्रवेश करने पर कुंजवन उदगाँव में **''राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा महोत्सव''** के अवसर पर कुंजवन ट्रस्ट समिति उदगाँव, राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा महोत्सव समिति, राष्ट्रीय विराग युवा व महिला मंच, भिंड तथा सांगली एवं विधायक कपूरचंदजी घुवारा ने आपको **'राष्ट्रसंत'** की उपाधि प्रदान की। इसी अवसर पर प.पू. निमित्तज्ञानी आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज की कीर्ति को देश-प्रदेशों में प्रचार करने से प.पू. तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मति सागरजी महाराज ने आप की **'विमल कीर्ति'** की उपाधि दे असीम वात्सल्य का अद्वितीय उपहार दिया। आपकी निर्मल छवि को देख सकल दिगम्बर जैन समाज व विमर्श सेवा समिति शिवपुरी ने **'आचार्य गौरव'** तथा सिद्धांत शास्त्रों के अभीक्ष्णज्ञान से ओत-प्रोत होने से पं. धनपाल हबले सहित उपस्थित विद्वानों ने आपको **'सिद्धांत चक्रवर्ती'** की उपाधि से विभूषित किया। वर्तमान में न्याय एवं दर्शन की क्षीण होती विद्या का अपने स्वयं अध्ययन किया एवं विशाल शिष्य समूह को कराया इसलिए **'राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा वर्ष समापन समारोह'**

के भव्य आयोजना के अवसर पर श्री 1008 पार्श्वनाथ स्वामी देहरासर ट्रस्ट गुलालवाड़ी, मुंबई सहित भट्टारक लक्ष्मीसेन स्वामी जी मेलचित्तामूर, प्रतिष्ठाचार्य प्रदीप जैन, 'मधुर,' प्रतिष्ठाचार्य कमल शास्त्री कलकत्ता तथा पं. भरत काला आदि ने प.पू. गुरुदेव को **'न्याय भास्कर'** की उपाधि ा प्रदान की। तथा इसी अवसर पर मुनि श्री विवर्जन सागरजी महाराज की भावना के अनुरूप सकल दिगम्बर जैन समाज आदम्पाकम (चेन्नई) तथा पंडित सिहचंद्रजी शास्त्री ने आपको **'श्रमण सूरि'** की उपाधि से विभूषित किया। इसी श्रृंखला में भगवान नेमीनाथ एवं 72 करोड़ 700 मुनिराजों की निर्वाण भूमि श्री गिरनारजी सिद्धक्षेत्र पर आयोजित सप्तमुनि दीक्षा के पावन अवसर पर गिरनार गौरव प.पू. आचार्य श्री निर्मल सागर जी महाराज, **''आचार्य रत्न''** की उपाधि ा से विभूषित किया। इसी श्रृंखला में भगवान नेमीनाथ एवं 72 करोड़ 700 मुनिराजों की निर्वाण भूमि श्री गिरनारजी सिद्धक्षेत्र पर आयोजित सप्तमुनि दीक्षा के पावन अवसर पर गिरनार गौरव प.पू. आचार्य श्री निर्मल सागर जी महाराज, **''आचार्य रत्न''** की उपाधि देकर असीम वात्सल्य का परिचय दिया। इसी कड़ी में तलोद नगर (गुज.) में पदम नंदी पंचविंशतिका की वाचना के अवसर पर सकल दिग. जैन समाज तलोद द्वारा 'विद्या वारिधि' की उपाधि दे अपने आपको गौरवान्वित किया है।

इसी प्रकार आपके लिए समय-समय पर विभिन्न स्थानों पर विद्वानों ने उपाधियाँ दी, यथा सन् 1988 बरासों में समाज ने **'क्रांतिकारी संत,'** 1994 बीना की समाज ने **'बुंदेलखण्ड के प्रथमाचार्य,'** 1995 जबलपुर में साहित्य मनीषी श्री सुरेश 'सरल' जी ने **'निस्पृही संत,'** 1999 भिण्ड में पंडिम सुमतिचंद्र जी शास्त्री ने **'अध्यात्म सिद्धांत वारिधि,'** 2001 गया में श्री पंडित लक्ष्मण प्रसाद जी ने **'न्याय मार्तण्ड,'** 2002 श्रेयांसगिरि में **'तीर्थ उद्धारक एवं संत शिरोमणी,'** 2004 राजिम में पंडित श्री ऋषभ कुमार जी ने **'समाधि सम्राट,'** 2005 शमनेवाड़ी में परम पूज्य आचार्य गुणधरनंदी जी ने **'ज्ञान दिवाकर'** की उपाधि से विभूषित कर अपने आप को गौरवान्वित किया।

2005 डॉ. वीरेन्द्र जी हेगडे ने धर्मस्थल में 24वें मुनिदीक्षा दिवस के अवसर पर आपको **आध्यात्मयोगी** उपाधि प्रदान की। 2009 में सकल दिगम्बर जैन समाज तलोद (गुज.) में आपको **विद्यावारिधि** उपाधि से विभूषित किया। 2010 डूंगरपूर (राज.) में प.पू. वैज्ञानिक आचार्य श्री 108 कनकनंदीजी महाराज ने आपको **प्रशांतमूर्ति** उपाधि से विभूषित किया। 2010 सकल दिगम्बर जैन समाज लोहारिया (राज.) 2010 बासवाड़ा में द्वय आचार्य पद प्रतिष्ठा पर मुनि विमर्शसागरजी, मुनि विनम्रसागर जी ने आपको **सूरीगच्छाचार्य** उपाधि दे स्तुति की। 2011 अजमेर (राज.) की सकल दिगम्बर जैन समाज ने **विश्वहितैषी** उपाधि दे अने आप को धन्य किया था। 2011 अजमेर (राज.) की अखिल भारतीय महासभा ने आपको **वात्सल्यपुंज** उपाधि से विभूषित किया। 2012 जयपुर (राज.) में सुगप्रतिक्रमण एवं स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर श्रमणी आर्यिका विन्धय श्री विद्वत श्री माता जी तथा सकल दिगम्बर जैन समाज ने आपको **युगप्रतिक्रमण प्रवर्तक** उपाधि से विभूषित किया। वहीं श्रमणी आर्यिका विदूषी श्री (ससंघ) एवं सकल दिगम्बर जैन समाज अजमेरी मंदिर कुचामन ने आपको **अनुशासन रत्न** की उपाधि प्रदान की और सकल दिगम्बर जैन समाज जबलपुर ने श्रमणशिल्पी भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी आर.के. जैन मुम्बई (महा.) ने **आगम अतिधव्वा** की उपाधि से अपने आपको गौरवान्वित

किया। सकल दिगम्बर जैन जयपुर ने **योग सम्राट** उपाधि प्रदान की। 2013 नीमच सकल दिगम्बर जैन समाज ने **जीवंत समयसार** की उपाधि से विभूषित किया। 2013 सकल दिगम्बर जैन समाज इंदौर ने **दीक्षा सिद्धहस्त**, वहीं समग्र समाज जयपुर ने **शिरोमणि प्रज्ञानी** एवं आचार्य विमर्शसागरजी तथा शिवपूरी समाज ने **न्याय केशरी,** आर्यिका विदूषी श्री (ससंघ) एवं लालसोट समाज ने **प्रज्ञाशिरोमणि** उपाधि से अपने आपको गौरवान्वित किया। इंदौर मे ह आपका सर्वोदया संस्कृत टीका का अध्ययन कर उससे प्रभावित हुई इन्टरनेशनल ऑपन यूनिवर्सिटी जॉ.राष्ट्रीयन कॉलेज, मुम्बई प्रेजिडेण्ड डॉ. मेहर मास्टर मूस एवं उनकी टीम ने आकर आपको **डॉक्टरेट** की उपाधि से विभूषित कर अपने आपको धन्य किया। 2013 इंदौर अनजीनगर मंदिर अध्यक्ष राकेश जैन एवं समग्र समाज ने आपको **युगप्रवर्तक आगम रक्षक** उपाधि प्रदान की और 2015 दमोह में आपकी कषाय पाहुड 5 भाग की वाचना एवं स्वरूप संबोध प्रदान से प्रभावित हो पण्डित भागचंद भागेन्दु के साथ सकल दिगम्बर जैन समाज ने आपको **साहित्य महोरधि उपाधि** से विभूषित कर अपने आपको धन्य किया।

कृतित्व एवं व्यक्तित्व की गौरव गाथा- आपके ऊर्जा पूर्ण महामानवीय जीवन पर श्री साहित्य मनीषी श्री सुरेश 'सरल' जी ने 'निस्पृही संत' कृति तथा प्राकृत मनीषी प्रो. उदयचंदजी उदयपुर ने साहित्य विद्या से परिपूर्ण प्राकृत भाषा में 'विराग सेतु' महाकाव्य कृति लिख, जन मानस को आचार्य श्री के असीम व्यक्तित्व से परिचय कराया है एवं डॉ. लोकेश खरे ने आपके असीम कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर पी.एच.डी. कर डाक्टरेट की उपाधी प्राप्त की है।

अहिंसा और मानव धर्म के संदेश वाहक- आज सर्वत्र हिंसा का साम्राज्य है। यह हिंसा किसी जीव की नहीं वरन् उन मूल्यों की है जो हमारी संस्कृति के प्रबल आधार है। सांस्कृअितक मूल्यों का आज जिस तरह से ह्रास हो रहा है वह अत्यन्त दुःखदायी है। मानवीय सम्बन्धों में जिस तीव्रता के साथ बेचारागी का बोलबाला बढ़ रहा है उससे आत्मीयता धीरे-ध ीरे लुप्त होती जा रही है। संवेदनशून्य मानव आज जिस मुकाम पर खड़ा है वह एकदम हताश, निराश और विवश है, ऐसे नैराश्य के वातावरण में आचार्य श्री की वाणी के द्वारा जिन अमृत वचनों की वर्षा जगह-जगह पर हो रही है वह संतप्त मानवों के लिए संजीवनी की तरह जीवनदायिनी का काम कर रही है। जीवन का अर्थ क्या है? इसे अर्थवान बनाने के लिए किन-किन चीजों की आवश्यकता होती है? इतिहास के द्वारा स्मरण पाना कैसे संभव है? आदि; जीवन के उन शाश्वत सूत्रों का संदेश हमें आचार्य श्री के साहित्य में देखने को मिलता है। व्यक्ति को आज इस बात का बोध होना चाहिए कि सबसे बड़ा धर्म मानव धर्म है। इसकी रक्षा के लिए व्यक्ति का सतत सचेत रहना चाहिए। आचार्य श्री ने मानव धर्म और महावीर के प्रमुख सिद्धांत अहिंसा का जन-जन तक पहुंचाने का जो स्तुत्य कार्य किया है उसे इतिहास कभी विस्मृत नहीं कर पायेगा।

✦ ✦ ✦

समर्पण के दो शब्द

जो मन से पूजा करते हैं, पूजा उनको फल देती है ।
प्रभु पूजा भक्त पूजारी के, सारे संकट हर लेती है ॥

प्रत्येक संप्रदाय या दर्शन में आराध्य-पूजा को बहुत महत्व दिया गया है। जिसमें जैन-धर्म की पूजा-पद्धति निराली ही है। जहाँ अन्य जगह लौकिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए भक्त भगवान को पूजता है - वहाँ जैन धर्म में अष्ट-द्रव्यमय पूजा के माध्यम से अष्ट कर्म-क्षय की भावना भाई जाती है। हमारे आराध्य वीतरागी जिनेन्द्र प्रभु, भक्त को वर नहीं देते अपितु-

भक्त को भक्त से भगवान बना देते हैं,
ये वरदान नहीं देते, अपने समान बना लेते हैं ।

तभी तो प्रभु पूजा श्रावक ही नहीं, महान तपोनिधि, ऋषि-मुनि भी करते हैं। अंतर मात्र इतना है कि संपूर्ण परिग्रह के त्यागी होने से वे बिना अष्टद्रव्य के भाव-पूजा में लीन रहते हैं ।

ऐसे ही महान् साधक, वीतराग वेषी, वीतराग प्रभु के सच्चे आराधक राष्ट्रसंत, गणाचार्य गुरूदेव १०८ श्री विराग सागर जी महाराज हैं। जो सम्यक् प्रतिभाओं के धनी होने के कारण जिन शासन की अमूल्य निधि, जिन शासन के कीर्ति स्तम्भ हैं। सतत् ज्ञान-ध्यान-तप में रत रहने के साथ-साथ आपकी रूचि प्रभु-भक्ति में भी अपूर्व है । स्वयं भक्ति करना, करने की प्रेरणा देना व भक्त हृदय की अंतस अनुमोदना करना आपकी सौम्य-सुंदर छवि में चार चाँद लगा देते हैं। आपके विराट व्यक्तित्त्व के विषय में कुछ भी कह पाने में हमारी जिव्हा अशक्त है। पूज्य गुरूदेव ने देव-शास्त्र-गुरु की विभिन्न पूजाओं का संकलन एवं संपादन कर जो यह कृति **'विमल नित्य पाठावली'** हमें सौंपी है, उसके लिए हम उनके अत्यंत ऋणी हैं और रहेंगे। और भी समाज व देश के प्रति उनके अगणित उपकार हैं। जो न कभी भुलाये जा सकते है और न ही चुकाये जा सकते है बस इसीलिए हम श्रद्धा के दो पुष्पों के रुप में उनकी भी पूजा-आरती इस कृति में संलग्न कर रहे है अंत में यही भावना है कि उनका अनुग्रह /आशीष हम पर सदैव बना रहे और विभिन्न ग्रंथ लेखन, रचनाओं के माध्यम से वे हमें मुक्ति पथ व पाथेय प्रदान करते रहें इसी पुनीत भावना के साथ भगवान् से प्रार्थना करते हैं-

चिरजीवन उनको दे देना, जो स्व पर उपकारी हैं
हमको उनकी शरणा देना, जिनमें छवि तुम्हारी है ॥

परम पूज्य गुरुदेव के चरणों में त्रय भक्ति पूर्वक अनंतबार नमोस्तु ! नमोस्तु ! नमोस्तु !

गुरू शरणाकांक्षी
श्री गौतमभाई नवलचन्द शाह

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ
१.	ॐ	१
२.	ह्रीँ	१
३.	धारणा	२
४.	पूजन मुद्रायें	४
५.	मंगल पाठ	८
६.	देव स्तुति (हिन्दी)	८
७.	दर्शन पाठ (संस्कृत)	९
८.	सुप्रभात स्तोत्र	१०
९.	महावीराष्टक स्तोत्र	११
१०.	भक्तामर स्तोत्र	१२
११.	जिन सहस्रनाम स्तोत्र	१८
१२.	तत्त्वार्थसूत्र	३०
१३.	ऋषिमण्डल स्तोत्र	३९
१४.	मंगलाष्टक स्तोत्र	४४
१५.	लघु अभिषेक पाठ - संस्कृत	४५
१६.	बृहत् शान्तिधारा	४९
१७.	शांतिधारा	५१
१८.	जन्माभिषेक आरती (सुरपति)	५३
१९.	विनय पाठ	५३
२०.	पूजा पीठिका (पूजा प्रारंभ)	५५
२१.	समुच्चय पूजन	५९
२२.	देव-शास्त्र-गुरु (केवल रवि किरणें)	६१
२३.	नवदेवता पूजन	६५
२४.	सिद्ध पूजा	६७

२५.	चौबीसी पूजा	७०
२६.	श्री आदिनाथ पूजा	७२
२७.	श्री अजितनाथ पूजा	७५
२८.	श्री सुमतिनाथ पूजा	७८
२९.	श्री पद्म प्रभू भगवान पूजा	८२
३०.	श्री चन्द्रप्रभु पूजा	८५
३१.	श्री शीतलनाथ पूजा	८८
३२.	श्री श्रेयांसनाथ पूजा	९१
३३.	श्री वासुपूज्य पूजा	९४
३४.	श्री अनंतनाथ पूजा	९७
३५.	श्री शांतिनाथ पूजा	१००
३६	श्री नेमिनाथ प्रभु पूजा	१०३
३७.	श्री पार्श्वनाथ पूजा	१०६
३८.	श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ पूजा	१०९
३९.	श्री महावीर स्वामी पूजा	११३
४०.	सोलह कारण पूजा	११७
४१.	दशलक्षण पूजा	१२२
४२.	पंचमेरू पूजा	१२६
४३.	रत्नत्रय पूजा	१२८
४४.	क्षमावाणी पूजा	१३४
४५.	रविव्रत पूजा	१३८
४६.	पञ्च परमेष्ठी पूजा	१४१
४७.	अष्टान्हिका व्रत पूजा (नंदीश्वरव्रत)	१४३
४८.	रक्षाबंधन पूजन	१४६
४९.	गणधर वलय पूजा	१४९
५०.	चारित्र शुद्धि व्रत पूजा	१५३
५१.	चौंसठ ऋद्धि व्रत पूजा	१५६

विमल नित्य पाठावली

५२.	जिनगुण सम्पत्ति व्रत पूजा	१५८
५३.	णमोकार मंत्र पूजा	१६१
५४.	तत्त्वार्थसूत्र व्रत पूजा	१६५
५५.	तीस चौबीसी व्रत पूजा	१६८
५६.	भक्तामर स्तोत्र पूजा	१७२
५७.	कल्याण मंदिर व्रत पूजा	१७४
५८.	सहस्रनाम पूजा	१७६
५९.	त्रिकाल चौबीसी पूजा	१७८
६०.	समवशरण पूजा (श्री मण्डप पूजा)	१८१
६१.	कर्मदहन पूजा	१८४
६२.	चन्दनषष्ठी व्रत पूजा	१९२
६३.	निर्वाणक्षेत्र पूजा	२१२
६४.	श्री सम्मेदशेखरजी पूजा	२१४
६५.	गौतम स्वामी पूजा	२१४
६६.	श्री सरस्वति पूजा	२२४
६७.	श्री धवल ग्रंथ पूजा	२२७
६८.	श्री जयधवल पूजा	२२९
६९.	कतिपय ग्रन्थों को अर्घ्य:	२३२
७०.	आचार्य आदिसागर जी (अंकलीकर) महाराज की पूजा	२३५
७१.	आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज की पूजा	२३७
७२.	आचार्य विमल सागर जी महाराज की पूजा	२३९
७३.	आचार्य सन्मति सागर जी महाराज की पूजा	२४२
७४.	गणाचार्य विराग सागर जी महाराज की पूजा	२४५
७५.	निर्वाणकाण्ड	२४९
७६.	अर्घ्यावली	२५१
७७.	महाअर्घ	२५९
७८.	शांति पाठ	२६०

७९.	विसर्जन पाठ	२६१
८०.	पञ्च परमेष्ठी की आरती	२६१
८१.	श्री शांतिनाथ प्रभु की आरती	२६१
८२.	श्री पार्श्वनाथ भगवान की आरती	२६२
८३.	श्री महावीर भगवान की आरती	२६३
८४.	आचार्य आदिसागर जी महाराज की आरती	२६३
८५.	आचार्य महावीर कीर्ति जी महाराज की आरती	२६४
८६.	आचार्य विमल सागर जी महाराज की आरती	२६५
८७.	आचार्य सन्मति सागर जी महाराज की आरती	२६५
८८.	गणाचार्य विराग सागर जी महाराज की आरती	२६६
८९.	यज्ञोपवीत संस्कार विधि	२६६
९०.	माह के अनुसार व्रत का चार्ट	२७०
९१.	किसी भी माह के अनुसार व्रत का चार्ट	२७६
९२.	ध्वजस्थापना विधि	२८०
९३.	दीपक स्थापन विधि	२८३
९४.	जापमाला शुद्धि विधि	२८४
९५.	मंगल कलश स्थापना मंत्र	२८४
९६.	तीर्थंकर कल्याणक दर्पण	२८५
९८.	व्रतों की जाप	२८६
९८.	श्रावक प्रतिक्रमण	२९२
९९.	व्रत कथायें	२९७

विमल नित्य पाठावली

विमल नित्य पाठावली

पंचपरमेष्ठी युक्त ॐ का ध्यान

साधक पंचपरमेष्ठी युक्त 'ॐ' का इस प्रकार ध्यान करे कि हमारे सन्मुख 'ॐ' बीजाक्षर है। जिसकी लाल चन्द्रबिन्दु पर 'सिद्धपरमेष्ठी' का, सफेद रेफाकृति पर अरहंत परमेष्ठी का, पीत डंडी पर आचार्य परमेष्ठी का, हरित आधे 'न' की आकृति पर उपाध्याय परमेष्ठी का तथा नीचे की सर्फाकृति पर साधुपरमेष्ठी का ध्यान करें।

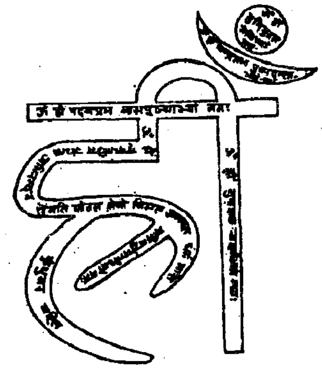

चौबीस तीर्थंकर युक्त 'ह्रीं' का ध्यान

साधक चौबीस तीर्थंकर युक्त 'ह्रीं' का इस प्रकार ध्यान करें। सर्व प्रथम सफेद चंद्राकृति पर श्वेत वर्ग वाले चन्द्रप्रभ और पुष्पदंत भगवान का, श्यामवर्णी बिन्दु पर मुनिसुव्रत नाथ और नेमिनाथ भगवान का, लाल वर्णी डंडी (कला) पर पद्मप्रभु और वासुपूज्य भगवान का तथा ऋकार सहित तपायें हुए स्वर्ण समान वर्ण 'ह' वर्ण में ऋषभ, अजित, संभव अभिनंदन, सुमति, शीतल, श्रेयांस, विमल, अनंत, धर्म, शांति, कुन्थु, अरह, मल्लि, नमि और महावीर भगवान का तथा हरित वर्ण 'ई' की मात्रा पर सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ भगवान का ध्यान करें।

धारणा

१. पृथ्वी धारणा

स्वच्छ शांत एकान्त स्थान में निराकुलित पवित्र मन से विधिवत् बैठकर पृथ्वी धारणा में इस प्रकार विचार करें - कि दु:खों से भरा मध्यलोक के बराबर दु:खों से भरा हुआ लहराता संसार रुपी विशाल समुद्र है । इसके बीचों-बीच जम्बूद्वीप बराबर स्वर्गादिक सुखों का प्रतीक एक लाख योजन विस्तार वाला विशाल सहस्र दल कमल खिला हुआ है। तपाये हुए स्वर्ण सदृश वर्ण वाली जिसकी सुमेरु पर्वताकृति ज्ञान रुपी ऊँची कर्णिका है । जिसके अग्रभाग पर ध्यान रुपी (स्फटिक मणिमयी) सुन्दर कमलासन है जिस पर कर्मों के क्षय की अभिलाषा से एकमात्र मैं ही अकेला बैठा हूँ और विचार करता हूँ कि शरीर और शरीर से संबंधित सभी चेतन व अचेतन पदार्थ मुझसे अत्यन्त भिन्न हैं और मैं उससे भिन्न ज्ञायक स्वरुपी चैतन्य आत्मा हूँ ।

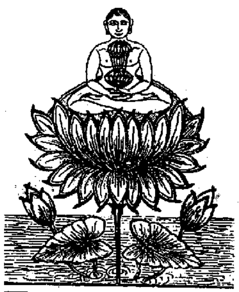

२. अग्नि धारणा :-

इसके बाद अग्निधारणा करें-विचार करे मेरे नाभि के पास एक सफेद रंग का नाभिकमल है जिसमें सोलह पत्ते हैं प्रत्येक पत्र क्रमश: अ, आ, इ, ई, उ, ऊ ऋ, ॠ , लृ, ल, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अ: ये १६ बीजाक्षर लिखे हुए हैं कमल की कर्णिका पर र्ह बीजाक्षर लिखा हुआ है । तथा हृदय स्थान पर दूसरा अष्टदल (पांखुडी वाला) कमल है जो अधोमुखि है जिसकी प्रत्येक पांखुडि पर क्रमश: ज्ञानावरणादि एक-एक कर्म स्थित हैं ।

अब विचार करें नाभिकमल के र्ह बीजाक्षर की रेफ से धुआँ निकलना प्रारम्भ हुआ जो बढ़ता हुआ अग्नि के रूप में परिवर्तित हो रहा है तथा बढ़ती हुई उर्ध्वगामी अग्नि शिखा ने हृदयस्थ अष्टकर्म रुपी कमल को जलाकर अग्नि और शरीर में व्याप्त हो गई है जिसका त्रिकोण अग्नि कुण्ड जैसा आकार बन गया है । जिसमें से रं रं रं रं शब्द गूंज रहा है । अग्नि ने सम्पूर्ण शरीर को जलाकर राख का ढेर बना दिया है । और कुछ जलाने जब कुछ भी शेष नहीं रहा तो धीरे-धीरे अग्नि शांत हो गई है ।

३. वायु धारणा :-

विचार करें कि वायु का रुख प्रारम्भ हुआ है जिसने बढ़ते हुए प्रचण्ड तूफानी रुप को धारण कर वायु के मण्डलाकार गोले ने मुझे घेर लिया है और सांय सांय सांय के शब्द के साथ उसने कर्म व शरीर की सारी राख उड़ा दी है । जिससे आत्मा धूसरित स्फटिक मणि के सदृश हो गई है ।

४. जलधारणा-

वायु के शांत होते ही सारा आकाश घनघोर काले-काले बादलों से छा रहा है बादल गरज रहे हैं बिजली चमक रही है और पानी वरसना प्रारम्भ हो गया पं पं पं पं की ध्वनि के साथ वर्षा मूसलधार हो चुकी है जल का एक उलटा अर्घ चन्द्राकर बन चुका है । जलवृष्टि ने स्फटिक सदृश आत्मा के ऊपर स्थित कर्म धूल (राख को धो कर स्वच्छ कर दिया है ।

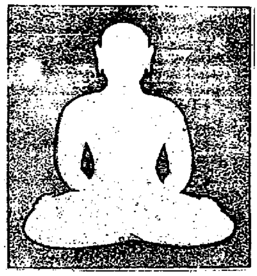

५. तत्त्व रुपवती धारणा -

साधक विचार करता है कि मैं शरीर से रहित अशरीरी हूँ सभी कर्म जल जाने से मैं कर्मों से मुक्त सिद्ध, बुद्ध, नित्य, निरंजन, निर्विकार, चैतन्य पुञ्ज टंकोंत्कीर्ण एक ज्ञायक आत्मा हूँ मुझ में रुप, रस, गंध, स्पर्श नहीं है मैं इससे अत्यन्त भिन्न लक्षण वाला हूँ मैं पंचपरावर्तन रुप संसार से तथा चारों गतियों से रहित सिद्धालय में विराजमान हूँ । मैं अपने ही अनंत गुणों का वेदक हूँ अहा हाहा मैं अनंत सुख का संवेदन कर रहा हूँ आदि ।

वन्दना मुद्रा नं. १

वन्दना मुद्रा नं. २

अभिषेक मुद्रा-५

आह्वानन मुद्रा-६

(अ) क्रमांक १ और २ में दर्शाये गये चित्र के अनुसार देव-शास्त्र गुरु के दर्शन करें। (ब) क्रमांक ५ के अनुसार अभिषेक करें. तथा क्र. ६ आह्वानन करें

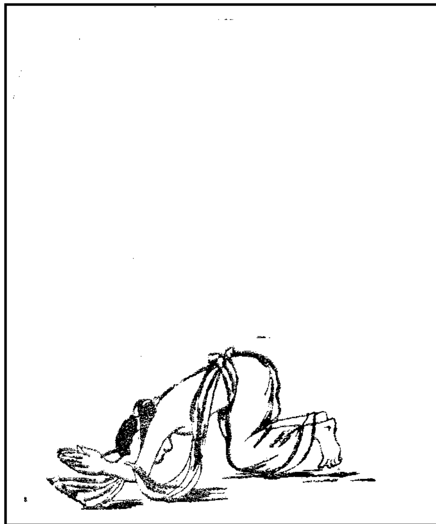

वन्दना मुद्रा नं. ३

कायोत्सर्ग मुद्रा-४

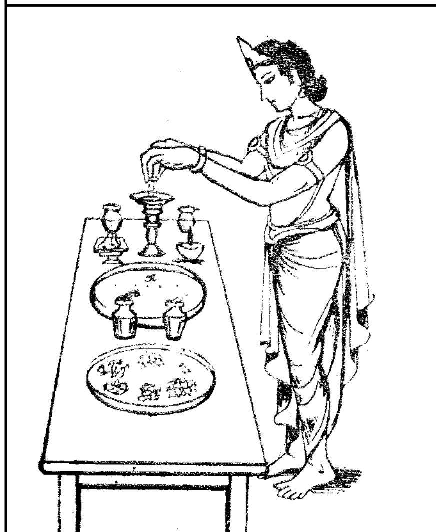

स्थापन मुद्रा-७

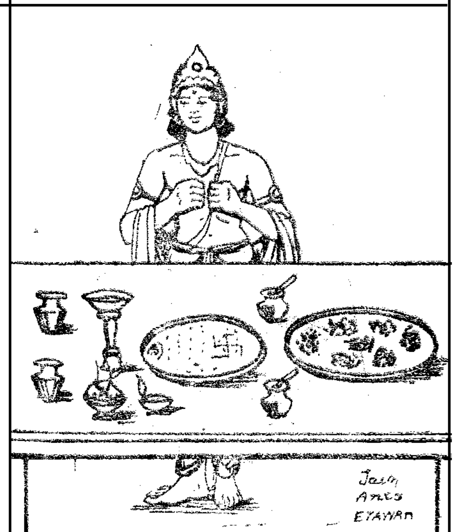

सन्निधिकरण मुद्रा-८

(क) क्रमांक ३ के अनुसार नमस्कार करें। (ख) क्रमांक ४ के अनुसार स्थिर हो ९ बार णमोकार मंत्र पढ़े। (ग) क्रमांक ७ के अनुसार स्थापना करें। (घ) क्रमांक ८ के अनुसार सन्निधिकरण करें।

जल चढ़ाने की मुद्रा नं.९

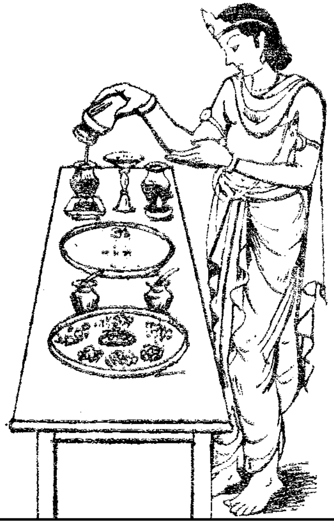

चन्दन चढ़ाने की मुद्रा नं.१०

नैवेद्य चढ़ाने की मुद्रा नं.१३

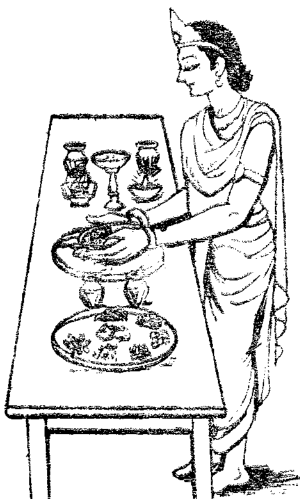

दीप चढ़ाने की मुद्रा नं. १४

क्रमांक ९ के अनुसार जल चढ़ावें। क्रमांक १० के अनुसार चंदन चढ़ावें।
क्रमांक १३ के अनुसार नैवेद्य चढ़ावें। क्रमांक १४ के अनुसार दीप चढ़ावें।

विमल नित्य पाठावली

अक्षत चढ़ाने की मुद्रा नं.११

पुष्प चढ़ाने की मुद्रा नं.१२

धूप चढ़ाने की मुद्रा नं.१५

फल चढ़ाने की मुद्रा नं.१६

क्रमांक ११ के अनुसार अक्षत चढ़ावें। क्रमांक १२ के अनुसार पुष्प चढ़ावें।
क्रमांक १५ के अनुसार धूप चढ़ावें। क्रमांक १६ के अनुसार फल चढ़ावें।

मंगल पाठ

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं
ऐसो पंच णमोयारो, सव्वपावप्पणासणो;
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलम्.

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णतो धम्मो लोगुत्तमा चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

देव स्तुति

(कविवर बुधजन कृत)

प्रभु पतित पावन-मैं अपावन, चरन आयो सरन जी ।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन-मरन जी ॥१॥
तुम ना पिछान्यो आन मान्यो, देव विविध प्रकार जी ।
या बुद्धि सेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी ॥२॥
भव विकट वन में कर्म बैरी, ज्ञान-धन मेरो हर्‌यो ।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिर्‌यो ॥३॥
धन घड़ी यो धन दिवस यो ही, धन जनम मेरो भयो ।
अब भाग्य मेरो उदय आयो, दरश प्रभु को लख लयो ॥४॥
छवि वीतरागी नग्न मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरैं ।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण जुत, कोटि रवि छवि को हरैं ॥५॥
मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि आतम भयो ।
मो उर हर्ष ऐसो भयो, मनु रंक चिन्तामणि लयो ॥६॥
मैं हाथ जोड़ नवाऊँ मस्तक, वीनऊँ तुम चरण जी ।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहुँ तारणा तरणा जी ॥७॥
जाचूँ नहीं सुरवास पुनि नर-राज परिजन साथ जी ।
"बुध" जाचहूँ तव भक्ति भव भव, दीजिये शिवनाथ जी ॥८॥

दर्शन-पाठ

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पाप नाशनम् ।
दर्शनं स्वर्ग सोपानं, दर्शनं मोक्ष साधनम् ।।१।।
दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च ।
न तिष्ठति चिरं पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम् ।।२।।
वीतरागमुखं दृष्ट्वा, पद्मराग समप्रभम् ।
नैक जन्मकृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति ।।३।।
दर्शनं जिनसूर्यस्य, संसारध्वान्त नाशनम् ।
बोधनं चित्तपद्मस्य, समस्तार्थप्रकाशनम् ।।४।।
दर्शनं जिन चन्द्रस्य, सद्धर्मामृतवर्षणम् ।
जन्मदाहविनाशाय, वर्धनं सुखवारिधेः ।।५।।
जीवादितत्त्वप्रतिपादकाय, सम्यक्त्व मुख्याष्टगुणार्णवाय ।
प्रशान्तरुपाय दिगम्बराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय ।।६।।
चिदानन्दैकरुपाय, जिनाय परमात्मने ।
परमात्मप्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः ।।७।।
अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात् कारुण्यभावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर ।।८।।
नहि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये ।
वीतरागात् परो देवो, न भूतो न भविष्यति ।।९।।
जिनेभक्तिर्जिनेभक्ति, र्जिनेभक्ति र्दिनेदिने ।
सदामेऽस्तु सदामेऽस्तु, सदामेऽस्तु भवे भवे ।।१०।।
जिनधर्मविनिर्मुक्तो, मा भवंच्चक्रवर्त्यपि ।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिन धर्मानुवासितः ।।११।।
जन्मजन्मकृतं पापं, जन्मकोटिभिरर्जितम् ।
जन्ममृत्युजरा रोगो, हन्यते जिनदर्शनात् ।।१२।।
अद्या-भवत् सफलता नयन-द्वयस्य,
देव ! त्वदीय चरणाम्बुज-वीक्षणेन ।
अद्य त्रिलोक-तिलक ! प्रतिभासते मे,
संसार-वारिधि-रयं चुलुक-प्रमाणः ।।१३।।
॥ इति दर्शन पाठ ॥

सुप्रभात स्तोत्र

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जन्माभिषेकोत्सवे,
यद्दीक्षा ग्रहणोत्सवे यदखिल, ज्ञानप्रकाशोत्सवे ।
यन्निर्वाण गमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद्भवैः,
संगीत स्तुति मंगलैः प्रसरतां,मे सुप्रभातोत्सवः ।।१।।
श्रीमन्नतामर किरीट मणिप्रभाभि-रालीढपाद युग दुर्धर कर्मदूर ।
श्रीनाभिनन्दन ! जिनाजित ! शम्भवाख्य, त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।२।।
छत्रत्रय प्रचल चामर वीज्यमान, देवाभिनन्दन मुने ! सुमते ! जिनेन्द्र !
पद्मप्रभारुण मणि द्युतिभासुरांग, त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।३।।
अर्हन् सुपार्श्व कदलीदलवर्ण गात्र, प्रालेयतारगिरि मौक्तिक वर्णगौर ।
चन्द्रप्रभ स्फटिक पाण्डुर पुष्पदन्त ! त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।४।।
सन्तप्त कांचनरुचे जिन शीतलाख्य, श्रेयान्विनष्ट दुरिताष्ट कलङ्क पङ्क ।
बंधूक बन्धुर रुचे जिनवासुपूज्य, त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।५।।
उद्दण्ड दर्प करिपो विमलामलांग, स्थेमन्ननंत जिदनंत सुखाम्बुराशे ।
दुष्कर्म कल्मष विवर्जित धर्मनाथ, त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।६।।
देवामरी कुसुम सन्निभ शान्तिनाथ, कुन्थो ! दयागुण विभूषण भूषितांग ।
देवाधिदेव भगवन्नर तीर्थनाथ, त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।७।।
यन्मोह मल्ल मद भञ्जन मल्लिनाथ, क्षेमंकरावितथ शासन सुव्रताख्य ।
सत्सम्पदा प्रशमितो नमि नामधेय, त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।८।।
तापिच्छ गुच्छ रुचिरोज्ज्वल नेमिनाथ, घोरोपसर्ग-विजयिन् जिन पार्श्वनाथ ।
स्याद्वाद सूक्ति मणिदर्पण वर्धमान, त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।९।।
प्रालेयनील हरितारुण पीतभासं, यन्मूर्तिमव्यय सुखावसथं मुनीन्द्राः ।
ध्यायन्ति सप्ततिशतं जिनवल्लभानां, त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।१०।।
(अनुष्टुप छन्द)
सुप्रभातं सुनक्षत्रं, मांगल्यं परिकीर्तितम् ।
चतुर्विंशति तीर्थाणां, सुप्रभातं दिने-दिने ।।११।।
सुप्रभातं सुनक्षत्रं, श्रेयःप्रत्यभि नन्दितम् ।
देवता ऋषयः सिद्धाःसुप्रभातं दिने दिने ।।१२।।
सुप्रभातं तवैकस्य, वृषभस्य महात्मनः ।
येन प्रवर्तितं तीर्थं, भव्यसत्व सुखावहम् ।।१३।।

सुप्रभातं जिनेंद्राणां, ज्ञानोन्मीलित चक्षुषाम् ।
अज्ञान तिमिरांधानां, नित्यमस्तमितो रविः ॥१४॥
सुप्रभातं जिनेन्द्रस्य, वीरः कमललोचनः ।
येन कर्माटवी दग्धा, शुक्लध्यानोग्रवह्निना ॥१५॥
सुप्रभातं सुनक्षत्रं, सुकल्याणं सुमंगलम् ।
त्रैलोक्य हित कर्त्तृणां, जिनानामेव शासनम् ॥१६॥
(इति सुप्रभातं स्तोत्रम्)

महावीराष्टक स्तोत्र

(शिखरिणी छंद)

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चि-दचितः,
समं भान्ति-ध्रौव्य-व्यय-जनि-लसन्तोऽन्तरहिताः ।
जगत्साक्षीमार्ग-प्रकटन-परो भानु रिव यो,
महावीर स्वामी नयन पथ गामी भवतु मे (नः)॥१॥
अताम्रं यच्चक्षुः कमल-युगलं स्पन्द-रहितम्,
जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तर-मपि ।
स्फुटं मूर्ति-र्यस्य प्रशमित-मयी वाति-विमला,
महावीर-स्वामी नयन पथ गामी भवतु मे (नः)॥२॥
नमन्नाकेन्द्राली-मुकुट-मणि-भा-जाल-जटिलं,
लसत्-पादाम्भोज-द्वय-मिह यदीयं तनु-भृताम् ।
भव-ज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि,
महावीर-स्वामी नयन पथ गामी भवतु मे (नः)॥३॥
यदर्चा - भावेन - प्रमुदित - मना दर्दुर इह,
क्षणा-दासीत्-स्वर्गी गुण-गण-समृद्धः सुख-निधिः ।
लभंते सद्भक्ताः शिव सुख-समाजं किमु तदा,
महावीर-स्वामी नयन पथ गामी भवतु मे (नः)॥४॥
कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगत - तनुर्ज्ञान - निवहो,
विचित्रात्माप्येको नृपति-वर-सिद्धार्थ-तनयः ।
अजन्मापि-श्रीमान् विगत-भव रागोद्भुतगतिर्,
महावीर-स्वामी नयन पथ गामी भवतु मे (नः)॥५॥

यदीया वाग्गंगा विविध-नय-कल्लोल-विमला,
वृहज्ज्ञानांभोभि-र्जगति जनतां या स्नपयति ।
इदानी-मप्येषा बुधजन-मरालैः परिचिता,
महावीर-स्वामी नयन पथ गामी भवतु मे(नः)॥६॥
अनिर्वा-रोद्रेकस्त्रिभुवन-जयी काम-सुभटः,
कुमारावस्थाया-मपि निज-बलाद्येन विजितः ।
स्फुरन्-नित्यानन्द-प्रशमपद-राज्याय स जिनः,
महावीर-स्वामी नयन पथ गामी भवतु मे (नः)॥७॥
महा-मोहातङ्क प्रशमन-परा-कस्मिकभिषङ्,
निरापेक्षो-बंधु-र्विदित-महिमा मंगलकरः ।
शरण्यः साधूनां भव-भय-भृता-मुत्तम-गुणो,
महावीर-स्वामी नयन पथ गामी भवतु मे(नः)॥८॥
महावीराष्टकं स्तोत्रं,भक्त्या 'भागेन्दुना' कृतम् ।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि, स याति परमां गतिम् ॥९॥
(इति श्री महावीराष्टकं स्तोत्रं)

भक्तामर स्तोत्र

(श्री मानतुंगाचार्य विरचित)
(वसंत तिलका छन्द)

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा
मुद्योतकं-दलित-पाप-तमो-वितानम् ।
सम्यक्-प्रणम्य-जिन-पाद-युगं-युगादा
वालम्बनं-भव-जले पततां जनानाम् ॥१॥
यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधा
दुद्भूत-बुद्धि-पटुभिः सुर-लोकनाथैः ।
स्तोत्रै-र्जगत्-त्रितय-चित्त-हरै-रुदारैः
स्तोष्ये किलाह-मपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥
बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ,
स्तोतुं समुद्यत-मति-र्विगत-त्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जल-संस्थित-मिन्दु-बिम्ब,
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥

वक्तुं गुणान्गुण-समुद्र ! शशांक-कान्तान्,
कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं,
को वा तरीतु-मल-मम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥
सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगत-शक्ति-रपि-प्रवृत्तः ।
प्रीत्यात्म-वीर्य-मविचार्य मृगी मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥
अल्पश्रुतं-श्रुतवतां परिहास-धाम,
त्वद्-भक्ति-रेव मुखरी-कुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल-मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र-चारु-कलिका-निक-रैक-हेतु ॥६॥
त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति-सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षय-मुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्त-लोक-मलि-नील-मशेष-माशु,
सूर्यांशु-भिन्न-मिव शार्वर-मन्धकारम् ॥७॥
मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद
मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु,
मुक्ताफल-द्युति-मुपैति ननूद-बिन्दुः ॥८॥
आस्तां तव स्तवन-मस्त-समस्त-दोषं,
त्वत्-सङ्कथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्र-किरणः कुरुते प्रभैव,
पद्मा-करेषु जलजानि विकास-भाञ्जि ॥९॥
नात्यद्भुतं भुवन-भूषण ! भूतनाथ !
भूतै-र्गुणै-र्भुवि भवन्त-मभिष्टु-वन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्म समं करोति ॥१०॥
दृष्ट्वा भवन्त-मनिमेष-विलोकनीयं,
नान्यत्र तोष-मुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः,
क्षारं जलं जलनिधे-रसितुं क इच्छेत् ॥११॥

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्-त्रिभुवनैक-ललामभूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समान-मपरं न हि रुप-मस्ति ॥१२॥
वक्त्रं क्व ते सुर-नरोरग-नेत्र-हारि,
निःशेष-निर्जित जगत्-त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलङ्क-मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्-वासरे भवति पाण्डु-पलाश कल्पम् ॥१३॥
सम्पूर्ण-मण्डल-शशाङ्क-कला-कलाप,
शुभ्रा गुणास्-त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये संश्रितास्-त्रिजगदीश्वर नाथमेकं,
कस्तान्-निवारयति सञ्चरतो-यथेष्टम् ॥१४॥
चित्रं-किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि
र्नीतं मनागपि मनो न विकार-मार्गम् ।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित् ॥१५॥
निर्धूम-वर्ति-रपवर्जित-तैल-पूरः,
कृत्स्नं जगत्-त्रयमिदं प्रकटी-करोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्व-मसि नाथ ! जगत्-प्रकाशः ॥१६॥
नास्तं कदाचि-दुपयासि न राहु-गम्यः,
स्पष्टी-करोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदर-निरुद्ध-महा-प्रभावः,
सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र ! लोके ॥१७॥
नित्योदयं दलित-मोह-महान्धकारं,
गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्ज-मनल्प कान्ति,
विद्योतयज्-जग-दपूर्व-शशाङ्क-बिम्बम् ॥१८॥
किं शर्वरीषु शशि-नाह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्-मुखेन्दु-दलितेषु तमस्सु नाथ !
निष्पन्न-शालिवन-शालिनि जीव-लोके,
कार्यं कियज्-जलधरै-र्जल-भार-नम्रैः ॥१९॥

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु ।
तेजो महा-मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काच-शकले किरणा-कुलेऽपि ॥२०॥
मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि-तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्-मनो हरति नाथ ! भवान्तरेऽपि ॥२१॥
स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुर-दंशु-जालम् ॥२२॥
त्वा-मामनन्ति मुनयः परमं पुमांस
मादित्य-वर्ण-ममलं तमसः पुरस्तात् ।
त्वामेव सम्य-गुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिव-पदस्य मुनीन्द्र ! पन्थाः ॥२३॥
त्वा-मव्ययं विभु-मचिन्त्य-मसंख्य-माद्यं,
ब्रह्माण-मीश्वर-मनन्त-मनङ्ग-केतुम् ।
योगीश्वरं विदित-योग-मनेक-मेकं,
ज्ञान स्वरुप-ममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥
बुद्धस्त्व-मेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात्,
त्वं शंकरोऽसि भुवन-त्रय-शंकरत्वात् ।
धातासि धीर ! शिवमार्ग-विधे-र्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥
तुभ्यं नमस्-त्रिभुवनार्ति-हराय नाथ !,
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय ।
तुभ्यं नमस्-त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधि-शोषणाय ॥२६॥
को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणै-रशेषैस्,
त्वं संश्रितो निरवकाश-तया मुनीश !
दोषै-रुपात्त-विविधाश्रय-जात-गर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचि-दपीक्षितोऽसि ॥२७॥

उच्चै-रशोक-तरु-संश्रित-मुन्मयूख,
माभाति रुप-ममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्-किरणमस्त-तमो-वितानं,
बिम्बं रवे-रिव पयोधर-पार्श्ववर्ति ॥२८॥
सिंहासने मणि-मयूख शिखा-विचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्-विलस-दंशुलता-वितानं,
तुङ्गोदयाद्रि-शिर-सीव सहस्र-रश्मेः ॥२९॥
कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम् ।
उद्यच्छशांक-शुचि-निर्झर-वारिधार
मुच्चैस्तटं-सुर-गिरे-रिव शातकौम्भम् ॥३०॥
छत्र-त्रयं तव विभाति शशांक-कान्त
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानु-कर-प्रतापम् ।
मुक्ताफल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभं,
प्रख्यापयत्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥
गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्-विभाग-
स्त्रैलोक्य-लोक-शुभ-संगम-भूति-दक्षः ।
सद्-धर्मराज-जय-घोषण-घोषकः सन्,
खे दुन्दुभि-र्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥
मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात
सन्तानकादि-कुसुमोत्कर-वृष्टि-रुद्धा ।
गन्धोद-बिन्दु—शुभ-मन्द-मरुत्-प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां तति-र्वा ॥३३॥
शुम्भत्-प्रभा-वलय-भूरि-विभा विभोस्ते,
लोक-त्रये द्युतिमतां द्युति-माक्षिपन्ति ।
प्रोद्यद्-दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशा-मपि सोम-सौम्याम् ॥३४॥
स्वर्गापवर्ग-गम-मार्ग-विमार्गणेष्टः,
सद्धर्म तत्त्व कथनैक-पटुस्-त्रिलोक्याः ।
दिव्य-ध्वनि-र्भवति ते विशदार्थ-सर्व-
भाषा स्वभाव परिणाम गुणैः प्रयोज्यः ॥३५॥

उन्निद्र-हेम नव-पंकज-पुञ्ज-कान्ति
पर्युल्लस-न्-नख-मयूख-शिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥
इत्थं यथा तव विभूति-रभूज्-जिनेन्द्र,
धर्मोपदेशन-विधौ न तथा परस्य ।
यादृक्-प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक-कुतो ग्रह-गणस्य विकासिनोऽपि ॥३७॥
श्च्योतन्-मदाविल-विलोल-कपोल-मूल,
मत्त-भ्रमद्- भ्रमर-नाद विवृद्ध-कोपम् ।
ऐरावताभ-मिभ-मुद्धत-मापतन्तं,
दृष्ट्वा भयं भवति नो भव-दाश्रितानाम् ॥३८॥
भिन्नेभ कुम्भ गल-दुज्ज्वल शोणिताक्त,
मुक्ताफल प्रकर भूषित-भूमिभागः ।
बद्ध-क्रमः क्रम-गतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रम युगाचल-संश्रितं ते ॥३९॥
कल्पान्त काल पवनोद्धत वह्नि-कल्पं,
दावानलं ज्वलित-मुज्ज्वल-मुत्स्फुलिंगम् ।
विश्वं जिघत्सु-मिव सम्मुख-मापतन्तं,
त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्यशेषम् ॥४०॥
रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं,
क्रोधोद्धतं फणिन-मुत्फण-मापतन्तम् ।
आक्रामति क्रमयुगेण निरस्त-शंक-,
स्त्वन्नाम-नाग-दमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१॥
वल्गत्तुरंग-गज-गर्जित-भीमनाद,
माजौ बलं बलवता-मपि भूपतीनाम् ।
उद्यद्-दिवाकर मयूख शिखा पविद्धं,
त्वत्-कीर्तनात्तम इवाशु भिदा-मुपैति ॥४२॥
कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारिवाह,
वेगावतार-तरणातुर-योध भीमे ।
युद्धे जयं विजित-दुर्जय-जेय-पक्षास्
त्वत्पाद पंकज-वनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥

अम्भोनिधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र,
पाठीन-पीठ-भय दोल्वण-वाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरङ्ग शिखर स्थित यानपात्रा-,
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४४॥
उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्नाः,
शोच्यां दशा-मुपगताश्च्युत-जीविताशाः ।
त्वत्पाद पंकज रजोऽमृत दिग्ध देहा,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज तुल्य रुपाः ॥४५॥
आपाद कण्ठमुरु श्रृंखल-वेष्टितांगा,
गाढं बृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट जङ्घा ।
त्वन्-नाम मन्त्र-मनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगत बन्ध भया भवन्ति ॥४६॥
मत्त-द्विपेन्द्र-मृगराज दवानलाहि,
संग्राम वारिधि-महोदर-बन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाश-मुपयाति भयं-भियेव,
यस्तावकं स्तव-मिमं मतिमा-नधीते ॥४७॥
स्तोत्र-स्रजं तव जिनेन्द्र ! गुणै-र्निबद्धां,
भक्त्या मया विविध वर्ण विचित्र पुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठगता-मजस्रं,
तं ''मानतुङ्ग''-मवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

(इति श्री भक्तामर स्तोत्रम्)

श्री जिनसहस्रनाम स्तोत्र

स्वयंभुवे नमस्तुभ्य-मुत्पाद्यात्मान-मात्मनि ।
स्वात्मनैव तथोद्भूत-वृत्तयेऽचिन्तयवृत्तये ॥१॥
नमस्ते जगतां पत्ये, लक्ष्मीभर्त्रे नमोऽस्तु ते ।
विदांवर नमस्तुभ्यं, नमस्ते वदतांवर ॥२॥
कामशत्रुहणं देव, मानमन्ति मनीषिणः ।
त्वामानमन्सुरेण्मौलि-भा-मालाऽभ्यर्चितक्रमम् ॥३॥
ध्यान-द्रुघण-निर्भिन्न, घन-घाति महातरुः ।
अनन्त-भव-सन्तान, जयादासी दनन्तजित् ॥४॥

त्रैलोक्य-निर्जयावाप्त-दुर्दर्पमतिदुर्जयम् ।
मृत्युराजं विजित्यासीज्जिन ! मृत्युं जयो भवान् ॥५॥
विधूताशेष-संसार-बन्धनो भव्यबान्धवः ।
त्रिपुराऽरिस्त्व-मेवासि, जन्म मृत्यु-जराऽन्तकृत् ॥६॥
त्रिकाल-विषयाशेष-तत्त्वभेदात् त्रिधोत्थितम् ।
केवलाख्यं दधच्चक्षुस्त्रिनेत्रोऽसि त्वमीशितः ॥७॥
त्वामन्धकाऽन्तकं प्राहु र्मोहान्धाऽसुर-मर्द्नात् ।
अर्द्धं ते नारयो यस्मादर्धनारीश्वरोऽस्यतः ॥८॥
शिवः शिवपदाध्यासाद् दुरिताऽरि-हरो हरः ।
शंकरः कृतशं लोके, शंभवस्त्वं भवन्सुखे ॥९॥
वृषभोऽसि जगज्ज्येष्ठः पुरुः पुरुगुणोदयैः ।
नाभेयो नाभि-सम्भूतेरिक्ष्वाकु-कुल-नन्दनः ॥१०॥
त्वमेकः पुरुषस्कन्धस्त्वं, द्वे लोकस्य लोचने ।
तवं त्रिधा बुद्ध-सन्मार्गस्त्रिज्ञस्त्रिज्ञान-धारकः ॥११॥
चतुःशरण मांगल्य-मूर्त्तिस्त्वं चतुरस्रधीः ।
पञ्च-बír¢मयो देव, पावनस्त्वं पुनीहि माम् ॥१२॥
स्वर्गाऽवतारिणे तुभ्यं, सद्योजातात्मने नमः ।
जन्माभिषेकवामाय, वामदेव नमोऽस्तु ते ॥१३॥
सन्निष्क्रान्तावघोराय, पदं परममीयुसे ।
केवलज्ञान -संसिद्धावीशानाय नमोस्तु ते ॥१४॥
पुरस्तत्पुरुषत्वेन विमुक्त - पद - भाजिने ।
नमस्तत्पुरुषाऽवस्थां, भाविनीं तेऽद्य बिभ्रते ॥१५॥
ज्ञानावरण-निर्ह्रासान्न-मस्तेऽनन्त-चक्षुषे ।
दर्शनावरण-रोच्छेदान्नमस्ते विश्वदृश्वने ॥१६॥
नमो दर्शनमोहघ्ने, क्षायिकामल-दृष्टये ।
नमश्चारित्र-मोहघ्ने, विरागाय महौजसे ॥१७॥
नमस्तेऽनन्तवीर्याय, नमोऽनन्तसुखात्मने ।
नमस्तेऽनन्तलोकाय, लोकालोक-विलोकिने ॥१८॥
नमस्तेऽनन्त-दानाय, नमस्तेऽनन्तलब्धये ।
नमस्तेऽनन्त-भोगाय, नमोनन्तोपभोगिने ॥१९॥

नमः परम-योगाय, नमस्तुभ्यमयोनये ।
नमः परम-पूताय, नमस्ते परमर्षये ॥२०॥
नमः परमविद्याय, नमः पर - मतच्छिदे ।
नमः परम-तत्त्वाय, नमस्ते परमात्मने ॥२१॥
नमः परम - रूपाय, नमः परम-तेजसे ।
नमः परम - मार्गाय, नमस्ते परमेष्ठिने ॥२२॥
परमर्द्धिजुषे धाम्ने, परमज्योतिषे नमः ।
नमः पारेतमः प्राप्तधाम्ने, परतराऽऽत्मने ॥२३॥
नमः क्षीणकलंकाय क्षीणबन्ध ! नमोऽस्तु ते ।
नमस्ते क्षीणमोहाय क्षीणदोषाय ते नमः ॥२४॥
नमः सुगतये तुभ्यं शोभनां गतिमीयुषे ।
नमस्तेऽतीन्द्रिय-ज्ञान-सुखायानिन्द्रियात्मने ॥२५॥
काय-बन्धन-निर्मोक्षादकायाय नमोऽस्तु ते ।
नमस्तुभ्य-मयोगाय योगिनामधि-योगिने ॥२६॥
अवेदाय नमस्तुभ्य-मकषायाय ते नमः ।
नमः परम-योगीन्द्र-वन्दिताङ्घ्रिद्वयाय ते ॥२७॥
नमः परम-विज्ञान ! नमः परम-संयम !
नमः परमदृग्दृष्ट-परमार्थाय ते नमः ॥२८॥
नमस्तुभ्यमलेश्याय शुक्ललेश्यांशक-स्पृशे ।
नमो भव्येतरावस्था-व्यतीताय विमोक्षिणे ॥२९॥
संज्ञ्यसंज्ञि-द्वयावस्था-व्यतिरिक्ता-मलात्मने ।
नमस्ते वीतसंज्ञाय नमः क्षायिकदृष्टये ॥३०॥
अनाहाराय तृप्ताय नमः परमभाजुषे ।
व्यतीताशेषदोषाय भवाब्धेः पारमीयुषे ॥३१॥
अजराय नमस्तुभ्यं नमस्ते-वीतजन्मने ।
अमृत्यवे नमस्तुभ्य-मचलायाऽक्षरात्मने ॥३२॥
अलमास्तां गुणस्तोत्र-मनन्तास्तावकागुणाः ।
त्वां नामस्मृतिमात्रेण पर्युपासिसिषामहे ॥३३॥
एवं स्तुत्वा जिनं देवं भक्त्या परमया सुधीः ।
पठेदष्टोत्तरं नाम्नां सहस्रं पापशान्तये ॥३४॥
(इति प्रस्तावना)

प्रसिद्धाऽष्टसहस्रेद्धलक्षणं त्वां गिरांपतिम् ।
नाम्नामष्ट-सहस्रेण तोष्टु-मोऽभीष्ट-सिद्धये ॥१॥
श्रीमान् स्वयम्भूर्वृषभः शम्भवः शम्भुरात्मभूः ।
स्वयंप्रभः प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः ॥२॥
विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः ।
विश्वविद् विश्वविद्येशो विश्वयोनिरनश्वरः ॥३॥
विश्वदृश्वा विभुर्धाता, विश्वेशो विश्वलोचनः ।
विश्वव्यापी विधिर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः ॥४॥
विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः ।
विश्वदृग विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः ॥५॥
जिनो जिष्णुरमेयात्मा विश्वरीशो जगत्पतिः ।
अनन्तजिदचिन्त्यात्मा भव्यबन्धुरऽबन्धनः ॥६॥
युगादिपुरुषो ब्रह्मा पञ्चब्रह्म मयः शिवः ।
परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः ॥७॥
स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्मयोनिरऽयोनिजः ।
मोहारिविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वजः ॥८॥
प्रशान्तारिरनन्तात्मा योगी योगीश्वराऽर्चितः ।
ब्रह्मविद् ब्रह्मतत्त्वज्ञो ब्रह्मोद्याविद्यतीश्वरः ॥९॥
शुद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थः सिद्धशासनः ।
सिद्धःसिद्धान्तविद्ध्येयः सिद्धसाध्यो जगद्धितः ॥१०॥
सहिष्णुरच्युतोऽनन्तः प्रभविष्णु-र्भवोद्भवः ।
प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो भ्राजिष्णुर्धीश्वरोऽव्ययः ॥११॥
विभावसुरसम्भूष्णुः स्वयम्भूष्णुः पुरातनः ।
परमात्मा परंज्योतिस्त्रिजगत्-परमेश्वरः ॥१२॥
(इति श्रीमदादिशतम् ॥१॥)
दिव्यभाषापतिर्दिव्यः पूतवाक्पूतशासनः ।
पूतात्मा परमज्योति-र्धर्माध्यक्षो दमीश्वरः ॥१॥
श्रीपति-र्भगवानर्हन्नरजा विरजाः शुचिः ।
तीर्थकृत् केवलीशानःपूजार्हः स्नातकोऽमलः ॥२॥
अनन्तदीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयंबुद्धः प्रजापतिः ।
मुक्तः शक्तो निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः ॥३॥

निरञ्जनो जगज्जयोति-र्निरुक्तो-र्निरामयः ।
अचलस्थितिरक्षोभ्यः कूटस्थः स्थाणुरक्षयः ॥४॥
अग्रणीर्ग्रामणीर्नेता प्रणेता न्यायशास्त्रकृत् ।
शास्ता धर्मपतिर्धर्म्यो धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत् ॥५॥
वृषध्वजो वृषाधीशो वृषकेतु-र्वृषायुधः ।
वृषो वृषपति-र्भर्ता वृषभांको वृषोद्भवः ॥६॥
हिरण्यनाभि-र्भूतात्मा भूतभृद् भूतभावनः ।
प्रभवो विभवो भास्वान् भवो भावो भवान्तकः ॥७॥
हिरण्यगर्भः श्रीगर्भ प्रभूतविभवोद्भवः ।
स्वयंप्रभुः प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्प्रभुः ॥८॥
सर्वादिः सर्ववृक् सार्वः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः ।
सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्ववित् सर्वलोकजित् ॥९॥
सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुत् सुवाक् सूरिर्बहुश्रुतः ।
विश्रुतो विश्वतः पादो विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः ॥१०॥
सहस्र शीर्षः क्षेत्रज्ञः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
भूतभव्यभवद्भर्ता विश्वविद्या महेश्वरः ॥११॥
(इति दिव्यादिशतम् ॥२॥)
स्थविष्ठः स्थविरो ज्येष्ठः पृष्ठः प्रेष्ठो वरिष्ठधीः ।
स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः श्रेष्ठोऽनिष्ठो गरिष्ठगीः ॥१॥
विश्वभृद् विश्वसृड् विश्वेड् विश्वभुग् विश्वनायकः ।
विश्वाशीर्विश्वरूपात्मा विश्वजिद्विजितान्तकः ॥२॥
विभवो विभयो वीरो विशोको विजरो जरन् ।
विरागो विरतोऽसंगो विविक्तो वीतमत्सरः ॥३॥
विनेय-जनता-बन्धु-र्विलीनाशेष-कल्मषः ।
वियोगो योगविद् विद्वान् विधाता सुविधिः सुधीः ॥४॥
क्षान्तिभाक्पृथ्वीमूर्तिः शान्तिभाक्सलिलात्मकः ।
वायुमूर्ति-रसंगात्मा वह्निमूर्ति-रधर्मधृक् ॥५॥
सुयज्वा यजमानात्मा सुत्वा सूत्रामपूजितः ।
ऋत्विग्यज्ञपति-र्यज्ञो यज्ञांगममृतं हविः ॥६॥
व्योममूर्ति-रमूर्तात्मा निर्लेपो निर्मलोऽचलः ।
सोममूर्तिः सुसौम्यात्मा सूर्यमूर्ति-र्महाप्रभः ॥७॥

मन्त्रविन्मन्त्र कृन्मन्त्री मन्त्रमूर्ति-रनन्तगः ।
स्वतन्त्रस्तन्त्रकृत्स्वान्तः कृतान्तान्तः कृतान्तकृत् ॥८॥
कृती कृतार्थः सत्कृत्यः कृतकृत्यः कृतक्रतुः ।
नित्यो मृत्युञ्जयो मृत्युरमृतात्माऽमृतोद्भवः ॥९॥
ब्रह्मनिष्ठः परंब्रह्म ब्रह्मात्मा ब्रह्मसम्भवः ।
महाब्रह्मपति-बर्ब्रह्मोड् महाब्रह्म-पदेश्वरः ॥१०॥
सुप्रसन्नः प्रसन्नात्मा ज्ञानधर्मदमप्रभुः ।
प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा पुराणपुरुषोत्तमः ॥११॥
(इति स्थाविष्ठादिशतम् ॥३॥)

महाशोकध्वजोऽशोकः कः स्रष्टा पद्म विष्टरः ।
पद्मेशः पद्मसम्भूतिः पद्मनाभिरनुत्तरः ॥१॥
पद्मयोनिर्जगद्योनिरित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः ।
स्तवनार्हो हृषीकेशो जितजेयः कृतक्रियः ॥२॥
गणाधिपो गणज्येष्ठो गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः ।
गुणाकरो गुणाम्भोधिर्गुणज्ञो गुणनायकः ॥३॥
गुणादरी गुणोच्छेदी निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः ।
शरण्यः पुण्यवाक्पूतो वरेण्यः पुण्यनायकः ॥४॥
अगण्यः पुण्यधीर्गुण्यः पुण्यकृतपुण्यशासनः ।
धर्मारामो गुणाग्रामः पुण्यापुण्य-निरोधकः ॥५॥
पापापेतो विपापात्मा विपाप्मा वीतकल्मषः ।
निर्द्वन्द्वो निर्मदः शान्तो निर्मोहो निरुपद्रवः ॥६॥
निर्निमेषो निराहारो निष्क्रियो निरुपप्लवः ।
निष्कलंको निरस्तैना निर्धूतागा निरास्रवः ॥७॥
विशालो विपुलज्योति-रतुलोऽचिन्त्यवैभवः ।
सुसंवृतः सुगुप्तात्मा सुभृत् सुनयतत्त्ववित् ॥८॥
एकविद्यो महाविद्यो मुनिः परिवृढः पतिः ।
धीशो विद्यानिधिःसाक्षी विनेता विहतान्तकः ॥९॥
पिता पितामहः पाता पवित्रः पावनो गतिः ।
त्राता भिषग्वरो वर्यो वरदः परमः पुमान् ॥१०॥
कविः पुराणपुरुषो वर्षीयान्वृषभः पुरुः ।
प्रतिष्ठा-प्रसवो हेतु-र्भुवनैक-पितामहः ॥११॥
(इति महाशोकध्वजादिशतम् ॥४॥)

श्रीवृक्षलक्षणः श्लक्ष्णो लक्षण्यः शुभलक्षणः ।
निरक्षः पुण्डरीकाक्षः पुष्कलः पुष्करेक्षणः ॥१॥
सिद्धिद्धः सिद्धसंकल्पः सिद्धात्मा सिद्धसाधनः ।
बुद्धबोध्यो महाबोधि-र्वर्धमानो महर्द्धिकः ॥२॥
वेदांगो वेदविद् वेद्यो जातरूपो विदांवरः
वेदवेद्यः स्वसंवेद्यो विवेदो वदतांवरः ॥३॥
अनादिनिधनोऽव्यक्तो व्यक्तवाग्व्यक्तशासनः ।
युगादिकृद् युगाधारो युगादि-र्जगदादिजः ॥४॥
अतीन्द्रोऽतीन्द्रियो धीन्द्रो महेन्द्रोऽतीन्द्रियार्थदृक् ।
अनिन्द्रियोऽहमिन्द्रार्च्यो महेन्द्रमहितो महान् ॥५॥
उद्भवः कारणं कर्ता पारगो भवतारकः ।
अगाह्यो गहनं गुह्यं परार्घ्यः परमेश्वरः ॥६॥
अनन्तर्द्धिरमेयर्द्धिरचिन्त्यर्द्धिः समग्रधीः ।
प्राग्र्यः प्राग्रहरोऽभ्यग्रः प्रत्यग्रोऽग्रयोऽग्रिमोऽग्रजः॥७॥
महातपा महातेजा महोदर्को महोदयः ।
महायशा महाधामा महासत्वो महाधृतिः ॥८॥
महाधैर्यो महावीर्यो महासंपन्महाबलः ।
महाशक्ति-र्महाज्योति-र्महाभूति-र्महाद्युतिः ॥९॥
महामति-र्महानीति-र्महाक्षान्ति-र्महोदयः ।
महाप्राज्ञो महाभागो महानन्दो महाकविः ॥१०॥
महामहा महाकीर्ति-र्महाकान्ति-र्महावपुः ।
महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुणः ॥११॥
महामहपतिः प्राप्त-महाकल्याण-पञ्चकः ।
महाप्रभु-र्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वरः ॥१२॥
(इति श्रीवृक्षादिशतम् ॥५॥)

महामुनि-र्महामौनी महाध्यानी महादमः ।
महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः ॥१॥
महाव्रतपति-र्मह्यो महाकान्ति-धरोऽधिपः ।
महामैत्री महामेयो महोपायो महोमयः ॥२॥
महाकारुणिको मन्ता महामन्त्रो महायतिः ।
महानादो महाघोषो महेज्यो महसांपतिः ॥३॥

महाध्वर-धरो धुर्यो महौदार्यो महिष्ठवाक् ।
महात्मा महसांधाम महर्षि - र्महितोदयः ॥४॥
महाक्लेशांकुशः शूरो महाभूतपतिर्गुरुः ।
महापराक्रमोऽनन्तो महाक्रोध-रिपुर्वशी ॥५॥
महाभवाब्धि-संतारी-र्महामोहाऽद्रिसूदनः ।
महागुणाकरः क्षान्तो महायोगीश्वरः शमी ॥६॥
महाध्यानपति-र्ध्याता-महाधर्मा महाव्रतः ।
महाकर्मा-रिहत्मज्ञो महादेवो महेशिता ॥७॥
सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः ।
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः ॥८॥
सर्वयोगीश्वरोऽचिन्त्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः ।
दान्तात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः ॥९॥
प्रधानमात्मा प्रकृतिः परमः परमोदयः ।
प्रक्षीणबन्धः कामारिः क्षेमकृत्क्षेमशासनः ॥१०॥
प्रणवः प्रणयः प्राणः प्राणदः प्रणतेश्वरः ।
प्रमाणं प्रणिधिर्दक्षो दक्षिणोऽध्वर्युरध्वरः ॥११॥
आनन्दो नन्दनो नन्दो वन्द्योनिन्द्योऽभिनन्दनः ।
कामहा कामदः काम्यः कामधेनुररिञ्जयः ॥१२॥
(इति महामुन्यादिशतम् ॥६॥)
असंस्कृत-सुसंस्कारः प्राकृतो वैकृतान्तकृत ।
अन्तकृत्कान्तगुः कान्तश्चिंतामणिरभीष्टदः ॥१॥
अजितो जितकामारि-रमितोऽमितशासनः ।
जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितान्तकः ॥२॥
जिनेन्द्रः परमानन्दो मुनीन्द्रो दुन्दुभिस्वनः ।
महेन्द्रवन्द्यो योगीन्द्रो यतीन्द्रो नाभिनन्दनः ॥३॥
नाभेयो नाभिजोऽजातः सुव्रतो मनुरुत्तमः ।
अभेद्योऽनत्ययोऽनाश्वानधिकोऽधिगुरुः सुधीः ॥४॥
सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुकः ।
विशिष्टः शिष्टभुक् शिष्टः प्रत्ययः कामनोऽनघः ॥५॥
क्षेमी क्षेमंकरोऽक्षय्यः क्षेमधर्मपतिः क्षमी ।
अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो ध्यानगम्यो निरुत्तरः ॥६॥

सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनयश्चतुराननः ।
श्रीनिवासश्चतु - र्वक्त्रश्चतुरास्यश्-चतुर्मुखः ॥७॥
सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक्सत्यशासनः ।
सत्याशीः सत्यसन्धानः सत्यः सत्यपरायणः ॥८॥
स्थेयान्स्थवीयान्नेदीयान्दवीयान् दूरदर्शनः ।
अणोरणी - याननणु - र्गुरुराद्यो गरीयसाम् ॥९॥
सदायोगः सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः ।
सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्यः सदोदयः ॥१०॥
सुघोषः समुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृत् ।
सुगुप्तो गुप्तिभृद् गोप्ता लोकाध्यक्षो दमीश्वरः ॥११॥
(इति असंस्कृतादिशतम् ॥७॥)
बृहन्बृहस्पति-र्वाग्मी वाचस्पति-रुदारधीः ।
मनीषी धिषणो धीमाञ्छेमुषीशो गिरांपतिः ॥१॥
नैकरूपो नयोत्तुंगो नैकात्मा नैकधर्मकृत् ।
अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः ॥२॥
ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः ।
पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः ॥३॥
लक्ष्मीवांस्त्रिदशाध्यक्षो दृढीयानिन ईशिता ।
मनोहारो मनोज्ञांगो धीरो गम्भीरशासनः ॥४॥
धर्मयूपो दयायागो धर्मनेमि - र्मुनीश्वरः ।
धर्मचक्रायुधो देवः कर्महा धर्मघोषणः ॥५॥
अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासनः ।
सुरूपः सुभगस्त्यागी समयज्ञः समाहितः ॥६॥
सुस्थितः स्वास्थ्यभाक्स्वस्थो नीरजस्को निरुद्धवः ।
अलेपो निष्कलंकात्मा वीतरागो गतस्पृहः ॥७॥
वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा निःसपत्नो जितेन्द्रियः ।
प्रशान्तोऽनन्तधामर्षि - र्मंगलं मलहानघः ॥८॥
अनीदृगु-पमाभूतो दिष्टि-र्दैव-मगोचरः ।
अमूर्तो मूर्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक् ॥९॥
अध्यात्मगम्योऽगम्यात्मा योगविद्योगिवन्दितः ।
सर्वत्रगः सदाभावी त्रिकालविषयार्थदृक् ॥१०॥

शंकरः शंवदो दान्तो दमी क्षान्तिपरायणः ।
अधिपः परमानन्दः परात्मज्ञः परात्परः ॥११॥
त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्य-स्त्रिजगन्-मंगलोदयः ।
त्रिजगत्पतिपूज्याङ्घ्रिस्त्रिलोकाग्रशिखामणिः ॥१२॥
(इति वृहदादिशतम् ॥८॥)

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रतः ।
सर्वलोकातिगः पूज्यः सर्वलोकैकसारथिः ॥१॥
पुराणः पुरुषः पूर्वः कृतपूर्वांगविस्तरः ।
आदिदेवः पुराणाद्यः पुरुदेवोऽधिदेवता ॥२॥
युगमुख्यो युगज्येष्ठो युगादिस्थितिदेशकः ।
कल्याणवर्णः कल्याणः कल्यः कल्याणलक्षणः ॥३॥
कल्याणप्रकृतिर्दीप्रकल्याणात्मा विकल्मषः ।
विकलंकः कलातीतः कलिलघ्नः कलाधरः ॥४॥
देवदेवो जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जगद्विभुः ।
जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वगो जगदग्रजः ॥५॥
चराचर-गुरुर्गोप्यो गूढात्मा गूढगोचरः ।
सद्योजातः प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसप्रभः ॥६॥
आदित्यवर्णो भर्माभः सुप्रभः कनकप्रभः ।
सुवर्णवर्णो रुक्माभः सूर्यकोटि-समप्रभः ॥७॥
तपनीयनिभस्तुंगो बालार्काभोऽनलप्रभः ।
सन्ध्याभ्र-बभ्रुर्हेमा-भस्तप्तचामी-करच्छविः ॥८॥
निष्टप्त-कनकच्छायः कनत्काञ्चनसन्निभः ।
हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुम्भनिभप्रभः ॥९॥
द्युम्नाभो जातरूपाभस्तप्त-जाम्बूनदद्युतिः ।
सुधौत-कलधौतश्रीः प्रदीप्तो हाटकद्युतिः ॥१०॥
शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टःस्पष्टाक्षरः क्षमः ।
शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता स्वभूः ॥११॥
शान्तिनिष्ठो मुनिज्येष्ठः शिवतातिः शिवप्रदः ।
शान्तिदः शान्तिकृच्छान्तिः कान्तिमानकामितप्रदः ॥१२॥
श्रेयोनिधि-रधिष्ठानम-प्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः ।
सुस्थिरः स्थावरः स्थाणुः प्रथीयान्प्रथितः पृथुः ॥१३॥
(इति त्रिकालदर्शयादिशतम् ॥९॥)

दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः ।
निष्किञ्चनो निराशंसो ज्ञानचक्षुरमोमुहः ॥१॥
तेजोराशिरनन्तौजा ज्ञानब्धिः शीलसागरः ।
तेजो-मयोऽमितज्योति - र्मूर्तिस्तमोपहः ॥२॥
जगच्चूडामणिर्दीप्रः शंवान्विघ्नविनायकः ।
कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो लोकालोकप्रकाशकः ॥३॥
अनिद्रालुरतन्द्रालु - र्जागरुकः प्रभामयः ।
लक्ष्मीपति-र्जगज्ज्योति-र्धर्मराजः प्रजाहितः ॥४॥
मुमुक्षु-र्बन्धमोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथः ।
प्रशान्तरस-शैलूषो भव्यपेटक-नायकः ॥५॥
मूलकर्त्ताऽखिलज्योति-र्मलघ्नो मूलकारणः ।
आप्तो वागीश्वरः श्रेयाञ्छ्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक् ॥६॥
प्रवक्ता वचसामीसो मारजिद्विश्वभाववित् ।
सुतनुस्तनु निर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः ॥७॥
श्रीशः श्रीश्रितपादाब्जो वीतभीरभयंकरः ।
उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सलः ॥८॥
लोकोत्तरो लोकपति-र्लोकचक्षुरपारधीः ।
धीरधीर्बुद्धसन्मार्गः शुद्धः सूनृतपूतवाक् ॥९॥
प्रज्ञापारमितः प्राज्ञो यतिर्नियमितेन्द्रियः ।
भदन्तो भद्रकृदभद्रः कल्पवृक्षो वरप्रदः ॥१०॥
समुन्मूलितकर्मारिः कर्मकाष्ठाऽऽशुशुक्षणिः ।
कर्मण्यः कर्मठः प्रांशुर्हेयादेय विचक्षणः ॥११॥
अनन्तशक्ति-रच्छेद्यस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः ।
त्रिनेत्रस्त्र्यम्बकस्त्र्यक्षः केवलज्ञानवीक्षणः ॥१२॥
समन्तभद्रः शान्तारि-र्धर्माचार्यो दयानिधिः ।
सूक्ष्मदर्शी जितानंग कृपालु धर्मदेशकः ॥१३॥
शुभंयुः सुखसाद्भूतः पुण्यराशिरनामयः ।
धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायकः ॥१४॥
(इति दिग्वासाद्यष्टोत्तरशतम् ॥१०॥)

धाम्नांपते तवामूनि नामान्यागमकोविदैः ।
समुच्चितान्यनु-ध्यायन्पुमान्पूतस्मृति-र्भवेत् ॥१॥

गोचरोऽपि गिरामासां त्वमवाग्गोचरो मतः ।
स्तोता तथाप्यसन्दिग्धं त्वत्तोऽभिष्टफलं भजेत् ॥२॥
त्वमतोऽसि जगद्बन्धुस्त्वमतोऽसि जगद्भिषक् ।
त्वमतोऽसि जगद्धाता त्वमतोऽसि जगद्धितः ॥३॥
त्वमेकं जगतां ज्योतिस्त्वं द्विरूपोपयोगभाक् ।
त्वं त्रिरूपैकमुक्त्यंगः स्वोत्थानन्तचतुष्टयः ॥४॥
त्वं पञ्चब तत्त्वात्मा पञ्चकल्याणनायकः ।
षड्भेद - भावतत्त्वज्ञस्त्वं सप्तनयसंग्रहः ॥५॥
दिव्याष्टगुण-मूर्तिस्त्वं नवकेवल - लब्धिकः ।
दशावतारनिर्धार्यो मां पाहि परमेश्वर ! ॥६॥
युष्मन्नामावलीदृब्ध-विलसत्स्तोत्र - मालया ।
भवन्तं वरिवस्यामः प्रसीदानुगृहाण नः ॥७॥
इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य पूतो भवति भाक्तिकः ।
यः संपाठं पठत्येनं स स्यात्कल्याणभाजनम् ॥८॥
ततः सदेदं पुण्यार्थी पुमान्पठति पुण्यधीः ।
पौरुहूतीं श्रियं प्राप्तुं परमामभिलाषुकः ॥९॥
स्तुत्वेति मघवा देवं चराचरजगद्गुरुम् ।
ततस्तीर्थविहारस्य व्यधात्प्रस्तावनामिमाम् ॥१०॥
स्तुतिः पुण्यगुणोत्कीर्तिः स्तोता भव्यः प्रसन्नधीः ।
निष्ठितार्थो भवांस्तुस्यः फलं नैश्रेयसं सुखम् ॥११॥
यः स्तुत्यो जगतां त्रयस्य न पुनः स्तोतास्वयं कस्यचित्,
ध्येयो योगिजनस्य यश्च नितरां ध्याता स्वयं कस्यचित् ।
यो नेन्तृन् नयते नमस्कृतिमलं नन्तव्यपक्षेक्षणः,
स श्रीमान् जगतां त्रयस्य य गुरुर्देवः पुरुः पावनः ॥१२॥
तं देवं त्रिदशाधिपार्चितपदं घातिक्षयानन्तरं,
प्रोत्थानन्तचतुष्टयं जिनमिमं भव्याब्जिनीनामिनम् ।
मानस्तम्भ-विलोकनानत्तजगन्मान्यं त्रिलोकीपतिं,
प्राप्ताचिन्त्य-बहिर्विभूति-मनघं भक्त्या प्रवन्दामहे ॥१३॥

(इति श्री भगवज्जिनसहस्रनामस्तोत्र समाप्त ।)

तत्त्वार्थ सूत्र

परमपूज्य आचार्य श्री उमास्वामी जी महाराज

मोक्षमार्गस्य नेतारं,भेत्तारं कर्मभू-भृताम् ।
ज्ञातारं विश्व तत्त्वानां, वंदे तद्गुण-लब्धये ॥
त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं, नवपद सहितं जीव षट्काय लेश्याः,
पञ्चान्ये चास्तिकाया, व्रत-समिति-गति ज्ञान-चारित्र भेदाः।
इत्येतन्मोक्षमूलं, त्रिभुवन महितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः,
प्रत्येति-श्रद्दधाति, स्पृशति च मतिमान यः स वै शुद्धदृष्टिः।१।
सिद्धे जयप्पसिद्धे, चउव्विहाराहणाफलं पत्ते ।
वंदिता अरहंते, वोच्छं आराहणा कमसो ॥२॥
उज्जोवणमुज्जवणं, णिव्वहणं साहणं च णिच्छरणं ।
दंसण णाण चरित्तं-तवाण-माराहणा भणिया ॥३॥

प्रथम अध्याय

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥२॥ तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥३॥ जीवाजीवास्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्षास्तत्त्वम् ॥४॥ नाम-स्थापना-द्रव्य-भावतस्तन्न्यासः ॥५॥ प्रमाण नयैरधिगमः ॥६॥ निर्देश-स्वामित्व-साधनाधिकरण स्थिति-विधानतः ॥७॥ सत्संख्या-क्षेत्र स्पर्शन-कालान्तर भावाल्पबहुत्वैश्च ॥८॥ मति-श्रुतावधि-मनः पर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥९॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥ आद्ये परोक्षम् ॥११॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥ तदिन्द्रियानिन्द्रिय निमित्तम् ॥१४॥ अवग्रहेहावायधारणाः ॥१५॥ बहुबहुविधक्षिप्रानिः सृताऽनुक्त-ध्रुवाणां सेतराणाम् ॥१६॥ अर्थस्य ॥१७॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥१८॥ न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥१९॥ श्रुतं मतिपूर्वं द्वयनेक द्वादश भेदम् ॥२०॥ भवप्रत्ययोऽवधिर्देव नारकाणाम् ॥२१॥ क्षयोपशमनिमित्तः षड् विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥ ऋजुविपुलमती मनः पर्ययः ॥२३॥ विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥२४॥ विशुद्धि क्षेत्र-स्वामिविषयेभ्योऽवधिमनः पर्यययोः ॥२५॥ मति श्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्व पर्यायेषु ॥२६॥ रूपिष्ववधेः ॥२७॥ तदनन्तभागे मनः पर्ययस्य ॥२८॥ सर्वद्रव्य-पर्यायेषु-केवलस्य ॥२९॥ एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः ॥३०॥ मतिश्रुता-वधयो विपर्ययश्च ॥३१॥ सदसतो-रविशेषाद्यदृच्छोपलब्धे-रुन्मत्तवत् ॥३२॥ नैगम-संग्रह-व्यवहारर्जुसूत्र-शब्द-समभि रूढैवंभूता नयाः ॥३३॥

इति तत्त्वार्थ सूत्रे (मोक्षशास्त्रे) प्रथमोऽध्यायः नमो नमः ॥१॥

अमलकमलपांशुन्मिश्रतोयैः सुगंधै- र्मलयभवसुगंधैस्तंडुलैः पुष्पवृंदैः ।
चरुकवरसुदीपैर्धूपकैः सत्फलौघैः शिवसुखफलसिद्धयै संयजेऽध्यायमाद्यम् ॥१॥
ॐ ह्रीं श्री तत्त्वार्थ सूत्रे प्रथमोऽध्याय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

द्वितीय अध्याय

औपशमिक-क्षायिकौ भावौ-मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्व - मौदयिक - पारिणामिकौ च ॥१॥ द्विनवाष्टादशैक विंशति त्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥ सम्यक्त्व-चारित्रे ॥३॥ ज्ञानदर्शन-दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणि च ॥४॥ ज्ञानाऽज्ञान-दर्शन- लब्धयश्चतुस्त्रि - त्रि - पञ्च भेदाः सम्यक्त्वचारित्र संयमासंयमाश्च ॥५॥ गति-कषाय लिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञाना संयतासिद्ध लेश्याश्चतु श्चतुस्त्र्येकैकैकैक षड् भेदाः ॥६॥ जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥७॥ उपयोगो लक्षणम् ॥८॥ स द्विविधोऽष्ट चतुर्भेदः ॥९॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥१०॥ समनस्कामनस्काः ॥११॥ संसारिणस्त्रस स्थावराः ॥१२॥ पृथिव्यप्तेजो वायु वनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥१४॥ पञ्चेन्द्रियाणि ॥१५॥ द्विविधानि ॥१६॥ निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥१७॥ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥१८॥ स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्राणि ॥१९॥ स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दास्तदर्थाः ॥२०॥ श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥२१॥ वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥२२॥ कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनामेकैक वृद्धानि ॥२३॥ संज्ञिनः समनस्काः ॥२४॥ विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥२५॥ अनुश्रेणि गतिः ॥२६॥ अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक्-चतुर्भ्यः ॥२८॥ एक समयाविग्रहा ॥२९॥ एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥३०॥ सम्मूर्च्छन गर्भोपपादा जन्म ॥३१॥ सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥ जरायुजाण्डज पोतानां गर्भः ॥३३॥ देवनारकाणामुपपादः ॥३४॥ शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥३५॥ औदारिक-वैक्रियि-काहारक तैजस-कार्मणानि शरीराणि ॥३६॥ परं परं सूक्ष्मम् ॥३७॥ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥३८॥ अनन्तगुणे परे ॥३९॥ अप्रतिघाते ॥४०॥ अनादि सम्बन्धे च ॥४१॥ सर्वस्य ॥४२॥ तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः ॥४३॥ निरुपभोग-मन्त्यम् ॥४४॥ गर्भ- सम्मूर्च्छन-जमाद्यम् ॥४५॥ औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥४६॥ लब्धिप्रत्ययं च ॥४७॥ तैजसमपि ॥४८॥ शुभं विशुद्ध-मव्याघाति चाहारकं प्रमत्त संयतस्यैव ॥४९॥ नारक-सम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥ न देवाः ॥५१॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥५२॥ औपपादिक चरमोत्तमदेहा- संख्येयवर्षा युषोऽनपवर्त्यायुषः ॥५३॥

॥ इति तत्त्वार्थ सूत्रे (मोक्षशास्त्रे) द्वितीयोऽध्यायः नमो नमः ॥२॥

स्वच्छैर्जलैर्जलजरेणुयुतैः सुपुष्पै-र्नैवेद्यदीपवरधूपफलैः समर्घैः ।
संपूजये परमतत्त्वसुभावसूत्र-मध्यायकं शिवकरं द्विकमर्चयामि ॥२॥
ॐ ह्रीं श्री तत्त्वार्थ सूत्रे द्वितीयोऽध्याय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

तृतीय अध्याय

रत्न-शर्करा-बालुका-पङ्क-धूमतमो-महातमःप्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाश प्रतिष्ठाःसप्ताधोऽधः ॥१॥ तासु त्रिंशत्पञ्चविंशति-पञ्चदश-दश त्रिपञ्चोनैकनरक-शतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ॥२॥ नारका नित्याशुभतर लेश्यापरिणाम देहवेदनाविक्रियाः ॥३॥ परस्परोदीरित दुःखाः ॥४॥ संक्लिष्टाऽसुरोदीरित दुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥५॥ तेष्वेक त्रिसप्तदश सप्तदश द्वा-विंशति त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥६॥ जम्बूद्वीप लवणोदादयः शुभनामानो- द्वीपसमुद्राः ॥७॥ द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्व पूर्व परिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥८॥ तन्मध्ये मेरु नाभिर्वृत्तो योजन शतसहस्र विष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९॥ भरत हैमवत हरि विदेह रम्यक हैरण्य -वतैरावत वर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिम -वन्निषधनील रुक्मि शिखरिणो वर्षधर पर्वताः ॥११॥ हेमार्जुन तपनीय वैडूर्य रजत हेममयाः ॥१२॥ मणिविचित्रपार्श्वा उपरिमूले च तुल्यविस्ताराः ॥१३॥ पद्म महापद्म तिगिञ्छ केशरि महापुण्डरीक पुण्डरीका ह्रदास्तेषा मुपरि ॥१४॥ प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्ध विष्कम्भो ह्रदः ॥१५॥ दशयोजनावगाहः ॥१६॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥ तद्द्विगुण द्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥१८॥ तन्निवासिन्यो देव्यः श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक परिषत्काः ॥१९॥ गंगा-सिन्धु रोहिद्रोहितास्या-हरिद्धरिकान्ता सीता सीतोदा नारी नरकान्ता सुवर्णरूप्यकूला रक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥२०॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१॥ शेषास्त्वपरगाः ॥२२॥ चतुर्दश नदी सहस्र परिवृता गंगासिन्ध्वादयो नद्यः ॥२३॥ भरतः षड्विंशतिपञ्च योजन शत-विस्तारः षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥२४॥ तद्द्विगुणद्विगुण विस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥२५॥ उत्तरा दक्षिण तुल्याः ॥२६॥ भरतैरावतयो र्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्या मुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥२७॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥२८॥ एक द्वि त्रिपल्योपम स्थितयो हैमवतक हारिवर्षक दैवकुर वकाः ॥२९॥ तथोत्तराः ॥३०॥ विदेहेषु संख्येयकालाः ॥३१॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशत भागः ॥३२॥ द्विर्धातकीखण्डे ॥३३॥ पुष्कराद्धे च ॥३४॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥३५॥ आर्या म्लेच्छाश्च ॥३६॥ भरतैरावत विदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देव कुरूत्तर कुरुभ्यः ॥३७॥ नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥३८॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥३९॥

इति तत्त्वार्थ सूत्रे (मोक्षशास्त्रे) तृतीयोऽध्यायः नमो नमः ॥३॥

जीवनौरिष्टगंधान्वितैश्चंदनै-रक्षतैः सल्लतांतैर्वरैर्भक्ष्यकैः ।
दीपधूपैः फलैः पक्वपूर्णार्घकै-रर्च्चयेहं तृतीयं वराध्यायकम् ॥३॥
ॐ ह्रीं श्री तत्त्वार्थ सूत्रे तृतीयोऽध्याय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

चतुर्थ अध्याय

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥ आदितस्त्रिषु पीतान्त लेश्याः ॥२॥ दशाष्ट पञ्च द्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्न पर्यन्ताः ॥३॥ इन्द्र सामानिक त्रायस्त्रिंश पारिषदात्मरक्षलोक पालानीक प्रकीर्णकाभियोग्य किल्विषिकाश्चैकशः ॥४॥ त्रायस्त्रिंश लोकपाल वर्ज्या व्यन्तर ज्योतिष्काः॥५॥ पूर्वयो र्द्वीन्द्राः ॥६॥ कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥ शेषाः स्पर्श रूप शब्द मनः प्रवीचाराः ॥८॥ परेऽप्रवीचाराः ॥९॥ भवनवासिनोऽसुरनाग विद्युत्सुपर्णाग्नि वातस्तनितोदधि द्वीप दिक्कुमाराः ॥१०॥ व्यन्तराः किन्नर-किम्पुरुष महोरग गन्धर्व यक्ष राक्षस भूत पिशाचाः ॥११॥ ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्र प्रकीर्णक तारकाश्च ॥१२॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥ तत्कृतः कालविभागः ॥१४॥ बहिरवस्थिताः ॥१५॥ वैमानिकाः ॥१६॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥ उपर्युपरि ॥१८॥ सौधर्मैशानसानत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्म ब्रह्मोत्तर-लान्तवकापिष्ठ शुक्रमहाशुक्र शतारसहस्रा रेष्वानत-प्राणतयो रारणाच्युतयो र्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय वैजयन्त जयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥१९॥ स्थिति प्रभाव-सुख द्युति लेश्या विशुद्धीन्द्रियावधि विषयतोऽधिकाः ॥२०॥ गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥२१॥ पीतपद्मशुक्ल -लेश्याद्वित्रिशेषेषु ॥२२॥ प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥२३॥ ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥२४॥ सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्द-तोयतुषिता व्याबाधारिष्टाश्च ॥२५॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥२६॥ औपपादिक- मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥ स्थिति रसुर नाग सुपर्ण द्वीपशेषाणां सागरोपम त्रिपल्योप मार्द्धहीन मिताः ॥२८॥ सौधर्मैशानयोः सागरोपमेऽअधिके॥२९॥ सानत्कुमार माहेन्द्रयोः सप्त ॥३०॥ त्रिसप्त नवैका- दश त्रयोदश पञ्चदशभि रधिकानि तु ॥३१॥ आरणाच्युतादूर्ध्व मेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥३२॥अपरा पल्योपम मधिकम् ॥३३॥ परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा ॥३४॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥३५॥ दशवर्ष सहस्राणि प्रथमायाम् ॥३६॥ भवनेषु च ॥३७॥ व्यन्तराणां च ॥३८॥ परा पल्योपम मधिकम् ॥३९॥ ज्योतिष्काणां च ॥४०॥ तदष्ट भागोऽपरा ॥४१॥ लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥४२॥

इति तत्त्वार्थ सूत्रे (मोक्षशास्त्रे) चतुर्थोऽध्यायः नमो नमः ॥४॥

वारिगंधतंडुलैश्च पुष्पभक्ष्यदीपकै-र्धूम्रयुक्तधूपकैः फलैर्वरार्घ्यसंयुत्तैः ।
स्वर्णपात्रसंहितैः सुदुदुंभीरवाकुलैः शंकरं चतुर्थं कं यजे विशिष्टिकं परम ॥४॥
ॐ ह्रीं श्री तत्त्वार्थ सूत्रे चतुर्थोऽध्याय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचम अध्याय

अजीवकाया धर्माधर्माकाश पुद्गलाः ॥१॥ द्रव्याणि ॥२॥ जीवाश्च ॥३॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥ रूपिणः पुद्गला ॥५॥ आ आकाशादेक द्रव्याणि ॥६॥ निष्क्रियाणि च ॥७॥ असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैक जीवानाम् ॥८॥ आकाशस्यानन्ताः ॥९॥ संख्येयाऽ संख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥ नाणोः ॥११॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥ धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥१३॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥१४॥ असंख्येय- भागादिषुजीवानाम् ॥१५॥ प्रदेशसंहार विसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥१६॥ गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयो-रुपकाराः ॥१७॥ आकाशस्यावगाहः ॥१८॥ शरीर वाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गला-नाम् ॥१९॥ सुखदुःखजीवित-मरणोपग्रहाश्च ॥२०॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥२१॥ वर्तना परिणामक्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य ॥२२॥ स्पर्श रस गन्ध वर्ण वन्तः पुद्गलाः ॥२३॥ शब्द बन्ध सौक्ष्म्य-स्थौल्य संस्थान भेद तमश्छाया तपोद्योतवन्तश्च ॥२४॥ अणवः स्कन्धाश्च ॥२५॥ भेदङ्संघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥२६॥ भेदादणुः ॥२७॥ भेदङ्संघाताभ्यां चाक्षुषः ॥२८॥ सद् द्रव्य लक्षणम् ॥२९॥ उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तं सत् ॥३०॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥३१॥ अर्पितानर्पित सिद्धेः ॥३२॥ स्निग्ध रूक्षत्वाद् बन्धः ॥३३॥ न जघन्य गुणानाम् ॥३४॥ गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥३५॥ द्वयधिकादि गुणानां तु ॥३६॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥३७॥ गुण पर्यय वद् द्रव्यम् ॥३८॥ कालश्च ॥३९॥ सोऽनन्तसमयः ॥४०॥ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः॥४१॥ तद्भावः परिणामः ॥४२॥

॥ इति तत्त्वार्थ सूत्रे (मोक्षशास्त्रे) पञ्चमोऽध्यायः नमो नमः ॥५॥

सामोदैः सज्जलोर्घैर्वनजमधुयुतैश्चंदनैश्चंद्रमिश्रै,
माधुर्यैरक्षतौधैर्विकसितकुसुमैर्हत्प्रियैः सच्चरुकैः ॥
दीपैर्धूपैसधूम्रर्मधुकरसुखदैर्हत्प्रियैः सत्फलार्घै,
रेभिर्द्रव्यैर्य जेऽहं गणधरगदितं पंचमाध्यायकं वै ॥५॥
ॐ ह्रीं श्री तत्त्वार्थ सूत्रे पंचमोऽध्याय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

षष्ठम् अध्याय

कायवाङ्मनः कर्मयोगः ॥१॥ स आस्रवः ॥२॥ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥३॥ सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ॥४॥ इन्द्रिय कषायाव्रत क्रियाः पञ्च चतुः पञ्च पञ्चविंशति संख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥५॥ तीव्रमन्द ज्ञाताज्ञात भावाधिकरण वीर्यविशेषेभ्यस्त - द्विशेषः ॥६॥ अधिकरणं जीवाजीवाः ॥७॥ आद्यं संरम्भ-समारम्भारम्भयोग कृत कारितानुमत कषाय विशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रि श्चतुश्चैकशः ॥८॥ निर्वर्तना निक्षेप- संयोग निसर्गा द्वि चतुर्द्वि त्रिभेदाः परम् ॥९॥ तत्प्रदोष निह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥१०॥ दुःख शोक तापाक्रन्दन वध परिदेवना-न्यात्मपरोभय स्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥११॥

भूतव्रत्यनुकम्पा दान सराग संयमादि योगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१२॥ केवलिश्रुत संघ धर्म देवावर्णवादो दर्शन मोहस्य ॥१३॥ कषायोदयात्तीव्र परिणामश्चारित्र मोहस्य ॥१४॥ बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥ माया तैर्यग्योनस्य ॥१६॥ अल्पारम्भ परिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥ स्वभावमार्दवं च ॥१८॥ निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥ सरागसंयम-संयमा संयमा कामनिर्जरा बालतपांसि दैवस्य ॥२०॥ सम्यक्त्वं च ॥२१॥योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२२॥ तद्विपरीतं शुभस्य ॥२३॥ दर्शनविशुद्धि र्विनयसम्पन्नता शील व्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग संवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधि र्वैया वृत्त्यकरण मर्हदाचार्य बहुश्रुतप्रवचन-भक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्ग प्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकर- त्वस्य ॥२४॥ परात्म निन्दा प्रशंसे सदसद्गुणो च्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥२५॥ तद्विपर्ययो नीचै र्वृत्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥विघ्नकरण मन्तरायस्य ॥२७॥

॥ इति तत्त्वार्थ सूत्रे (मोक्षशास्त्रे) षष्ठमोऽध्यायः नमो नमः ॥६॥

गांगैर्नीरैः कनकघटजेर्मौक्तिकाभाभिरामै-र्हेमान्वीतैर्मलयनगजैश्चंदनैश्चारुगंधैः ।
तंडुलौघैः कुसुमचरुभिर्दीपधूपैः फलोघै-र्भक्त्याभ्यर्चे जगति विदितं षष्ठकाध्यायमर्हम् ॥६॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वार्थ सूत्रे षष्ठमोऽध्याय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सप्तम् अध्याय

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्म परिग्रहेभ्यो विरति र्व्रतम् ॥१॥ देशसर्वतोऽणुमहती ॥२॥ तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ॥३॥ वाड्मनोगुप्तीर्यादान निक्षेपणसमित्या लोकितपान भोजनानि पञ्च ॥४॥ क्रोध लोभ-भीरुत्वहास्यप्रत्याख्या नान्यनुवीचि भाषणं च पञ्च ॥५॥ शून्यागार विमोचिता वास परोपरोधाकरण भैक्ष्यशुद्धि- सधर्माऽविसंवादाः पञ्च ॥६॥ स्त्रीरागकथा-श्रवण तन्मनोहरांग निरीक्षण पूर्वरतानुस्मरण वृष्येष्टरस स्व-शरीरसंस्कार त्यागाः पञ्च ॥७॥ मनोज्ञा मनोज्ञेन्द्रिय विषय राग द्वेष वर्जनानि पञ्च ॥८॥ हिंसादिष्विहा मुत्रापायावद्य दर्शनम् ॥९॥ दुःखमेव वा ॥१०॥ मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिक क्लिश्यमानाविनयेषु ॥११॥ जगत्कायस्वभावौ वा संवेग वैराग्यार्थम् ॥१२॥ प्रमत्तयोगात्प्राण व्यपरोपणं हिंसा ॥१३॥ अस दभिधान मनृतम् ॥१४॥ अदत्तादानं-स्तेयम् ॥१५॥ मैथुन मब्रह्म ॥१६॥ मूर्च्छा परिग्रहः ॥१७॥ निःशल्यो व्रती ॥१८॥ अगार्यनगारश्च ॥१९॥ अणुव्रतोऽगारी ॥२०॥ दिग्देशानर्थदण्ड विरतिसामायिक प्रोषधोपवासोपभोग परिभोग-परिमाणातिथि संविभाग- व्रत सम्पन्नश्च ॥२१॥ मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥२२॥ शङ्का कांक्षा विचिकित्सान्य-दृष्टि प्रशंसासंस्तवाःसम्यग्दृष्टे रतिचाराः ॥२३॥ व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥२४॥ बन्धवधच्छेदाति भारारोपणान्न पान निरोधाः ॥२५॥

विमल नित्य पाठावली

मिथ्योपदेश रहोऽभ्याख्यान कूटलेखक्रियान्या सापहारसाकार-मन्त्रभेदाः ॥२६॥ स्तेनप्रयोग तदाहृता दानविरुद्ध राज्यातिक्रमहीनाधिक मानोन्मान-प्रति-रूपकव्यवहाराः ॥२७॥ परविवाह करणेत्वरिकापरिगृहीता-परिगृहीता गमनानंगक्रीडा काम तीव्राभिनिवेशाः ॥२८॥क्षेत्र वास्तु हिरण्य सुवर्ण धन धान्य-दासी दास कुप्य भाण्डय प्रमाणातिक्रमाः ॥२९॥ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रम क्षेत्रवृद्धि स्मृत्यन्तराधानानि ॥३०॥ आनयन प्रेष्यप्रयोग शब्द- रूपानुपात पुद्गल क्षेपाः ॥३१॥ कन्दर्प कौत्कुच्य- मौखर्या समीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥३२॥ योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्य-नुपस्थानानि ॥३३॥ अप्रत्यवेक्षिता-प्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादर स्मृत्यनुपस्थानानि ॥३४॥ सचित्त सम्बन्ध सम्मिश्राभिषव दुःपक्वाहारा ॥३५॥ सचित्तनिक्षेपापिधान परव्यपदेश - मात्सर्य्य कालातिक्रमाः ॥३६॥ जीवितमरणाशंसामित्रा नुराग सुखानुबन्ध निदानानि ॥३७॥ अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥३८॥ विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥३९॥

॥ इति तत्त्वार्थ सूत्रे (मोक्षशास्त्रे) सप्तमोऽध्यायः नमो नमः ॥७॥

नीरैर्गन्धैः सोमान्वितैः सत्तंडूलैर्माधुयैः, पुष्पैर्भक्ष्यैर्दीपव्रातैर्धु म्रान्वितैर्धू पौधैः ॥
दाडीम्याद्यैः सद्गंधाढयैः पक्वैर्वृ दैरर्घाद्यै-रेभिर्द्रव्यैः श्रीजैनोक्तं भक्त्यार्चेऽहं संसूत्रम् ॥७॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वार्थ सूत्रे सप्तमोऽध्याय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अष्टम् अध्याय

मिथ्यादर्शनाविरति प्रमाद कषाय योगा बन्धहेतवः ॥१॥सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥२॥ प्रकृतिस्थित्यनुभव प्रदेशास्तद्विधयः ॥३॥ आद्यो ज्ञानदर्शनावरण वेदनीयमोह-नीयायुर्नाम गोत्रान्तरायाः ॥४॥ पञ्चनवद्व्यष्टाविंशति चतुर्द्विचत्वा - रिंशद् द्विपञ्चभेदा यथाक्रमम् ॥५॥ मतिश्रुतावधि मनः- पर्यय केवलानाम् ॥६॥ चक्षु रचक्षु रवधि केवलानां निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धयश्च ॥७॥ सदसद्वेद्ये ॥८॥ दर्शनचारित्रमोहनीया- कषायकषाय वेद-नीयाख्यास्त्रि द्वि नव षोडश भेदाः सम्यक्त्व मिथ्यात्व- तदुभयान्य कषाय कषायौ हास्य रत्यरति शोक भय जुगुप्सा स्त्री पुन्नपुंसकवेदा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलन विकल्पाश्चैकशः क्रोधमान मायालोभाः ॥९॥ नारकतैर्यग्योन मानुषदैवानि ॥१०॥ गति जाति शरीरांगो पांग निर्माण बन्धन-संघात संस्थान संहनन स्पर्श रस-गन्ध वर्णानु-पूर्व्यागुरुलघूपघात -परघातातपोद्योतोच्छ्-वास विहायोगतयः प्रत्येकशरीर त्रस सुभग सुस्वर शुभ सूक्ष्म पर्याप्तिस्थिरादेय यशः कीर्ति सेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥११॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥१२॥ दान लाभ भोगोपभोग - वीर्याणाम्

॥१३॥ आदितस्ति- सृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्साग-रोपम कोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥१४॥ सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥१५॥ विंशतिर्नाम गोत्रयोः ॥१६॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोप-माण्यायुषः ॥१७॥ अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य ॥१८॥ नामगोत्रयोरष्टौ ॥१९॥ शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ॥२०॥ विपाकोऽनुभवः ॥२१॥ स यथानाम ॥२२॥ ततश्च निर्जरा ॥२३॥ नामप्रत्ययाः सर्वतो योग विशेषात् सूक्ष्मैक- क्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्म-प्रदेशेष्व नन्तानन्त प्रदेशाः ॥२४॥ सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ॥२५॥ अतोऽन्यत् पापम् ॥२६॥

॥ इति तत्त्वार्थ सूत्रे (मोक्षशास्त्रे) अष्टमोऽध्यायः नमो नमः ॥८॥

शुचिक्षीरगंधाक्षतैर्भूरिपुष्पै-र्मुनिध्यानतुल्यैः सुभक्ष्यैः प्रदीपैः ।
वरैर्धूपवृन्दैः फलैरर्घ्ययुक्तै-र्यजेऽहं त्रिशुद्धयाष्टमाध्यायकं वै ॥८॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वार्थ सूत्रे अष्टमोऽध्याय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

नवमोऽध्यायः

आस्रव निरोधः संवरः ॥१॥ स गुप्तिसमितिधर्मानु- प्रेक्षा परीषहजय चारित्रैः ॥२॥ तपसा निर्जरा च ॥३॥ सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥४॥ ईर्या भाषैषणा दान निक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥५॥ उत्तमक्षमा मार्दवार्जव शौचसत्यसंयम तपस्त्यागाकिंचन्य ब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥६॥ अनित्याशरण संसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रव संवर निर्जरा-लोक बोधिदुर्लभ धर्मस्वाख्या-तत्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥७॥ मार्गाच्यवन निर्जरार्थंपरिषोढव्याः परीषहाः ॥८॥ क्षुत्पिपासा शीतोष्णदंशमशक नाग्न्यारति स्त्रीचर्या-निषद्याशय्याक्रोश वध याचना लाभ रोग तृण स्पर्श मल सत्कार-पुरस्कार प्रज्ञाऽज्ञानादर्शनानि ॥९॥ सूक्ष्म साम्पराय छद्मस्थ-वीतरागयोश्चतुर्दश ॥१०॥ एकादशजिने ॥११॥ बादर साम्पराये सर्वे ॥१२॥ ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥ दर्शनमोहान्तराययोर- दर्शनालाभौ ॥१४॥ चारित्रमोहे नाग्न्यारति स्त्रीनिषद्या क्रोश याचना सत्कारपुरस्कारः ॥१५॥ वेदनीये शेषाः ॥१६॥ एकादयो भाज्यायुग पदेकस्मिन्नेकोनविंशतेः ॥१७॥ सामायिकच्छेदोपस्थापना परिहारविशुद्धि सूक्ष्म-साम्पराय यथाख्यातमिति चारित्रम् ॥१८॥ अनशनाव- मौदर्य वृत्तिपरिसंख्यान रसपरित्याग विविक्तशय्यासन- कायक्लेशा बाह्यं तपः ॥१९॥ प्रायश्चित विनय वैयावृत्त्य स्वाध्याय व्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥२०॥ नवचतुर्दश पञ्च द्विभेदा यथाक्रमम् प्राग्ध्यानात् ॥२१॥ आलोचना प्रतिक्रमण तदुभय विवेक व्युत्सर्ग तपश्छेद परिहारोपस्थापनाः ॥२२॥ ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥२३॥ आचार्योपाध्याय तपस्विशैक्षग्लान गण कुल संङ्घ साधु मनोज्ञानाम् ॥२४॥ वाचनापृच्छनानु-प्रेक्षाम्नाय धर्मोपदेशाः॥२५॥ बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥२६॥ उत्तम संहननस्यैकाग्र चिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ॥२७॥ आर्त रौद्र धर्म्य शुक्लानि ॥२८॥ परे

मोक्षहेतू ॥२९॥ आर्त ममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति समन्वाहारः ॥३०॥ विपरीतं मनोज्ञस्य ॥३१॥ वेदनायाश्च ॥३२॥ निदानं च ॥३३॥ तदविरत देशविरत प्रमत्तसंयतानाम् ॥३४॥ हिंसानृतस्तेय विषय संरक्षणेभ्यो रौद्र मविरत देश- विरतयोः ॥३५॥ आज्ञापाय विपाक संस्थान विचयाय धर्म्यम् ॥३६॥ शुक्लेचाद्ये पूर्वविदः ॥३७॥ परे केवलिनः ॥३८॥ पृथक्त्वैकत्व वितर्कसूक्ष्मक्रिया-प्रतिपाति व्युपरतक्रिया निवर्तीनि ॥३९॥ त्र्येकयोग काययोगा योगानाम् ॥४०॥ एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥४१॥ अवीचारं द्वितीयम् ॥४२॥ वितर्कः श्रुतम् ॥४३॥ वीचारोऽर्थ व्यञ्जन-योगसंक्रान्तिः ॥४४॥ सम्यग्दृष्टि- श्रावक विरतानन्त-वियोजक-दर्शनमोह क्षपकोप- शमकोपशान्त-मोह-क्षपक क्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येय गुणनिर्जराः ॥४५॥ पुलाक वकुश कुशील- निर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः ॥४६॥ संयमश्रुत प्रतिसेवना तीर्थ लिंग लेश्योप पादस्थान विकल्पतः साध्याः ॥४७॥

इति तत्त्वार्थ सूत्रे (मोक्षशास्त्रे) नवमोऽध्यायः नमो नमः ॥९॥

पूतैः पद्मपरागमिश्रितजलैः सच्चंदनैः शालिजै-
मंदारादिसमुद्भवैः सुमनसैः सद्भक्ष्यकैर्हत्प्रियैः ॥
पीताभान्वितदीपकैरगुरुजैर्धूपैः फलैः सार्घ्यके-र्चेऽहं
जिनपस्य निग्सगिरं सन्मुक्तिदाध्यायकम ॥९॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वार्थ सूत्रे नवमोऽध्याय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दशमोऽध्यायः

मोहक्षयाज्ज्ञान दर्शनावरणान्तराय-क्षयाच्च केवलम् ॥१॥ बन्धहेत्वभाव निर्जराभ्यां कृत्स्न कर्म-विप्रमोक्षो मोक्षः ॥२॥ औपशमिकादिभव्यत्वानां च ॥३॥ अन्यत्र केवल सम्यक्त्व-ज्ञानदर्शन-सिद्धत्वेभ्यः ॥४॥ तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्या- लोकान्तात् ॥५॥ पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद् बन्ध च्छेदात्तथा गतिपरिणामाच्च ॥६॥ आविद्धकुलाल चक्रवद्व्यपगत लेपालांबु वदेरण्ड बीज वदग्नि शिखावच्च ॥७॥ धर्मास्तिकायाभावात् ॥८॥ क्षेत्र काल गति लिंग तीर्थ चारित्र प्रत्येकबुद्ध बोधित ज्ञानावगाहनान्तर संख्याल्प बहुत्वतः साध्याः ॥९॥

॥ इति तत्त्वार्थ सूत्रे (मोक्षशास्त्रे) दशमोऽध्यायः नमो नमः ॥१०॥

अक्षर-मात्र पदस्वर-हीनं, व्यञ्जन-संधि-विवर्जितरेफम् ।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं, को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥१॥
दशाध्याये परिच्छिन्ने, तत्त्वार्थे पठिते सति ।
फलं स्यादुपवासस्य, भाषितं मुनिपुङ्गवैः ॥२॥

तत्त्वार्थ-सूत्रकर्तारं, - गृद्ध-पिच्छोपलक्षितम् ।
वन्दे गणीन्द्र संजात-मुमास्वामि मुनीश्वरम् ॥३॥
पढम चउक्के पढमं, पंचमए जाण पुग्गलं तच्चं ।
छह सत्तमो हि आस्सव, अट्ठमे बंध णायव्वो ॥४॥
णवमे संवर णिज्जर, पदमे मोक्खं वियाणे हि ।
इह सत्त तच्च भणियं, पदसुत्ते मुणि वरिंदेहिं ॥५॥
जं सक्कइ तं कीरइ, जं च ण सक्कइ तहेव सद्दहणं ।
सद्दहमाणो जीवो, पावइ अजरामरं ठाणं ॥४॥
तवयरणं-वय धरणं, संजमसरणं च जीवदयाकरणम् ।
अन्ते समाहिमरणं, चउविह दुक्खं णिवारेई ॥५॥
कोटीशतं द्वादशचैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्रयधिकानि चैव ।
पंचाशदष्टौ च सहस्र संख्यामेतच्छ्रुतं पंच पदं नमामि ॥६॥
अरहंत भासियत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोवहिं सिरसा ॥७॥
गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञानदर्शन नायकाः ।
चरित्रार्णव गम्भीराः मोक्षमार्गोपदेशकाः ॥८॥
(कायोत्सर्गं करोम्यहम्)

ऋषिमण्डल स्तोत्र

(पद्यानुवाद-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती)
(शंभु छंद)

आदी अक्षर 'अ' अंताक्षर 'ह' इन दो को ले लेने में ।
'ख' से लेकर 'व' पर्यंत सब अक्षर आ जाते इनमें ॥
अग्नि ज्वाला 'र' बीजाक्षर ऊपर यह बिंदु सहित सुंदर ।
'अर्हं' यह मंत्र बना सुन्दर इससे यह मंत्र मनोमल शोधनकर ॥१॥
ॐ अर्हंतों को नमस्कार, ॐ सिद्धों को द्वय नमस्कार ।
ॐ सर्वसूरि को नमस्कार, ॐ पाठक गण को नमस्कार ॥
ॐ सर्वसाधु को नमस्कार, ॐ सयग्दृग् को नमस्कार ।
ॐ शुद्ध ज्ञान को नमस्कार, ॐ चारित को द्वय नमस्कार ॥२॥
इन अरहंतादि आठपद को निज निज बीजाक्षर युत करके ।
अठ दिशमें स्थापन करते, ये लक्ष्मीप्रद हैं सुख करते ॥

पहला पद शिर का रक्षक हो, दूजा मस्तक का त्राण करे ।
तीजा पद दोनों दृग् रक्षे, चौथा पद नासा त्राण करे ॥३॥
पंचम मुख का रक्षाकर हो, छट्ठा पद ग्रीवा को रक्षे ।
सप्तम पद नाभितक रक्षे, अष्टम पद पादों तक रक्षे ॥
पहले प्रणवाक्षर ॐ पुनः 'ह' को रकार औ बिंदु सहित ।
दूजी तीजी पंचम छट्ठी सप्तम अष्टम दशवीं द्वादश ॥४॥
इन मात्रा युत करके पाँचों, पद के पहले-पहले अक्षर ।
फिर सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र विभक्ति युत सुखकर ॥
हो ह्रीं नमः बस इसविध से अतिशायी मंत्र बना सुन्दर ।
यह ऋषिमंडल स्तवनयंत्र का, मूलमंत्र है श्रेयस्कर ॥५॥
नव बीजाक्षर युत सिद्धमंत्र, अष्टादश शुद्धाक्षर इसमें ।
आराधक को शुभफलदायी, अति भक्ती से जपिये नित में ॥
जंबूतरुधारी प्रथमद्वीप यह लवणोदधि से वेष्टित है ।
आठों दिश अधिपति अर्हदादि इन आठ पदों से शोभित है ॥६॥
इस जंबूद्वीप मध्य मेरु, जो लाखों कूटों से शोभे ।
ऊपर ऊपर ज्योतिर्वासी, देवों के भ्रमणों में शोभे ॥
इसपर स्थापित ह्रीं मंत्र, उसपर अर्हंत बिंब सुन्दर ।
उनको ललाट में स्थित कर मैं नमूँ नित्य कर्माञ्जनहर ॥७॥
अर्हंतदेव ये अक्षय हैं, निर्मल विशाल अज्ञानरहित ।
निर्मान शांत इच्छाविरहित, शुभ सार सारतर औ सात्विक ॥
राजस कर्मारिनाश हेतु तामस है विरस बुद्ध तैजस ।
ज्योत्स्नासम साकार तथापी, निराकार औ सरस विरस ॥८॥
पर उत्तम हैं उत्तमतर औ, उत्तमत्तम सर्वोत्तम इससे ।
पर तथा परापर परातीत, पर का परपरापरं कहते ॥
तनसहित सकल तनरहित निकल, संतुष्ट पूर्णभृत भ्रांतिरहित ।
निर्लेप निरंजन निराकांक्ष, संशय विरहित क्षण भंगरहित ॥९॥
ब्रह्मा ईश्वर औ बुद्ध शुद्ध, वे महादेव ज्योतीस्वरूप ।
सब लोकालोकप्रकाशी हैं, अर्हंत जिनेश्वर चित्स्वरूप ॥
जो सांत सरेफ बिन्दुमंडित, चौथे स्वर से युत होता है ।
वह 'ह्रीं' बीज ध्यानादि योग्य अर्हंत नामका होता है ॥१०॥

वह श्वेत वर्ण है श्याम वर्ण है लाल वर्ण औ नील वर्ण।
औ पीतवर्ण भी है उत्तम, सर्वोत्तम माना महावर्ण ॥
इस ह्रीं बीज में स्थित हैं, निज निज वर्णो से युक्त सभी।
वृषभादि जिनेश्वर इस स्तोत्र में संस्थित ध्यानयोग नित भी ॥११॥
सित अर्धचंद्रसम नाद बिन्दु नीली मस्तक है लालवर्ण।
सब तरफ हकार स्वर्णसम 'है' ईकार कहा है हरित वर्ण ॥
इस तरह 'ह्रीं' है पंचवर्ण, उन उन वर्णो के तीर्थंकर।
उस उस थल में स्थापित कर, उन सबको नमन करो सुखकर ॥१२॥
श्री चंद्रप्रभ औ पुष्पदंत, शशिसदृश नाद में स्थित हैं।
श्री नेमिनाथ औ मुनिसुव्रत, बिन्दू के मध्य विराजित हैं ॥
श्री पद्मप्रभू औ वासुपूज्य मस्तक के मध्य अधिष्ठित हैं।
श्री जिनसुपार्श्व औ पार्श्वनाथ, ईकार वर्ण के आश्रित हैं ॥१३॥
सोलह तीर्थंकर शेष सभी, ह और रकार में राजित हैं।
मायाबीजाक्षर ह्रीं मध्य, चौबीसों जिनवर आश्रित हैं ॥
ये रागद्वेष औ मोह रहित, सब पाप रहित चौबिस जिनवर।
संपूर्ण लोक में भव्यों के हेतू होवें वे नित सुखकर ॥१४॥
देवाधिदेव का जो समूह, उनके तन की सुन्दर आभा।
उससे सर्वांग ढका मेरा, सर्पो से मुझे न हो बाधा ॥
देवाधिदेव[१] . . . । गोहों से मुझे न हो बाधा ॥१५॥
देवाधिदेव . . . । बिच्छू से मुझे न हो बाधा ।
देवाधिदेव . . . । नागिनी से हो न मुझे बाधा ॥१६॥
देवाधिदेव . . . । काकिनी से हो न मुझे बाधा ।
देवाधिदेव . . . । डाकिनी से हो न मुझे बाधा ॥१७॥
देवाधिदेव . . . । साकिनी से हो न मुझे बाधा।
देवाधिदेव . . . । राकिनी से हो न मुझे बाधा ॥१८॥
देवाधिदेव . . . । लाकिनी से हो न मुझे बाधा ।
देवाधिदेव . . . । शाकिनी से हो न मुझे बाधा ॥१९॥
देवाधिदेव . . . । हाकिनी से हो न मुझे बाधा ।
देवाधिदेव . . . । भैरव से हो न मुझे बाधा ॥२०॥
देवाधिदेव . . . । राक्षस से हो न मुझे बाधा ।
देवाधिदेव . . . । व्यंतर से हो न मुझे बाधा ॥२१॥
देवाधिदेव . . . । भेकस से हो न मुझे बाधा ।

देवाधिदेव . . . । लीनस से हो न मुझे बाधा ॥२२॥
देवाधिदेव . . . । ग्रहों से हो न मुझे बाधा ।
देवाधिदेव . . . । चोरों से हो न मुझे बाधा ॥२३॥
देवाधिदेव . . . । अग्नी से हो न मुझे बाधा ।
देवाधिदेव . . . । सींगवालों से नहिं हो बाधा ॥२४॥
देवाधिदेव . . . । दाढ़वालों से हो नहिं बाधा ।
देवाधिदेव . . . । पक्षी से हो न मुझे बाधा ॥२५॥
देवाधिदेव . . . । दैत्यों से हो न मुझे बाधा ।
देवाधिदेव . . . । मेघों से हो न मुझे बाधा ॥२६॥
देवाधिदेव . . . । सिंहों से हो न मुझे बाधा ।
देवाधिदेव . . . । सूकर से हो न मुझे बाधा ॥२७॥
देवाधिदेव . . . । चीतों से हो न मुझे बाधा ।
देवाधिदेव . . . । हाथी से हो न मुझे बाधा ॥२८॥
देवाधिदेव . . . । राजा से हो न मुझे बाधा ।
देवाधिदेव . . . । शत्रु से हो न मुझे बाधा ॥२९॥
देवाधिदेव . . . । ग्रामिण से हो न मुझे बाधा ।
देवाधिदेव . . . । दुर्जन से हो न मुझे बाधा ॥३०॥
देवाधिदेव . . . । रोगों से हो न मुझे बाधा ।
देवाधिदेव . . . । सब जन से हो न मुझे बाधा ॥३१॥
श्री गौतम गुरु की जो मुद्रा, उससे जग में श्रुत ज्ञान लाभ।
उनसे भी अधिक ज्योतिधारी, अर्हंत सर्व निधि ईश ख्यात ॥
पातालवासि भावन व्यंतर, भूपीठवासि ज्योतिष सुरगण।
ये देव करें रक्षा मेरी, दिव के भी कल्पवासि सुरगण ॥३२॥
जो अवधिज्ञान ऋद्धियुत मुनि, जो परमावधि ऋद्धियुत हैं।
वे मेरी रक्षा करें सर्व तरफी वे सभी दिव्य मुनि हैं ॥
ॐ श्री ह्री धृति लक्ष्मी गौरी, चंडी सरस्वती जया अम्बा।
विजया क्लिन्ना अजिता नित्या औ मदद्रवा औ कामांगा ॥३३॥
कामवाणा देवी सानंदा सुरि नंदमालिनी औ माया।
मायाविनि रौद्री कलादेवि, कालीदेवि औ कलिप्रिया ॥
जिनशासन रक्षाकर्त्री ये, सब महादेवियां हैं जग में।
ये मुझको कांति लक्ष्मी धृति, मति देवें क्षेम करें जग में ॥३४॥
दुर्जन वेताल पिशाच भूत, औ क्रूर दैत्य गण हैं जितने।

देवाधिदेव के प्रभाव से, वे सब उपशांत रहें जग में ॥
श्री ऋषिमंडल स्तोत्र दिव्य यह गोप्य तथा अतिदुर्लभ है।
जगरक्षाकृतनिर्दोष तीर्थकृत, वीरप्रभू से भाषित है ॥३५॥
रण नृपदरबार अग्नि जल गज औ दुर्ग सिंह के संकट में।
शमशान विपिन में मंत्र जाप्य, मनुजों का त्राण करे सच में ॥
जो राज्यभ्रष्ट निज राज्य लहे, पदभ्रष्ट मनुज निज पद पाते।
इसमें सन्देह नहीं लक्ष्मी, से च्युत निजलक्ष्मी भी पाते ॥३६॥
भार्या अर्थी भार्या लभते, सुत अर्थी सुत को पा जाते।
स्तोत्र स्मरण मात्र से ही, धन अर्थी धन भी पा जाते ॥
कांचन रूपा अथवा कांसे, पर लिखकर जो पूजे इसको।
उसके घर शाश्वत अष्टमहा, सिद्धी रहती है यह समझो ॥३७॥
यह मंत्र भूर्जपत्रे पर लिख, मस्तक ग्रीवा या बाहू में।
जो धारे दिव्य यंत्र उसके, सब भय विनाश होते क्षण में ॥
वह भूत प्रेत ग्रह यक्ष दैत्य, औ पिशाच गण के कष्टों से।
छुट जाता नहिं संशय इसमें, कफ वात पित्त के रोगों से ॥३८॥
जो अधो मध्य औ ऊर्ध्वलोक में जिनप्रतिमायें शाश्वत हैं।
उनके दर्शन स्तुति वंदन से, जो फल वह स्तुति पठन का है ॥
यह महास्तोत्र अति गोपनीय, जिस किसको नहिं देने का है।
मिथ्यादृष्टी को देने से, शिशुघात पाप पद पद पर है ॥३९॥
आचाम्ल आदि तप कर चौबीस, जिनवर की पूजाविधि करके।
जो आठ हजार करे विधिवत्, सब कार्य सिद्ध होते उसके ॥
जो प्रतिदिन प्रातः इसी मंत्र की इक सौ अठ जप करते हैं।
उनके शरीर में व्याधि न हो, सुख संपत्ती वो लभते हैं ॥४०॥
जो आठ मास तक नित प्रातः, इस महास्तोत्र को पढ़ते हैं।
वे निजमें तेजपुंज अर्हंत, बिम्ब का दर्शन करते हैं ॥
अर्हंतबिंब दर्शन होनेपर निश्चित ही सप्तम भव में।
वे मुक्तीपद पा लेते हैं, परमानंद संपत्ती यु सच में ॥४१॥

दोहा

स्तोत्र महास्तोत्र यह, सब स्तुति में सर्वोच्च।
स्मरण पठन और जाप से, जन हों अघ से मुक्त ॥४२॥

मंगलाष्टक - स्तोत्र

(शार्दूलविक्रीडित)

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्री सिद्धान्त सुपाठकाः मुनिवरा, रत्नत्रयाराधकाः
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं, **कुर्वन्तु ते मंगलम्** ॥

श्रीमन्नम्रसुरा-सुरेन्द्र मुकुट प्रद्योत-रत्नप्रभा
भास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः।
ये सर्वे जिन-सिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः, **कुर्वन्तु ते मंगलम्** ॥१॥

सम्यग्दर्शन - बोध - वृत्तममलं, रत्नत्रयं पावनं।
मुक्ति श्री नगराधिनाथ-जिनपत्युक्तोऽपवर्ग प्रदः।
धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं, चैत्यालयं श्रयालयं
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी, **कुर्वन्तु ते मंगलम्** ॥२॥

नाभेयादि-जिनाधिपास्त्रिभुवनख्याताः चतुर्विंशतिः
श्रीमन्तो भरतेश्वर-प्रभृतयो, ये चक्रिणो द्वादश।
ये विष्णु-प्रतिविष्णु-लांगलधराः, सप्तोत्तरा विंशतिः
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्ठिपुरुषाः, **कुर्वन्तु ते मंगलम्** ॥३॥

देव्योऽष्टौ च जयादिका द्विगुणिता विद्यादिका देवता
श्री तीर्थंकरमातृकाश्च जनका यक्षाश्च यक्ष्यस्तथा।
द्वात्रिंशत् त्रिदशाऽधिपास्तिथिसुरा दिक्कन्यकाश्चाष्टधा
दिक्पाला दश चैत्यमी सुरगणाः, **कुर्वन्तु ते मंगलम्** ॥४॥

ये सर्वोषधि-ऋद्धयः सुतपसो, वृद्धिंगताः पंच ये
ये चाष्टांग महानिमित्त-कुशला, येऽष्टौ वियच्चारिणः।
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धि-ऋद्धीश्वराः
सप्तैते सकलार्चिता गणभृतः, **कुर्वन्तु ते मंगलम्** ॥५॥

कैलाशे वृषभस्य निर्वृतिमही, वीरस्य पावापुरे
चम्पायां वसुपूज्यसज्जिनपतेः, सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे, नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणा वनयः प्रसिद्धविभवाः, **कुर्वन्तु ते मंगलम्** ॥६॥

ज्योतिर्व्यन्तर-भावनाऽमरगृहे, मेरौ कुलाद्रौस्तथा,
जम्बू-शाल्मलि-चैत्यशाखिषु तथा वक्षार रूप्याद्रिषु ।
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे, द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः, **कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥७॥**
यो गर्भाऽवतरोत्सवो भगवतां, जन्माऽभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो, यः केवलज्ञानभाक् ।
यः कैवल्यपुर प्रवेश महिमा, संभावितः स्वर्गिभिः,
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं, **कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥८॥**
इत्थं श्री जिनमंगलाष्टकमिदं, सौभाग्यसम्पत्प्रदं,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणामुषः ।
ये श्रृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैः, धर्मार्थकामान्विता,
लक्ष्मीराश्रयते व्यपायरहिता, **निर्वाण लक्ष्मीरपि ॥९॥**
॥ इति मंगलाष्टकम् ॥

लघु अभिषेक पाठ

शोधये सर्वपात्राणि, पूजार्थानपि वारिभिः ।
समाहितो यथाम्नाय, करोमि सकली क्रियाम् ॥
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा पवित्रतर जलेन शुद्धिं करोमीति स्वाहा (जल से शुद्धि करें)
श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं,
स्याद्वाद नायक मनन्त चतुष्टयार्हम् ।
श्रीमूल संघ-सुदृशां सुकृतैक हेतुर्,
जैनेन्द्र-यज्ञविधिरेष मयाभ्यधायि ॥१॥
ॐ ह्रीं अभिषेक प्रतिज्ञायाम् पुष्पांजलिं क्षिपामि ।
(यह पढ़कर अभिषेक के थाल में पुष्प छोड़ें)
सौगन्ध्य-सत-मधुव्रत झङ्कृतेन,
सम्वर्ण्यमानमिव गन्धमनिन्द्यमादौ ।
आरोपयामि विबुधेश्वर-वृन्द-वन्द्य,
पादारविन्द-मभिवन्द्य जिनोत्तमानाम् ॥२॥
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः मम सर्वांग शुद्धिम् कुरु कुरु स्वाहा ।
(यह पद्य पढ़कर तिलक लगाना व हाथ धोना)
ये सन्ति केचिदिह दिव्य-कुल-प्रसूताः,
नागाः प्रभूत-बल-दर्पयुता विबोधाः ।

संरक्षणार्थममृतेन शुभेन तेषां,
प्रक्षालयामि पुरतः स्नपनस्य भूमिम् ॥३॥
ॐ ह्रीं श्रीमते पवित्रतर जलेन पीठ प्रक्षालनम् करोमि स्वाहा ।
(यह पद्य पढ़कर भूमिशुद्धि शुद्धि की जावे ।)
क्षीरार्णवस्य पयसां शुचिभिः प्रवाहैः,
प्रक्षालितं सुरवरै र्यदनेकवारम् ।
अत्युद्धमुद्यतमहं जिनपादपीठं,
प्रक्षालयामि भव-सम्भव-तापहारि ॥४॥
(इति पठित्वा पीठप्रक्षालनम् यह पढ़कर सिंहासन धोना)
श्री शारदा-सुमुख-निर्गत-बीजवर्णं,
श्रीमङ्गलीक-वर-सर्व-जनस्य नित्यम् ।
श्रीमत्स्वय क्षयति तस्य विनाशयविघ्नं,
श्रीकार-वर्ण-लिखितं जिन-भद्रपीठे ॥५॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीकार लेखनं करोमि स्वाहा ।
(इति पठित्वा पीठे श्रीकारलेखनम् यह पढ़कर थाल में श्री लिखना)
यं पाण्डुकामल-शिलागतमादिदेव
मस्ना-पयन्सुरवराः सुरशैलमूर्ध्नि ।
कल्याणमीप्सुरहमक्षत-तोय-पुष्पैः,
सम्भावयामि पुर एव तदीय-बिम्बम् ॥६॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं श्रीवर्णे प्रतिमा स्थापनम् करोमि स्वाहा ।
(इति पठित्वा श्रीवर्णे प्रतिमास्थापनम् करोमि ।)
उदक चंदन तंदुल पुष्पकैश्चरु सुदीप सुधूप फलाऽर्घकैः ।
धवल मंगल गान-रवा कुले, जिनगृहे अभिषेक महं यजे ॥
ॐ ह्रीं श्री परमदेवाय श्री अर्हत् परमेष्ठिने अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।
सत्पल्लवर्चित-मुखान्कलधौतरौप्य
ताम्रारकूट-घटितान्पयसा सुपूर्णान् ।
सम्वाह्यतामिव गतांश्चतुरः समुद्रान्,
संस्थापयामि कलशाञ्जिनवेदिकान्ते ॥७॥
ॐ स्वहस्ते चतुःकोणेषु कलश स्थापनकरोमि स्वाहा ।
दूरावनम्र सुरनाथ-किरीट-कोटी,
संलग्न-रत्न-किरण च्छवि-धूसराङ्घ्रिम् ।
प्रस्वेद-ताप-मल-मुक्तमपि प्रकृष्टै,
र्भक्त्या जलैर्जिनपतिं, बहुधाऽभिषिञ्चे ॥८॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादिमहावीर पर्यन्त चतुर्विंशति तीर्थंकरपरमदेवम् आद्यानाम् आद्ये-मध्यलोके-जम्बूद्वीपे-भरत-क्षेत्रे-आर्यखण्डे-भारतदेशे.....प्रदेशे-जिले....मंदिरे....मासे.....पक्षे....वासरे शुभदिने मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका जो भगवान के ऊपर जल की धारा देवें देखें ताके कर्मन की क्षय ।

भक्त्या ललाटतटदेशनिवेशितोच्चैः,
हस्तैश्च्युता सुरवरासुरमर्त्यनाथैः ।
तत्कालपीलितमहेक्षुरसस्य धारा,
सद्यः पुनातु जिनबिम्बगतैव युष्मान् ॥१८॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादि वर्धमानांतंचतुर्विंशति तीर्थंकरपरमदेवं आद्यानाम् आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखंडे....देशे.....नाम नगरे एतद्...जिनचैत्यालये वीरनि० सं० .....मासोत्तममासे......मासे.....पक्षे......तिथौ.......वासरे प्रशस्त ग्रहलग्न हेरायां मुनि आर्यिका-श्रावक-श्राविकाणाम् सकलकर्मक्षयार्थं जलेनाभिषेकं करोमि स्वाहा । इति इक्षुरसस्नपनम् ।

नालिकेरजलैः स्वच्छैः शीतैः पूतैर्मनोहरैः ।
स्नानक्रियां कृतार्थस्य विदधे विश्वदर्शिनः ॥१९॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादि वर्धमानांतंचतुर्विंशति तीर्थंकरपरमदेवं आद्यानाम् आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखंडे....देशे.....नाम नगरे एतद्...जिनचैत्यालये वीरनि० सं० .....मासोत्तममासे......मासे.....पक्षे......तिथौ.......वासरे प्रशस्त ग्रहलग्न हेरायां मुनि आर्यिका-श्रावक-श्राविकाणाम् सकलकर्मक्षयार्थं जलेनाभिषेकं करोमि स्वाहा । इति नालिकेररसस्नपनम् ।

सुपक्वैः कनकच्छायैः सामोदैर्मोदकारिभिः ।
सहकाररसैः स्नानं कुर्मः शर्मैकसद्मनः ॥२०॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादि वर्धमानांतंचतुर्विंशति तीर्थंकरपरमदेवं आद्यानाम् आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखंडे....देशे.....नाम नगरे एतद्...जिनचैत्यालये वीरनि० सं० .....मासोत्तममासे......मासे.....पक्षे......तिथौ.......वासरे प्रशस्त ग्रहलग्न हेरायां मुनि आर्यिका-श्रावक-श्राविकाणाम् सकलकर्मक्षयार्थं जलेनाभिषेकं करोमि स्वाहा । इति आम्ररसस्नपनम् ।

उत्कृष्टवर्ण-नव-हेम-रसाभिराम-
देहप्रभावलयसङ्गमलुप्तदीप्तिम् ।
धारां घृतस्य शुभगन्धगुणानुमेयां
वन्देऽर्हतां सुरभिसंस्नपनोपयुक्ताम् ॥२१॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादि वर्धमानांतंचतुर्विंशति तीर्थंकरपरमदेवं आद्यानाम् आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखंडे....देशे.....नाम नगरे एतद्...जिनचैत्यालये वीरनि० सं० .....मासोत्तममासे......मासे.....पक्षे......तिथौ.......वासरे प्रशस्त ग्रहलग्न हेरायां मुनि आर्यिका-श्रावक-श्राविकाणाम् सकलकर्मक्षयार्थं जलेनाभिषेकं करोमि स्वाहा । इति घृतस्नपनम् ।

सम्पूर्ण-शारद-शशांकमरीचिजाल-
स्यन्दैरिवात्मयशसामिव सुप्रवाहैः ।

क्षीरैर्जिनाः शुचितरैरभिषिच्यमानाः ।
सम्पादयन्तु मम चित्तसमीहितानि ॥२२॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादि वर्धमानांतंचतुर्विंशति तीर्थंकरपरमदेवं आद्यानाम् आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखंडे....देशे.....नाम नगरे एतद्...जिनचैत्यालये वीरनि० सं० .....मासोत्तममासे......मासे.....पक्षे......तिथौ.......वासरे प्रशस्त ग्रहलग्न हेरायां मुनि आर्यिका-श्रावक-श्राविकाणाम् सकलकर्मक्षयार्थं जलेनाभिषेकं करोमि स्वाहा । इति दुग्धाभिषेकस्नपनम् ।

दुग्धाब्धिवीचिपयसंचितफेनराशि-
पाण्डुत्वकांतिमवधीरयतामतीव ।
दध्नां गता जिनपतेः प्रतिमां सुधारा,
सम्पद्यतां सपदि वाञ्छितसिद्धये वः ॥२३॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादि वर्धमानांतंचतुर्विंशति तीर्थंकरपरमदेवं आद्यानाम् आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखंडे....देशे.....नाम नगरे एतद्...जिनचैत्यालये वीरनि० सं० .....मासोत्तममासे......मासे.....पक्षे......तिथौ.......वासरे प्रशस्त ग्रहलग्न हेरायां मुनि आर्यिका-श्रावक-श्राविकाणाम् सकलकर्मक्षयार्थं जलेनाभिषेकं करोमि स्वाहा । इति दधिस्नपनम् ।

संस्नापितस्य घृतदुग्धदधीक्षुवाहैः
सर्वाभिरौषधिभिरर्हत उज्ज्वलाभिः ।
उद्वार्तितस्य विदधाम्यभिषेकमेला-
कालेयकुंकुमरसोत्कटवारिपूरैः ॥२४॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादि वर्धमानांतंचतुर्विंशति तीर्थंकरपरमदेवं आद्यानाम् आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखंडे....देशे.....नाम नगरे एतद्...जिनचैत्यालये वीरनि० सं० .....मासोत्तममासे......मासे.....पक्षे......तिथौ.......वासरे प्रशस्त ग्रहलग्न हेरायां मुनि आर्यिका-श्रावक-श्राविकाणाम् सकलकर्मक्षयार्थं जलेनाभिषेकं करोमि स्वाहा । इति सर्वौषधिस्नपनम् ।

इष्टैर्मनोरथ-शतैरिव भव्यापुंसां,
पूर्णैः सुवर्णकलशै र्निखिला र्वसानैः ।
संसारसागर-विलंघन, हेतु-सेतु-
माप्लावये त्रिभुवनैक-पतिं जिनेन्द्रम् ॥९॥

(उपरितन मंत्र से पूर्वस्थापित चतुःकलशों से अभिषेक करें ।)

पानीय चंदन सदक्षत पुष्प पुंज,
नैवेद्य दीप सुधूप फल ब्रजेन ।
कर्माष्टक क्रथन वीर मनंत शक्तिं
संपूजयामि सहसां महसां निधानम्

ॐ ह्रीं अभिषेकान्ते वृषभादिवीरान्तेभ्यो अर्घम निर्वपामीति स्वाहा ।

नत्वा मुहर्निज करै रमृतोपभेयैः

स्वच्छै जिनेन्द्र तव चन्द्र करावदातैः
शुद्धांशुकेन विमलेन नितांतरम्ये देहे
स्थितान् जलकणान् परिमार्जयामि ॥

ॐ ह्रीं अमलांशुकेन जिन बिम्बमार्जनं करोमि ।

उदक चंदन तंदुल पुष्पकैश्चरू सुदीप सुधूप फलाऽर्घकैः
धवल मंगल गान रवा कुले जिनगृहे जिननाथ महं यजे

ॐ ह्रीं सिंहासन स्थित अर्हत् देवाय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

बृहत् शान्तिधारा

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं इवीं इवीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय-द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते । ॐ ह्रीं क्रों मम पापं खण्डय खण्डय जहि-जहि दह-दह पच-पच पाचय पाचय । ॐ नमो अर्हन् झं इवीं क्ष्वीं हं सं झं वं ह्वः पः हः क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः क्ष्वीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रं ह्रः द्रां द्रीं द्रावय द्राय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ठः ठः अस्माकं (धारा करने वाले का नामोच्चारण) श्रीरस्तु वृद्धिरस्तु तुष्टिरस्तु पुष्टिरस्तु शान्तिरस्तु कान्तिरस्तु कल्याणमस्तु स्वाहा । एवं अस्माकं (धारा करने वाले का नामोच्चारण) कार्यसिद्धयर्थं सर्वविघ्ननिवारणार्थं श्रीमद्भगवदर्हत्सर्वज्ञ-परमेष्ठि-परमपवित्राय नमो नमः । अस्माकं (धारा करने वाले का नामोच्चारण) श्रीशान्तिभट्टारकपादपद्म-प्रसादात् सद्धर्म श्रीबलायुरारोग्यैश्वर्याभि-वृद्धिरस्तु सद्धर्मस्वशिष्य-परशिष्यवर्गाः प्रसीदन्तु नः ।

ॐ वृषभादयः श्रीवर्द्धमानपर्यन्ताश्चतुर्विंशत्यर्हन्तो भगवन्तः सर्वज्ञाः परममङ्गलनामधेया अस्माकं (धारा करने वाले का नामोच्चारण) इहामुत्र च सिद्धिं तन्वन्तु सद्धर्मकार्येषु च इहामुत्र च सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः ।

ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते श्रीमत्पार्श्वतीर्थङ्कराय श्रीमद्-रत्नत्रयरूपाय दिव्यतेजोमूर्तये प्रभामण्डलमण्डिताय द्वादशगणसहिताय अनन्तचतुष्टयसहिताय समवशरण केवलज्ञानलक्ष्मी - शोभिताय अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुण संयुक्ताय परमेष्ठिपवित्राय सम्यग्ज्ञानाय स्वयंभुवे सिद्धाय बुद्धाय परमात्मने परमसुखाय त्रैलोक्यमहिताय, अनंत-संसार-चक्रप्रमर्दनाय अनन्त- ज्ञानदर्शनवीर्यसुखास्पदाय त्रैलोक्यवशङ्कराय, अजराय, अभवाय, अस्माकं (धारा करने वाले का नामोच्चारण) व्याधिं घ्नन्तु । श्रीजिनाभिषेक-पूजन-प्रसादात् अस्माकं (धारा करने वाले का नामोच्चारण) सेवकानां सर्वदोष रोगशोक भयपीडा विनाशनं भवतु ।

ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषदोषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रव-विनाशनाय सर्वारिष्टशान्तिकराय । ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः मम सर्वविघ्नशान्तिं कुरु कुरु तुष्टिं पुष्टिं कुरु कुरु स्वाहा । मम कामं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । रतिकामं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । बलिकामं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । क्रोधं पापं बैरं च छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । अग्निवायुभयं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि सर्वशत्रुविघ्नं छिन्दि छिन्दि भिन्धि भिन्धि । सर्वोपसर्गं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि सर्वविघ्नं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । सर्वराज्यभयं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । सर्वचौरदुष्टभयं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । सर्वसर्पवृश्चिकसिंहादिभयं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । सर्वग्रहभयं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । सर्वदोषं व्याधिं डामरं च छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । सर्वपरमंत्रं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । सर्वात्मघातं परघातं च छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि ॥ सर्वशूलरोग कुक्षिरोग अक्षिरोगं शिरोरोगं ज्वररोगं च छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । सर्वनरमारिं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । सर्वगजाश्व गोमहिषं अजमारिं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । सर्वसस्य-धान्य वृक्षलतागुल्मपत्रपुष्प-फलमारिं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । सर्वराष्ट्रमारिं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । सर्वक्रूरवेतालशाकिनी डाकिनी भयानि छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । सर्ववेदनीयं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । सर्वमोहनीयं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । सर्वापस्मारिं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । अस्माकं (धारा करने वाले का नामोच्चारण) अशुभकर्मजनितदुःखानि छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । दुष्टजनकृतान् मंत्रतंत्रदृष्टिमुष्टिछलछिद्रदोषान् छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । सर्वदुष्टदेवदानववीरनरनाहरसिंहयोगनी-कृतदोषान् छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । सर्वअष्टकुलीनागजनितविषभयानि छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । सर्वस्थावरजंगमवृश्चिक-सर्पादिकृतदोषान् छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । सर्वसिंहाष्टापदादि-कृतदोषान् छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । परशत्रुकृतमारणोच्चाटन विद्वेषणमोहन-वशीकरणादिदोषान् छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । ॐ ह्रीं अस्मभ्यं (धारा करने वाले का नामोच्चारण) चक्रविक्रम सत्त्वतेजोबल-शौर्यशान्तीः पूरय पूरय । सर्वजीवानन्दनं जनानन्दनं भव्यानंदनं गोकुलानंदनं च कुरु कुरु । सर्वराजानंदनं कुरु कुरु । सर्वग्रामनगर खेट कर्वट मटंव द्रोणमुख-संवाहनानंदनं कुरु कुरु । सर्वानंदनं कुरु कुरु स्वाहा ।

यत्सुखं त्रिषु लोकेषु व्याधिव्यसनवर्जितं ।
अभयं क्षेममारोग्यं स्वस्तिरस्तु विधीयते ॥

श्री शान्तिरस्तु । शिवमस्तु । जयोस्तु । नित्यमारोग्यमस्तु । अस्माकं (धारा करने वाले को नामोच्चारण) पुष्टिरस्तु । समृद्धिरस्तु । कल्याणमस्तु । सुखमस्तु । अभिवृद्धिरस्तु । दीर्घायुरस्तु कुलगोत्रधनानि सदा सन्तु । सद्धर्मश्रीबला-युरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धिरस्तु ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं अ सि आ उ सा अनाहतविद्यायै णमो अरहंताणं ह्रौं सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा ।

आयुर्वल्ली विलासं सकलसुखफलैर्द्राघयित्वाऽऽश्वनल्पं,
धीरं वीरं गरीरं निरुपम-मुपनयत्वा-तनोत्वच्छकीर्तिम् ।
सिद्धिं वृद्धिं समृद्धिं प्रथयतु तरणिः स्फूर्यदुच्चैः प्रतापं,
कान्तिं शान्तिं समाधिं वितरतु जगतामुत्तमा शान्तिधारा ॥
इत्यनेन मन्त्रेण नवग्रहाः शांत्यर्थः गंधोदक धरावर्षणाम् ।
सम्पूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम् ।
दशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शान्तिं भगवाञ्जिनेन्द्रः ॥

॥ इति बृहत् शान्तिधारा ॥

अथ शान्ति मंत्र प्रारभ्यते ।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः । श्री वीतरागाय नमः ।

ॐ नमोऽर्हते भगवते । श्रीमते पार्श्वतीर्थंकराय द्वादशगणपरिवेष्टिताय, शुक्लध्यान-पवित्राय । सर्वज्ञाय । स्वयंभुवे । सिद्धाय । बुद्धाय । परमात्मने । परमसुखाय । त्रैलोक्यमहीव्याप्ताय । अनन्तसंसारचक्र परिमर्दनाय । अनंतदर्शनाय । अनंत ज्ञानाय । अनन्त वीर्याय । अनन्त सुखाय सिद्धाय, बुद्धाय, त्रैलोक्यवशंकराय, सत्यज्ञानाय, सत्यब्रह्मणे, धरणेन्द्रफणामण्डलमण्डिताय, ऋष्यार्यिका-श्रावक-श्राविकाप्रमुख-चतुस्संघोपसर्ग विनाशनाय, घातिकर्म विनाशनाय अघातिकर्म विनाशनाय, अपवायं छिंदी छिंदी, भिंदी भिंदी । मृत्युं छिंदी २ भिंदी २ । अतिकामं छिंदी २ भिंदी २ । रतिकामं छिंदी २ भिंदी २ । क्रोधं छिंदी २ भिंदी २ । अग्निं छिंदी २ भिंदी २। सर्वशत्रुं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वोपसर्गं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वविघ्नं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वभयं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वराज्यभयं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वचोरभयं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वदुष्टभयं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वमृगभयं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वमात्मचक्रभयं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वपरमंत्रं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वशूलरोगं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वक्षयरोगं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वकुष्ठरोगं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वक्रूररोगं छिंदी २ भिंदी २ । सर्व नरमारीं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वगजमारीं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वाश्वमारीं छिंदी२ भिंदी २ । सर्वगोमारीं छिंदी २ भिंदी २ । सर्व

महिषमारीं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वधान्यमारीं छिंदी २ भिंदी २ । सर्ववृक्षमारीं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वगुल्ममारीं छिंदी २ भिंदी २ । सर्व पत्रमारीं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वपुष्पमारीं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वफलमारीं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वराष्ट्रमारीं छिंदी २ भिंदी २ । सर्वदेशमारीं छिंदी २ भिंदी २ । सर्व विषमारीं छिंदी २ भिंदी २ । सर्व वेतालशाकिनीभयं छिंदी २ भिंदी २ । सर्ववेदनीयं छिंदी २ भिंदी २ । सर्व मोहनीयं छिंदी २ भिंदी २ । सर्व कर्माष्टकं छिंदी २ भिंदी २ ।

ॐ सुदर्शन-महाराज-चक्रविक्रमतेजोबलशौर्यवीर्यशांतिं कुरु कुरु । सर्वजनानन्दनं कुरु कुरु । सर्वभव्यानन्दनं कुरु कुरु । सर्व गोकुलानन्दनं कुरु कुरु । सर्व ग्रामनगरखेटकर्वटमटंबपत्तनद्रोणमुख-संवाहनानंदनं कुरु कुरु । सर्व लोकानन्दनं कुरु कुरु । सर्व देशानन्दनं कुरु कुरु । सर्व यजमानानन्दनं कुरु कुरु । सर्व दुखं, हन हन, दह दह, पच पच, कुट कुट, शीघ्रं शीघ्रं ।

यत्सुखं त्रिषु लोकेषु व्याधिर्व्यसनवर्जितं ।
अभयं क्षेममारोग्यं स्वस्तिरस्तु विधीयते ॥

श्री शान्तिरस्तु । शिवमस्तु । जयोस्तु, नित्यमारोग्यमस्तु सर्वेषां, पुष्टिरस्तु, तुष्टिरस्तु, समृद्धिरस्तु, कल्याणमस्तु, सुखमस्तु, अभिवृद्धि रस्तु, कुलगोत्रधनधान्यं सदास्तु । श्री सद्धर्म बल आयुः आरोग्य ऐश्वर्य अभिवृद्धिरस्तु । चन्द्रप्रभ-वासुपूज्यमल्लिवर्द्धमान पुष्पदन्त शीतल-मुनिसुव्रत-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ इत्येभ्यो नमः । (इत्यनेन मन्त्रेण नवग्रहाणां शांत्यर्थं गंधोदक धारा वर्षणं)

शान्तिमंत्र

ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते प्रक्षीणाशेषदोषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये श्री शांतिनाथाय शांतिकराय सर्वपापप्रणाशनाय सर्व-विघ्नविनाशनाय सर्वरोगाप-मृत्युविनाशनाय सर्वपरकृत क्षुद्रोपद्रवविनाशनाय सर्वक्षामडामरविनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा मम नमः सर्वशांतिं तुष्टिं पुष्टिं कुरु कुरु वषट् स्वाहा ।

संपूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्र सामान्य तपोधनानाम्
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शांति भगवान जिनेन्द्रः ।

इति महाशांतिमंत्र ।

(गन्धोदकवन्दनमंत्र)

निर्मलं निर्मलीकरणं पवित्रं पापनाशनम् ।
जिनगन्धोदकं वन्दे कर्माष्टकनिवारणम् ॥

इति गन्धोदकवन्दनम् ॥

जन्माभिषेक आरती

सुरपति ले अपने, शीश जगत के, ईश गये गिरि राजा
जहाँ पाण्डुक शिला विराजा ॥टेक॥

१. शिल्पी कुबेर वहाँ आकर के, क्षीरोदधि नीर बहा करके
रचि पैढ़ि ले आए सागर का जल ताजा, फिर न्हवन कियो जिनराजा ॥टेक॥
२. नीलम पन्ना वैडूर्य मणी, कलशा ले करके देवगणी
एक सहस्र आठ कलशा लेकर सुर राजा, फिर न्हवन कियो जिनराजा ॥टेक॥
३. वसुयोजन गहराई वाले, चउयोजन चौड़ाई वाले
इक योजन मुख के कलश ढ़रे जिनराजा, नाही जरा डिगे शिशु नाथा ॥टेक॥
४. सौधर्म इन्द्र अरू ईशाना, प्रभु कलश करे धर युग पाना
अरु सनतकुमार महेन्द्र दोय जिनराजा शिर चमर ढुरावे साजा ॥टेक॥
५. शेष दिविज जयकार किया, इन्द्राणी प्रभुतन पौछ लिया
शुभ तिलक दृगांजन शची कियो शिशुराजा नाना भूषण से साजा ॥टेक॥
६. ऐरावत पुनि प्रभु लाकर के, माता की गोद बिठा करके
अति अचरज ताण्डव नृत्य कियो दिविराजा स्तुति करके जिनराजा ॥टेक॥
७. चाहत मन मुन्नालाल शरण, वसुकर्म जाल दुख दूर करन
शुभ आशीष मम वरदान देहु जिनराजा मम न्हवन हो गिरिराजा ॥टेक॥

विनय पाठ

इह विधि ठाड़ो होय के, प्रथम पढ़ै जो पाठ ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जु आठ ॥१॥
अनन्त चतुष्टय के धनी, तुम ही हो सिरताज ।
मुक्ति-वधू के कंत तुम, तीन भुवन के राज ॥२॥
तिहुँ जग की पीड़ा हरन, भवदधि-शोषणहार
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिव सुख के करतार ॥३॥
हरता अघ अँधियार के, करता धर्म-प्रकाश ।
थिरता-पद दातार हो धरता निज गुण रास ॥४॥
धर्मामृत उर जलधि सों ज्ञान भानु तुम रुप ।
तुमरे चरण-सरोज को, नावत तिहुं जग भूप ॥५॥
मैं वन्दों जिनदेव को, कर अति निर्मल भाव ।
कर्म बंध के छेदने, और न कछु उपाय ॥६॥

भविजन को भव-कूप तैं, तुम ही काढ़नहार ।
दीन-दयाल अनाथ पति, आतम गुण भंडार ॥७॥
चिदानन्द निर्मल कियो, धोय कर्म-रज मैल ।
सरल करी या जगत में, भविजन को शिव गैल ॥८॥
तुम पद-पंकज पूजतैं, विघ्न रोग टर जाय ।
शत्रु मित्रता को धरैं, विष निर-विषता थाय ॥९॥
चक्री खग धर इन्द्र पद, मिलैं आप तैं आप ।
अनुक्रम कर शिवपद लहैं, नेम सकल हनि पाप ॥१०॥
तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जल बिन मीन ।
जन्म-जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन॥११॥
पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव ।
अंजन से तारे कुधी, जय जय जय जिनदेव ॥१२॥
थकी नाव भवदधि विषैं, तुम प्रभु पार करेय ।
खेवटिया तुम हो प्रभु, जय जय जय जिन देव ॥१३॥
राग सहित जग में रुल्यो, मिले सरागी देव ।
वीतराग भेंटयो अबैं, मेटो राग कुटेव ॥१४॥
कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यञ्च अज्ञान ।
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान ॥१५॥
तुमको पूजैं सुरपति अहिपति नरपति देव ।
धन्य भाग्य मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव ॥१६॥
अशरण के तुम शरण हो निराधार आधार ।
मैं डूबत भवसिन्धु में, खेव लगाओ पार ॥१७॥
इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान ।
अपनो विरद निहारकैं, कीजे आप समान ॥१८॥
तुमरी नेक सुदृष्टि तैं, जग उतरत है पार ।
हा हा डूब्यो जात हों, नेक निहार निकार ॥१९॥
जो मैं कहहूँ और सों, तो न मिटै उरझार ।
मेरी तो तोसों बनी, तातैं करौं पुकार ॥२०॥
वन्दों पाँचों परम गुरू सुरगुरु बन्दत जास ।
विघन हरन मंगल करन, पूरन परम प्रकाश ॥२१॥
चौबीसों जिनपद नमों, नमों शारदा माय ।
शिवमग साधक साधु नमि, रच्यों पाठ सुखदाय ॥२२॥

मंगल मूर्ति परम पद, पंच धरो नित ध्यान ।
हरो अमंगल विश्व का, मंगलमय भगवान ।।२३।।
मंगल जिनवर पद नमों, मंगल अर्हन्त देव ।
मंगलकारी सिद्ध पद, सो वन्दों स्वयमेव ।।२४।।
मंगल आचारज मुनि, मंगल गुरु उवझाय ।
सर्व साधु मंगल करो, वंदों मन-वच काय ।।२५।।
मंगल सरस्वती मात का, मंगल जिनवर धर्म ।
मंगलमय मंगल करण, हरो असाता कर्म ।।२६।।
या विधि मंगल करन से, जग में मंगल होत ।
मंगल "नाथूराम" यह भव सागर दृढ़ पोत ।।२७।।

(इति पुष्पांजलि क्षिपामि.)

यहाँ पर नौ बार णमोकार मंत्र जपना चाहिए।

पूजा पीठिका

ॐ जय जय जय नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु,
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ।।१।।

ॐ ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः ।

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं । चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा, चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहूसरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

ॐ नमोऽर्हतेस्वाहा इत्याशीर्वादः पुष्पांजलि क्षिपेत् ।

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा ।
ध्यायेत्पंच-नमस्कारं, सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।१।।
अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्परमात्मानं, स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ।।२।।

अपरा-जित-मन्त्रोऽयं, सर्व-विघ्न-विनाशनः ।
मंगलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मंगलं मतः ।।३।।
एसो पंच-णमो-यारो, सव्व-पावप्पणा-सणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवई मंगलम् ।।४।।
अर्ह-मित्य-क्षरं ब्रह्म,-वाचकं परमेष्ठिनः ।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं, सर्वतः प्रणमाम्यहम् ।।५।।
कर्माष्टकविनिर्मुक्तं, मोक्ष-लक्ष्मी-निकेतनम् ।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ।।६।।
विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी-भूत-पन्नगाः ।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे ।।७।।

(पुष्पाजलिं क्षिपामि)

पंच कल्याणक अर्घ

उदक-चन्दन-तन्दुल-पुष्पकै, श्चरु-सुदीपसूधूपफलार्घकैः ।
धवल-मंगल-गान-रवाकुले, जिनगृहे कल्याण महं यजे ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री भगवतो गर्भजन्मतपज्ञान निर्वाण पंच कल्याणकेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंच परमेष्ठी का अर्घ

उदक-चन्दन-तन्दुल-पुष्पकै, श्चरु-सुदीपसूधूपफलार्घकैः ।
धवल-मंगल-गान-रवाकुले, जिनगृहे जिननाथ महं यजे ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हतसिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सहस्रनाम अर्घ

उदक-चन्दन-तन्दुल-पुष्पकै, श्चरु-सुदीपसूधूपफलार्घकैः ।
धवल-मंगल-गान-रवाकुले, जिनगृहे जिननाम महं यजे ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिसहस्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

श्रीमज्जिनेन्द्र-मभि-वंद्य जगत्त्रयेशं ।
स्याद्वाद-नायक-मनन्त-चतुष्ट-यार्हम् ।
श्री मूल-संघ-सुदृशां सुकृतैक-हेतुर्,
जैनेन्द्र-यज्ञविधि-रेष मयाऽभ्य-धायि ।।१।।

स्वस्ति त्रिलोक-गुरवे जिन-पुंगवाय ।
स्वस्ति स्वभाव-महिमोदय सुस्थिताय ।
स्वस्ति प्रकाश-सह-जोर्ज्जित-दृङ् मयाय,
स्वस्ति प्रसन्न-ललिताद्-भुत-वैभवाय ॥२॥
स्वस्-त्युच्-छलद्-विमल, बोधसुधा-प्लवाय,
स्वस्ति स्वभाव परभाव विभास-काय ।
स्वस्ति त्रिलोक-विततैक-चिदुद्-गमाय,
स्वस्ति त्रिकाल-सकलायत-विस्तृताय ॥३॥
द्रव्यस्य शुद्धि-मधि-गम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धि-मधिका-मधि-गन्तुकामः ।
आलम्बनानि विविधान्-यवलम्ब्य वल्गन्,
भूतार्थ-यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥४॥
अर्हन् पुराण-पुरुषोत्तम-पावनानि
वस्तुन्-यनून-मखिलान्-ययमेक एव ।
अस्मिन् ज्वलद्विमल-केवलबोधवह्नौ,
पुण्यं समग्र-मह-मेक-मना जुहोमि ॥५॥
ॐ ह्रीं विधियज्ञप्रतिज्ञानाय श्रीजिनप्रतिमाग्रे परिपुष्पांजलि क्षिपेत् ।

स्वस्ति मंगलपाठ

श्री वृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अजितः ।
श्री संभवः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अभिनन्दनः ।
श्री सुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री पद्मप्रभः ।
श्री सुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्री चन्द्रप्रभः ।
श्री पुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्री शीतलः ।
श्री श्रेयांसः स्वस्ति, स्वस्ति श्री वासुपूज्यः ।
श्री विमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अनन्तः ।
श्री धर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्री शांतिः ।
श्री कुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अरनाथः ।
श्री मल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री मुनिसुव्रतः ।

श्री नमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री नेमिनाथः ।
श्री पार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्री वर्धमानः ।
(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)
इति जिनेन्द्र स्वस्ति मंगल विधानम्

परमर्षि स्वस्ति मंगल पाठ

(प्रत्येक श्लोक के अन्त में पुष्पांजलि क्षेपण करें)

नित्या-प्रकम्पाद्-भुत-केवलौघाः, स्फुरन्मनःपर्यय शुद्ध बोधाः ।
दिव्यावधिज्ञान-बल-प्रबोधाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥१॥
कोष्ठस्थ-धान्योप-ममेक-बीजं, संभिन्न-संश्रोतृ-पदानुसारि ।
चतुर्विधं बुद्धि-बलं दधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥२॥
संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरा-, दास्वादन-घ्राण-विलोकनानि ।
दिव्यान्-मतिज्ञानबलाद्वहन्तः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥३॥
प्रज्ञा-प्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः, प्रत्येक-बुद्धाः दशसर्वपूर्वैः ।
प्रवादिनोऽष्टांग-निमित्तविज्ञाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥४॥
जंघानलश्रेणि-फलाम्बू-तन्तु-, प्रसून-बीजांकुर-चार-णाह्वाः ।
नभोऽङ्गण-स्वैर-विहारिणश्च, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥५॥
अणिम्निदक्षाः कुशला महिम्नि, लघिम्नि शक्ताः कृतिनो गरिम्णि ।
मनो-वपु-र्वाग्बलिनश्च नित्यं, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥६॥
सकाम-रुपित्व-वशित्वमैश्यं, प्राकाम्य-मन्तर्द्धि-मथाप्तिमाप्ताः ।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥७॥
दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं, घोरं तपो घोर-परा क्रमस्थाः ।
ब्रह्मापरं घोरगुणाश्चरन्तः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥८॥
आमर्ष-सर्वौषधयस्तथाशी, र्विषंविषा दृष्टिविषाविषाश्च ।
सखिल्लविड्जल्लमलौषधीशाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥९॥
क्षीरं स्रवंतोऽत्र घृतं स्रवन्तो, मधु स्रवन्तोऽप्य-मृतं स्रवन्तः ।
अक्षीण-संवास-महानसाश्च, स्वस्ति क्रियासु परमर्षयो नः ॥१०॥

॥ इति परमर्षि स्वस्ति मंगल विधानम् परिपुष्पांजलिं क्षिपामि ॥
(कायोत्सर्ग करें)

समुच्चय पूजन

(दोहा)

देव शास्त्र नमन करि, बीस तीर्थंकर ध्याय ।
सिद्ध सुद्ध राजत सदा, नमूँ चित्त हुलसाय ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र गुरुसमूह ! श्री विद्यमान विंशति तीर्थंकर समूह ! श्री अनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठी समूह ! अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

अनादिकालसे जगमें स्वामिन्, जल से शुचिता को माना ।
शुद्ध निजातम सम्यक् रत्नत्रय, निधिको नहीं पहिचाना ॥
अब निर्मल रत्नत्रय-जल ले, श्री देव-शास्त्र गुरुको ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र गुरुभ्यो श्री विद्यमान विंशति तीर्थंकरेभ्यो श्री अनन्तानन्तसिद्ध परमेष्ठिभ्यो, जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

भव-आताप मिटावन की, निज में ही क्षमता समता है ।
अनजाने अब तक मैंने, पर में की झूँठी ममता है ॥
चंदन सम शीतलता पाने श्री देव-शास्त्र गुरुको ध्याऊँ॥ विद्यमान ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो श्री विद्यमान विंशति तीर्थंकरेभ्यो श्री अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठिभ्यो, संसार तापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

अक्षय पदके बिन फिरा, जगत की, लख चौरासी योनी में ।
अष्ट कर्म के नाश करन को, अक्षत तुम ढिंग लाया मैं ॥
अक्षय निधि निज की पाने को अब, देव-शास्त्र गुरु को ध्याऊँ॥ विद्यमान ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो श्री विद्यमान विंशति तीर्थंकरेभ्यो श्री अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठिभ्यो, अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

पुष्प सुगन्धी से आतम ने, शील स्वभाव नशाया है ।
मन्मथ बाणों से बिंध करके, चहूँ गति में दुःख उपजाया है ॥
स्थिरता निज में पाने को, श्री देव-शास्त्र गुरु को ध्याऊँ॥ विद्यमान ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः श्री विद्यमान विंशति तीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठिभ्यो, कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

षट् रस-मिश्रित भोजन से, ये भूख न मेरी शांत हुई ।
आतम रस अनुपम चखने से, इन्द्रिय मन इच्छा शमन हुई
सर्वथा भूख के मेटन को, श्री देव-शास्त्र-गुरुको ध्याऊँ॥ विद्यमान ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र गुरुभ्यो श्री विद्यमान विंशति तीर्थंकरेभ्यो श्रीअनंतानंत सिद्धपरमेष्ठिभ्यो, क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

जड़ दीप विनश्वर को अब तक, समझा था मैंने उजियारा ।
निज-गुण दरशायक ज्ञान दीपसे, मिटा मोह का अंधियारा ॥
ये दीप समर्पित करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ॥ विद्यमान ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो श्री विद्यमान विंशति तीर्थंकरेभ्यो श्री अनंतानंत सिद्धपरमेष्ठिभ्यो, मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

ये धूप अनल में खेने से, कर्मों को नहीं जलायेगी ।
निजमें निजकी शक्ति ज्वाला, जो राग द्वेष नशायेगी ॥
उस शक्तिदहन प्रकटाने को, श्री देव-शास्त्र गुरुको ध्याऊँ॥ विद्यमान ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो श्री विद्यमान विंशति तीर्थंकरेभ्यो श्री अनंतानंत सिद्धपरमेष्ठिभ्यो, अष्ट कर्म विध्वंशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥

पिस्ता बदाम श्रीफल लवंग, चरणन तुम ढिंग मैं ले आया ।
आतमरस भीने निजगुण फल, मम मन अब उनमें ललचाया ॥
अब मोक्ष महाफल पाने को, श्री देव-शास्त्र गुरु को ध्याऊँ॥ विद्यमान ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो श्री विद्यमान विंशति तीर्थंकरेभ्यो श्री अनंतानंत सिद्धपरमेष्ठिभ्यो, मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥८॥

अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये ।
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निजमें निज गुण प्रगट किये ॥
ये अर्घ समर्पण करके मैं, श्री देवशास्त्र गुरु को ध्याऊँ॥ विद्यमान ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो श्री विद्यमान विंशति तीर्थंकरेभ्यो श्री अनंतानंत सिद्धपरमेष्ठिभ्यो, अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घम् निर्वपामीति स्वाहा ॥९॥

(दोहा)

देव-शास्त्र-गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु भगवान ।
अब वरणूँ जय मालिका, करूँ स्तवन गुणगान ॥

जयमाला

नसे घातिया कर्म अर्हंत देवा, करे सुर-असुर-नर-मुनि नित्य सेवा ।
दरश-ज्ञान-सुख बल अनन्तों के स्वामी, छियालीस गुण युक्त महा ईश नामी ॥
तेरी दिव्य-वाणी सदा भव्य मानी, महा-मोह विध्वंसिनी मोक्ष-दानी ।
अनेकांतमय द्वादशांगी बखानी, नमो लोक माता श्री जिनवाणी ॥
विरागी अचारज उवज्झाय साधु, दरश-ज्ञान भण्डार समता अराधू ।
नगन वेषधारी सु एका विहारी, निजानन्द मंडित मुकति पथ प्रचारी ॥
विदेह क्षेत्र में तीर्थंकर बीस राजे, विरहमान बन्दूँ सभी पाप भाजें ।
नमूँ सिद्ध निर्भय निरामय सुधामी, अनाकुल समाधान सहजाभिरामी ॥

देव-शास्त्र गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध हृदय बिच धर ले रे।
पूजन ध्यान गान गुण करके, भवसागर जिय तर ले रे ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो श्री विद्यमान विंशति तीर्थंकरेभ्यो अनंतानंत सिद्धपरमेष्ठिभ्यो, जयमाला पूर्णार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा ।

भूत भविष्यत वर्तमान की, तीस चौबीसी मैं ध्याऊँ।
चैत्य चैत्यालय कृत्रिमाकृत्रिम, तीन लोक के मन लाऊँ॥

ॐ ह्रीं त्रिकाल संबंधी तीस चौबीसी त्रिलोक संबंधी कृत्रिमाकृत्रिम चैत्य चैत्यालयेभ्यो अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ॥

चैत्य भक्ति आलोचना चाहूँ, कायोत्सर्ग अघनाशन हेत ।
कृत्रिमाकृत्रिम तीन लोक में, राजत हैं जिन बिम्ब अनेक ॥
चतुर निकाय के देव जजे लें, अष्ट द्रव्य निज भक्ति समेत ।
निज शक्ति अनुसार जजूँ मैं, कर समाधि पाऊँशिव खेत ॥

ॐ ह्री त्रिकाल संबंधी कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालय संबंधि जिन बिम्बेभ्यो अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ॥

पूर्व मध्य अपराह्न की बेला, पूर्वाचार्यों के अनुसार
देव वन्दना करूँ भाव से, सकल कर्म की नाशन हार
पंच महा गुरु सुमरन करके, कार्योत्सर्ग करूँ सुखकार
सहज स्वभाव शुद्ध लख, अपना जाऊँगा अब मैं भव पार

पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

(कायोत्सर्ग करें)

देव-शास्त्र-गुरु-पूजा

केवल-रवि किरणों से जिसका, सम्पूर्ण प्रकाशित है अन्तर।
उस श्री जिनवाणी में होता तत्वों का सुन्दरतम दर्शन ॥
सद् दर्शन बोध-चरण-पथ पर, अविरल जो बढ़ते है मुनिगण।
उन देव परम आगम गुरु को शत-शत वंदन शत-शत वंदन ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरु-समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।

इन्द्रिय के भोग मधुर विष सम, लावण्यमयी कंचन काया।
यह सब कुछ जड़ की क्रीडा है, मैं अब तक जान नहीं पाया ॥
मैं भूल स्वयंके वैभव को, पर ममता में अटकाया हूँ ।
अब निर्मल सम्यक् नीर लिये, मिथ्या-मल धोने आया हूँ ॥

ॐ ह्री श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

जड़ चेतन की सब परिणति प्रभु ! अपने-अपने में होती है ।
अनुकूल कहें प्रतिकूल कहें, यह झूंठी मन की वृत्ति है ॥
प्रतिकूल संयोगोमें क्रोधित, होकर संसार बढ़ाया है ।
सन्तप्त हृदय प्रभु ! चंदन सम, शीतलता पाने आया है ॥२॥

ॐ ह्री श्री देव-शास्त्र गुरुभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

उज्जवल हूँ कुन्द धवल हूँ प्रभु ! पर से न लगा हूँ किंचित् भी ।
फिर भी अनुकूल लगे उन पर, करता अभिमान निरंतर ही ॥
जड़ पर झुक-झुक जाता चेतन, की मार्दव की खंडित काया ।
निज शाश्वत अक्षय-निधि पाने, अब दास चरण-रज में आया ॥३॥

ॐ ह्री श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन में माया कुछ शेष नहीं ।
निज अन्तर का प्रभु ! भेद कहूँ उसमें ऋजुता का लेश नहीं ॥
चिंतन कुछ फिर सम्भाषण कुछ, क्रिया कुछ की कुछ होती है ।
स्थिरता निज में पाऊँ प्रभु, जो अन्तर का कालुष धोती है ॥४॥

ॐ ह्री श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

अब तक अगणित जड़ द्रव्यों से प्रभु ! भूख न मेरी शांत हुई ।
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही ॥
युग-युग से इच्छा सागर में, प्रभु गोते खाता आया हूँ ।
पंचेन्द्रिय मन के षटरस तज, अनुपम रस पीने आया हूँ ॥५॥

ॐ ह्री श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

जग के जड़ दीपक को अब तक, समझा था मैंने उजियारा ।
झंझा के एक झकोरे में, जो बनता घोर तिमिर काला ॥
अतएव प्रभो ! यह नश्वर दीप, समर्पण करने आया हूँ ।
तेरी अन्तर लौ से निज अन्तर, दीप जलाने आया हूँ ॥६॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

जड़ कर्म घुमाता है मुझको, यह मिथ्या भ्रान्ति रही मेरी ।
मैं राग-द्वेष किया करता, जब परिणति होती जड़ केरी ॥
यों भाव करम या भाव-मरण, सदियों से करता आया हूँ ।
निज अनुपम गन्ध अनल से प्रभु ! पर गन्ध जलाने आया हूँ ॥७॥

ॐ ह्री श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अष्टकर्म विध्वंशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥

जग में जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है ।
मैं आकुल व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है ॥

मैं शांत निराकुल चेतन हूँ, है मुक्तिरमा सहचर मेरी ।
यह मोह तड़ककर टूट पड़े प्रभु ! सार्थक फल पूजा तेरी ॥८॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥८॥
क्षणभर निज रस को पी चेतन, मिथ्या मल को धो देता है
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृत पीता है ॥
अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल रवि जगमग करता है
दर्शन बल पूर्ण प्रगट होता, यह ही अर्हन्त अवस्था है ॥
यह अर्घ समर्पण करके प्रभु ! निज गुण का अर्घ बनाऊँगा ।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु अर्हन्त अवस्था पाऊँगा ॥९॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥९॥

जयमाला

भव वन में जी भर घूम चुका, कण-कण को जी भर भर देखा ।
मृग-सम मृग-तृष्णा के पीछे मुझको न मिली सुख की रेखा ।१।
झूठे जग के सपने सारे, झूठी मन की सब आशायें ।
तन-जीवन-यौवन अस्थिर है, क्षण भंगुर पल में मुरझायें ।२।
सम्राट महा-बल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या ? ।
अशरण मृत काया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या ? ।३।
संसार महा दुख सागर के, प्रभु दुखमय सुख-आभासों में ।
मुझको न मिला सुख क्षण-भर भी, कंचन-कामिनी प्रासादों में ।४।
मैं एकाकी एकत्व लिए, एकत्व लिए सब ही आते ।
तन धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते ।५।
मेरे न हुए ये मैं इनसे, अति भिन्न अखण्ड निराला हूँ ।
निज में पर से अन्यत्व लिये, निज सम रस पीने वाला हूँ ।६।
जिसके श्रृंगारोंमें मेरा, यह महँगा जीवन घुल जाता ।
अत्यन्त अशुचि जड़ काया से, इस चेतन का कैसा नाता ।७।
दिन-रात शुभाशुभ भावों से, मेरा व्यापार चला करता ।
मानस वाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता ।८।
शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल ।
शीतल समकित किरणें फूटें, संवर से जागे अन्तर्बल ।९।
फिर तप की शोधक वन्हि जगे, कर्मों की कड़ियाँ टूट पड़ें ।
सर्वांग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पड़ें ।१०।

हम छोड़ चले यह लोक तभी, लोकांत विराजे क्षण में जा ।
निज लोक हमारा वासा हो, शोकांत बने फिर हमको क्या ? ।११।
जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभो ! दुर्नयतम सत्वर टल जावे ।
बस ज्ञाता दृष्टा रह जाऊँ, मद मत्सर-मोह-विनश जावे ।१२।
चिर-रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी ।
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी ।१३।
चरणों में आया हूँ प्रभुवर ! शीतलता मुझको मिल जावे ।
मुरझाइ ज्ञान लता मेरी, निज अन्तर्बल से खिल जावे ।१४।
सोचा करता हूँ भोगों से, बुझ जावेगी इच्छा ज्वाला ।
परिणाम निकलता हैं लेकिन, मानों पावक में घी डाला ।१५।
तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय-सुख की ही अभिलाषा ।
अब तक न समझ ही पाया प्रभु ! सच्चे सुख की भी परिभाषा ।१६।
तुम तो अविकारी हो प्रभुवर ! जग में रहते जग से न्यारे ।
अतएव झुके तव चरणों में, जग के माणिक मोति सारे ।१७।
स्याद्वादमयी तेरी वाणी शुभनय के झरने झरते हैं ।
इस पावन नौका पर लाखों, प्राणी भव-वारिधि तिरते हैं ।१८।
हे गुरुवर ! शाश्वत सुख-दर्शक यह नग्न स्वरुप तुम्हारा है ।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्शन करने वाला है ।१९।
जब जग विषयों में रच पच कर, गाफिल निद्रा में सोता हो ।
अथवा वह शिव के निष्कंटक, पथ में विष-कंटक बोता हो ।२०।
हो अर्द्ध निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों ।
तब शांत निराकुल मानस तुम, तत्वों का चिंतन करते हो ।२१।
करते तप शैल नदी तट-पर, तरूतल वर्षा की झड़ियों में ।
समता रस पान किया करते, सुख दुख दोनोंकी घड़ियों में ।२२।
अन्तर ज्वाला हरती वाणी, मानो झड़ती हो फुलझड़ियाँ ।
भव बंधन तड़ तड़ टूट पड़े, खिल जावे अन्तर की कलियाँ ।२३।
तुम सा दानी क्या कोई हो, जग को दे दीं जग की निधियाँ ।
दिन-रात लुटाया करते हो, सम-शमकी अविनश्वर मणियाँ ।२४।
हे निर्मल देव । तुम्हें प्रणाम, हे ज्ञान दीप आगम ! प्रणाम ।
हे शांति त्याग के मूर्तिमान, शिवपथ-पंथी गुरुवर ! प्रणाम ॥२५॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
(९ बार णमोकार मंत्र जपें)

नवदेवता पूजन

(गीता छन्द)

अरिहंत सिद्धाचार्य पाठक, साधु त्रिभुवन वंद्य हैं ।
जिनधर्म जिनआगम जिनेश्वर, मूर्ति जिनगृह वंद्य हैं ॥
नव देवता ये मान्य जग में, हम सदा अर्चा करें ।
आह्वान कर थापें यहाँ, मन में अतुल श्रद्धा धरें ॥

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु जिनधर्मजिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं । अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणं ।

गंगानदी का नीर निर्मल, बाह्य मल धोवे सदा ।
अंतर मलों के क्षालने को, नीर से पूजूँ मुदा ॥
नव देवताओं की सदा जो, भक्ति से अर्चा करें ।
सब सिद्धि नवनिधि ऋद्धि मंगल, पाय शिवकांता वरें ॥१

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

कर्पूर मिश्रित गंध चंदन, देह ताप निवारता ।
तुम पाद पंकज पूजते, मन ताप तुरतहिं वारता ॥नव.॥२

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

क्षीरोदधी के फेन सम सित तंदुलों को लायके ।
उत्तम अखंडित सौख्य हेतु, पुंज नव सुचढ़ायके ॥नव.॥३

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

चम्पा चमेली केवड़ा, नाना सुगंधित ले लिये ।
भव के विजेता आपको, पूजत सुमन अर्पण किये ॥ नव.॥४

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो कामबाण बिनाशनाय पुष्पं निर्वषाभीति स्वाहा।

पायस मधुर पकवान मोदक, आदि को भर थाल में ।
निज आत्म अमृत सौख्य हेतु पूजहूँ नत भाल मैं ॥नव.॥५

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो क्षुधारोग बिनाशनाय निर्ववामीति स्वाह।

कर्पूर ज्योति जगमगे दीपक लिया निज हाथ में ।
तुम आरती तम वारती, पाऊँ सुज्ञान प्रकाश मैं ॥नव.॥६

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वषामीति स्वाहा।

दश गंध धूप अनूप सुरभित, अग्नि में खेऊँ सदा ।
निज आत्मगुण सौरभ उठे, हों कर्म सब मुझसे विदा ॥नव.॥७

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो अष्ट कर्म दहनाय धूपं निर्वषामीति स्वाहा।

अंगूर अमरख आम्र अमृत, फल भराऊँ थाल में ।
उत्तम अनूपम मोक्ष फल के, हेतु पूजूँ आज मैं ॥नव.॥८

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंध अक्षत पुष्प चरु, दीपक सुधूप फलार्घ्य ले ।
वर रत्नत्रय निधि लाभ यह, बस अर्घ्य से पूजत मिले ॥नव.॥९

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्ध निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

जलधारा से नित्य मैं, जग की शांति हेत ।
नवदेवों को पूजहूँ, श्रद्धा भक्ति समेत ॥१०॥

(शांतये शांतिधारा ।)

नाना विध के सुमन ले, मन में बहु हरषाय ।
मैं पूजूँ नवदेवता, पुष्पांजली चढ़ाय ॥११॥

(दिव्य पुष्पांजलिः ।)

(जाप्य) ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागम-जिनचैत्यचैत्यालयेभ्यो नमः । (९, २७ या १०८ बार)

जयमाला

(सोरठा)

चिच्चिंतामणि रत्न, तीन लोक में श्रेष्ठ हो ।
गाऊँ गुण मणिमाल, जयवंते वर्तो सदा ॥१॥

(चाल-हे दीनबंधु श्रीपति.....)

जय जय श्री अरिहंत देव देव हमारे । जय घातिया को घात सकल जंतु उबारे ॥
जय जय प्रसिद्ध सिद्ध की मैं वंदना करूँ । जय अष्ट कर्ममुक्त की मैं अर्चना करूँ ॥२॥
आचार्य देव गुण छत्तीस धार रहे हैं । दीक्षादि दे असंख्य भव्य तार रहे हैं ॥
जैवंत उपाध्याय गुरु ज्ञान के धनी । सन्मार्ग के उपदेश की वर्षा करें घनी ॥३॥
जय साधु अठाईस गुणों को धरें सदा । निज आतमा की साधना से च्युत न हों कदा ॥
ये पंच परम देव सदा वंद्य हमारे । संसार विषम सिंधु से हमको भी उबारें ॥४॥
जिनधर्म चक्र सर्वदा चलता ही रहेगा । जो इसकी शरण ले वो सुलझता ही रहेगा ॥
जिनकी ध्वनि पीयूष का जो पान करेंगे । भव रोग दूर कर वे मुक्ति कांत बनेंगे ॥५॥
जिन चैत्य की जो वंदना त्रिकाल करे हैं । वे चित्स्वरूप नित्य आत्म लाभ करे हैं ॥
कृत्रिम व अकृत्रिम जिनालयों को जो भजें । वे कर्मशत्रु जीत शिवालय में जा बसें ॥६॥

नव देवताओं की जो नित आराधना करें। वे मृत्युराज की भी तो विराधना करें॥
मैं कर्मशत्रु जीतने के हेतु ही जजूँ। सम्पूर्ण "ज्ञानमती" सिद्धि हेतु ही भजूँ॥७॥

दोहा - नवदेवों को भक्तिवश, कोटि कोटि प्रणाम।
भक्ती का फल मैं चहूँ, निजपद में विश्राम॥८॥

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्यचैत्यालयेभ्यो जयमाला अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा....।

जो भव्य श्रद्धाभक्ति से, नव देवता पूजा करें।
वे सब अमंगल दोष हर, सुख शांति में झूला करें॥
नवनिधि अतुल भंडार ले, फिर मोक्ष सुख भी पावते।
सुखसिंधु में हो मग्न फिर, यहाँ पर कभी न आवते॥९

॥ पुष्पञ्जलिं क्षिपेत्॥

सिद्ध पूजा भाषा

स्वयं सिद्ध जिन भवन रतनमई बिम्ब विराजै।
नमत सुरासुर इन्द्र, दरस लखि रवि शशि लाजै॥
चार शतक पचास आठ, भुवि लोक बताये।
तिन पद पूजन हेतु, भाव धरि मंगल गाये।
मंगलमय मंगल करण, शिवपद दायक जानिकैं।
आह्वानन करके जजों, सिद्ध सकल उर आनिकै॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठिन्! अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं।
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

उज्जवल जल शीतल लाय, जिन गुण गावत हैं।
सब सिद्धन को सु चढ़ाय, पुण्य बढ़ावत हैं।
सम्यक् सुक्षायक जान, यह गुण गावत हैं।
पूजौं श्रीसिद्ध महान, बलि बलि जावत हैं॥१॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्पूर सु केशर सार, चन्दन सुखकारी।
पूजौं श्रीसिद्ध निहार, आनन्द मनधारी॥
सब लोकालोक प्रकाश, केवल ज्ञान जग्यो।
यह ज्ञान सुगुण मनभास, निजरस माँहि पग्यो॥२॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो भवाताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

मुक्ताफल की उनहार, अक्षत धोय धरे।
अक्षय पद प्राप्ति जान, पुण्य भण्डार भरे॥
जग में सु पदारथ सार, ते सब दरसावै।
सो सम्यग्दर्शन सार, यह गुण मन भावै॥३॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

सुन्दर सु गुलाब अनूप, फूल अनेक कहे।
श्री सिद्धन पूजत भूप, बहुविधि पुण्य लहे॥
तहाँ वीर्य अनन्तो सार, यह गुण मनमानो।
संसार समुद्रतैं पार, तारक प्रभु जानो॥४॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

फेनी गोजा पकवान, मोदक सरस बने।
पूजौं श्री सिद्ध महान्, भूखविथा जु हने॥
झलकें सब एकहि बार, ज्ञेय कहें जितने।
यह सूक्ष्मता गुण सार, सिद्धन के सु तने॥५॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक की ज्योति जगाय, सिद्धन को पूजों।
करि आरति सनमुख जाय, निरमल पद हू जों।
कुछ घाटि न वाढ़ि प्रमाण, अगुरुलघु गुण राख्यो।
हम शीस नवावत आय, तुम गुण मुख भाख्यो॥६॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

वरधूप सु दशविधि ल्याय, दश विधि गन्ध धरै।
वसु कर्म जलावत जाय, मानों नृत्य करै॥
इक सिद्ध में सिद्ध अनन्त, सत्ता सब पावै।
यह अवगाहन गुण सन्त, सिद्धन के गावै॥७॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

ले फल उत्कृष्ट महान, सिद्धन को पूजौं।
लहि मोक्ष परम गुण धाम, प्रभुसम नहिं दूजौ॥
यह गुण बाधाकरि हीन, बाधा नाश भई।
सुख अव्याबाध सु चीन, शिव सुन्दरी सु लई॥८॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल भरि कञ्चन थाल, अरचन कर जोरी।
प्रभु सुनियो दीनदयाल, विनती है मोरी॥

कामादिक दुष्ट महान, इनको दूर करो ।
तुम सिद्धसदा सुखदान, भव भव दु:ख हरो ।।९।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)

नमों सिद्ध परमात्मा, अद्‌भुत परम रसाल ।
तिन गुण महिमा अगम है, सरस रची जयमाल ।।

(पद्धरि छन्द)

जय जय श्री सिद्धन कूं प्रणाम, जय शिव सुख सागर के सुथान ।
जय बलि बलि जात सुरेश जान, जय पूजत तन मन हर्ष ठान ।
जय क्षायिक गुण सम्यक्त्व लीन, जय केवलज्ञान सुगुण नवीन ।
जय लोकालोक प्रकाशवान, यह केवल अतिशय हिये जान ।।
जय सर्व तत्व दर से महान, सो दर्शन गुण तीजो महान ।
जय वीर्य अनन्तो है अपार, जाकी पटतर दूजो न सार ।।
जय सूक्ष्मता गुण हिये धार, सब ज्ञेय लख्यो एकहि सुवार ।
इक सिद्ध में सिद्ध अनन्त जान, अपनी-अपनी सत्ता प्रमाण ।।
अवगाहन गुण अतिशय विशाल, तिनके पद वन्दे नमित भाल ।
कछु घाटि न बाधि कहे प्रमाण, गुण अगुरु लघु धारैं महान ।।
जय बाधा रहित विराजमान, सो अव्याबाध कही बखान ।
ये वसुगुण हैं व्यवहार सन्त, निश्चय जिनवर भाषे अनन्त ।।
सब सिद्धनि के गुण कहे गाय, इन गुण करि शोभित हैं जिनाय ।
तिनको भविजन मनवचन काय, पूजत वसु विधि अति हर्ष लाय ।।
सुरपति फणपति चक्री महान, बलि हरि प्रतिहरि मनमथ सुजान ।
गुणपति मुनिपति मिल धरत ध्यान, जय सिद्ध शिरोमणि जग प्रधान ।।

(सोरठा)

ऐसे सिद्ध महान, तुम गुण महिमा अगम है ।
वरणन कर्‌यो बखान, तुच्छ बुद्धि भवि लाल जू ।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो जयमाला पूर्ण महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा)

करता की यह विनती, सुनो सिद्ध भगवान ।
मोहि बुलाओ आप ढिंग, यही अरज उर आन ।।

इत्याशीर्वादः ।

समुच्चय चौबीसी जिनपूजन

ऋषभ अजित सम्भव अभिनन्दन, सुमति पद्म सुपार्श्व जिनराय ।
चन्द पुहुप शीतल श्रेयांस जिन, वासुपूज्य पूजित सुरराय ।।
विमल अनन्त धर्म जस-उज्ज्वल, शांति कुंथु अर मल्लि मनाय ।
मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्व प्रभु, वर्द्धमान पद पुष्प चढ़ाय ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरांतचतुर्विंशति जिनसमूह ! अत्रावतर अवतर संवौषट् आह्वाननं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

मुनि-मन-सम उज्ज्वल नीर, प्रासुक गन्ध भरा ।
भरि कनक-कटोरी धीर, दीनी धार धरा ।।
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही ।
पद जजत हरत भव-फन्द,पावत मोक्ष-मही ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

गोशीर कपूर मिलाय, केशर-रंग भरी ।
जिन-चरनन देत चढ़ाय, भव-आताप हरी ।। चौबीसों ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यो संसार -तापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

तन्दुल सित सोम-समान, सुन्दर अनियारे ।
मुक्ता-फल की उनमान, पुञ्ज धरों प्यारे ।। चौबीसों०।।३।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्योऽक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीतिस्वाहा ।

वर-कंज कदम्ब कुरण्ड,सुमन सुगन्ध भरे ।
जिन-अग्र धरों गुन-मण्ड, काम कलंक हरे ।। चौबीसों०।।४।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

मन-मोहक मोदक आदि, सुन्दर सद्य बने ।
रस पूरित प्रासुक स्वाद,जजत क्षुधादि हने ।।चौबीसों०।।५।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यो क्षुधा-रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

तम-खण्डन दीप जगाय, धारों तुम आगै ।
सब तिमिर मोदन क्षय जाय, ज्ञान-कला जागै ।। चौबीसों०।।६।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

दश-गन्ध हुताशन माहिं, हे प्रभु ! खेवत हों ।
मिस-धूम करम जरि जाहिं, तुम पद सेवत हों ॥ चौबीसों०॥७॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्योऽष्ट कर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

शुचि पक्व सुरस फल सार, सब ऋतु के ल्यायो ।
देखत दृग-मन को प्यार, पूजत सुख पायो ॥ चौबीसों०॥८॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ करों ।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों ॥चौबीसों०॥९॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्योऽनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

श्रीमत तीरथनाथ-पद, माथ नाय हित हेत ।
गाऊँ गुणमाला अबै, अजर अमर पद देत ॥३॥

(धत्तानन्द छन्द)

जय भव-तम-भंजन, जन-मन-कंजन, रंजन दिन-मणि, स्वच्छ करा ।
शिव-मग-परकाशक, अरिगण-नाशक, चौबीसों जिनराज वरा ॥२॥

(पद्धरी छन्द)

जय ऋषभदेव ऋषि गन नमन्त, जयअजित जीत वसु-अरि तुरन्त ।
जय सम्भव भव-भय करत चूर, जय अभिनंदन आनंद पूर ॥३॥
जय सुमति सुमति-दायक दयाल, जय पद्म पद्मदुति तन रसाल ।
जय जय सुपास भव-पास नाश,जय चन्द चन्द-तनदुति प्रकाश ॥४॥
जय पुष्पदन्त दुति-दन्त सेत, जय शीतल शीतल-गुननिकेत ।
जय श्रेयनाथ नुत सहसभुज्ज, जय वासव-पूजित वासुपूज्य ॥५॥
जय विमल विमल-पद देनहार, जय जय अनन्त गुन-गण अपार ।
जय धर्म धर्म शिव-शर्म देत, जय शान्ति शान्ति-पुष्टी करेत ॥६॥
जय कुन्थु कुन्थु-आदिक रखेय, जय अरजिन वसु-अरि छय करेय ।
जय मल्लि मल्ल हत मोह-मल्ल, जय मुनिसुव्रत व्रत-शल्य-दल्ल॥७॥
जय नमि नित वासव-नुत सपेम, जय नेमिनाथ वृष-चक्र नेम ।
जय पारसनाथ अनाथ-नाथ, जय वर्धमान शिव-नगर साथ ॥८॥

(धत्तानन्द छन्द)

चौबीस जिनन्दा, आनन्द-कन्दा, पाप-निकन्दा, सुखकारी ।
तिन पद-जुग-चन्दा, उदय अमन्दा, वासव-वन्दा, हितकारी ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्त चतुर्विंशति जिनेभ्यो जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(सोरठा)

भुक्ति - मुक्ति दातार, चौबीसों जिनराजवर ।
तिन पद मन-वच धार, जो पूजै सो शिव लहैं ॥१०॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् इत्याशीर्वादः ।)

श्री आदिनाथ जिन पूजा

नाभिराय मरुदेवि के नन्दन, आदिनाथ स्वामी महाराज ।
सर्वार्थसिद्धितैं आप पधारे, मध्यलोक मांहि जिनराज ॥
इन्द्रदेव सब मिलकर आये, जन्म महोत्सव करने काज ।
आह्वानन सब विधि मिल करके, अपने कर पूजे प्रभु पाय ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।

क्षीरोदधि का उज्ज्वल जल ले, श्री जिनवर पद पूजन जाय ।
जन्म-जरा दुःख मेटन कारन, ल्याय चढ़ाऊँ प्रभुजी के पाय ॥
श्री आदिनाथ के चरण-कमल पर, बलि-बलि जाऊँ मन वच काय ।
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय ।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

मलयागिरि चंदन दाह निकंदन, कञ्चन झारी में भर ल्याय ।
श्री जी के चरण चढ़ावो भविजन, भवआताप तुरत मिटिजाय ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

शुभशालि-अखंडित सौरभ मंडित, प्रासुक जलसों धोकर ल्याय ।
श्री जी के चरण चढ़ावो भविजन, अक्षयपद को तुरत उपाय ॥ श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

कमल केतकी बेल चमेली, श्री गुलाब के पुष्प मंगाय ।
श्री जी के चरण चढ़ावो भविजन, कामबाण तुरत नसि जाय ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

नेवज लीना षट्-रस भीना, श्रीजिनवर आगे धरवाय ।
थाल भराऊँ क्षुधा नसाऊँ, जिन गुण गावत मन हरषाय ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

जगमग-जगमग होत दशोंदिशि, ज्योति रही मन्दिर में छाय ।
श्री जी के सन्मुख करत आरती, मोहतिमिर नासै दुखदाय ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

अगर कपूर सुगन्ध मनोहर, चंदन कूट सुगन्ध मिलाय ।
श्री जी के सन्मुख खेय धूपायन, कर्मजरे चहुँगति मिटि जाय ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥

श्रीफल और बदाम सुपारी, केला आदि छुहारा ल्याय ।
महामोक्षफल पावन कारण, ल्याय चढ़ाऊँ प्रभुजी के पाय ॥ श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥८॥

शुचि निरमल नीरं गंध सुअक्षत, पुष्प चरु ले मन हर्षाय ।
दीप धूप फल अर्घ सुलेकर, नाचत ताल मृदंग बजाय ॥ श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥९॥

पञ्चकल्याणक

सर्वार्थसिद्धि तैं चये, मरुदेवी उर आय ।
दोज असित आषाढ़ की, जजूँ तिहारे पाय ॥

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णाद्धितीयायां गर्भकल्याणक प्राप्तये श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

चैत वदी नौमी दिना, जन्म्या श्री भगवान ।
सुरपति उत्सव अति कराया, मैं पूजौं धर ध्यान ॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णानवम्यां जन्मकल्याणक प्राप्तये श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

तृणवत् ऋद्धि सब छोड़िके, तप धारयो वन जाय ।
नौमी चैत्र असेत की, जजूँ तिहारे पाय ॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णानवम्यां तपकल्याणक प्राप्तये श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

फाल्गुन वदि एकादशी, उपज्यो केवलज्ञान ।
इन्द्र आय पूजा करी, मैं पूजा इह थान ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्ण एकादश्यां ज्ञानकल्याणक प्राप्तये श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

माघ चतुर्दशि कृष्ण की, मोक्ष गये भगवान ।
भवि जीवों को बोधि के, पहुँचे शिवपुर थान ॥

ॐ ह्रीं माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षकल्याणक प्राप्तये श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

आदीश्वर महाराज मैं विनती तुमसों करूँ ।
चारों गति के मांहि मैं दु:ख पायो सो सुनो ॥
अष्ट कर्म मैं एकलो, ये दुष्ट महादु:ख देत हो ॥
कबहूँ इतर निगोद में मोकुँ, पटकत करत अचेत हो ॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती ॥

प्रभु कबहुँक पटक्यो नरकमें, जठै जीव महादु:ख पाय हो ।
निष्ठुर निरदई नारकी, जठै करत परस्पर घात हो ॥ म्हारी. ॥
प्रभु नरक तणा दु:ख अब कहूँ, जठै करै परस्पर घात हो ।
कोइयक बांध्यो खंभसौं, पापी दे मुद्‌गर की मार हो ॥म्हारी.॥
कोइयक काटें करोतसों, पापी अंगतणी दोय फाड़ हो ।
प्रभु यह विधि दु:ख भुगत्या घणा, फिर गति पाई तिरयंच हो ॥ म्हारी.॥
हिरण बकरा बाछड़ा, पशु दीन गरीब अनाथ हो ।
पकड़ कसाई जाल मे, पापी काट-काट तन खाय हो ।
प्रभु मैं ऊंट बलद भैंसा भयो, जापैं लदियो भार अपार हो ॥ म्हारी.॥
नहिं चाल्यौ जब गिर परयो, पापी दे सोटन की मार हो ।
प्रभु कोइयक पुण्य संजोगसूं, मैं तो पायो स्वर्ग निवास हो ॥ म्हारी.॥
देवांगना संग रमि रह्यो, जठै भोगनि को परकास हो ।
प्रभु संग अप्सरा रमि रह्यो, कर कर अति अनुराग हो ॥ म्हारी.॥
कबहुँक नन्दन-वन विषै प्रभु, कबहुँक वन-गृह मांहि हो ।
प्रभु इह विधि काल गमायकैं, फिर माला गई मुरझाय हो ॥ म्हारी.॥
देव थिती सब घट गई, फिर उपज्यो सोच अपार हो ।
सोच करता तन-खिर पड्यो, फिर उपज्यो गरभ में जाय हो ॥ म्हारी.॥
प्रभु गर्भतणा दु:ख अब कहूँ, जठै सकुड़ाई की ठौर हो ।
हलन-चलन नहिं कर सक्यो, जठै सघन कीच घनघोर हो ॥ म्हारी.॥
माता खावै चरपरो, फिर लागै तन सन्ताप हो ।
प्रभु ज्यों जननी तातो भखै, फिर उपजै तन सन्ताप हो ॥ म्हारी.॥
औंधे मुख झूल्यो रह्यो, फेर निकसन कौन उपाय हो ।
कठिन-कठिन कर नीसरो, जैसे निसरै जंत्री मे तार हो ॥ म्हारी.॥
प्रभु फिर निकसत धरत्यां पड्यो, फिर लागी भूख अपार हो ।
रोय रोय बिलख्यो घणों, दुख वेदन को नहिं पार हो ॥ म्हारी.
प्रभु दुख मेटन समरथ धनी, यातैं लागूँ तिहारे पाय हो ।
सेवक अरज करै प्रभु ! मोकूँ, भवोदधि पार उतार हो ॥ म्हारी.॥

दोहा - श्री जी की महिमा अगम है, कोई न पावै पार ।
मैं मति अल्प अज्ञान हो, कौन करै विस्तार ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय जयमाला महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा)

विनती ऋषभ जिनेश की, जो पढ़सी मनलाय ।
स्वर्गो में संशय नहीं, निश्चय शिवपुर जाय ।

इत्याशीर्वादः ।

श्री अजितनाथ जिनपूजन

त्याग वैजयन्त सार सारधर्म के अधार, जनमधार धीर नग्न सुष्टु कौशलापुरी ।
अष्ट दुष्ट नष्टकर मातु वैजयाकुमार, आयु लक्षपूर्व दक्ष है बहत्तरै पुरी ॥
ते जिनेश श्री महेश शत्रु के निकन्दनेश, अत्र हेरिये सुदृष्टि भक्त पै कृपा पुरी ।
आय तिष्ठ इष्टदेव मैं करों पदाब्जसेव, परम शर्मदाय पाय आय शर्म आपुरी ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिन ! अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

(छन्द-त्रिभंगी अनुप्रासक)

गंगाह्रद पानी, निर्मल आनी, सौरभसानी सीतानी ।
तसु धारत धारा, तृषानिवारा, शांतागारा सुखदानी ॥
श्री अजित जिनेशं, नुतनाकेशं, चक्रधरेशं खग्गेशं ।
मनवांछितदाता, त्रिभुवनत्राता, पूजों ख्याता जग्गेशं ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

शुचि चंदन बावन, ताप मिटावन, सौरभ पावन घसि ल्यायो ।
तुम भवतप भंजन, हो शिव रंजन, पूजन रंजन मैं आयो ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय भवाताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

सितखंडविवर्जित, निशिपति तर्जित, पुंज विधर्जित तंदुलको ।
भवभावनिखर्जित, शिवपदसर्जित, आनंदभर्जितदंदलको ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

मनमथ मदमंथन, धीरज ग्रंथन, ग्रंथ निग्रंथन ग्रंथपति ।
तुअ पाद कुशेसे, आदि कुशेसे, धारि अशेसे अर्चयती ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

आकुल कुलवारन, थिरता कारन, छुधा विदारन चरु लायो ।
षटरस भीने, अन्न नवीने, पूजन कीने सुखपायो ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीपक मनिमाला,जोतउजाला, भरि कनथाला हाथ लिया ।
तुमभ्रम तमहारी, शिव सुखकारी, केवलधारी पूज किया ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

अगरादिक चूरन, परिमल पूरन खेवत कूरन कर्म जरै ।
दशहूँ दिशि धावत, हर्ष बढ़ावत अलिगुण गावत नृत्य करै ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

बादाम, नरंगी, श्रीफल चंगी आदि अभंगीसौं अरचौ ।
सब विघन विनाशै, सुखपरकाशै आतम भासै भौ विरचौ ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जलफल सब सज्जे, बाजत बज्जे गुनगनरज्जे मनमज्जे ।
तुअ पदजुगमज्जे, सज्जन जज्जे ते भव भज्जे निजकज्जे ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचकल्याणक

(छन्दः द्रुतमध्यकं १५ मात्रा)

जेठ असित अमावशि सोहै, गर्भदिना नंद सो मनमोहै ।
इंद फनिंद जजे मनलाई, हम पद पूजत अर्घ चढ़ाई ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णामावस्यायां गर्भमंगल प्राप्तये श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

माघसुदी दशमी दिन जाये, त्रिभुवन में अति हरष बढ़ाये ।
इन्दफनिंद जजैं तित आई, हम पद सेवत हैं हुलशाई ॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लदशमीदिने जन्ममंगलमंडिताय श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

माघसुदीदशमी तपधारा, भव तन भोग अनित्य विचारा ।
इन्द फनिंद जजैं तित आई, हम पद सेवत हैं सिरनाई ॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लदशमीदिने दीक्षाकल्याणक प्राप्तये श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

पौषसुदी एकादशी सुहायो, त्रिभुवन भानुसुकेवल जायो ।
इन्द फनिंद जजैं तित आई, हम पद पूजत प्रीति लगाई ॥

ॐ ह्रीं पौषशुक्लैकादशी दिने ज्ञानकल्याणक प्राप्तये श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचमि चैतसुदी निरवाना, निजगुनराज लियो भगवाना ।
इन्द्र फनिंद जजैं तित आई, हम पद पूजत हैं गुनगाई ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लपंचमीदिने निर्वाणमंगल प्राप्तये श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

अष्ट दुष्ट को नष्ट करि, इष्टमिष्ट निज पाय ।
शिष्ट धर्म भाख्यो हमें, पुष्ट करो जिनराय ॥

(छन्द : पद्धरी १६ मात्रा)

जय अजित देव तुअ गुन अपार, पै कहूँ कछुक लघु बुद्धि धार ॥१॥
दश जनमत अतिशय बल अनन्त, शुभलच्छन मधुरवचन भनंत ॥२॥
संहनन प्रथम मलरहित देह, तनसौरभ शोणित स्वेत जेह ।
वपु स्वेदबिना महरूप धार, समचतुर धरें संठान चार ॥३॥
दश केवल गमन अकाश देव, सुरभिच्छ रहै योजन सतेव ।
उपसर्गरहित जिनतन तु होय, सब जीव रहित बाधा सु जोय ॥४॥
मुख चारि सरब विद्याअधीश, कवलाअहार वर्जित गरीश ।
छायाबिनु नख कच बढ़े नाहिं, उन्मेष टमक नहिं भृकुटि माहिं ॥५॥
सुरकृत दश-चार करों बखान, सब जीवमित्रता भावजान ।
कटंक बिन दर्पणवत् सुभूम, सब धान वृच्छ फल रहै झूम ॥६॥
षट्रितुके फूल फले निहार, दिशि निर्मल जिय आनन्दधार ।
जहं शीतल मंद सुगन्ध वाय, पदपंकज तल पंकज रचाय ॥७॥
मलरहित गगन सुरजय उचार, वरषा गन्धोदक होत सार ।
वर धर्मचक्र आगे चलाय, वसुमंगलजुत वह सुर रचाय ॥८॥
सिंहासन छत्र चमर सुहात, भामंडल छवि वरनी न जात ।
तरुउच्च अशोक रु सुमनवृष्टि, धुनि दिव्य और दुन्दुभी मिष्ट ॥९॥
दृग ज्ञान शर्म वीरज अनन्त, गुण छियालीस इम तुम लहन्त ।
इन आदि अनन्ते सुगुनधार, वरनत गनपति नहिं लहत पार ॥१०॥
तब समवशरणमहँ इन्द्र आय, पद पूजत वसुविधि दरब लाय ।
अति भगति सहित नाटक रचाय, ताथेई थेई धुनि रही छाय ॥११॥
पग नुपूर झननन झनन नाय, तननननन तननन तान गाय ।
घननन नन नन घण्टा घनाय, छम छम छम छम घुंघरू बजाय ॥१२॥

दृम दृम दृम दृम दृम मुरज ध्वान, संसाग्रदि सरंगीसुर भरत तान ।
झट झट झट अटपट नटत नाट, इत्यादि रच्यो अद्‌भुत सुठाट ॥१३॥
पुनि वन्दि इन्द्र थुति नुति करन्त, तुम हो जगमें जयवन्त सन्त ।
फिर तुम विहार करि धर्मवृष्टि, सब जोग निरोध्यो परम इष्ट ॥१४॥
सम्मेद थकी लिय मुकति थान, जय सिद्धशिरोमन गुणनिधान ।
वृन्दावन वन्दत बारम्बार, भवसागरतें मोहि तार तार ॥१५॥

(छन्दः घत्तानन्द)

जय अजित कृपाला, गुनमणिमाला, संजम शाला बोधपती ।
वर सुजस उजाला हीरहिमाला, ते अधिकाला स्वच्छ अती ॥१६॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

(छन्दः मदावलिप्तकपोल)

जो जन अजित जिनेश जजैं हैं, मनवचकाई ।
ताकों होय अनन्द ज्ञान सम्पत्ति सुखदाई ॥
पुत्र मित्र धन्यधान्य सुजस त्रिभुवनमंह छावै ।
सकल शत्रु छय जाय अनुक्रमसों शिव पावै ॥१७॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

श्री सुमतिनाथ जिनपूजन

संजमरतन विभूषन भूषित, दूषन वर्जित श्रीजिनचन्द ।
सुमति रमारंजन भवभंजन, संजयंत तजि मेरुनरिंद ॥
मातु मंगला सकल मंगला, नगर विनीता जये अमंद ।
सो प्रभुदया सुधा रस गर्भित, आय तिष्ठ इत हरि दुखदंद ॥

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्र ! अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

पंचम उदधितनों सम उज्ज्वल, जल लीनों वरगंध मिलाय ।
कनककटोरी माहिं धारिकरि, धारदेहूँ सुचि मनवचकाय ॥
हरिहर वंदित पापनिकंदित, सुमतिनाथ त्रिभुवनके राय ।
तुमपदपद्म सद्‌मशिवदायक, जजतमुदितमन उदित सुभाय ॥

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

मलयागर घनसार घसौं वर, केशर अर करपूर मिलाय ।
भव तप हरन चरन पर वारों, जनमजरामृतताप पलाय ।।हरि.।।
ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय भवाताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

शशि सम उज्ज्वल सहितगंधतल, दोनों अनी शुद्ध सुखदास ।
सोले अखय संपदा कारन, पुंज धरों, तुमचरनन पास ।।हरि.।।
ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

कमल केतुकी बेल चमेली, करना अरु गुलाब महकाय ।
सोले समरशूलछयकारन, जजोंचरनअतिप्रीतिलगाय ।।हरि.।।
ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

नव्य गव्य पकवान बनाऊँ, सुरस देखि दृगमन ललचाय ।
सोलेक्षुधारोग छयकारण, धरौं चरन ढिग मनहरषाय ।।हरि.।।
ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

रतन जड़ित अथवा घृतपूरित वा कपूरमय जोति जगाय ।
दीप धरों तुम चरनन आगैं जातैं केवलज्ञान लहाय ।।हरि.।।
ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

अगर तगर कृष्णागरु चंदन, चूरि अगनि में देत जराय ।
अष्टकरमयेदुष्ट जरतु हैं, धूम धूम यह तासु उड़ाय ।।हरि.।।
ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीफल मातुलिंग वर दाड़िम, आम निंबु फल प्रासुक लाय ।
मोक्षमहाफलचाखन कारन, पूजतहों तुमरे जुग पाय ।।हरि.।।
ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल चंदन तंदुल प्रसून चरु, दीप धूप फल सकल मिलाय ।
नाचिराचिरशिरनायसमरचों, जयजयजयजयजिनराय ।।हरि.।।
ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचकल्याणक

संजयंत तजि गरभ पधारे, सावनसेत दुतिय सुखकारे ।
रहे अलिप्त मुकुर जिमि छाया, जजों चरन जय जय जिनराया ।।
ॐ ह्रीं श्रावणशुक्ल द्वितीया दिने गर्भमंगल प्राप्तये श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

चैत सुकलग्यारस कहँ जानों, जन मे सुमति सहित त्रयज्ञानों ।
मानो धर्‍यो धरम अवतारा, जजों चरनजुग अष्टप्रकारा ।।
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां जन्ममंगल मंडिताय श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

चैतसुकलग्यारसतिथि भाखा, तादिन तपधरि निजरस चाखा ।
पारन पद्मसद्म पय कीनों, जजत चरन हम समता भीनों ।।
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां तपोमंगल मंडिताय श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

सुकलचैतएकादशि हाने, घाति सकल जे जुगपति जाने ।
समवसरनमँह कहि वृषसारं, जजहुँ अनंतचतुष्टयधारं ।।
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां ज्ञानसाम्राज्य प्राप्तये श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

चैत सुकल ग्यारस निर्वाणं, गिरिसमेदतैं त्रिभुवन मानं ।
गुन अनन्त निज निरमलधारी, जजों देव सुधिलेहु हमारी ।।
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां मोक्षमंगल प्राप्तये श्री सुमतिनाथ जिनेद्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

सुमति तीनसौ छत्तिसौ, सुमति भेद दरसाय ।
सुमति देहु विनती करों, सुमति विलम्ब कराय ।।१।।
दयाबेलि तहँ सुगुननिधि, भविकमोद गण चन्द ।
सुमतिसतीपति सुमतिकों, ध्यावों धरि आनन्द ।।२।।
पंच परावरतन हरन, पंच सुमति सित दैन ।
पंचलब्धि दातार के, गुन गाऊँ दिन रैन ।।३।।

(छन्द : भुजंगप्रयात)

पिता मेघराजा सबैसिद्धकाजा, जपैं नाम जाको सबै दु:खभाजा ।
महासूर इक्ष्वाकुवंशी विराजै, गुणग्राम जाकौ सबै ठौर छाजै ।।४।।
तिन्होंके महापुण्यसों आप जाये, तिहूँ लोक में जीव आनन्द पाये ।
सुनासीरताही घारीमेरुधायो, क्रियाजन्मकी सर्वकीनी यथायों ।।५।।
बहुरिताकों सोंपि संगीत कीनो नमें हाथ जोरों भलीभक्ति भीनों ।
विताई दशै लाख ही पूर्व बालै, प्रजा लाख उन्तीस ही पूर्व पालै ।।६।।

कछू हेतुतैं भावना बार भाये, तहाँ ब्रह्मलोकान्तके देव आये ।
गयेबोधि ताही समै इन्द्र आयो, धरे पालकी में सु उद्यान ल्यायो ॥७॥
नमः सिद्ध कहि केशलोंचे सबैही, धऱ्यो ध्यान शुद्धं जु घाती हने ही ।
लह्यो केवलं औ समोसर्न साजं, गणाधीश जु एकसौ सोलराजं ॥८॥
खिरै शब्द तामै छहों द्रव्यधारे, गुनौपर्जउत्पादव्यय ध्रौव्य सारे ।
तथा कर्म आठों तनी थित्ति गाजं, मिले जासुके नाशतें मोक्षराजं ॥९॥
धरैं मोहिनी सत्तरं कोड़कोड़ी, सरिपतिप्रमाणं थितिं दीर्घ जोड़ी ।
अवर्ज्ञानदृग्वेदिनी अन्तरायं, धरैं तीस कोड़ा कुड़ी सिन्धुकायं ॥१०॥
तथा नाम गोतं कुड़ाकोड़ि बीसं, समुद्रप्रमाणं धरें सत्तईसं ।
सुतैंतीसअब्धिधरें आयुअब्धिं, कहेंसर्वकर्मों तनी वृद्धलब्धिं ॥११॥
जघन्यप्रकारे धरे भेद ये ही, मुहूर्तं वसू नामगोतं गने ही ।
तथाज्ञानदृग्मोह प्रत्यूह आयं, सुअन्तर्मुहूर्त्तं धरें थित्तिगायं ॥१२॥
तथा वेदिनी बारहे ही मुहूर्त्तं, धरैं थित्ति ऐसे भन्यो न्यायजुत्तं ।
इन्हें आदितत्त्वार्थ भाख्योअशेसा, लह्योफेरिनिर्वाण मांहीप्रवेसा ॥१३॥
अनन्तं महन्तं सुरंतं सुतंतं, अमन्दं, अफन्दं अनन्तं अभन्तं ।
अलक्षं विलक्षं सुलक्षं सुदक्षं, अनक्षं अवक्षं अभक्षं अतक्षं ॥१४॥
अवर्णं सुवर्णं अमर्णं अकर्णं, अभर्णं अतर्णं अशर्णं सुशर्णं ।
अनेकं सदेकं चिदेकं विवेकं, अखण्डं सुमण्डं प्रचण्डं सदेकं ॥१५॥
सुपर्मं सुधर्मं सुशर्मं अकर्मं, अनन्तं गुनाराम जयवन्त धर्मं ।
नमैं दास वृन्दावनं शर्न आई, सबै दुखतै मोहि लीजै छुड़ाई ॥१६॥
तुम सुगुन अनन्ता ध्यावत सन्ता, भ्रम तम भंजन मार्तंडा ।
सतमजकरचंडा भवि कजमंडा, कुमतिकुबल भन गन हंडा ॥१७॥

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय जयमाला महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

(छन्द : रोड़क)

सुमतिचरन जौ जजैं, भविक जन मनवचकाई ।
तासु सकलदुखदंद फंद ततछिन छय जाई ॥
पुत्रमित्र धनधान्य, शर्म अनुपम सो पावै ।
वृन्दावन निर्वाण, लहै जो निहचै ध्यावै ॥१८॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥

श्री पद्मप्रभ जिन पूजन

(अथ स्थापना)

पद्म प्रभू जिन मुक्तिरमा के नाथ हैं ।
श्री आनन्त्य चतुष्टय सुगुण सनाथ हैं ॥
गणधर मुनिगण हृदय कमल में धारते ।
आह्वानन कर जजत कर्म संहारते ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेंद्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

(अथ अष्टक-चौपाई छंद)

कर्म पंक प्रक्षालन काज, जल से पूजूँ जिन चरणाब्ज ।
पद्मप्रभू जिनवर पदपद्म, पूजत पाऊँ निज सुखसद्म ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं....।

चंदन घिसूं कपूर मिलाय । पूजूँ आप चरण सुखदाय ॥पद्म०॥२॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं.....।

चंद्र किरण सम तंदुल श्वेत । पुंज चढ़ाऊँ निज पद हेत ॥पद्म० ॥३॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं.....।

वकुल कमल सुम हरसिंगार । चरण चढ़ाऊँ हर्ष अपार ॥पद्म० ॥४॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं.....।

कलाकंद गुझिया पकवान । तुम्हें चढ़ाऊँ भवदुःख हान ॥पद्म० ॥५॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं......।

दीपक ज्योति करे उद्योत । पूजत ही हो निज प्रद्योत ॥पद्म० ॥६॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं...........।

धूप दशांग अग्नि में ज्वाल । दुरित कर्म जलते तत्काल ॥पद्म० ॥७॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं.....।

एला केला द्राक्ष बादाम । पूजत हो निज में विश्राम ॥पद्म० ॥८॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं.......।

अर्घ्य चढ़ाय जजूँ जिनराज । प्रभु तुम तारण तरण जिहाज ॥
पद्म प्रभू जिनवर पदपद्म, पूजत पाऊँ निज सुखसद्म ॥९॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं........।

(दोहा)

पद्मप्रभू पदपद्म में, शांतीधार करंत ।
चउसंघ में भी शांति हो, मिले भवोदधि अंत ॥१०॥

शांतये शांतिधारा ।

लाल कमल नीले कमल, सुरभित हरसिंगार।
पुष्पांजलि से पूजते, मिले सौख्य भंडार ॥११॥

दिव्य पुष्पांजलिः ।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(चौबोल छंद)

कौशाम्बी नगरी के राजा, धरण राज के आंगन की ।
वर्षे रतन सुसीमा माता हर्षी गर्भ बसे प्रभुजी ॥
माघकृष्ण छठ तिथि उत्तम थी इन्द्रों ने इत आ करके ।
गर्भ महोत्सव किया मुदित हो हम भी पूजें रुचि धरके ॥१॥

ॐ ह्रीं माघकृष्णाषष्ठयां श्रीपद्मप्रभगर्भकल्याणकाय अर्घ्यं.....।

कार्तिक कृष्णा तेरस तिथि में, पद्म प्रभू ने जन्म लिया ।
इन्द्राणी माँ के प्रसूतिगृह, जाकर शिशु का दर्श किया ॥
सुरपति जिन शिशु गोद में लेकर, रूप देख नहिं तृप्त हुआ ।
नेत्र हजार बना करके प्रभु, दर्शन कर अति मुदित हुआ ॥२॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णात्रयोदश्यां श्रीपद्मप्रभजन्मकल्याणकाय अर्घ्यं.......।

जातिस्मृति से विरक्त होकर, कार्तिक कृष्णा तेरस में ।
निवृति करि पालकी सजाकर इन्द्र सभी आये क्षण में ॥
सुभग मनोहर बन में पहुँचे, प्रभु ने दीक्षा स्वयं लिया ।
बेला कर ध्यानस्थ हो गये, जजत मिले वैराग्य प्रिया ॥३॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णात्रयोदश्यां श्रीपद्मप्रभजिनदीक्षाकल्याणकाय अर्घ्यं.....।

चैत्र सुदी पूनम तिथि शुभ थी, नाम मनोहर वन उत्तम ।
शुक्ल ध्यान से घात घातिया, केवलज्ञान हुआ अनुपम ॥
सुरपति ऐरावत गज पर चढ़, अगणित विभव सहित आये ।
गजदंतों सरवर कमलों पर अप्सरियां जिनगुण गायें ॥४॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लापूर्णिमायां श्रीपद्मप्रभजिनकेवलज्ञानकल्याणकाय अर्घ्यं....।

फाल्गुन वदी चौथ तिथि सायं, प्रभु सम्मेद शिखर गिरि से ।
एक हजार मुनी के संग में, मुक्ति राज्य पाया सुख से ॥
इन्द्र असंख्यों देव दिवियों, सहित यहाँ आये तत्क्षण ।
प्रभु निर्वाण कल्याणक पूजें, जजूँ भक्ति से मैं इस क्षण ॥५॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णाचतुर्थ्यां श्रीपद्मप्रभजिनमोक्षकल्याणकाय अर्घ्यं.....।

शांतये शांतिधारा । दिव्य पुष्पांजलिः ।

जाप्य- ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेंद्राय नमः ।

जयमाला

(दोहा)

श्रीपद्मप्रभु गुणजलधि, परमानंद निधान ।
गाऊँगुणमणि मालिका, नमूँ नमूँ सुखदान ॥१॥

(चामर छंद)

देवदेव आपके पदारविंद में नमूँ । मोह शत्रु नाशके समस्त दोष को वमूँ ॥
नाथ ! आप भक्ति ही अपूर्व कामधेनु है । दुःखवार्धि से निकाल मोक्ष सौख्य देन है ॥२॥
जीव तत्त्व तीन भेद रूप जग प्रसिद्ध है । बाह्य अंतरातमा व परम आत्म सिद्ध हैं ॥
मैं सुखी दुःखी अनाथ नाथ निर्धनी धनी । इष्ट मित्र हीन दीन आधि व्याधियां घनी ॥३॥
जन्म मरण रोग शोक आदि कष्ट देह में । देह आत्म एक है अतेव दुःख हैं घने ॥
आतमा अनादि से स्वयं अशुद्ध कर्म से । पुत्र पुत्रियां कुटुंब हैं समस्त आत्म के ॥४॥
मोह बुद्धि से स्वयं बहीरात्मा कहा । अंतरातमा बने जिनेंद्र भक्ति से अहा ॥
मैं सदैव शुद्ध सिद्ध एक चित्स्वरूप हूँ । शुद्ध नय से मैं अनंत ज्ञान दर्श रूप हूँ ॥५॥
आप भक्ति के प्रसाद शुद्ध दृष्टि प्राप्त हो । आप भक्ति के प्रसाद दर्श मोह नाश हो ॥
आप भक्ति के प्रसाद से चरित्र धारके । जन्मवार्धि से तिरूं प्रभो ! सुभक्तिनाव से ॥६॥
दो शतक पचास धनुष तुंग आप देह है । तीस लाख पूर्व वर्ष आयु थी जिनेश है ।
पद्मरागमणि समान देह दीप्तमान है । लालकमल चिन्ह से हि आपकी पिछान है ॥७॥
वज्र चामरादि एक सौ दशे गणाधिया । तीन लाख तीस सहस साधु भक्ति में सदा ॥
चार लाख बीस सहस आर्यिकायें शोभतीं । तीन रत्न धारके अनंत दुःख धोवतीं ॥८॥
तीन लाख श्रावक पण लाख श्राविका कहे । जैन धर्म प्रीति से असंख्य कर्म को दहें ॥
एक देश संयमी हो देव आयु बांधते । सम्यक्त्व रत्न से हि वो अनंत भव निवारते ॥९॥
धन्य आज की घड़ी जिनेंद्र अर्चना करूँ । पद्मप्रभ की भक्ति से यमारि खंडना करूँ ॥
राग द्वेष शत्रु की स्वयंहि वंचना करूँ । "ज्ञानमती" ज्योति से अपूर्व संपदा भरूँ ॥१०॥

(दोहा)

धर्मामृतमय वचन की, वर्षा से भरपूर ।
मेरे कलिमल धोयके, भर दीजे सुखपूर ॥११॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं.....।

शांतये शांतिधारा । दिव्य पुष्पांजलिः ।

(सोरठा)

छठे तीर्थंकर आप, सौ इन्द्रों से वंद्य हो ।
जजत बनें निष्पाप, दुख दरिद्र संकट टलें ॥१॥

॥ इत्याशीर्वादः ॥

श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजन

चारुचरन आचरन, चरन चित-हरन चिह्नचर,
चन्द-चन्द-तनचरित, चंदथल चहत चतुर नर।
चतुक चण्ड-चकचूरि, चारि चिदचक्र गुनाकर,
चंचल चलित सुरेश, चूलनुत चक्र धनुरधर ॥
चर अचर हितू तारन तरन, सुनत चहकि चिर नंद शुचि।
जिनचंद चरन चरच्यो चहत, चितचकोर नचि रच्चि रुचि ॥
धनुष डेढ़ सौ तुंग तन, महासेन नृपनन्द।
मातु लछमना उर जये, थापों चन्द जिनन्द ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

(अवतार छन्द)

गंगाह्रद निरमल नीर, हाटक भृंग भरा,
तुम चरन जजों वर वीर, मेटो जनम जरा।
श्रीचंदनाथ दुति चंद, चरनन चंद लगे,
मन वचतन जजत अमंद, आतम जोति जगै ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री खण्ड कपूर सुचंग, केशर रंग भरी।
घसि प्रासुक जल के संग, भवआताप हरी ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय भवाताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल सित सोम समान, सो ले अनियारे।
दिय पुंज मनोहर आन, तुम पदतर प्यारे ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

सुरद्रुम के सुमन सुरंग, गन्धित अलि आवै।
तासों पद पूजत चंग, कामबिथा जावै ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज नाना परकार, इन्द्रिय बलकारी।
सो लै पद पूजों सार, आकुलता हारी ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तम भंजन दीप संवार, तुम ढिग धारतु हों।
मम तिमिरमोह निरवार, यह गुन धारतु हों ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगंध हुतासन माहिं, हे प्रभु खेवतु हों।
मम करम दुष्टजरि जाहिं, यातैं सेवतु हों ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अति उत्तम फल सु मंगाय तुम गुण गावतु हौं।
पूजों तनमन हरषाय, विघन नशावतु हौं ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अंग नमो।
पूजों अष्टम जिनमीत, अष्टम अवनी गमों ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

(तोटक छन्द)

कलि पंचम चैत सुहात अली, गरभागम मंगल मोद भरी।
हरि हर्षित पूजत मातु पिता, हम ध्यावत पावत शर्वसिता ॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णपंचम्यां गर्भमंगल प्राप्तये श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

कलिपौष इकादशि जन्मलयो, तब लोक विषे सुखथोक भयो।
सुर ईश जजें गिरशीश तबै, हम पूजत हैं नुतशीश अबै ॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगल प्राप्तये श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

तप दुद्धर श्रीधर आप धरा, कलिपौष ग्यारसि पर्व वरा।
निज ध्यानविषैं लवलीन भये, धनि सो दिन पूजत विघ्न गये ॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां तपःकल्याणक प्राप्तये श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

वर केवलभानु उद्योत कियो, तिहुँ लोक तणों भ्रम मेट दियो।
कलिफाल्गुन सप्तमी इन्द्रजजे, हम पूजहिं सर्वकलंक भजे ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां केवलज्ञान प्राप्तये श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

सित फाल्गुनसप्तमि मुक्तिगये, गुणवन्त अनन्तअबाध भये।
हरि आय जजें तित मोद धरे, हम पूजत ही सब पाप हरे ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगल प्राप्तये श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

हे मृगांक अंकित चरण, तुम गुण अगम अपार।
गणधर से नहिं पार लहिं, तौ को वरनत सार ॥
पै तुम भगति हिये मम, प्रेरैं अति उमगाय ।
तातैं गाऊँ सुगुण तुम, तुम ही होउ सहाय ॥

(पद्धरि छन्द)

जय चन्द्र जिनेन्द्र दयानिधान, भवकानन हानन दवप्रमान ।
जय गरभ जनम मंगल दिनन्द, भवि जीवविकाशन शर्मकन्द ॥
दशलक्ष पूर्व की आयु पाय, मनवांछित सुख भोगे जिनाय ।
लखि कारण ह्वै जगतैं उदास, चिन्त्यो अनुप्रेक्षा सुख निवास ॥
तितलौकांतिक बोध्योनियोग, हरिशिविका सजिधरियो अभोग।
तापै तुम चढि जिन चन्दराय, ता छिनकी शोभा को कहाय ॥
जित अंग सेत सित चमर ढार, सित छत्र शीस गलगुलकहार।
सितरतनजड़ित भूषण विचित्र, सित चन्द्रचरण चर्चै पवित्र ॥
सिततनद्युतिनाकाधीश आप, सितिशिविका काँधे धरि सुचाप।
सित सुजस सुरेश नरेश सर्व, सित चित में चिन्तत जात पर्व ॥
सितचन्दनगरतैं निकसि नाथ, सितवन में पहुंचे सकल साथ।
सितशिलाशिरोमणिस्वच्छछांह, सिततपतितधार्योतुम जिनाह ॥
सित पय को पारण परमसार, सित चन्द्रदत्त दीनों उदार ।
सित कर में सो पयधार देत, मानो बाँधत भवसिंधु सेत ॥
मानो सुपुण्यधारा प्रतच्छ, तित अचरज पनसुर किय ततच्छ ।
फिर जायगहनसिततप करंत, सितकेवलज्योति जग्यो अनंत ॥
लहि समवसरण रचना महान, जाके देखत सब पापहान ।
जहँ तरु अशोक शौभै उतंग, सब शोकतनो चूरैं प्रसंग ॥
सुर सुमनवृष्टि नभतैं सुहात, मनु मन्मथ तजि हथियार जात ।
बानी जिन मुखसों खिरत सार, मन तत्त्वप्रकाशन मुकुरधार ॥
जहाँ चौंसठ चमर अमर ढुरंत मनु सुजसमेघ झरिलगिय तन्त ।
सिंहासन है जहँ कमलजुक्त, मनु शिवसरवर को कमलशुक्त ॥
दुंदुभि जित बाजत मधुर सार, मनु करमजीत को है नगार ।
सिर छत्र फिरै त्रय श्वेतवर्ण, मनु रतन तीन त्रय-ताप हर्ण ॥
तन प्रभातनों मण्डल सुहात, भवि देखत निज भव सात सात ।
मनुदर्पणद्युति यह जगमगाय, भविजन भवमुख देखत सुआय ॥

इत्यादि विभूति अनेक जान, बाहिज दीसत महिमा महान ।
ताको वरणत नहिं लहत पार, तौ अन्तरंग को कहै सार ॥
अनअन्त गुणनिजुत करि विहार, धरमोपदेश दे भव्य तार ।
फिर जोगनिरोधि अघाति हान, सम्मेदथकी लिय मुकतिथान ॥
'वृन्दावन' वन्दत शीश नाय, तुम जानत हो मम उर जु भाय ।
तातैं का कहों सु बार-बार मनवांछित कारज सार-सार ॥
जय चन्द जिनंदा आनंदकंदा, भवभय भंजन राजैं हैं ।
रागादिक द्वन्दा हरि सब फन्दा, मुकतिमांहि थिति साजैहैं ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय जयमाला महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

आठों दरब मिलाय गाय गुण, जो भविजन जिनचन्द जजैं ।
ताके भवभव के अघ भाजे, मुक्ति सार सुख ताहि सजैं ॥
जमके त्रास मिटें सब ताके, सकल अमंगल दूर भजें ।
'वृन्दावन' ऐसो लखि पूजत, जातैं शिवपुर राज रजैं ।

॥पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

श्री शीतलनाथ जिनपूजन

(छन्द : मत्तमातंग तथा मत्तगयंद-वर्ण : २३)

शीतलनाथ नमो धरि हाथ, सुमाथ जिन्हों भवगाथ मिटाये ।
अच्युततैं च्युतु मात सुनन्द के, नन्द भये पुरभद्दल आये ॥
वंश इक्ष्वाकु कियो जिनभूषित, भव्यन को भवपार लगाये ।
ऐसे कृपानिधिके पदपंकज, थापतु हौं हिय हर्ष बढ़ाये ॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं । अत्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

देवापगा सु वरवारि विशुद्ध लायौ । भृंगार हेम भरि भक्ति हिये बढ़ायौ ॥
रागादि दोष मल मर्दन हेतु येवा । चर्चो पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीखंड सार वर कुंकुम गारि लीनों । कंसंग स्वच्छघसिभक्ति हिये धरीनों ॥शा.॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय भवाताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

मुक्ता समान सित तंदुल सार राजैं । धारन्तु पुंज कलि कुंज समस्त भाजैं ॥शा.॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

श्री केतकी प्रमुख पुष्प अदोष लायौ । नौरंग जंग करि भृंग सुरंग पायौ ।।रा.।।
ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।
नैवेद्य सार चरु चारु संवारि लायौ । जांबूनद प्रभृति भाजन शीस नायौ ।।रा.।।
ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
स्नेह प्रपूरित सुदीपक जोति राजै । स्नेहप्रपूरित हिये जजतेऽघ भाजै ।।रा.।।
ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।
कृष्णागरु प्रमुख गन्ध हुताश माही । खेवों तवाम्र वसुकर्म जरन्त जाही ।।रा.।।
ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।
निम्बाम्र कर्कटि दाड़िम आदि धारा । सौवर्ण गन्ध फल सार सुपक्व प्यारा ।।रा.।।
ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।
कंश्री फलादि वसु प्रासुक द्रव्य साजे । नाचे रचे मचत बज्जत सज्ज साजै ।।रा.।।
ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचकल्याणक

आठैं वदी चैत सुगर्भमाहीं, आये प्रभू मंगलरूप थाहीं ।
सेवैं सची मातु अनेक भेवा, चर्चों सदा शीतलनाथ देवा ।।
ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाष्ट्म्यां गर्भमंगल प्राप्तये श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्री माघकी द्वादशि श्याम जायो, भूलोक में मंगलसार आयो ।
शैलेन्द्रपै इन्द्र फनिंद जज्जै, मैं ध्यान धारों भवदुख भज्जै ।।
ॐ ह्रीं माघकृष्णद्वादश्यां जन्ममंगल प्राप्तये श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीमाघ की द्वादशि श्याम जानों, वैराग्य पायो भवभाव हानों ।
ध्यायो चिदानन्द निवार मोहा, चर्चों सदा चर्न निवार कोहा ।।
ॐ ह्री माघकृष्णद्वादश्यां निःक्रमणमहोत्सव मंडिताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

चतुर्दशी पौषबदी सुहायो, ताही दिना केवललब्धि पायो ।
शोभै समोसृत्य बखानि धर्म, चर्चों सदा शीतल पर्म शर्म ।।
ॐ ह्रीं पौषकृष्णचतुर्दश्यां केवलज्ञान मंडिताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

कुंवारकी आठय शुद्धबुद्धा, भये महामोक्षसरूप शुद्धा ।
सम्मेदतैं शीतलनाथस्वामी गुनाकरं तासु पदं नमामी ।।
ॐ ह्रीं आश्विनशुक्लाष्ट्म्यां मोक्षमंगल प्राप्तये श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

आप अनन्त गुनाकर राजैं, वस्तुविकाशन भानु समाजैं ।
मैं यह जानि गही शरना है, मोहमहारिपु को हरना है ।।१।।
हेमवरन तन तुंग धनु, नब्बै अति अभिराम ।
सुरतरु अंक निहारि पद, पुनपुन करों प्रणाम ।।२।।
(छन्द : तोटक-वर्ण : १२)

जय शीतलनाथ जिनन्द वरं, भवदुःखदवानल मेघझरं ।
दुखभूभृतभंजन वज्रसमं, भवसागर नागर पोतपमं ।।३।।
कुहमान-मयागद-लोभहरं, अरि विघ्नगयन्द मृगिंद वरं ।
वृष वारिदवृष्टन सृष्टिहितू, परदृष्टि विनाशन सुष्टुपितू ।।४।।
समवस्त्रतसंजुत राजतु हो, उपमा अभिराम विराजतु हों ।
वरबारहभेद सभाथितको, तित धर्म बखानि किया हितको ।।५।।
पहले महि श्रीगनराज रजैं, दुतिये महि कल्पसुरी जू सजैं ।
त्रितिये गणनी गुनभूरि धरैं, चवथे तिय जोतिष जोति भरैं ।।६।।
तिय विंतरनी पनमें गनिये, छह में भूवनेसुर ती भनिये ।
भुवनेश दशों थित सत्तम हैं, वसु में वसुविंतर उत्तम हैं ।।७।।
नवमें नभजोतिष पंच भरे, दशमें दिविदेव समस्त खरे ।
नरवृन्द इकादश में निवसै, अरु बारह में पशु सर्व लसैं ।।८।।
तजि बैर प्रमोद धरैं सब ही, समतारसमग्न लसैं तब ही ।
धुनि दिव्य सुनैं तजि मोहमलं, गनराज असी धरि ज्ञानबलं ।।९।।
सबके हित तत्त्व बखान करैं, करुणामनरंजित शर्म भरैं ।
वरने षटद्रव्यतनें जितने, वर भेद विराजतु हैं तितने ।।१०।।
पुनि ध्यान उभै शिवहेत मुना, इक धर्म दुती सुकलं अधुना ।
तितधर्म सुध्यानतणो गनियो, दशभेदलखे भ्रमको हनियो ।।११।।
पहलो अरि नाश अपाय सही, दुतियो जिनवैन उपाय गही ।
त्रितिजीवविचैंनिजध्यावनहै, चवथोसुअजीव रमावन है ।।१२।।
पनमो सु उदैबलटारन है, छहमो अरिरागनिवारन है ।
भवत्यागनचिंतनसप्तम है, वसुमों जितलोभ न आतम है ।।१३।।
नवमों जिनकी धुनि सीस धरैं, दशमों जिनभासित हेत करैं ।
इमिधर्मतणोदशभेद भन्यो, पुनिशुक्लतणो चदु येम गन्यो ।।१४।।
सुपृथक्त वितर्कविचार सही, सुइकत्ववितर्क विचार गही ।
पुनिसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातकही, विपरीतकियानिवृतलही ।।१५।।

इनआदिक सब परकाश कियो, भविजीवन को शिवस्वर्ग दियो ।
पुनिमोच्छविहारकियोजिनजी, सुखसागरमग्नचिरंगुनजी ॥१६॥
अब मैं शरना पकरी तुमरी, सुधि लेहु दयानिधिजी हमरी ।
भवव्याधिनिवारकरोअबही, मतिढीलकरोसुखद्योसब ही ॥१७॥
शीतलजिन ध्याऊँ भगति बड़ाऊँ, ज्यौं रतनत्रयनिधि पाऊँ ।
भवदंद नशाऊँ शिवथल जाऊँ, फेर न भववन में आऊँ ॥१८॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घं जयमाला निर्वपामीति स्वाहा ।

दिढ़रथ सुत श्रीमान्, पंच कल्याण धारी। तिनपद जुग पद्मं, जो जजै भक्ति धारी ॥
सह सुख धन धान्यं, दीर्घ सौभाग्य पावै। अनुक्रम अरि दाहै, मोक्षको सो सिधावै ॥१९॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥

श्री श्रेयांसनाथ जिनपूजन

(छन्द : रूपमाला तथा गीता)

विमलनृप विमलासुअन, श्रेयांशनाथ जिनन्द ।
सिंघपुर जन्मे सकल हरि, पूजि धरि आनन्द ॥
भवबंधध्वंशनहेत लखि मैं, शरन आयो येव ।
थापौं चरनजुग उरकमल में, जजनकारन देव ॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

(छन्द : गीता तथा हरिगीता-मात्रा : २८)

कलधौत वरन उतंग हिमगिरि पदम द्रहतैं आवई ।
सुरसरित प्रासुक उदकसों भरि भृंग धार चढ़ावई ॥
श्रेयांसनाथ जिनन्द त्रिभुवन वन्द आनन्दकन्द हैं ।
दुखदंद फंद निकंद पूरनचन्द जोति अमंद हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

गोशीर वर करपूर कुंकुम नीर संग घसों सही ।
भवताप भंजनहेत भवदधि सेत चरन जजों सही ॥श्रे.॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय भवाताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

सित शालि शशि दुति शुक्ति सुन्दर मुक्तिकी उनहार हैं ।
भरि थार पुंज धरंत पदतर अखयपद करतार हैं ॥श्रे.॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

सद सुमन सुमनसमान पावन, मलयतैं, अलि झंकरैं ।
पदकमलतर धरतैं तुरित सो मदनको मदखंकरैं ॥श्रे.॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

यह परममोदक आदि सरस सँवारि सुन्दर चरु लियो ।
तुमवेदनीमदहरनलखि चरचों, चरनशुचिकर हियो ॥श्रे.॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

संशयविमोह विभरमतम भंजन दिनन्द समान हो ।
तातैं चरनढिग दीप जोऊँ देहु अविचल ज्ञान हो ॥श्रे.॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

वर अगर तगर कपूर चूर सुगन्ध भूर बनाइया ।
दहिअमर जिह्वविषै चरनढिगकरम भरम जराइया ॥श्रे.॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

सुरलोक अरु नरलोक के फल पक्व मधुर सुहावनें ।
लै भगतिसहित जजौं चरन शिव परम पावन पावनें ॥श्रे.॥

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जलमलय-तंदुल सुमनचरु अरु दीपधूप फलावली ।
करि अरघ चरचों चरन जुगप्रभु मोहि तार उतावली ॥श्रे.॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचकल्याणक

(छन्द आर्या)

पुष्पोत्तर तजि आये, विमलाउर जेठकृष्ण आठैंकों ।
सुरनर मंगल गाये, पूजों मैं नासि कर्मकाठैंकौं ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाष्ट्म्यां गर्भमंगल प्राप्तये श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जनमें फागुनकारी, एकादशि तीनज्ञान दुगधारी ।
इक्ष्वाकु वंशतारी, मैं पूजों घोर विघ्न दुख टारी ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां जन्ममंगल मंडिताय श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

भवतनभोगअसारा, लखत्यागो धीरशुद्धतपधारा ।
फागुनवदि इग्यारा, मैं पूजों पाद अष्ट परकारा ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां निःक्रमणमहोत्सव मण्डिताय श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

केवलज्ञान सुजानन, माघबदी पूर्णतिथिकोदेवा ।
चतुरानन भवभानन, बंदौं ध्यावौं करौं सुपदसेवा ॥

ॐ ह्रीं माघकृष्णामावस्यायां केवलज्ञान मण्डिताय श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

गिरिसमेदतैंपायो, शिवथलतिथिपूर्णमासिसावनको ।
कुलिशायुधगुनगायो, मैं पूजों आपनिकट आवनको ॥
ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लपूर्णिमायां मोक्षमंगल मण्डिताय श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(छन्द : लोलतरंग-वर्ण : ११)

शोभित तुंग शरीर सुजानों । चाप असी शुभलक्षण मानों ।
कंचनवर्ण अनूपम सोहै, देखत रूप सुरासुर मोहै ॥१॥

(छन्द पद्धरि - मात्रा : १६)

जयजय श्रेयांस जिन गुणगरिष्ठ, तुमपद जुग दायक इष्टमिष्ट ।
जयशिष्ट शिरोमणिजगतपाल, जयभवसरोजगनप्रात:काल ॥२॥
जय पंचमहाव्रतगजसवार, लै त्याग भावदलबल सु लार ।
जय धीरजकोदलपति बनाय, सत्ताछितिमहँरन को मचाय ॥३॥
धरि रतन तीन तिहुँशक्ति हाथ, दशधरमकवच तपटोप माथ ।
जयशुकलध्यानकरखड़गधार, ललकारेआठों अरिप्रचार ॥४॥
तामैंसबको पति मोहचण्ड ताकों ततछिनकरि सहस खण्ड ।
फिर ज्ञानदरसप्रत्यूह हानि, निजगुन गढ़ लीनों अचलथान ॥५॥
शुचि ज्ञान दरस सुख वीर्यसार, हुवे समवशरणरचना अपार ।
तित भाषे तत्त्व अनेक धार, जाकों सुनि भव्य हिये विचार ॥६॥
निजरूप लsो आनन्दकार, भ्रम दूरकरनको अति उदार ।
पुनि नयप्रमान-निच्छेप सार, दरसायो करि संशय प्रहार ॥७॥
तामैं प्रमान जुगभेद एव, परतच्छ परोछ रजै स्वमेव ।
तामैं प्रतच्छके भेद दोय, पहिलो है संविवहार सोय ॥८॥
ताके जुगभेद विराजमान, मति श्रुति सोहैं सुन्दर महान ।
हैं परमारथ दुतियो प्रतच्छ, हैं भेद जुगम तामाहि दच्छ ॥९॥
इक एकदेश इक सर्वदेश, इकदेश उभैविधिसहित वेश ।
वरअवधिसुमनपरजयविचार, है सकलदेशकेवलअपार ॥१०॥
चर अचर लखत जुगपत प्रतच्छ, निरद्वन्दरहित परपंचपच्छ ।
पुनि है परोच्छमहँपंचभेद, समिरति अरु प्रत्यभिज्ञानवेद ॥११॥
पुनितरक और अनुमान मान, आगमजुत पन अब नय बखान ।
नैगम संग्रह व्यौहार गूढ़, ऋजुसूत्र शब्द अरु समभिरूढ़ ॥१२॥

पुनि एवंभूत सु सप्त एम, नय कहे जिनेसुर गुन जु तेम ।
पुनिदरवक्षेत्रअरकालभाव, निच्छेपचारविधिइमिजनाव ॥१३॥
इनको समस्त भाष्यौ विशेष, जा समुझत भ्रम नहिं रहत लेश ।
निज ज्ञानहेत ये मूलमन्त्र, तुम भाषै श्री जिनवर सु तन्त्र ॥१४॥
इत्यादि तत्त्व उपदेश देय, हनि शेषकरम निरवान लेय ।
गिरवानजजतवसुदरवईश, वृन्दावननितप्रतिनमत शीश ॥१५॥

(छन्द-घत्तानन्द)

श्रेयांस महेशा सुगुनजिनेशा, वज्र धरेशा ध्यावतु हैं ।
हमनिशदिनवन्दैंपापनिकदैं, ज्यौंसहजानंदपावतुहैं ॥१६॥
ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

(सोरठा)

जो पूजैं मन लाय, श्रेयनाथ पद पद्म को ।
पावै इष्ट अघाय, अनुक्रम सौं शिवतिय वरै ॥१७॥
॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

श्री वासुपूज्य जिनपूजन

श्रीमतवासुपूज्य जिनवरपद, पूजन हेत हिये उमगाय ।
थापोंमनवचतन शुचिकरिके जिनकी पाटलदेव्या माय ॥
महिष चिह्नपद लसै मनोहर, लाल वरन तन समतादाय ।
सोकरुनानिधिकृपादृष्टिकरि, तिष्ठहुसुपरितिष्ठयहँआय ॥
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनं । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

(छन्द : जोगीरासा, आंचलीबंध 'जिनपदपूजों लव लाई ।')

गंगाजल भरि कनककुंभमैं, प्रासुक गन्ध मिलाई ।
करम कलंक विनाशन कारन, धार देत हरषाई ॥
वासुपूज्य वसुपूज तनुज पद, वासव सेवत आई ।
बालब्रह्मचारी लखि जिनको, शिवतिय सनमुख धाई ॥
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।
कृष्णा गरु मलया गिर चंदन, केशर संग घसाई ।
भवआताप विनाशनकारन, पूजों पद चित लाई ॥वा.॥
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय भवाताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

देवजीर सुखदास शुद्धवर, सुवरन थार भराई ।
पुञ्ज धरततुम चरननआगैं, तुरितअक्षय पदपाई ॥वा.॥
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।
पारिजात संतान कल्पतरु, जनित सुमन बहु लाई ।
मीनकेतु मदभंजन कारन, तुम पदपद्म चढ़ाई ॥वा.॥
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।
नव्यगव्य आदिक रसपूरित नेवज तुरित उपाई ।
छुधारोग निवारन कारन, तुम्हें जजों शिरनाई ॥वा.॥
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
दीपकजोत उदोत होत वर दशदिश में छवि छाई ।
तिमिरमोहनाशक तुमको लखि जजों चरन हरषाई ॥वा.॥
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।
दशविध गन्धमनोहर लेकर, वातहोत्र में ढाई ।
अष्ट करम ये दुष्ट जरतु हैं धूम सु धूम उड़ाई ॥वा.॥
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।
सुरस सुपक्व सुपावन फल लै कंचनथार भराई ।
मोच्छ महाफलदायक लखि प्रभु भेंट धरों गुनगाई ॥वा.॥
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।
जयफल दरब मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई ।
शिवपदराजहेतु हेश्रीपति ! निकट धरों यह लाई ॥वा.॥
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचकल्याणक

(छन्द-पाईता, मात्रा १४)

कलिछट्ठि असाढ़ सुहायौ, गरभागम मंगल पायौ ।
दशमें दिवितें इत आये, शतइन्द्र जजे सिर नाये ॥
ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णषष्ठ्यां गर्भमंगल मण्डिताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।
कलि चौदशि फागुन जानों, जन में जगदीश महानों ।
हरि मेरु जजे तब जाई, हम पूजत हैं चितलाई ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगल प्राप्तये श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।
तिथि चौदस फागुन श्यामा, धरियो तप श्री अभिरामा ।
नृप सुन्दरके पय पायो, हम पूजत अतिसुख थायो ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां तपोमंगल प्राप्तये श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

सुदि भादव दोइज सोहै, लहि केवल आतम जो है ।
अनअन्त गुनाकर स्वामी, नित वंदों त्रिभुवन नामी ॥
ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लद्वितीयायां केवलज्ञान मण्डिताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।
सित भादव चौदशि लीनों, निरवान सुथान प्रवीनों ।
पुर चंपाथानक सेती, हम पूजत निजहित हेती ॥
ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यां मोक्षमंगल प्राप्तये श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)

चम्पापुर में पंच वर, कल्याणक तुम पाय ।
सत्तर धनु तन शोभनों, जय जय जय जिनराय ॥१॥

(छन्द : मोतियदाम-वर्ण : १२)

महासुखसागर आगर ज्ञान, अनन्त सुखामृतमुक्त महान ।
महाबलमण्डित खण्डितकाम, रमाशिवसंग सदा बिसराम ॥२॥
सुरिन्द फनिन्द खगिन्द नरिन्द, मुनिन्द जजैं तित पादारविन्द ।
प्रभू तुव अन्तरभाव विराग, सुबालहि तें व्रतशीलसों राग ॥३॥
कियो नहिं राज उदास सरूप, सुभावन भावत आतमरूप ।
अनित्य शरीर प्रपंच समस्त, चिदातम नित्य सुखाश्रित वस्त ॥४॥
अशर्न नहीं कोउ शर्न सहाय, जहाँ जिय भोगत कर्मविपाय ।
निजातम कै परमेसुर शर्न, नहीं इनके बिन आपद हर्न ॥५॥
जगत् जथा जल बुदबुद येव, सदा जिय एक लहै फलमेव ।
अनेक प्रकार धरी यह देह, भ्रमें भवकानन आन न नेह ॥६॥
अपावन सात कुधात भरीय, चिदातम शुद्धसुभाव धरीय ।
धरै इनसों जब नेह तबेव, सुआवत कर्म तबै वसुभेव ॥७॥
जबै तनभोगजगत्त उदास, धरै तब संवर निर्जरआस ।
करै जब कर्मकलंक विनाश, लहै तब मोक्ष महासुखराश ॥८॥
तथा यह लोक नराकृत नित्त, विलोकियते षटद्रव्यविचित्त ।
सुआतमजानन बोधविहीन, धरै किन तत्त्व प्रतीत प्रवीन ॥९॥
जिनागमज्ञानरु संयमभाव, सबै निजज्ञान बिना विरसाव ।
सुदुर्लभ द्रव्य सुक्षेत्र सुकाल, सुभाव सबै जिहंतें शिव हाल ॥१०॥
लयो सब जोग सुपुन्य वसाय, कहो किमि दीजिय ताहि गंवाय ।
विचारत यों लौकान्तिक आय, नमें पदपंकज पुष्प चढ़ाय ॥११॥

कह्यो प्रभु धन्य कियो सुविचार, प्रबोध सु येम कियो जु विहार।
तबै सौधर्म तनों हरि आय, रची शिविका चढ़ि आप जिनाय ॥१२॥
धरे तप पाय सुकेवलबोध, दियो उपदेश सुभव्य संबोध।
लियो फिर मोच्छमहासुखराश, नमैं नित भक्त सोई सुखआश ॥१३॥
नित वासव वंदत, पाप निकंदत, वासुपूज्य व्रत ब्रह्मपती।
भवसंकलखंडित, आनंदमंडित जयजयजय जयवंत जती ॥१४॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

वासुपूज पद सार, जजौ दरबविधि भावसों।
सो पावे सुखसार, भुक्ति मुक्तिको जो परम ॥१५॥

॥पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

श्री अनन्तनाथ जिनपूजन

पुष्पोत्तरतजि नगरअजुध्या, जनम लियो सूर्याउर आय।
सिंघसेन नृप के नन्दन, आनन्द अशेष भरे जगराय ॥
गुन अनन्त भगवन्त धरे, भवदंद हरे तुम हे जिनराय।
थापतु हों त्रयबार उचरिकैं कृपासिंधु तिष्ठहु इत आय ॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

शुचि नीर निर्मल गंग को लै, कनक भृंग भराइया।
मल करम धोवन हेत, मन वच काय धार ढराइया ॥
जगपूज परम पुनीत मीत, अनन्त सन्त सुहावनों।
शिव कंत वंत महंत ध्यावों, भ्रन्त वन्त नशावनों ॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

हरिचन्द कदलीनन्द कुंकुम, दन्दताप निकन्द है।
सबपापरुजसन्ताप भंजन आपको लखि चन्द है ॥ज.॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

कनशालदुति उजियाल हीर, हिमालगुलकनितैं घनी।
तसुपुंजतुमपदतरधरत, पदलहतस्वच्छसुहावनी ॥ज.॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्कर अमरतर जनितवर, अथवा अवर कर लाइया।
तुमचरनपुष्करतरधरत, सरशूलसकलनशाइया ॥ज.॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान नैना घ्रान रसना, को प्रमोद सुदाय हैं।
सो ल्याय चरन चढ़ाय रोग, छुधायनाशकराय हैं ॥ज.॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तममोहभानन जानि आनन्द, आनि सरन गही अवै।
वरदीपधारों वारि तुमढिग, सुपरज्ञान जु द्यो सबै ॥ज.॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

यह गन्ध चूरि दशांग सुन्दर, धूम्र ध्वज में खेय हों।
वसुकर्मभर्मजरायतुमढिग, निजसुधातमवेयहों ॥ज.॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

रसथक्व पक्व सुभक्व चक्व, सुहावनें मृदुपावनें।
फलसारवृंद अमंद ऐसो, ल्याज पूज रचावने ॥ज.॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुचिनीर चन्दन शालितन्दुल, सुमन चरु दीवा धरों।
अरुधूपफलजुतअरघकरिकर, जोरजुगविनतीकरों ॥ज.॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

(छन्द-सुन्दर तथा द्रुतविलम्बित)

असित कार्तिक एकम भावनों, गरभको दिन सो गिन पावनों।
किय सची तित चर्चन चावसों, हम जजें इत आनन्द भावसों ॥

ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्णप्रतिपदायां गर्भमंगल मंडिताय श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जनम जेठवदी तिथि द्वादशी, सकलमंगल लोकविषें लशी।
हरि जजे गिरिराज समाजतैं, हम जजैं इत आतम काजतैं ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्ण द्वादश्यां जन्ममंगल प्राप्तये श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

भवशरीर विनस्वर भाइयो, असित जेठदुवादिशि गाइयो।
सकल इन्द्र जजें तित आइकें, हम जजें इत मंगल गाइकें ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्ण द्वादश्यां तपः कल्याणक प्राप्तये श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

असित चैत अमावसिको सही, परम केवलज्ञान जग्यो कही।
लहि समोसृत धर्म धुरंधरो, हम समर्चत विघ्न सबै हरो ॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णामावस्यायां केवलज्ञानमण्डिताय श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

असित चैत अमावस गाइयौ, अघत घाति हने शिवपाइयौ।
गिरिसमेद जजैं हरि आयकैं, हम जजैं पद प्रीति लगाइकैं ॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णअमावस्या मोक्षमंगल मण्डिताय श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

तुम गुण वरनन येम जिम, खंविहाय कर मान ।
तथा मेदिनी पदनिकरि, कीनों चहत प्रमान ॥१॥
जय अनन्त रवि भव्यमन, जलज वृंद विहँसाय ।
सुमति को कतिय थोक सुख, वृद्ध कियो जिनराय ॥२॥

(छन्द : नयमालनी तथा चंडी तथा तामरस-मात्रा : १६)

जय अनन्त गुनवन्त नमस्ते, शुद्धध्येय नित सन्त नमस्ते ॥
लोकालोक विलोक नमस्ते, चिन्मूरत गुनथोक नमस्ते ॥३॥
रत्नत्रय धर धीर नमस्ते, करमशत्रु करि वीर नमस्ते ।
चार अनन्त महन्त नमस्ते, जय जय जय शिवकन्त नमस्ते ॥४॥
पंचाचार विचार नमस्ते, पंचकरण मदहार नमस्ते ।
पंच-पराव्रत चूर नमस्ते, पंचमगति सुखपूर नमस्ते ॥५॥
पंचलब्धि धरनेश नमस्ते, पंचभाव सिद्धेश नमस्ते ।
छहों दरबगुन जान नमस्ते, छहों काल पहिचान नमस्ते ॥६॥
छहों कायरच्छेश नमस्ते, छह सम्यक उपदेश नमस्ते ।
सप्तविशनवन वह्नि नमस्ते, जय केवलअपरह्नि नमस्ते ॥७॥
सप्ततत्त्व गुनभनन नमस्ते, सप्तशुभ्र गतिहनन नमस्ते ।
सप्तभंगके ईश नमस्ते, सातों नयकथनीश नमस्ते ॥८॥
अष्टकर मलदल्ल नमस्ते, अष्टजोग निरशल्ल नमस्ते ।
अष्टम-धराधिराज नमस्ते, अष्ट-गुननिसिरताज नमस्ते ॥९॥
जय नव केवल प्राप्त नमस्ते, नव पदार्थथिति आप्त नमस्ते ।
दशों धरम धरतार नमस्ते, दशों बंधपरिहार नमस्ते ॥१०॥
विघ्न महीधर विज्जु नमस्ते, जय ऊरधगति रिज्जु नमस्ते ।
तनकनकंदुति पूर नमस्ते, इख्वाक बंशकजसूर नमस्ते ॥११॥
धनु पचासतन उच्च नमस्ते, कृपासिन्धु गुन शुच्च नमस्ते ।
सेही अंक निशंक नमस्ते, चितचकोर मृगअंक नमस्ते ॥१२॥
रागदोष मदटार नमस्ते, निज विचार दुखहार नमस्ते ।
सुर सुरेश गण वृन्द नमस्ते, वृन्द करो सुखकन्द नमस्ते ॥१३॥
जय जय जिनदेवं, सुरकृतसेवं, नितकृतिचित हुल्लासधरं ।
आपद उद्धारं समतागारं, वीतराग विज्ञान भरं ॥१४॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जो जन मन वच काय लाय, जिन जजै नेह धर ।
वा अनुमोदन करै करावै पढ़ै पाठ वर ।
ताके नित नव होय सुमंगल आनन्द दाई ।
अनुक्रमतैं निरवान लहा समाग्री पाई ॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

श्री शान्तिनाथ जिनपूजन

या भव कानन में चतुरानन, पाप पनानन घेरी हमेरी ।
आतम जानन मानन ठानन, वान न होन दई शठ मेरी ॥
ता मद भानन आपहि हो, यह छान न आन न आनन टेरी ।
आन गही शरनागत को अब श्रीपतजी पत राखहु मेरी ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं । अत्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरण ।

हिमगिरि गतगंगा, धार अभंगा, प्रासुक संगा भरि भृंगा ।
जरजनम मृतंगा, नाशि अधंगा, पूजि पदंगा मृदु हिंगा ॥
श्री शान्ति जिनेशं, नुत शक्रेशं, वृष चक्रेशं, चक्रेशं ।
हनि अरि चक्रेशं, हे गुनधेशं दया मृतेशं मक्रेशं ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

वर बावन चंदन, कदली नंदन, घन आनंदन सहित घसों ।
भवताप निकंदन, ऐरानन्दन, वंदि अमंदन, चरन वसों ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय भवाताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

हिमकर करि लज्जत, मलय सुसज्जत, अच्छत जज्जत भरि थारी ।
दुखदारिद गज्जत, सदपदसज्जत, भवभयभज्जत अतिभारी ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

मन्दार सरोजं, कदली जोजं, पुंज भरोजं मलय भरं ।
भरि कंचनथारी, तुम ढिग धारी, मदनविदारी, धीर धरं ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

पकवान नवीने पावन कीने, षटरस भीने सुखदाई ।
मनमोदन हारे, छुदा विदारे, आगै धारे गुन गाई ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

तुम ज्ञान प्रकाशे, भ्रम-तम नाशे, ज्ञेय विकाशे, सुखरासे ।
दीपक उजियारा, यातैं धारा, मोह निवारा, निज भासे ।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय मोहाधन्कार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

चन्दन करपूरं करि वर चूरं, पावक भूरं, माँहि जुरं ।
तसु धूम उड़ावे, नाचत आवै, अलि गुंजावै, मधुर-स्वरं ।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

बादाम खजूरं दाडिम पूरं, निंबुक भूरं लै आयो ।
तासो पद जज्जों, शिवफल सज्जों, निज रस रज्जों, उमगायो ।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

वसु द्रव्य सँवारी तुम ढिग धारी, आनन्दकारी दृग-प्यारी ।
तुम हो भवतारी, करुना-धारी, यातै थारी, शरनारी ।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचकल्याणक अर्घ

असित सातय भादव जानिये, गरभ-मंगल ता दिन मानिये ।
सचि किया जननी-पद-चर्चनं, हम करैं इत ये पद अर्चनं ।।

ॐ ह्रीं भाद्रपदकृष्णसप्तम्यां गर्भमङ्गल मण्डिताय श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जनम सेठ चतुर्दशी श्याम है, सकल इन्द्र सु आगत धाम है ।
गजपुरै गज साजि सबै तबै, गिरि जजे इत मैं जजि हों अबै ।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममङ्गल प्राप्तये श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

भव शरीर सुभोग असार हैं, इमि विचार तबै तप धार हैं ।
भ्रमर चौदस जेठ सुहावनी, धरममेह जजों गुन पावनी ।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां तपोमंगल मंडिताय श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

शुकल पौष दशैं सुखरास है, परम केवलज्ञान प्रकाश है ।
भवसमुद्र-उधारन देवकी, हम करैं नित मंगल सेवकी ।।

ॐ ह्रीं पौषशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगल मंडिताय श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

असित-चौदशि जेठ हने अरी, गिरीसमेदथकी शिवतिय वरी ।
सकल इन्द्र जजैं तित आइकैं, हम जजैं इत मस्तक नाइकैं ।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगल मंडिताय श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

शान्ति शान्ति-गुन मंडिते सदा, जाहि ध्यावत सुपंडिते सदा ।
मैं तिन्हें भगत-मंडिते सदा, पूजि-हों कलुष-हंडिते सदा ।।

मोक्षहेत तुम ही दयाल हो, हे जिनेश गुन रत्नमाल हो ।
मैं अबै सुगुन-दाम ही धरों, ध्यावते तुरित मुक्तितिय वरों ।।
जय शान्तिनाथ चिद्रूपराज, भवसागर में अद्भुत जहाज ।
तुम तजि सरवारथ सिद्ध-थान, सरवारथजुत गजपुर महान ।।
तित जनम लियौ आनंद धार, हरि ततछिन आयो राजद्वार ।
इन्द्रानी जाय प्रसूत-थान, तुमको कर में ले हरष मान ।।
हरि गोद देय सो मोदधार, सिर चमर अमर ढ़ारत अपार ।
गिरिराज जाय तित शिला पाण्डु, तापै थाप्यो अभिषेक माण्डु ।।
तित पंचम उदधितनों सु-वार, सुर कर-कर करि ल्याये उदार ।
तब इन्द्र सहसकर करि अनन्द, तुम सिर धारा ढार्यो सुमन्द ।।
अघ घघ घघ घघ धुनि होत घोर, भभभभ भभ धध धध कलश शोर ।
दृम दृम दृमदृम बाजत मृदंग, झन नन नन नन नन नूपुरंग ।।
तन नन नन नन नन तनन तान, घन नन नन घंटा करत ध्वान ।
ताथेई थेई थेई थेई सुचाल, जुत नाचत नावत तुमहिं भाल ।।
चट चट चट अटपट नटत नाट, झट झट झट हट नट शट विराट ।
इमि नाचत राचत भगत रंग, सुर लेत जहाँ आनंद संग ।।
इत्यादि अतुल मंगल सुठाट, तित बन्यो जहाँ सुरगिरि विराट ।
पुनि करि नियोग पितुसदन आय, हरि सौंप्यो तुम तित वृद्ध थाय ।।
पुनि राजमाहिं लहि चक्ररत्न, भोग्यौ छहखंड करि धरम जत्न ।
पुनि तप धरि केवलरिद्धि पाय, भविजीवन को शिवमग बताय ।।
शिवपुर पहुँचे तुम हे जिनेश, गुनमण्डित अतुल अनंत भेष ।
मैं ध्यावतु हौं निज शीश नाय, हमरी भवबाधा हरि जिनाय ।।
सेवक अपनो निज जान जान, करुना करि भौभय भान भान ।
यह विघनमूल तरु खण्डखण्ड, चितचिन्तित आनन्द मण्ड मण्ड ।।

श्री शान्ति महंता शिवतियकंता, सुगुन अनन्ता भगवन्ता ।
भव भ्रमन हनंता, सौख्य अनन्ता, दातारं तारन वन्ता ।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय जयमाला महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

शान्तिनाथ जिनके पद पंकज, जो भवि पूजै मनवचकाय ।
जनम जनम के पातक ताके, ततछिन तजिकैं जाय पलाय ।।
मन वाँछित सुख, पावै, सौ नर, बाँचै, भगतिभाव अतिलाय ।
तातैं 'वृन्दावन' नित बन्दै जातैं शिवपुर-राज कराय ।।

।। पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।।

श्री नेमिनाथ जिन पूजा

(छन्द : लक्ष्मी तथा अर्द्ध लक्ष्मीधरा)

जयति जय जयति जय जयति जय नेम की,
धर्म अवतार दातार शिव चैन की ।
श्री शिवानंद भौफन्द निकन्द की,
ध्यावैं जिन्हें इन्द्र नागेन्द्र ओ मैन की ।
परम कल्यान के देन हारे तुम्हीं
देव हो एव तातें करौं ऐन की ।
थापि हों बार त्रय शुद्ध उच्चारके,
शुद्धता धार भौ पारकू लेन की ।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं । अत्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरण ।

दाता मोक्षके श्रीनेमिनाथ जिनराय, दाता. ॥टेक॥
गंग नदी कुश प्रासुक लीनौ, कंचन भृंग भराय ।
मनवचतनतें धार देत ही, सकल कलंक नशाय ।
दाता मोच्छ के श्री नेमि नाथ जिनराय ॥दा. ॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

हरिचन्दन जुत कदलीनन्दन कुंकुम संग घसाय ।
विघनताप नाशन के कारन, जजौं तिहारे पाय ॥दा.॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय भवाताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

पुण्य राशि तुम यश सम उज्ज्वल, तन्दुल शुद्ध मंगाय ।
अखयसौख्यभोगन के कारण पुंजधरोंगुणगाय ॥दा. ॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

पुडरीक तृण द्रुमको आदिक, सुमन सुगन्धित लाय ।
दर्प्पकमन्मथ भंजनकारन जजहुँ चरनलवलाय ॥दा. ॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

घेवर बावर खाजे साजे, ताजे तुरित मंगाय ।
क्षुधावेदनी नाशकरणको, जजहुँ चरणउमगाय ॥दा. ॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

कनक दीप नवनीत पूरकर, उज्ज्वल जोति जगाय ।
तिमिर मोहनाशक तुमकोलखि, जजहुँचरनहुलसाय ॥दा.॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

दशविध गन्ध मंगाय मनोहर, गुंजत अलिगण आय ।
दशोंबन्धजारनके कारण, खेवों तुमढिग लाय ॥दा. ॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

सुरसवरण रसना मनभावन पावन फल सु मंगाय ।
मोक्ष महाफल कारनपूजों, हे जिनवर तुम पाय ॥दा. ॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल फल आदि साज शुचि लीने, आठों दरब मिलाय ।
अष्टमछितिके राजकरन कों, जजों अंग वसुनाय ॥दा.॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचकल्याणक

(छन्द पाईता)

सित कार्तिक छट्ठि अमंदा, गरभागम आनन्दकन्दा ।
शचि सेय शिवापद आई, हम पूजत मनवचकाई ॥

ॐ ह्रीं कार्तिक शुक्लाषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

सित सावन छट्ठि अमंदा, जनमे त्रिभुवनके चन्दा ।
पितु समुद्र महासुख पायो, हम पूजत विघन नशायो ॥

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लषष्ठ्यां जन्मंगलप्राप्तये श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

तजि राजमती व्रतलीनों, सितसावन छट्ठ प्रवीनों ।
शिव नारि तबै हरषाई, हम पूजैं पद शिरनाई ॥

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लषष्ठ्यां तपः कल्याणकप्राप्तये श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

सित आसित एकम चूरे, चारों घाती अति कूरे ।
लहि केवल महिमा सारा, हम पूजैं अष्ट प्रकारा ॥

ॐ ह्रीं आश्विनशुक्लप्रतिपदायो केवलज्ञानप्राप्तये श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

सितषाढ़, अष्टमी चूरे, चारों घातिया कूरे ।
शिव ऊर्जयन्तते पाई, हम पूजैं ध्यान लगाई ॥

ॐ ह्रीं आषाढ़ शुक्लाष्ट्म्यां मोक्षमंगलप्राप्तये श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

श्याम छबी तन चाप दश, उन्नत गुणनिधिधाम ।
शंख चिह्नपदमें निरखि, पुनि पुनि करों प्रनाम ॥१॥

(पद्धरि छन्द)

जय जय जय नेमि जिनिंद चन्द, पितु समुद्र सेन आनंदकंद ।
शिवमात कुमुदमनमोददाय, भविवृन्द चकोर सुखी कराय ॥२॥

जय देव अपूरव मारतण्ड, तुम कीन ब्रह्मसुत सहस खण्ड ।
शिवतियमुख जलजविकाशनेश, नहिं रही सृष्टि में तम अशेष ॥३॥
भवि भीत कोक कीनों अशोक, शिवगम दरशायो शर्मथोक ।
जयजयजयजय तुम गुणगम्भीर, तुम आगम निपुण पुनीत धीर ॥४॥
तुम केवलजोति विराजमान, जय जय जय जय करुणानिधान ।
तुम समवशरणमें तत्त्वभेद, दरशायो जातें नशत खेद ॥५॥
तित तुमको हरि आनन्दधार, पूजत भगतीजुत बहु प्रकार ।
पुनि गद्यपद्यमय सुजस गाय जय बल अनन्त गुणवन्तराय ॥६॥
जय शिवशंकर ब्रह्मा महेश, जय बुद्धि विधाता विष्णुवेष ।
जय कुमतिमतंगनको मृगेन्द्र, जय मदनध्वांतकों रवि जिनेन्द्र ॥७॥
जय कृपासिन्धु अविरुद्ध बुद्ध, जय ऋद्धसिद्ध दाता प्रबुद्ध ।
जय जगजनमनरंजन महान, जय भवसागरमहँ सुष्टु यान ॥८॥
तुम भगति करै ते धन्य जीव, ते पावैं दिव शिवपद सदीव ।
तुमरो गुण देव विविधप्रकार, गावत नित किन्नरकी जु नार ॥९॥
वर भगतिमाहिं लवलीन होय, नाचै ताथेइ थेइ थेइ बहोय ।
तुम करुणासागर सृष्टिपाल, अब मोकों वेगि करो निहाल ॥१०॥
मैं दुख अनन्त वसुकरमजोग, भोगे सदीव नहिं और रोग ।
तुमको जगमें जान्यो दयाल, हो वीतराग गुणरतनमाल ॥११॥
तातैं शरणा अब गही आय, प्रभु करो वेगि मेरी सहाय ।
यहविघनकरममममखण्डखण्ड, मनवांछितकारज मण्डमण्ड ॥१२॥
संसारकष्ट चकचूर चूर, सहजानन्द मम उर पूर पूर ।
निज पर प्रकाशबुधि देहदेह, तजिके विलम्ब सुधि लेह लेह ॥१३॥
हम जांचत हैं यह बार बार, भवसागरतें मो तार तार ।
नहिं सह्यो जात यह जगत दुख, तातें विनवों हे सुगुनमुक्ख ॥१४॥

(घत्तानन्द)

श्रीनेमिकुमारं जितमदमारं, शीलागारं, सुखकारं ।
भवभयहरतारं, शिवकरतारं, दातारं धर्माधारं ॥१५॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

सुख, धन, जस सिद्धि, पुत्र पौत्रादिवृद्धि,
सकल मनसि सिद्धि होति है ताहि ऋद्धि ।
जजत हरष धारी नेमि को जो अगारी,
अनुक्रम अरि जारी सो वरे मोच्छनारी ॥१६॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥

श्री पार्श्वनाथ जिन पूजन

(गीता छन्द)

वर स्वर्ग प्राणत को विहाय, सुमात वामा सुत भये ।
विश्वसेन के पारस जिनेश्वर, चरन जिनके सुर नये ।
नव हाथ उन्नत तन विराजै, उरग लच्छन पद लसैं ।
थापूँ तुम्हें जिन आय तिष्ठो, करम मेरे सब नसैं ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

(अथाष्टक छंद - नाराच)

क्षीरसोम के समान अम्बुसार लाइये ।
हेमपात्र धारिकैं सु आपको चढ़ाइये ॥
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करूँ सदा ।
दीजिये निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

चंदनादि केशरादि स्वच्छ गंध लीजिये ।
आप चरण चर्च मोहताप को हनीजिये ॥पार्श्व. ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय भवाताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

फेन चंद के समान अक्षतान् लाइकें ।
चर्नके समीप सार पुंजको रचाइकें ।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

केवड़ा गुलाब और केतकी चुनाईकें ।
धार चर्नके समीप कामको नसाइकै ॥पार्श्व.॥४॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

घेवरादि बावरादि मिष्ट सद्य में सने ।
आप चर्न चर्चतें क्षुधादिरोग को हने ॥पार्श्व.॥५॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

लाय रत्न दीपको सनेहपूर के भरूँ ।
वातिका कपूर वारि ध्वांतको हरूँ ॥पार्श्व.॥६॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

धूप गंध लेयके सुअग्निसंग जारिये ।
तास धूप के सुसंग अष्टकर्म बारिये ॥पार्श्व.॥७॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

खारिकादि चिरभटादि रत्न थाल में भरूँ ।
हर्ष धारिकैं जजूँ सुमोक्ष सौख्य को वरूँ ॥पार्श्व.॥८॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

नीरगंध अक्षतान् पुष्प चारु लीजिये ।
दीप धूप श्रीफलादि अर्घ तैं जजीजिये ।।पार्श्व.।।९।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचकल्याणक

शुभप्राणत स्वर्ग विहाय, वामा माता उर आये ।
बैशाख तनी दुतिकारी, हम पूजें विघ्न निवारी ।।१।।

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णद्वितीयायां गर्भमंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जनमे त्रिभुवन सुखदाता, एकादशि पौष विख्याता ।
श्यामा तन अद्भुत राजै, रवि कोटिक तेज सु लाजै ।।२।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णएकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

कलि पौष एकादशि आई, तब बारह भावन भाई ।
अपने कर लोंच सु कीना, हम पूजैं चरन जजीना ।।३।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णएकादश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

कलि चैत चतुर्थी आई, प्रभु केवल ज्ञान उपाई ।
तब प्रभु उपदेश जु कीना, भवि जीवन को सुख दीना ।।४।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्ण चतुर्थ्यां केवलज्ञान मंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सित सातैं सावन आई, शिवनारि वरी जिनराई ।
सम्मेदाचल हरि माना, हम पूजैं मोक्ष कल्याना ।।५।।

ॐ ह्रीं श्रावण-शुक्ल-सप्तम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

पारसनाथ जिनेन्द्रतने वच, पौन भखी जरते सुन पाये ।
करयो सरधान लह्यो पद भये पद्मावति शेष कहाये ।।
नाम प्रताप टरैं संताप सु, भव्यन को शिवशर्म दिखाये ।
हे विश्वसेन के नंद भले, गुण गावत हैं तुमरे हर्षाये ।।१।।

(दोहा)

केकी-कंठ समान छवि, वपु उतंग नव हाथ ।
लक्षण उरग निहार पग, वंदों पारसनाथ ।।२।।

(पद्धरी छन्द)

रची नगरी छह मास अगार । बने चहुँ गोपुर शोभ अपार ।
सु कोट तनी रचना छवि देत । कंगूरन पै लहकैं बहुकेत ।।३।।
बनारस की रचना जु अपार । करी बहु भाँति धनेश तैयार ।
तहाँ विश्वसेन नरेन्द्र उदार । करैं सुख वाम सु दे पटनार ।।४।।
तज्यो तुम प्रानत नाम विमान । भये तिनके वर नंदन आन ।
तबै सुर इंद्र नियोगनि आय । गिरिंद करी विधि न्हौन सुजाय ।।५।।

पिता-घर सौंपि गये निज धाम । कुबेर करै वसु जाम सुकाम ।
बढ़े जिन दोज मयंक समान । रमैं बहु बालक निर्जन आन ।।६।।
भए जब अष्टम वर्ष कुमार । धरे अणुव्रत महा सुखकार ।
पिता जब आन करी अरदास । करो तुम ब्याह वरो ममआस ।।७।।
करी तब नाहिं रहे जग चंद । किये तुम काम कषाय जुमंद ।
चढ़े गजराज कुमारन संग । सुदेखत गंगतनी सुतरंग ।।८।।
लख्यो इक रंक करै तप घोर । चहूँदिशि अगनि बलै अति जोर ।
कहै जिननाथ अरे सुन भ्रात । करै बहु जीवन की मत घात ।।९।।
भयो तब कोप कहै कित जीव । जले तब नाग दिखाय सजीव ।
लख्यो यह कारण भावन भाय । नये दिव ब्रह्मरिषीसुर आय ।।१०।।
तबहिं सुर चार प्रकार नियोग । धरी शिविका निज कंध मनोग ।
कियो वन माहिं निवास जिनंद । धरे व्रत चारित आनंदकंद ।।११।।
गहे तहँ अष्टम के उपवास । गये धनदत्त तने जु अवास ।
दियो पयदान महासुखकार । भई पन वृष्टि तहाँ तिहिं बार ।।१२।।
गये तब कानन माहिं दयाल । धर्‌यो तुम योग सबहिं अघटाल ।
तबै वह धुम सुकेतु अयान । भयो कमठाचर को सुर आन ।।१३।।
करै नभ गौन लखे तुम धीर । जु पूरब बैर विचार गहीर ।
कियो उपसर्ग भयानक घोर । चली बहु तीक्षण पवन झकोर ।।१४।।
रह्यो दशहूँ दिश में तम छाय । लगी बहु अग्नि लखी नहिं जाय ।
सुरुण्डन के बिन मुण्ड दिखाय । पड़ै जल मूसलधार अथाय ।।१५।।
तबै पद्मावति-कंत धनिंद । नये जुग आय जहाँ जिनचंद ।
भग्यो तब रंक सुदेखत हाल । लह्यो तब केवल ज्ञान विशाल ।।१६।।
दियो उपदेश महा हितकार, सुभव्यन बोध सम्मेद पधार ।
सुवर्ण भद्र जहाँ कूट प्रसिद्ध, वरी शिवनारि लही वसुरिद्ध ।।१७।।
जजूँ तुम चरन दोउ कर जोर । प्रभू लखिये अबही मम ओर ।
कहै 'बखतावर रत्न' बनाय । जिनेश हमें भव पार लगाय ।।१८।।

(धत्ता)

जय पारस देवं, सुरकृत सेवं । वंदत चर्न सुनागपती ।
करुणा के धारी, पर उपकारी । शिवसुखकारी कर्महती ।।१९।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अडिल्ल

जो पूजै मन लाय भव्य पारस प्रभु नितही ।
ताके दुख सब जांय भीति व्यापै नहिं कितही ।।
सुख संपति अधिकाय पुत्र मित्रादिक सारे ।
अनुक्रमसों शिव लहैं, 'रत्न' इमि कहै पुकारे ।।२०।।

इत्याशीर्वादः ।

श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ पूजन

(स्थापना)

हे पार्श्वनाथ करुणानिधान महिमा महान मंगलकारी ।
शिव भर्तारी, सुख भंडारी सर्वज्ञ सुखारी त्रिपुरारी ॥
तुम धर्मसेत, करुणानिकेत आनन्द हेत अतिशय धारी ।
तुम चिदानन्द आनन्द कन्द दुख-द्वन्द फन्द संकटहारी ॥
आवाहन करके आज तुम्हें अपने मन में पधराऊँगा ।
अपने उर के सिंहासन पर गद-गद हो तुम्हें बिठाऊँगा ॥
मेरा निर्मल मन टेर रहा हे नाथ ! हृदय में आ जाओ ।
मेरे सूने मन मन्दिर में पारस भगवान समा जाओ ॥

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

भव वन में भटक रहा हूँ मैं, भर सकी न तृष्णा की खाई ।
भव सागर के अथाह दुख में सुख की जल बिन्दु नहीं पाई ॥
जिस भांति आपने तृष्णा पर, जय पाकर तृषा बुझाई है ।
अपनी अतृप्ति पर, अब तुमसे जय पाने की सुधि आई है ॥

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

क्रोधित हो क्रूर कमठ ने जब, नभ से ज्वाला बरसाई थी ।
उस आत्मध्यान की मुद्रा में, आकुलता तनिक न आई थी ।
विघ्नों पर बैर-विरोधों पर मैं साम्यभाव धर जय पाऊँ ।
मन की आकुलता मिट जाये ऐसी शीतलता पा जाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

तुमने कर्मों पर जय पाकर मोती सा जीवन पाया है ।
यह निर्मलता मैं भी पाऊँ मेरे मन यही समाया है ॥
यह मेरा अस्त-व्यस्त जीवन इसमें सुख कहीं न पाता हूँ ।
मैं भी अक्षय पद पाने को शुभ अक्षत तुम्हें चढ़ाता हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

अध्यात्मवाद के पुष्पों से जीवन फुलवारी महकाई ।
जितना जितना उपसर्ग सहा उतनी उतनी दृढ़ता आई ॥
मैं इन पुष्पों से वञ्चित हूँ अब इनको पाने आया हूँ ।
चरणों पर अर्पित करने को कुछ पुष्प संजोकर लाया हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

जय पाकर चपल इन्द्रियों पर अन्तर की क्षुधा मिटा डाली ।
अपरिग्रह की आलोक शक्ति अपने अन्दर ही प्रगटा ली ॥
भटकाती फिरती क्षुधा मुझे मैं तृप्त नहीं हो पाया हूँ ।
इच्छाओं पर जय पाने को मैं शरण तुम्हारी आया हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अपने अज्ञान अंधेरे में वह, कमठ फिरा मारा मारा ।
व्यन्तर विमानधारी था पर, तप के उजियारे से हारा ॥
मैं अंधकार में भटक रहा, उजियारा पाने आया हूँ ।
जो ज्योति आप में दर्शित है, वह ज्योति जगाने आया हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

तुमने तपके दावानल में, कर्मों की धूप जलाई है ।
जो सिद्ध शिला तक आ पहुंची, वह निर्मल गंध उड़ाई है ॥
मैं कर्म बन्धनों में जकड़ा, भव बन्धन से घबराया हूँ ।
वसु-कर्म दहन के लिये तुम्हें, मैं धूप चढ़ाने आया हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

तुम महा तपस्वी शान्ति मूर्ति उपसर्ग तुम्हें न डिगा पाये ।
तप के फल ने पद्मावति के इन्द्रों के आसन कम्पाये ॥
ऐसे उत्तम फल की आशा मैं, मन में उमड़ी पाता हूँ ।
ऐसा शिव सुख फल पाने को, फल की शुभ भेंट चढ़ाता हूँ ॥

ॐ ह्रीं अहिच्छत्र पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

संघर्षों में उपसर्गों में, तुमने समता का भाव धरा ।
आदर्श तुम्हारा अमृत-बन, भक्तों के जीवन में बिखरा ॥
मैं अष्ट द्रव्य से पूजा का, शुभ थाल सजा कर लाया हूँ ।
जो पदवी तुमने पाई है, मैं भी उस पर ललचाया हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचकल्याणक

वैशाख कृष्ण दुतिया के दिन तुम वामा के उर में आये ।
श्री अश्वसेन नृप के घर में, आनन्द भरे मंगल छाये ॥

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णद्वितीयायां गर्भमंगल मण्डिताय श्रीअहिच्छत्र पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जब पौष कृष्ण एकादशि को, धरती पर नया प्रसून खिला ।
भूले भटके भ्रमते जग को, आत्मोन्नति का आलोक मिला ॥

ॐ ह्रीं पौष कृष्णैकादश्यां जन्ममंगल मण्डिताय श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

एकादशि पौषकृष्ण के दिन, तुमने संसार अथिर पाया।
दीक्षा लेकर आध्यात्मिक पथ, तुमने तप द्वारा अपनाया॥
ॐ ह्रीं पौष कृष्णैकादशी दिने तपोमंगल मण्डिताय श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

अहिच्छत्र धरा पर जी भर कर, की क्रूर कमठ ने मनमानी।
तब कृष्णा चैत्र चतुर्थी को, पद प्राप्त किया केवलज्ञानी॥
यह वन्दनीय हो गई धरा, दश भव का बैरी पछताया।
देवों ने जय जयकारों से, सारा भूमण्डल गुञ्जाया॥
ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णचतुर्थीदिवसे श्री अहिच्छत्रतीर्थे ज्ञानसाम्राज्य प्राप्तये श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावण शुक्ला सप्तमि के दिन, सम्मेद शिखर ने यशपाया।
'सुवरणगिर'भद्रकूट से जब, शिव मुक्तिरमा को परिणाया॥
ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लासप्तम्यां सम्मेदशिखरस्य सुवरणभद्रकूटाद् मोक्षमंगल मण्डिताय श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

सुरनर किन्नर गणधर फणधर, योगीजन ध्यान लगाते हैं।
भगवान तुम्हारी महिमा का, यशगान मुनीश्वर गाते हैं॥
जो ध्यान तुम्हारा ध्याते हैं, दुख उनके पास न आते हैं।
जो शरण तुम्हारी रहते हैं, उनके संकट कट जाते हैं॥
तुम कर्मदली, तुम महाबली, इन्द्रियसुख पर जय पाई है।
मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ, मन में यह आज समाई है॥
तुमने शरीर औ आत्मा के, अंतर स्वभाव को जाना है।
नश्वर शरीर का मोह तजा, निश्चय स्वरूप पहिचाना है॥
तुम द्रव्य मोह, औ भाव मोह, इन दोनों से न्यारे न्यारे।
जो पुद्गल के निमित्त कारण, वे रागद्वेष तुमसे हारे॥
तुम पर निर्जन वन में बरसे, ओले-शोले पत्थर पानी।
आलोक तपस्या के आगे, चल सकी न शठ की मनमानी॥
यह सहन शक्तियों का बल है, जो तप के द्वारा आया था।
जिसने स्वर्गों में देवों के, सिंहासन को कम्पाया था॥
'अहि' का स्वरूप धरकर तत्क्षण, धरणेन्द्र स्वर्ग से आया था।
ध्यानस्थ आप के ऊपर प्रभु फण-मण्डप बनकर छाया था॥
उपसर्ग कमठ का नष्ट किया मस्तक पर फण मण्डप रचकर।
पद्मादेवी ने उठा लिया, तुमको सिर के सिंहासन पर॥

तप के प्रभाव से देवों ने, व्यंतर की माया विनशाई।
पर प्रभो आपकी मुद्रा में, तिलमात्र न आकुलता आई॥
उपसर्गों का आतंक तुम्हें, हे प्रभु तिलभर न डिगा पाया।
अपनी विडम्बना पर बैरी, असफल हो मन में पछताया॥
शठ कमठ, बैर के वशीभूत, भौतिक बल पर बौराया था।
अध्यात्म आत्मबल का गौरव, यह मूरख समझ न पाया था॥
दश भव तक जिसने बैर किया, पीड़ायें देकर मनमानी।
फिर हार मानकर चरणों में, झुक गया स्वयं वह अभिमानी॥
यह बैर महा दुखदायी है, यह बैर न बैर मिटाता है।
यह बैर निरन्तर प्राणी को, भवसागर में भटकाता है॥
जिनको भव सुख की चाह नहीं, दुख से न जरा भय खाते हैं।
वे सर्व-सिद्धियों को पाकर, भव सागर से तिर जाते हैं॥
जिसने भी शुद्ध मनोबल से, ये कठिन परीषह झेली हैं।
सब ऋद्धि-सिद्धियां नत होकर, उनके चरणों पर खेली हैं॥
जो निर्विकल्प चैतन्य रूप, शिव का स्वरूप तुमने पाया।
ऐसा पवित्र पद पाने को, मेरा अन्तर मन ललचाया॥
कार्माण वर्गणायें मिलकर, भव वन में भ्रमण कराती हैं।
जो शरण तुम्हारी आते हैं, ये उनके पास न आती हैं॥
तुमने सब बैर विरोधों पर, समदर्शी बन जय पाई है।
मैं भी ऐसी समता पाऊँ, यह मेरे हृदय समाई है॥
अपने समान ही तुम सबका, जीवन विशाल कर देते हो।
तुम हो तिखाल वाले बाबा, जग को निहाल कर देते हो॥
तुम हो त्रिकालदर्शी तुमने, तीर्थंकर का पद पाया है।
तुम हो महान अतिशयधारी, तुम में आनन्द समाया है॥
चिन्मूरति आप अनंतगुणी, रागादि न तुमको छू पाये।
इस पर भी हर शरणागत पर, मनमाने सुख साधन आये॥
तुम रागद्वेष से दूर दूर, इनसे न तुम्हारा नाता है।
स्वयमेव वृक्ष के नीचे जग, शीतल छाया पा जाता है॥
अपनी सुगन्ध क्या फूल कहीं, घर-घर आकर बिखराते हैं।
सूरज की किरणों को छूकर, सुमन स्वयम् खिल जाते हैं॥
भौतिक पारसमणि तो केवल, लोहे को स्वर्ण बनाती है।
हे पार्श्व प्रभो तुमको छूकर, आत्मा कुन्दन बन जाती है॥
तुम सर्व शक्ति धारी हो प्रभु, ऐसा बल मैं भी पाऊँगा।
यदि यह बल मुझको भी दे दो, फिर कुछ न मांगने आऊँगा॥

कह रहा भक्ति के वशीभूत, हे दया सिन्धु स्वीकारो तुम ।
जैसे तुम जग से पार हुये, मुझको भी पार उतारो तुम ॥
जिसने भी शरण तुम्हारी ली, वह खाली हाथ न आया है ।
अपनी-अपनी आशाओं का, सबने वांछित फल पाया है ॥
बहुमूल्य सम्पदायें सारी, ध्याने वालों ने पाई हैं ।
पारस के भक्तों पर निधियाँ, स्वयमेव सिमट कर आई हैं ॥
जो मन से पूजा करते हैं, पूजा उनको फल देती है ।
प्रभु-पूजा भक्त पुजारी के, सारे संकट हर लेती है ॥
जो पथ तुमने अपनाया है, वह सीधा शिव को जाता है ।
जो इस पथ का अनुयायी है, वह परम मोक्ष पद पाता है ॥

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जयमाला महार्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

पार्श्वनाथ भगवान को, जो पूजे धर ध्यान ।
उसे लोक परलोक के, मिलें सकल वरदान ॥

॥ पुष्पांजलि क्षिपेत् ॥

श्री महावीर स्वामी पूजन

मत्तगयन्द

श्रीमत वीर हरै भव पीर, भरै सुख-सीर अनाकुलताई ।
केहरि-अंक अरी करदंक, नये हरि-पंकति-मौलि सु आई ॥
मैं तुमको इत थापतु हों प्रभु, भक्ति-समेत हिये हरषाई ।
हे करुणा धन धारक देव, इहां अब तिष्ठहु शीघ्रहि आई ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय । अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

क्षीरोदधिसम शुचि नीर, कञ्चनभृंग भरों ।
प्रभु वेग हरो भव-पीर, यातैं धार करों ॥
श्री वीर महा अतिवीर, सन्मति नायक हो ।
जय वर्द्धमान गुण-धीर, सन्मति-दायक हो ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

मलयागिरि - चन्दन सार, केसर - संग घसों ।
प्रभु भव-आताप निवार, पूजत हिय हुलसों ॥श्री वीर. ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय भवाताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

तन्दुल सित शशि-सम शुद्ध, लीनों थार भरी ।
तसु पुञ्ज धरों अविरुद्ध, पावों शिव-नगरी ॥श्री वीर.॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

सुरतरु के सुमन समेत, सुमन सुमन प्यारे ।
सो मनमथ-भञ्जन-हेत, पूजों पद थारे ॥श्री वीर.॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय कामवाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

रस रज्जत सज्जत सद्य, मज्जत थार भरी ।
पद जज्जत रज्जत अद्य, भज्जत भूख-अरि ॥ श्री वीर.॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

तम-खण्डित मण्डित-नेह, दीपक जोवत हों ।
तुम पदतर हे सुख-गेह, भ्रम-तम खोवत हों ॥श्री वीर.॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

हरिचन्दन अगर कपूर, चूर सुगन्ध करा ।
तुम पदतर खेवत भूरि, आठों कर्म जरा ॥ श्री वीर.॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

ऋतु फल कल-वर्जित लाय, कंचन थार भरों ।
शिव-फल-हित हे जिनराय, तुमढिग भेंटधरो ॥श्री वीर.॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल-फल वसु सजि हिम-थार, तन-मन-मोदधरों ।
गुण गाऊं भव-दधितार, पूजत पाप हरों ॥श्री वीर.॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचकल्याणक

(राग-टप्पा चाल)

मोहि राखो हो सरना, श्री वर्द्धमान जिनरायजी ॥ मोहि. ॥
गरभ साढ़ सित छट्लियो तिथि, त्रिशला उर अघ हरना ।
सुर सुरपति तित सेवकरौ नित, मैं पूजों भव-तरना ।
मोहि राखो हो शरना, श्रीवर्द्धमान जिनरायजी ॥

ॐ ह्रीं आषाढशुक्ल षष्ठ्यां गर्भमंगल मण्डिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जनम चैतसित तेरस के दिन, कुण्डलपुर कन-वरना ।
सुरगिरि सुरगुरु पूज रचायो मैं पूजों भव हरना ॥ मोहि.॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्ल त्रयोदश्यां जन्ममंगल प्राप्तये श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

मंगसिर असित मनोहर दशमी, ता दिन तप आचरना।
नृप कुमार घर पारन कीनों, मैं पूजों तुम चरना ।। मोहि.।।

ॐ ह्री मार्गशीर्ष कृष्णदशम्यां तपोमंगल मण्डिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

शुकल दशै बैशाख दिवस अरि, घाति चतुक छय करना।
केवल लहि भवि भवसर तारे, जजों चरन सुखभरना। मोहि.।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगल मण्डिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कार्तिक श्याम अमावस शिव तिय, पावापुरतैं वरना।
गन फनि वृन्द जजैंतित बहुविधि, मैं पूजों भय हरना। मोहि.।।

ॐ ह्री कार्तिक कृष्णामावस्या मोक्षमंगल मण्डिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

छंद हरिगीता २८ मात्रा

गणधर असनिधर, चक्रधर, हलधर गदाधर वरवदा।
अरु चापधर, विद्या सुधर, तिरसूलधर सेवहिं सदा ।।
दुख हरन आनन्द भरन तारन, तरन चरन रसाल हैं।
सुकुमाल गुनमनिमाल उन्नत, भाल की जयमाल है ।।

छन्द धत्तानन्द

जय त्रिशलानंदन, हरिकृतवंदन, जगदानंदन चंदवरं।
भवताप निकंदन, तनमनकंदन रहित सपंदन नयनधरं ।।

छंद त्रोटक

जय केवल-भानु कलासदनं, भविकोक-विकाशन-कंदवनं।
जगजीत महा रिपु मोहहरं, रज ज्ञानदृगांवर चूर करं ।।१।।
गर्भादिक मंगल मण्डित हो, दुखदारिद को नित खण्डित हो।
जग मांहिं तुम्हीं सत पण्डित हो, तुमहीं भव भाव विहंडित हो ।।२।।
हरिवंश सरोजन को रवि हो, बलवन्त महन्त तुम्हीं कवि हो।
लहि केवल धर्म प्रकाश कियो, अबलों सोई मारग राजतियो ।।३।।
पुनि आप तने गुणमाहिं सही, सुर मग्न रहै जितने सब ही।
तिनकी वनिता गुन गावत हैं, लय माननिसों मन भावत हैं ।।४।।
पुनि नाचत रंग उमंग भरी, तुअ भक्ति विषै पग एम धरी।
झननं झननं झननं झननं, सुर लेत तहां तननं तननं ।।५।।

घननं घननं घन घण्ट बजै, दृमदं दृमदं मिरदंग सजै।
गगनांगन गर्भगता सुगता, ततता ततता अतता वितता ।।६।।
धृगतां धृगतां गति बाजत है, सुरताल रसाल जु छाजत है।
सननं सननं सननं नभ में, इक रुप अनेक जु धारि भ्रमें ।।७।।
कई नारि सु बीन बजावत हैं, तुमरो जस उज्ज्वल गावत हैं।
करतालविषै करताल धरै, सुरताल विशाल जु नाद करै ।।८।।
इन आदि अनेक उछाह भरी, सुरभक्ति करैं प्रभुजी तुमरी।
तुमही जगजीवन के पितु हो, तुम ही बिन कारण तें हितु हो ।।९।।
तुमही सब विघ्न विनाशन हो, तुमही निज आनन्द भासन हो।
तुमही चित चिंतित दायक हो, जगमांहि तुम्हीं सब लायक हो ।।१०।।
तुमरे पन मंगल मांहि सही, जिय उत्तम पुन्य लियो सब ही।
हमको तुमरी शरनागत है, तुमरे गुणमें मन पागत है ।।११।।
प्रभु मो हिय आप सदा बसिये, जब लौ वसु कर्म नहीं नसिये।
तबलों तुम ध्यान हिये वरतो, तबलों श्रुत चिंतन चित्तरतो ।।१२।।
तबलों व्रत चारित चाहतु हों, तबलों शुभ भाव सुगाहतु हों।
तबलौं सतसंगति नित्य रहो, तबलों मन संजम चित्त गहो ।।१३।।
जबलों नहिं, नाश करौ अरिको, शिवनारि वरों समता धरिको।
यह द्यो तबलौ हमको जिन जी, हम जाचतू हैं इतनी सुनजी ।।१४।।

धत्ता

श्रीवीर जिनेशा नमित सुरेशा नाग नरेशा भगतिभरा।
"वृन्दावन" ध्यावै विघन नशावै, बांछित पावैं शर्मवरा ।।

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय जयमाला महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

श्री सनमति के जुगलपद, जो पूजै धरि प्रीत।
"वृन्दावन" सो चतुर नर, लहै मुक्ति नवनीत ।।

।। पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।।

सोलहकारण पूजन

सोलहकारण भाय तीर्थंकर जे भये,
हरषे इन्द्र अपार मेरु पै ले गये ।
पूजा करि निज धन्य लख्यौ बहु चावसौं,
हमहूँ षोडश कारन भावैं भावसौं ।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

"परि पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि"

कंचन झारी निरमल नीर पूजों जिनवर गुन - गम्भीर ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ।।
दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह तीर्थंकर - पद -दाय ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धी - विनयसंपन्नता - शीलव्रतेष्वनतिचार - अभीक्ष्णज्ञानोपयोग - संवेग - शक्तितस्त्यागतपःसाधुसमाधिवैयावृत्यकरण - अर्हद्भक्ति - आचार्यभक्ति - बहुश्रुतभक्ति - प्रवचनभक्ति आवश्यकापरिहाणि - मार्गप्रभावना - प्रवचनवात्सल्य इति तीर्थंकरत्वकारणेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

चन्दन घसौं कपूर मिलाय, पूजौं श्रीजिनवर के पाय ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ।।दरश.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

तन्दुल धवल सुगन्ध अनूप, पूजौं जिनवर तिहुँ जगभूप ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ।।दरश.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनिवशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

फूल सुगन्ध मधुप गुंजार, पूजौं जिनवर जग - आधार ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ।।दरश.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

सद नेवज बहुविधि पकवान, पूजौं श्रीजिनवर गुणखान ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ।।दरश.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीपक ज्योति तिमिर छयकार, पूजूँ श्रीजिन केवलधार ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ।।दरश.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

अगर कपूर - गन्ध शुभ खेय श्री जिनवर आगे महकेय ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ।।दरश.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीफल आदि बहुत फलसार पूजौं जिन वांछित दातार ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ।।दरश.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जलफल आठोंदरब चढ़ाय 'द्यानत', वरतकरोंमनलाय ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ।।दरश.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

षोडश कारण गुण करै, हरै चतुरगति - वास ।
पाप पुञ्ज सब नाश के, ज्ञान - भान परकाश ।।

(चौपाई)

दरशविशुद्धि धरे जो कोई, ताको आवागमन न होई ।
विनय महाधारै जो प्राणी, शिव - वनिता की सखी बखानी ।।
शील सदा दृढ़ जो नर पालै, सो औरन की आपद टालै ।
ज्ञानाभ्यास करै मनमाहीं, ताके मोह - महातम नाहीं ।।
जो संवेग - भाव विसतारै, सुरग - मुकति - पद आप निहारै ।
दान देय मन हरष विशेखै, इह भव जस परभव सुख देखै ।।
जो तप तपै खपे अभिलाषा, चूरे करम - शिखर गुरु भाषा ।
साधु समाधि सदा मन लावै, तिहुँ जग भोग भोगि शिव जावै ।।
निशदिन वैयावृत्य करैया, सो निहचै भव - नीर तिरैया ।
जो अरहंतभगति मन आनै, सो जन विषय कषाय न जानै ।।
जो आचारज - भगति करै हैं, सो निर्मल आचार धरै हैं ।
बहुश्रुतवन्त - भगति जो करई, सो नर संपूरन श्रुत धरई ।।
प्रवचन भगति करै जो ज्ञाता, लहै ज्ञान परमानन्द - दाता ।

षट् आवश्यक काल जो साधै, सो ही रत्नत्रय आराधै ॥
धरम - प्रभाव करै जे ज्ञानी, तिन शिव - मारग रीति पिछानी ।
वत्सल अंग सदा जो ध्यावै, सो तीर्थंकर पदवी पावैं ॥
ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा)

एही सोलह भावना, सहित धरै व्रत जोय ।
देव इन्द्र नरवंद्य पद, 'द्यानत' शिव पद होय ॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

सोलह अंगों के सोलह अर्घ

सवैया तेईसा

दर्शन शुद्ध न होवत जो लग, तो लग जीव मिथ्याती कहावे ।
काल अनंत फिरो भव में, महादुःखनको कहुँ पार न पावे ॥
दोष पचीस रहित गुण - अम्बुधि, सम्यक्दरशन शुद्ध ठरावे ।
'ज्ञान' कहे नर सोहि बड़ो, मिथ्यात्व तजे जिनमारग ध्यावै ॥
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धिभावनायै नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

देव तथा गुरुराय तथा, तप संयम शील व्रतादिक - धारी ।
पाप के हारक काम के छारक, शल्य-निवारक कर्म-निवारी ॥
धर्म के धीर कषाय के भेदक, पंच प्रकार संसार के तारी ।
'ज्ञान' कहे विनयो सुखकारक, भाव धरो मन राखो विचारी ॥
ॐ ह्रीं विनय सम्पन्नता भावनायै नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

शील सदा सुधकारक है, अतिचार - विवर्जित निर्मल कीजे ।
दानव देव करें तसु सेव, विषानल भूत पिशाच पतीजे ॥
शील बड़ो जग में हथियार, जु शील को उपमा काहे की दीजे ।
'ज्ञान' कहे नहिं शील बराबर, तातें सदा दृढ़ शील धरीजे ॥
ॐ ह्रीं निरतिचारशीलव्रतभावनायै नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

ज्ञान सदा जिनराज को भाषित, आलस छोड़ पढ़े जो पढ़ावे ।
द्वादस दोउ अनेकहुँ भेद, सुनाम मती श्रुति पंचम पावे ॥
चारहुँ भेद निरन्तर भाषित, ज्ञान अभीक्ष्ण शुद्ध कहावे ।
'ज्ञान' कहे श्रुत भेद अनेक जु, लोकालोक हि प्रगट दिखावे ॥
ॐ ह्रीं अभीक्ष्णज्ञानोपयोगभावनायै नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

भ्रात न तात न पुत्र कलत्र न, संयम सज्जन ए सब खोटो ।
मन्दिर सुन्दर काय सखा, सबको इसको हम अंतर मोटो ॥

भाउके भाव धरी मन भेदन, नाहिं संवेग पदारथ छोटो ।
'ज्ञान' कहे शिव साधन को जैसो, साहको काम करे जु बणोटो ॥
ॐ ह्रीं संवेगभावनायै नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

पात्र चतुर्विध देख अनूपम, दान चतुर्विध भावसुँ दीजे ।
शक्तिसमान अभ्यागत को, अति आदर से प्रणिपत्य करीजे ॥
देवत जे नर दान सुपात्रहिं, तास अनेकहिं कारण सीजे ।
बोलत 'ज्ञान' देहि शुभ दान जु, भोग सुभूमि महासुख लीजे ॥
ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागभावनायै नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

कर्म कठोर गिरावन को निज, शक्तिसमान उपोषण कीजे ।
बारह भेद तपे तप सुन्दर, पाप जलाञ्जलि काहे न दीजे ॥
भाव धरी तप घोर करो, नर, जन्म सदा फल काहे न लीजे ।
'ज्ञान' कहे तप जे नर भावत, ताके अनेकहिं पातक छीजे ॥
ॐ ह्रीं शक्तितस्तपोभावनायै नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

साधु समाधि करो नर भावक, पुण्य बड़ो उपजे अघ छीजे ।
साधु की संगति धर्म को कारण, भक्ति करे परमारथ सीजे ॥
साधुसमाधि करे भव छूटत, कीर्ति - छटा त्रैलोक में गाजे ।
'ज्ञान' कहे यह साधु बड़ो, गिरिशृङ्ग गुफा बिच जाय विराजे ॥
ॐ ह्रीं साधुसमाधिभावनायै नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

कर्म के योग व्यथा उदई मुनि, पुंगव कुन्तसभेषज कीजे ।
पीत कफान लसास भगन्दर, तापको सूल महागद छीजे ॥
भोजन साथ बनायके औषध, पथ्य कुपथ्य विचार के दीजे ।
'ज्ञान' कहे नित ऐसी वैय्यावृत्य करे तस देव पतीजे ॥
ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणभावनायै नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

देव सदा अरिहन्त भजो जई, दोष अठारा किये अति दूरा ।
पाप पखाल भये अति निर्मल, कर्म कठोर किये चकचूरा ॥
दिव्य अनन्त-चतुष्टयशोभित, घोर मिथ्यान्ध - निवारण सूरा ।
'ज्ञान' कहे जिनराज अराधो, निरन्तर जे गुण - मन्दिर पूरा ॥
ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तिभावनायै नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

देवत ही उपदेश अनेक सु, आप सदा परमारथ - धारी ।
देश विदेश विहार करें, दश धर्म धरें भव - पार उतारी ॥
ऐसे अचारज भाव धरी भज, सो शिव चाहत कर्म निवारी ।
'ज्ञान' कहे गुरु - भक्ति करो नर, देखत ही मनमांहि विचारी ॥
ॐ ह्रीं आचार्यभक्तिभावनायै नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

आगम छन्द पुराण पढ़ावत, साहित तर्क वितर्क बखाने ।
काव्य कथा नव नाटक पूजन, ज्योतिष वैद्यक शास्त्र प्रमाने ॥
ऐसे बहुश्रुत साधु मुनीश्वर, जो मन में दोउ भाव न आने ।
बोलत 'ज्ञान' धरी मनसान जु, भाग्य विशेषतें जानहिं जाने ॥

ॐ ह्रीं बहुश्रुतभक्तिभावनायै नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

द्वादस अंग उपांग सदागम, ताकी निरन्तर भक्ति करावे ।
वेद अनूपम चार कहे तस, अर्थ भले मन मांहि ठरावे ॥
पढ़ बहुभाव लिख्यो निज अक्षर, भक्ति करी बड़ि पूज रचावे ।
'ज्ञान' कहे जिन आगम भक्ति, करो सद्-बुद्धि बहुश्रुत पावे ॥

ॐ ह्रीं प्रवचनभक्तिभावनायै नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

भाव धरे समता सब जीवसु स्तोत्र पढ़े मुख से मनहारी ।
कायोत्सर्ग करे मन प्रीतसुं, वंदन देव - तणों भव तारी ॥
ध्यान धरी मद दूर करी, दोउ बेर करे पड़कम्मन भारी ।
'ज्ञान' कहे मुनि सो धनवन्त जु, दर्शन ज्ञान चरित्र उधारी ॥

ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणिभावनायै नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जिनपूजा रचो परमारथसूं, जिन आगे नृत्य महोत्सव ठाणों ।
गावत गीत बजावत ढोल, मृदंग के नाद सुधांग बखाणो ॥
संग प्रतिष्ठा रचो जल जातरा, सद्गुरु को साहमो कर आणो ।
'ज्ञान' कहे जिन मार्गप्रभावन, भाग्यविशेषसुं जानहिं जाणो ॥

ॐ ह्रीं मार्गप्रभावनायै नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

गौरव भाव धरो मन से मुनि-पुङ्गव को नित वत्सल कीजे ।
शील के धारक भव्य के तारक, तासु निरन्तर स्नेह धरीजे ॥
धेनु यथा निजबालक के, अपने जिय छोड़ि न और पतीजे ।
'ज्ञान' कहे भवि लोक सुनो, जिन वत्सल भावधरे अघ छीजे ॥

ॐ ह्रीं प्रवचन वात्सल्य भावनायै नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जाप - ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यै नमः, ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नतायै नमः, ॐ ह्रीं शीलव्रताय नमः, ॐ ह्रीं अभीक्ष्णज्ञानोपयोगाय नमः, ॐ ह्रीं संवेगाय नमः, ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागाय नमः, ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे नमः, ॐ ह्रीं साधुसमाध्यै नमः, ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणाय नमः, ॐ ह्रीं अर्हद्भक्त्यै नमः, ॐ ह्रीं आचार्यभक्त्यै नमः, ॐ ह्रीं बहुश्रुतभक्त्यै नमः, ॐ ह्रीं प्रवचनभक्त्यै नमः, ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाण्यै नमः, ॐ ह्रीं मार्गप्रभावनायै नमः, ॐ ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वाय नमः ॥

दशलक्षणधर्म पूजन

उत्तम छिमा मारदव आरजव भाव हैं ।
सत्य शौच संयम तप त्याग उपाव हैं ।
आकिंचन ब्रह्मचरज धरम दश सार हैं,
चहुँगति दुखतैं काढ़ि मुकति करतार हैं ॥

ॐ ह्रीं उत्तम क्षमादि दशलक्षणधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

हेमाचल की धार, मुनि-चित सम शीतल सुरभि ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं उत्तम क्षमा मार्दवार्जव सत्य शौच संयम तपस्त्यागाकिंचन्य ब्रह्मचर्येति धर्माय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

चन्दन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्माय संसार ताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अमल अखण्डित सार, तन्दुल चन्द्र समान शुभ ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्माय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

फूल अनेक प्रकार, महकें ऊरध-लोकलों ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्माय कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

नेवज विविध निहार, उत्तम षट्-रस-संजुगत ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्माय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

बाति कपूर सुधार, दीपक-जोति सुहावनी ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्माय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगन्धता ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्माय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

फल की जाति अपार, घ्राण-नयन-मन-मोहने ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्माय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

आठों दरब संवार, 'द्यानत' अधिक उछाहसौं ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्माय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

(सोरठा, चौपाई एवं हरिगीतिका)

पीडैं दुष्ट अनेक, बाँध मार बहुविधि करैं ।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजै पीतमा ॥
उत्तम छिमा गहो रे भाई, इह-भव जस पर भव सुखदाई ।
गाली सुनि मन खेद न आनो, गुन को औगुन कहै अयानो ॥
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बाँध मार बहुविधि करै ।
घर तें निकारै तन विदारै, वैर जो न तहाँ धरै ॥
तैं करम पूरब किये खोटे सहै क्यों नहिं जीयरा ।
अति क्रोध अगनि बुझाय प्रानी, साम्य-जल ले सीयरा ॥
ॐ ह्रीं उत्तम क्षमा धर्माङ्गाय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

मान महाविषरूप, करहि नीच-गति जगत में ।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा ॥
उत्तम मार्दव गुन मन माना, मान करन को कौन ठिकाना ।
वस्यो निगोद माँहि तैं आया, दमरी रूकन भाग विकाया ॥
रूकन विकाया भाग वशतैं, देव इक-इन्द्री भया ।
उत्तम मुआ चाण्डाल हूवा, भूप कीड़ों में गया ॥
जीतव्य जोवन धन गुमान, कहा करैं जल-बुदबुदा ।
करि विनय बहु-गुन बड़े जनकी, ज्ञान का पावै उदा ॥
ॐ ह्रीं उत्तम मार्दव धर्माङ्गाय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

कपट न कीजै कोय, चोरन के पुर ना बसै ।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु सम्पदा ॥
उत्तम आर्जव रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दुखदानी ।
मन में हो सो वचन उचरिये, वचन होय तो तन सौं करिये ॥
करिये सरल तिहुँ जोग अपने देख निरमल आरसी ।
मुख करैं जैसा लखै तैसा, कपट-प्रीति अंगारसी ॥
नहि लहै लछमी अधिक छलकरि, कर्म-बन्ध विशेषता ।
भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता ॥
ॐ ह्रीं उत्तम आर्जव धर्माङ्गाय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

कठिन वचन मत बोल, परनिन्दा अरु झूठ तज ।
साँच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी ॥
उत्तम सत्य-बरत पालीजै, पर-विश्वासघात नहिं कीजै ।
साँचे-झूठे मानुष देखो, आपन पूत स्वपास न पेखो ॥
पेखो तिहायत पुरुष साँचे, को दरब सब दीजिये ।
मुनिराज-श्रावक की प्रतिष्ठा, साँच गुण लख लीजिये ॥
ऊँचे सिंहासन बैठि वसु नृप, धरम का भूपति भया ।
वच झूठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया ॥
ॐ ह्रीं उत्तम सत्य धर्माङ्गाय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

धरि हिरदै सन्तोष, करहु तपस्या देह सों ।
शौच सदा निरदोष, धरम बड़ो संसार में ॥
उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पाप को बाप बखाना ।
आशा-पास महा दुःखदानी, सुख पावै सन्तोषी प्रानी ॥
प्रानी सदा शुचि शील जप तप, ज्ञान ध्यान प्रभाव तैं ।
नित गंग जमुन समुद्र न्हाये, अशुचि-दोष स्वभावतैं ॥
ऊपर अमल मल भर्यो भीतर, कौन विधि घट शुचि कहै ।
बहु देह मैली सुगुन-थैली, शौच-गुन साधू लहै ॥
ॐ ह्रीं उत्तम शौच धर्माङ्गाय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

काय छहों प्रतिपाल, पंचेन्द्रिय मन वश करो ।
संजम-रतन संभाल, विषय-चोर बहु फिरत हैं ॥
उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव-भव के भाजें अघ तेरे ।
सुरग-नरकपशुगति में नाहीं, आलस हरन करन सुख ठाहीं ॥
ठाहीं पृथी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो ।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो ॥
जिस बिना नहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जग-कीच में ।
इक घरी मत विसरो करो नित, आव जम-मुख बीच में ॥
ॐ ह्रीं उत्तम संयम धर्माङ्गाय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

तप चाहैं सुरराय, करम-सिखर को वज्र है ।
द्वादशविधिसुखदाय, क्यों न करैं निज सकति सम ॥
उत्तम तप सबमाँहि बखाना, करम-शैल को वज्र-समाना ।
बस्यो अनादि निगोद मँझारा, भू विकलत्रय पशु तन धारा ॥

धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता ।
श्रीजैनवाणी तत्त्वज्ञानी, भई विषय-पयोगता ॥
अति महा दुरलभ त्याग विषय, कषाय जो तप आदरैं ।
नर-भव अनूपम कनक घर पर, मणिमयी कलसा धरैं ॥

ॐ ह्रीं उत्तम तपधर्माङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

दान चार परकार, चार संघ को दीजिए ।
धन बिजुली उनहार, नर-भव लाहो लीजिए ॥
उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषध शास्त्र अभय आहारा ।
निहचै राग-द्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों ज्ञान सँभारे ॥
दोनों सँभारे कूप-जल सम, दरब घर में परिनया ।
निज हाथ दीजे साथ लीजे, खाय खोया बह गया ॥
धनि साध शास्त्र अभय दिवैया, त्याग राग विरोध को ।
बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहैं नाहीं बोध को ॥

ॐ ह्रीं उत्तम त्यागधर्माङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

परिग्रह चौबीस भेद, त्याग करैं मुनिराज जी ।
तिसना भाव उछेद, घटती जान घटाइए ॥
उत्तम आकिञ्चन गुण जानो, परिग्रह-चिन्ता दुख ही मानो ।
फाँस तनक सी तन में सालै, चाह लंगोटी की दुख भालैं ॥
भालैं न समता सुख कभी नर, बिना मुनि-मुद्रा धरै ।
धनि नगन पर तन-नगन ठाढ़े सुर-असुर पायनि परैं ॥
घरमाहिं तिसना जो घटावै, रुचि नहीं संसार सौं ।
बहु धन बुरा हू भला कहिये, लीन पर उपगार-सौं ॥

ॐ ह्रीं उत्तम आकिञ्चन्यधर्माङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

शील-बाढ़ नौ राख, ब्रह्म-भाव अन्तर लखो ।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नर भव सदा ॥
उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता बहिन सुता पहिचानो ।
सहैं बान-वरषा बहु सूरे, टिकै न नैन-बान लखि कूरे ॥
कूरे तिया के अशुचि तन में, काम-रोगी रति करैं ।
बहु मृतक सड़हिं मसान माहीं, काग ज्यों चोंचे भरैं ॥
संसार में विषयाभिलाषा तजि गये जोगीश्वरा ।
'द्यानत' धरम दश पैडि चढ़िकै, शिव-महल में पग धरा ॥

ॐ ह्रीं उत्तम ब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

दश लच्छन वन्दौं सदा, मनवाँछित फलदाय ।
कहों आरती भारती, हम पर होहु सुहाय ॥

(चौपाई)

उत्तम छिमा जहाँ मन होई, अन्तर-बाहिर शत्रु न कोई ।
उत्तम मार्दव विनय प्रकासै, नानाभेद ज्ञान सब भासै ॥
उत्तम आर्जव कपट मिटावै, दुरगति त्यागि सुगति उपजावै ।
उत्तम सत्य-वचन मुख बोलै, सो प्रानी संसार न डोले ॥
उत्तम शौच लोभ-परिहारी, सन्तोषी गुण-रतन भण्डारी ।
उत्तम संयम पालै ज्ञाता, नर-भव सफल करै ले साता ॥
उत्तम तप निरवांछित पालै, सो नर करम-शत्रु को टालै ।
उत्तम त्याग करै जो कोई, भोगभूमि-सुर-शिवसुख होई ॥
उत्तम आकिञ्चन व्रत धारै, परम समाधि दशा विस्तारै ।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावै, नर-सुर सहित मुकति-फल पावै ॥

ॐ ह्रीं उत्तम क्षमा मार्दवार्जव शौच सत्य संयम तपस्त्यागाकिंचन्य ब्रह्मचर्य दशलक्षण धर्माय जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

करै करम की निरजरा, भव पींजरा विनाश ।
अजर अमर पद को लहैं, 'द्यानत' सुख की राश ॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

पंचमेरु पूजन

तीर्थंकरों के न्हवन-जलतैं भये तीरथ शर्मदा ।
तातैं प्रदच्छन देत सुर-गन पंच मेरुन की सदा ॥
दो जलधि ढाई द्वीप में सब गनत-मूल विराजहीं ।
पूजौं असी जिनधाम-प्रतिमा होहि सुख दुःख भाजहीं ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरु सम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

॥ परिपुष्पाजंलि निक्षेत् ॥

सीतल-मिष्ट सुवास मिलाय, जलसौं पूजौं श्रीजिनराय ।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा को करों प्रणाम ।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं सुदर्शन-विजय-अचल-मन्दिर-विद्युन्मालिपंचमेरु-सम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल केशर कपूर मिलाय, गंधसौं पूजौं श्रीजिनराय ।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ।। पाँचों. ।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्य: चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अमल अखंड सुगंध सुहाय, अच्छतसौं पूजौं श्री जिनराय ।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ।। पाँचों. ।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

बरन अनेक रहे महकाय, फूलसौं पूजौं श्रीजिनराय ।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ।। पाँचों. ।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्य: पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

मनवांछित बहु तुरत बनाय, चरुसौं पूजौं श्रीजिनराय ।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ।। पाँचों. ।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

तमहर उज्ज्वल ज्योति जगाय, दीपसौं पूजौं श्रीजिनराय ।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ।। पाँचों. ।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

खेऊँ अगर अमल अधिकाय, धूपसौं पूजौं श्रीजिनराय ।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ।। पाँचों ।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

सुरस सुवर्ण सुगंध सुभाय, फलसों पूजौं श्रीजिनराय ।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ।। पाँचों.।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

आठदरबमय अरघ बनाय 'द्यानत', पूजौं श्रीजिनराय ।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ।। पाँचों.।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

प्रथम सुदर्शन-स्वामि, विजय अचलमन्दर कहा ।
विद्युन्माली नाम, पंच मेरु जग में प्रकट ।।

(बेसरी छंद)

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजै, भद्रशाल वन भूपर छाजै ।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वन्दना हमारी ।।
ऊपर पंच-शतक पर सोहै, नन्दनवन देखत मन मोहै ।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वन्दना हमारी ।।

साढ़े बासठ सहस ऊँचाई, वन सुमनसशोभै अधिकाई ।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वन्दना हमारी ।।
ऊँचा जोजनसहसछत्तीसं, पांडुक वन सोहैगिरि-सीसं ।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वन्दना हमारी ।।
चारों मेरु समान बखाने, भूपर भद्रसाल चहुँ जानै ।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन वन्दना हमारी ।।
ऊँचे पांच शतक पर भाखे, चारों नन्दनवन अभिलाखे ।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन वन्दना हमारी ।।
साढ़े पचपन सहस उतंगा, वन सौमनस चार बहुरंगा ।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन वन्दना हमारी ।।
उच्चअठाइस सहस बताये, पाण्डुक चारोंवनशुभ गाये ।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन वन्दना हमारी ।।
सुर नर चारन वदंन आवैं, सो शोभा हम किहमुख गावैं ।
चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मनवचतन वन्दना हमारी ।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसंबन्धिजिनचैत्यालस्थजिनबिम्बेभ्यो जयमाला महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा)

पंच मेरु की आरती, पढ़ै सुनै जो कोय ।
'द्यानत' फल जानै प्रभू, तुरत महासुख होय ।।

।। पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।।

रत्नत्रय पूजन

चहुँगति-फनि-विष-हरन-मणि, दु:ख-पावक-जल-धार।
शिव-सुख-सुधा-सरोवरी, सम्यक्-त्रयी निहार ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनं । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

"परि पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि"

(सोरठा)

क्षीरोदधि उनहार, उज्ज्वल जल अति सोहनो ।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

चन्दन-केसर गारि, परिमल-महा-सुरंगमय ।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय भवाताप विनाशनाय चंदन निर्वपामीति स्वाहा ।

तन्दुल अमल चितार, वासमती-सुखदास के।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ ॥
ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।
महकैं फूल अपार, अलि गुजैं ज्यों थुति करैं।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ ॥
ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।
लाडू बहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगन्धयुत।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ ॥
ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
दीप-रतनमय सार, जोत प्रकाशै जगत में ।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ ॥
ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।
धूप सुवास विथार, चन्दन अगर कपूर की ।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ ॥
ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।
फल शोभा अधिकार, लोंगे छुहारे जायफल ।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ ॥
ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।
आठ दरब निरधार, उत्तम सो उत्तम लिये ।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ ॥
ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।
सम्यक् दरशन ज्ञान, व्रत शिव-मग तीनों मयी ।
पार उतारन यान, 'द्यानत' पूजों व्रत सहित ॥
ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय अनर्घपद प्राप्तये पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

सम्यग्दर्शन पूजन

सिद्ध अष्ट-गुनमय प्रगट, मुक्त-जीव-सोपान ।
ज्ञानचरित जिहँ बिन अफल, सम्यक्दर्श प्रधान ॥
ॐ ह्रीं अष्टाङ्ग-सम्यग्दर्शन ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।
"परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामि"
नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरै मल छय करै ।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल केशर घनसार, ताप हरै सीतल करै ।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।
अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।
पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।
नेवज विविध प्रकार, छुधा हरै थिरता करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
दीप-ज्योति तमहार, घट-पट परकाशै महा।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।
धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।
श्रीफल आदि विथार, निहचैं, सुरशिवफल करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा ।
जल गन्धाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु ।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)
आप आप निहचै लखैं, तत्त्व प्रीति-व्योहार।
रहित दोष पच्चीस हैं, सहित अष्ट गुन सार॥
(चौपाई, मिश्रित गीता)
सम्यक् दरशन-रतन गहीजे, जिन-वच में सन्देह न कीजै।
इहभवविभव-चाहदुखदानी, पर-भवभोग चहै मत प्रानी॥

प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरम गुरु प्रभु परखिये ।
पर-दोष ढकिये धरम डिगते, को सुथिर कर हरखिये ॥
चहुँ संघ को वात्सल्य कीजै, धरम की परभावना ।
गुन आठसों गुन आठ लहिकैं, इहाँ फेर न आवना ॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्ग सहित पंचविंशति दोष रहित सम्यग्दर्शनाय जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

सम्यग्ज्ञान पूजन

पंच भेद जाके प्रगट, ज्ञेय-प्रकाशन भान ।
मोह-तपन-हर-चन्द्रमा, सोई सम्यग्ज्ञान ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरण ।

"परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामि"

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरै मल छय करै ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल केसर घनसार, ताप हरै सीतल करै ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरै थिरता करै ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीप-जोति तमहार, घट-पट परकाशैं महा ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीफल आदि विथार, निहचैं, सुरशिवफल करै ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल गन्धाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)

आप आप जानैं नियत, ग्रन्थ-पठन-व्योहार ।
संशय विभ्रम-मोह बिन, अष्ट अंग गुनकार ॥

(चौपाई, मिश्रित गीता)

सम्यक्ज्ञान-रतन मन भाया, आगम तीजा नैन बताया ।
अच्छर शुद्ध अर्थ पहिचानो, अच्छर अरथ उभय संग जानो ॥
जानो सुकाल-पठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइये ।
तप रीति गहि बहु मौन देकैं, विनय-गुण चित्त लाइए ॥
ये आठ भेद करम उछेदक, ज्ञान-दर्पण देखना ।
इस ज्ञान ही सों भरत सीझा, और सब पट पेखना ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अनर्घपद प्राप्तये जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

सम्यक्चारित्र पूजन

विषयरोग औषध महा, दव-कषाय-जलधार ।
तीर्थंकर जाको धरै, सम्यक् चारित्र सार ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक्चारित्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

"परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामि"

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरै मल छय करै ।
सम्यक्चारित सार, तेरह विध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल केसर घनसार, ताप हरै शीतल करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विध पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।
अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विध पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।
पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विध पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।
नेवज विविध प्रकार, छुधा हरै थिरता करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विध पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।
दीप-जोति तमहार, घट-पट परकाशै महा।
सम्यक्चारित सार, तेरह विध पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विध पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
श्रीफल आदि विथार, निहचैं, सुरशिवफल करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विध पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय फलं निर्वपामीति स्वाहा।
जल गन्धाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यक्चारित सार, तेरह विध पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

आप आप थिर नियत नय, तप संजम व्योहार।
स्वपरदया दोनों लिये, तेरहविध दुःखहार ॥

(चौपाई मिश्रित गीता)

सम्यक् चारित रतन सँभालो, पाँच पाप तजि के व्रत पालौं।
पंचसमिति त्रयगुपति गहीजै, नरभव सफल करहु तन छीजै ॥

छीजै सदा तन को जतन यह, एक संजम पालिए।
बहु रुल्यो नरक-निगोदमाहीं, विष-कषायनि टालिए ॥
शुभ-करम जोग सुघाट आयो, पार हो दिन जात है।
'द्यानत' धरम की नाव बैठो, शिवपुरी कुशलात है ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय जयमाला महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय जयमाला

सम्यक्दरशनज्ञान-व्रत, इस बिन मुक्ति न होय।
अन्ध पंगु अरु आलसी, जुदे जलें दवलोय ॥

(चौपाई)

जापै ध्यान सुथिर बन आवै, ताके करमबन्ध कट जावै।
तासों शिव-तिय प्रीति बढ़ावै, जो सम्यक् रतनत्रय ध्यावै ॥
ताको चहुँगति के दुःख नाहीं, सो न परे भवसागर माहीं।
जनम-जरा मृत दोष मिटावै, जो सम्यक् रत्नत्रय ध्यावै ॥
सोई दशलच्छन को साधैं, सो सोलहकारण आराधै।
सो परमातमपद उपजावै, जो सम्यक्रत्नत्रय ध्यावै ॥
सोई शक्र-चक्रिपद लेई, तीनलोक के सुख विलसेई।
सो रागादिक भाव बहावै, जो सम्यक् रत्नत्रय ध्यावै ॥
सोई लोकालोक निहारे, परमानन्ददशा विस्तारे।
आप तिरैं औरन तिरवावैं, जो सम्यक् रत्नत्रय ध्यावै ॥
ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक् चारित्राय जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

एक स्वरूपप्रकाश निज, वचनकह्यो नहिं जाय।
तीन भेद व्योहार सब, 'द्यानत' को सुखदाय ॥
॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

क्षमावाणी पूजन

(छप्पय छन्द)

अंग क्षमा जिन धर्म तनो दृढ़ मूल बखानो।
सम्यक रतन संभाल हृदय में निश्चय जानो ॥
तज मिथ्या विष मूल और चित निर्मल ठानो।
जिनधर्मी सों प्रीति करो सब पातक भानो ॥

रत्नत्रय गह भविक जन, जिन आज्ञा सम चालिए ।
निश्चय कर आराधना, कर्म राशि को जालिए ।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्ररूपरत्नत्रय अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।

"परिपुष्पाञ्जलि क्षिपामि"

क्षमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर वचन गहाय ।।टेक।।
नीर सुगन्ध सुहावनो, पद्म द्रह को लाय ।
जन्म रोग निरवारिये, सम्यक् रत्न लहाय ।।क्ष.।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयाय नमः जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

केसर चन्दन लीजिये, संग कपूर घसाय ।
अलि पंकति आवत घनी, बास सुगन्ध सुहाय ।।क्ष.।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयाय नमः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

शालि अखंडित लीजिए, कंचन थाल भराय ।
जिन पद पूजों भाव सों, अक्षय पद को पाय ।।क्ष.।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयाय नमः अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

पारिजात अरु केतकी, पहुप सुगन्ध गुलाब ।
श्रीजिन चरण सरोजकूँ, पूज हरष चित चाव ।।क्ष.।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयाय नमः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

शक्कर घृत सुरभी तनों, व्यंजन षट् रस स्वाद ।
जिनके निकट चढ़ाय कर, हिरदे धरि आह्लाद ।।क्ष.।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयाय नमः नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

हाटक मय दीपक रचो, बाति कपूर सुधार ।
शोधक घृत कर पूजिये, मोह तिमिर निरवार ।।क्ष.।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयाय नमः दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

कृष्णागर करपूर हो, अथवा दश विध जान ।
जिन चरणां ढिग खेइये, अष्ट करम की हान ।।क्ष.।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयाय नमः धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

केला अम्ब अनार हो, नारि केल ले दाख ।
अग्र धरो जिन पद तने, मोक्ष होय जिन भाख ।।क्ष.।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयाय नमः फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल फल आदि मिलाइये, अरघ करो हरषाय ।
दुःख जलांजलि दीजिए, श्रीजिन होय सहाय ।।क्ष.।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयाय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

उनतिस अंग की आरती, सुनो भविक चित्त लाय ।
मन वच तन सरधा करो, उत्तम नर भव पाय ।।

जयमाला

(चौपाई)

जैन धर्म में शंक न आनै, सो निःशंकित गुण चित ठानै ।
जप तप कर फल वांछे नाहीं, निःकांक्षित गुण हो जिस माहीं ।।
परको देखि गिलान न आने, सो तीजा सम्यक् गुण ठाने ।
आन देवको रंच न माने, सो निर्मूढ़ता गुण पहिचाने ।।
परको औगुण देख जु ढाके, सो उपगूहन श्रीजिन भाखे ।
जैनधर्म तें डिगता देखे, थापे बहुरि थिति कर लेखे ।।
जिनधर्मी सों प्रीति निवहिये, गऊ बच्छावत् वच्छल कहिये ।
ज्यों त्यों जैन उद्योत बढ़ावे, सो प्रभावना अंग कहावे ।।
अष्ट अंग यह पाले जोई, सम्यग्दृष्टि कहिये सोई ।
अब गुण आठ ज्ञान के कहिये, भाखे श्रीजिन मन में गहिये ।।
व्यंजन अक्षर सहित पढ़ीजे, व्यंजन व्यजित अंग कहीजे ।
अर्थ सहित शुद्ध शब्द उचारे, दूजा अर्थ समग्रह धारे ।।
तदुभय तीजा अंग लखीजे, अक्षर अर्थ सहित जु पढ़ीजे ।
चौथा कालाध्ययन विचारै काल समय लखि सुमरण धारे ।।
पंचम अंग उपधान बतावै, पाठ सहित तब बहु फल पावे ।
षष्टम विनय सुलब्धि सुनीजै, वानी विनय युक्त पढ़ लीजे ।।
जापै पढ़े न लौपै जाई, सप्तम अंग गुरुवाद कहाई ।
गुरुकी बहुत विनय जु करीजे, सो अष्टम अंगधर सुख लीजे ।।
यह आठों अंग ज्ञान बढ़ावें, ज्ञाता मन वच तन कर ध्यावें ।
अब आगे चारित्र सुनीजे, तेरह विध धर शिव सुख लीजे ।।

छहों काय की रक्षा कर है, सोई अहिंसाव्रत चित धर है ।
हितमित सत्य वचन मुख कहिये, सोसतवादी केवल लहिये ॥
मन वच काय न चोरी करिये, सोई अचौर्यव्रत चित धरिये ।
मन्मथ भय मन रंच न आने, सो मुनि ब्रह्मचर्य व्रत ठाने ॥
परिग्रह देख न मूर्छित होई, पंच महाव्रत धारक सोई ।
ये पाँचों महाव्रत सु खरे हैं, सब तीर्थंकर इनको करे हैं ॥
मन में विकल्प रंच न होई, मनोगुप्ति मुनि कहिये सोई ।
वचन अलीक रंच नहिं भाखें, वचन गुप्तिसो मुनिवर राखें ॥
कायोत्सर्ग परीषह सहि हैं, ता मुनि कायगुप्ति जिन कहि है ।
पंच समिति अब सुनिए भाई, अर्थ सहित भाषे जिनराई ॥
हाथ चार जब भूमि निहारे, तब मुनि ईर्य्या मग पद धारे ।
मिष्ट वचन मुख बोलें सोई, भाषा समिति तास मुनि होई ॥
भोजन छयालिस दूषण टारे, सो मुनि एषण शुद्धि विचारे ।
देखके पोथी ले अरु धरि हैं, सो आदान निक्षेपन वरि हैं ॥
मल मूत्र एकान्त जु डारें, परतिष्ठापन समिति संभारे ।
यह सब अंग उनतीस कहे हैं, श्रीजिन भाखे गणेश गहे हैं ॥
आठ आठ तेरह विध जानों, दर्शन ज्ञान चारित्र सुठानो ।
तातें शिवपुर पहुँचो जाई, रत्नत्रय की यह विधि भाई ॥
रत्नत्रय पूरण जब होई, क्षमा क्षमा करियो सब कोई ।
चैत माघ भादों त्रय वारा, क्षमा क्षमा हम उर में धारा ॥
यह क्षमावणी आरती, पढ़ें सुने जो कोय ।
कहे 'मल्ल' सरधा करो, मुक्ति श्रीफल होय ॥

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयाय नमः जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

दोष न गहिये कोय, गुण गण गहिये भावसों ।
भूलक चूक जो हाये, अर्थ विचारि जु शोधिये ॥
॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

श्री रविव्रत पूजन

यह भविजन हितकार, सु रविव्रत जिन कही । करहु भव्यजन सर्व, सुमन देकें सही ॥
पूजो पार्श्व जिनेन्द्र, त्रियोग लगायके । मिटैं सकल सन्ताप, मिलै निधि आयके ॥
मति सागर इक सेठ, सु ग्रन्थन में कहो । उनने भी यह पूजा कर आनन्द लहो ॥
तातें रविव्रत सार, सो भविजन कीजिये । सुख सम्पति संतान, अतुल निधि लीजिये ॥
प्रणमों पार्श्व जिनेश को,हाथ जोड़ सिर नाय । परभव सुख के कारने,पूजा करूँ बनाय ॥
रविवार व्रत के दिना, ये ही पूजन ठान । ता फल सम्पत्ति को लहैं, निश्चय लीजे मान ॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणं ।

"परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामि"

उज्ज्वल जल भरकें अतिलायो, रतन कटोरन माहीं ।
धार देत अति हर्ष बढ़ावत, जन्म जरा मिट जाहीं ॥
पारसनाथ जिनेश्वर पूजो, रविव्रत के दिन भाई ।
सुख सम्पत्ति बहु होय तुरतही, आनन्द मंगल दाई ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

मलयागिर केशर अति सुन्दर, कुंकुम रंग बनाई ।
धारदेत जिन चरनन आगे, भव आताप नशाई ॥पारस.॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय भवाताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

मोतीसम अति उज्ज्वल तंदुल, लावो नीर पखारो ।
अक्षयपदके हेतु भावसों, श्रीजिनवर ढ़िग धारो ॥पारस.॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

बेला अरु मचकुंद चमेली, पारिजात के ल्यावो ।
चुनचुनश्रीजिन अग्रचढ़ाऊँ, मनवांछित फल पावो ॥पारस.॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

बावर फैनी गुजिया आदिक, घृत में लेत पकाई ।
कंचन थार मनोहर भरके, चरनन देत चढ़ाई ॥पारस.॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

मणिमय दीप रतनमय लेकर, जगमग जोति जगाई ।
जिनके आगे आरति करके, मोहतिमिर नश जाई ।।पारस.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

चूरन कर मलयागिर चंदन, धूप दशांग बनाई ।
तट पावक में खेय भाव सों, कर्मनाश हो जाई ।।पारस.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीफल आदि बदाम सुपारी, भांति-भाति के लावो ।
श्रीजिन चरन चढ़ाय हरषकर, तातेंशिव फल पावो ।।पारस.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल गंधादिक अष्ट द्रव्य ले, अर्घ बनावो भाई ।
नाचत गावत हर्षभाव सों, कंचन थार भराई ।।पारस.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

मन वचन काय त्रिशुद्ध करके, पार्श्वनाथ सु पूजिये ।
जल आदि अर्घ बनाय भविजन, भक्तिवंत सु हूजिये ।।
पूज्य पारसनाथ जिनवर, सकल सुखदातार जी ।
जे करत हैं नर नारि पूजा, लहत सौख्य अपार जी ।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

यह जग में विख्यात हैं, पारसनाथ महान ।
तिन गुण की जयमालिका, भाषा करूँ बखान ।।
जय जय प्रणमों श्री पार्श्व देव, इन्द्रादिक तिनकी करत सेव ।
जय जय सु बनारस जन्म लीन, तिहुँ लोक विषैं उद्योत कीन ।।
जय जिनके पितु श्री विश्वसेन, तिनके घर भये सुखचैन देन ।
जय वामा देवी मात जान, तिनके उपजे पारस महान ।।
जय तीन लोक आनन्द देन, भविजन के दाता भये ऐन ।
जय जिनने प्रभुका शरणलीन, तिनकी सहाय प्रभुजी सो कीन ।।
जय नाग नागिनी भये अधीन, प्रभु चरणन लाग रहे प्रवीन ।
तज देह देवगति गये जाय, धरणेन्द्र पद्मावति पद लहाय ।।

जयअञ्जन चोर अधम अजान, चोरी तज प्रभु को धरो ध्यान ।
जय मृत्यु भये वह स्वर्ग जाय, ऋद्धी अनेक उनने सो पाय ।।
जय मतिसागर इक सेठ जान, तिन अशुभकर्म आयो महान ।
तिनकै सुत थे परदेश मांहि, उनसे मिलने की आश नांहि ।।
जय रविव्रत पूजन करी सेठ, ता फल कर सब से भई भेंट ।
जिन जिन ने प्रभु का शरणलीन, तिन ऋद्धिसिद्धि पाई नवीन ।।
जय रविव्रत पूजा करिहं जेय, ते सौख्य अनन्तानन्त लेय ।
धरणेन्द्र पद्मावति हुये सहाय, प्रभुभक्त जान तत्काल आय ।।
पूजा विधान इहिविधि रचाय, मन वचन काय तीनों लगाय ।
जो भक्ति भाव जयमाल गाय, सोही सुख सम्पत्ति अतुल पाय ।।
बाजत मृदंग बीनादि सार, गावत नाचत नाना प्रकार ।
तन नन नन नन नन ताल देत, सन नननन नन सुर भर सो लेत ।।
ता थेई थेईथेई पग धरत जाय, छमछम छमछम घुंघरू बजाय ।
जे करहिं निरत इति भांत-भांत, ते लहहिं सुक्ख शिवपुर सुजात ।।
रविव्रत पूजा पार्श्व की, करै भवि जन जोय,
सुख सम्पत्ति इह भव लहैं, आगे सुर पद होय ।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

रविव्रत पार्श्व जिनेन्द्र,पूज भवि मन धरें ।
भव भव के आताप, सकल छिन में टरें ।।
होय सुरेन्द्र नरेन्द्र, आदि पदवी लहे ।
सुख सम्पत्ति सन्तान, अटल लक्ष्मी रहे ।।
फेर सर्व विधि पाय, भक्ति प्रभु अनुसरें ।
नानाविध सुख भोग, बहुरि शिवतिय वरें ।।

।।पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।।

रविव्रत जाप्य मंत्र

ॐ ह्रीं नमो भगवते चिंतामणि पार्श्वनाथाय सप्तफणमण्डिताय श्रीधरणेन्द्र-पद्मावती सहिताय मम ऋद्धिं सिद्धिं वृद्धिं सौख्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

श्री पंच परमेष्ठी पूजन

(राजमल पवैया भोपाल)

अर्हत सिद्ध आचार्य नमन, हे उपाध्याय हे साधु नमन ।
जय पंच परम परमेष्ठी जय, भव सागर तारण हार नमन ।।
मन वच काया पूर्वक करता, हूँ शुद्ध हृदय से आवाहन ।
मम हृदय विराजो तिष्ठ तिष्ठ, सन्निकट होहु मेरे भगवन ।
निज आत्म तत्त्व की प्राप्ति हेतु, ले अष्ट द्रव्य करता पूजन ।
तव चरणों के पूजन से प्रभु निज सिद्ध रूप का हो दर्शन ।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु पंच परमेष्ठिन् ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानन् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थानम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।

मैं तो अनादि से रोगी हूँ, उपचार कराने आया हूँ ।
तुम सम उज्ज्वलता पाने को, उज्ज्वल जल भरकर लाया हूँ ।।
मैं जन्म जरा मृत नाश करूँ, ऐसी दो शक्ति हृदय स्वामी ।
हे पंच परम परमेष्ठि प्रभु, भव दुख मेटो अंतर्यामी ।।

ॐ ह्रीं श्री....पंच परमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

संसार ताप में जल जल कर, मैने अगणित दुख पाए है ।
निज शान्त स्वभाव नहीं भाया, पर के ही गीत सुहाए हैं ।।
शीतल चंदन है भेंट तुम्हें, संसार ताप नाशो स्वामी ।। हे पंच ।।

ॐ ह्रीं श्री...पंच परमेष्ठिभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

दुख मय अथाह भव सागर में, मेरी यह नौका भटक रही ।
अशुभ मय भाव की भँवरों में, चैतन्य शक्ति निज अटक रही ।।
तंदुल है धवल तुम्हें अर्पित, अक्षयपद प्राप्त करूँ स्वामी ।।हे पंच।।

ॐ ह्रीं श्री....पंच परमेष्ठिभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

मैं काम व्यथा से घायल हूँ, सुख की न मिलि किंचित् छाया ।
चरणों में पुष्प चढ़ाता हूँ, तुमको पाकर मन हर्षाया ।।
मैं काम भाव विध्वंस करूँ, ऐसा दो शील हृदय स्वामी ।।हे पंच।।

ॐ ह्रीं श्री...पंच परमेष्ठिभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

मैं क्षुधा रोग से व्याकुल हूँ चारों गति में भरमाया हूँ ।
जगके सारे पदार्थ पाकर भी, तृप्त नहीं हो पाया हूँ ।।

नैवेद्य समर्पित करता हूँ, यह क्षुधा रोग मेटो स्वामी ।।हे पंच ।।

ॐ ह्रीं श्री...पंच परमेष्ठिभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

मोहान्ध महाअज्ञानी मैं, निज को पर का कर्त्ता माना ।
मिथ्यातम के कारण मैंने, निज आत्म स्वरूप न पहचाना ।।
मैं दीप समर्पण करता हूँ, मोहान्धकार क्षय हो स्वामी ।। हे पंच ।।

ॐ ह्रीं श्री....पंच परमेष्ठिभ्यो मोहान्धकार - विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

कर्मों की ज्वाला धधक रही संसार बढ़ रहा है प्रतिपल ।
संवर से आश्रव को रोकूँ, निर्जरा सुरभि महके पल पल ।।
मैं धूप चढ़ा कर अब आठों कर्मो का हनन करूँ स्वामी ।। हे पंच ।।

ॐ ह्रीं श्री....पंच परमेष्ठिभ्यो अष्टकर्म - दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

निज आत्म तत्त्व का मनन करूँ, चिंतवन करूँ निज चेतन का ।
दो श्रद्धा ज्ञान चरित्र श्रेष्ठ, सच्चा पथ मोक्ष निकेतन का ।।
उत्तम फल चरण चढ़ाता हूँ, निर्वाण महाफल हो स्वामी ।। हे पंच ।।

ॐ ह्रीं श्री.....पंच परमेष्ठिभ्यो मोक्षफल - प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल चन्दन अक्षत पुष्प, नैवेद्य धूप फल लाया हूँ ।
अब तक के संचित कर्मों का मैं पुंज जलाने आया हूँ ।।
यह अर्घ समर्पित करता हूँ अविचल अनर्घपद दो स्वामी ।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव दुख मेटो अंतर्यामी ।।

ॐ ह्रीं श्री......पंच परमेष्ठिभ्यो अनर्घ्य पद - प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, निज ध्यान लीन गुणमय अपार ।
अष्टादश दोष रहित जिनवर, अर्हंत देव को नमस्कार ।।
अविकल अविकारी अविनाशी, निजरूप निरंजन निराकार ।
जय अजर अमर हे मुक्तिकंत, भगवंत सिद्ध को नमस्कार ।।
छत्तीस सुगुण से तुम मंडित, निश्चय रत्नत्रय हृदय धार ।
हे मुक्ति वधू के अनुरागी, आचार्य सुगुरु को नमस्कार ।।
एकादश अंग पूर्व चौदह के, पाठी गुण पच्चीस धार ।
बाह्यान्तर मुनि मुद्रा महान् श्री उपाध्याय को नमस्कार ।।
व्रत समिति गुप्ति चारित्र प्रबल, वैराग्य भावना उदय धार ।
हे द्रव्य भाव संयम मय मुनिवर सर्व साधु को नमस्कार ।।
बहु पुण्य संयोग मिला नरतन जिनश्रुत जिन देव चरण दर्शन ।
हो सम्यक दर्शन प्राप्त मुझे तो सफल बने मानव जीवन ।।

निज पर का भेद जानकर मैं निज को ही निज में लीन करूँ ।
अब भेद ज्ञान के द्वारा मैं निज आत्म स्वयं स्वाधीन करूँ ।।
निज में रत्नत्रय धारण कर, निज परणति को ही पहचानूँ ।
पर परणति से हो विमुख सदा, निजज्ञान तत्त्व को ही जानूं ।।
जब ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता विकल्प तज, शुक्ल ध्यान मैं ध्याऊंगा ।
तब चार घातिया क्षय करके अर्हंत महापद पाऊंगा ।
है निश्चित सिद्ध स्वपद मेरा, हे प्रभु कब इसको पाऊंगा ।
सम्यक् पूजा फल पाने को अब निज स्वभाव में आऊंगा ।।
अपने स्वरूप की प्राप्ति हेतु हे प्रभु मैंने की है पूजन ।
तब तक चरणों में ध्यान रहे जब तक न प्राप्त हो मुक्ति सदन ।।

ॐ ह्रीं श्री......अर्हंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु पंच परमेष्ठिभ्यो अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा ।

हे मंगल रूप अमंगल हर, मंगलमय मंगल गान करूँ ।
मंगल में प्रथम श्रेष्ठ मंगल, नवकार मंत्र का ध्यान करूँ ।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

नन्दीश्वरद्वीप पूजन

(अडिल्ल छंद)

सरब परव में बड़ों अठाई परव है ।
नन्दीश्वर सुर जाँहि लेय वसु दरब है ।।
हमैं सकति सो नाहिं इहाँ करि थापना ।
पूजैं जिनग्रह-प्रतिमा है हित आपना ।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

कंचन मणि मय भृंगार, तीरथ-नीर भरा ।
तिहुँ धार दई निरवार, जामन मरन जरा ।।
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों ।
वसु दिन प्रतिमा अभिराम, आनंद-भाव धरों ।।
नन्दीश्वर द्वीप महान चारों दिशि सोहे ।
बावन जिन मन्दिर जान, सुरनर मन मोहें ।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षुद्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

भव-तप-हर शीतल वास, सो चन्दन नाहीं ।
प्रभु यहगुनकीजै साँच, आयो तुम ठाहीं ।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

उत्तम अक्षत जिनराज, पुंज धरे सोहे ।
सबजीते अक्षसमाज तुमसमअरु को है ।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

तुम काम विनाशक देव, ध्याऊँ फूलनसौं ।
लहुँ शीललच्छमी एव, छूटो सूलनसों ।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

नेवज इन्द्रिय बलकार, सो तुमने चूरा ।
चरु तुम ढिग सोहै सार, अचरज है पूरा ।। नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यः क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीपक की ज्योति-प्रकाश, तुम तन माँहि लसै ।
टूटै करमन की राश, ज्ञान-कणी दरसै ।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

कृष्णागरु-धूप-सुवास, दश-दिशि नारि वरै ।
अतिहरषभाव परकाश, मानों नृत्य करें ।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

बहुविधि फल ले तिहुँ काल, आनन्द राचत हैं ।
तुमशिवफलदेहुदयाल, तुहि हम जाचतहैं ।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

यह अरघ कियो निज-हेत, तुमको अरपतु हों ।
द्यानतकीज्योशिवखेत, भूमिसमरपतुहों ॥नन्दी.॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

कार्तिक फाल्गुन साढके अन्त आठ दिन माहिं ।
नन्दीश्वर सुर जात हैं, हम पूजें इह ठाहिं ॥
एक सौ त्रेसठ कोडि जोजन महा ।
लाख चौरासिया एक दिश में लहा ॥
आठमों द्वीप नन्दीश्वरं भास्वरं ।
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं ॥
चार दिशि चार अंजनगिरि राजहीं ।
सहस चौरासिया एक दिश छाजेंही ॥
ढोल सम गोल ऊपर तले सुन्दरं ॥भौन.॥
एक इक चार दिशि चार शुभ बावरी ।
एक इक लाख जोजन अमल-जल भरी ॥
चहुँ दिशाचार वनलाखजोजनवरं ॥भौन.॥
सोल वापीन मधि सोल गिरि दधिमुखं ।
सहस दश महाजोजन लखत ही सुखं ॥
बावरी कौन दो माहि दो रतिकरं ॥भौन.॥
शैल बत्तीस इक सहस जोजन कहे ।
चार सोलै मिलैं सर्व बावन लहे ॥
एकइक सीस पर एक जिनमन्दिरं ॥भौन.॥
बिम्ब अठ एक सौ रतनमयि सोहही ।
देव देवी सरव नयन मन मोहही ॥
पाँचसै धनुष तन पद्म-आसन परं ॥भौन.॥
लाल नख-मुखनयन स्याम अरु स्वेत हैं ।
स्याम-रंग भौंह सिर-केश छवि देत हैं ॥
वचनबोलतमनों हँसत कालुष हरं ॥भौन.॥

कोटि-शशिभानुदुति-तेज छिप जात है ।
महा-वैराग-परिणाम ठहरात है ॥
वयन नहिं कहैं लखिहोत सम्यकधरं ।
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं ॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अनर्घपद प्राप्तये जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

नन्दीश्वर-जिनधाम, प्रतिमा-महिमा को कहै ।
'द्यानत' लीनो नाम, यही भगति शिव-सुखकरै ॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

रक्षाबन्धन पर्व पूजन

(श्री अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनिवर पूजा)

जय अकम्पनाचार्य आदि सात सौ साधु मुनिव्रत धारी ।
बलि ने कर नरमेघ यज्ञ उपसर्ग किया भीषण भारी ॥
जय जय विष्णु कुमार महा मुनि ऋद्धि विक्रिया के धारी ।
किया शीघ्र उपसर्ग निवारण वात्सल्य करुणा धारी ।
रक्षा-बन्धन पर्व मना मुनियों को जय जयकार हुआ ॥
श्रावण शुक्ल पुर्णिमा के दिन घर घर मंगलाचार हुआ ॥
श्रीमुनि चरण कमल मैं वन्दूँ पाऊँ प्रभु सम्यग्दर्शन ।
भक्तिभाव से पूजन करके निज स्वरूप में रहूँ मगन ॥

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुने ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

"परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामि"

जन्म मरण के नाश हेतु, प्रासुक जल करता हूँ अर्पण ।
रागद्वेष परिणति अभावकर, निज परिणति में करूँ रमण ॥
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि, सप्तशतक को करूँ नमन ।
मुनि उपसर्ग निवारक, विष्णुकुमार महामुनि को वन्दन ॥

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

भव सन्ताप मिटाने को मैं, चन्दन करता हूँ अर्पण ।
देहभोग भव से विरक्त हो, निजपरिणति में करूँ रमण ॥ श्री अकम्प ०॥

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अक्षय पद अखंड पाने को, अक्षत धवल करूँ अर्पण।
हिंसादिक पापों को क्षयकर, निजपरिणति में करूँ रमण ॥श्री अकम्प ०॥
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।
काम बाण विध्वंस हेतु मैं, सहज पुष्प करता अर्पण।
क्रोधादिकचारों कषाय हर, निज परिणति में करूँ रमण ॥ श्री अकम्प ०॥
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।
क्षुधा रोग के नाश हेतु, नैवेद्य सरस करता अर्पण।
विषय भोग की आकांक्षाहर, निज परिणति में करूँ रमण ॥ श्री अकम्प ०॥
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।
चिर मिथ्यात्व तिमिर हरने को, दीपज्योति करता अर्पण।
सम्यग्दर्शन का प्रकाश पा, निज परिणति में करूँ रमण ॥ श्री अकम्प ०॥
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
अष्ट कर्म के नाश हेतु यह, धूप सुगन्धित है अर्पण।
सम्यग्ज्ञान हृदय प्रगटाऊँ, निज परिणति में करूँ रमण ॥ श्री अकम्प ०॥
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
मुक्ति प्राप्ति हेतु उत्तम फल, चरणों में करता हूँ अर्पण।
मैं सम्यक् चारित्र प्राप्तकर, निज परिणति में करूँ रमण ॥ श्री अकम्प ०॥
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।
शाश्वत पद अनर्घ पाने को, उत्तम अर्घ करूँ अर्पण।
रत्नत्रय की तरणी खेऊँ, निज परणति में करूँ रमण ॥
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि, सप्तशतक को करूँ नमन।
मुनि उपसर्ग निवारक, विष्णुकुमार महामुनि को वन्दन ॥
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

वात्सल्य के अंग की महिमा अपरम्पार।
विष्णु कुमार मुनीन्द्र की गूंजी जय जयकार ॥

(तांटक छंद)

उज्जयनी नगरी के नृप, श्री वर्मा के मन्त्री थे चार।
बलि, प्रहलाद, नमुचि, बृहस्पति, चारों अभिमानी सविकार ॥
जब अकम्पनाचार्य संघ, मुनियों का नगरी में आया।
सात शतक मुनि के दर्शन कर, नृप श्रीवर्मा हर्षाया ॥
सब मुनि मौन ध्यान में रत, लख बलि आदिक ने निंदा की।
कहा कि मुनि सब मूर्ख, इसी से नहीं तत्त्व की चर्चा की ॥

किन्तु लौटते समय मार्ग में, श्रुतसागर मुनि दिखलाये।
वाद विवाद किया श्रीमुनि से, हारे जीत नहीं पाये ॥
अपमानित होकर निशि में, मुनि पर प्रहार करने आये।
खड्ग उठाते ही कीलित, हो गये हृदय में पछताये ॥
प्रातः होते ही राजा ने, आकर मुनि को किया नमन।
देश निकाला दिया मंत्रियों, को तब राजा ने तत्क्षण ॥
चारों मन्त्री अपमानित हो, पहुँचे नगर हस्तिनापुर।
राजा पद्मराय को अपनी, सेवाओं से प्रसन्न कर ॥
मुँह माँगा वरदान नृपति ने, बलि को दिया तभी तत्पर।
जब चाहूँगा तब ले लूँगा, बलि ने कहा नम्र होकर ॥
फिर अकम्पनाचार्य सात सौ, मुनियों सहित नगर आये।
बलि के मन में मुनियों की, हत्या के भाव उदय आये ॥
कुटिल चालचल बलि ने नृप से, आठ दिवस का राज्य लिया।
भीषण अग्नि जलाई चारों, ओर द्वेष से कार्य किया ॥
हाहाकार मचा जगती में, मुनि स्वध्यान में लीन हुए।
नश्वर देह भिन्न चेतन से, यह विचार निज लीन हुए ॥
यह नर मेघ यज्ञ रच बलि ने, किया दान का ढोंग विचित्र।
दान किमिच्छक देता था, पर मन था अति हिंसक अपवित्र ॥
पद्मराय नृप के लघु भाई, विष्णुकुमार महामुनिवर।
वात्सल्य का भाव जगा, मुनियों पर संकट का सुनकर ॥
किया गमन आकाश मार्ग से, शीघ्र हस्तिनापुर आये।
ऋद्धि विक्रिया द्वारा याचक, वामन रूप बना लाये ॥
बलि से माँगी तीन पाँव भू, बलिराजा हँसकर बोला।
जितनी चाहो उतनी लेलो, वामन मूर्ख बड़ा भोला ॥
हँसकर मुनि ने एक पाँव में, ही सारी पृथ्वी नापी।
पग द्वितीय में मानुषोत्तर, पर्वत की सीमा नापी ॥
ठौर न मिला तीसरे पग को, बलि के मस्तक पर रखा।
क्षमा क्षमा कह कर बलि ने, मुनि चरणों में मस्तक रखा ॥
शीतल ज्वाला हुई अग्नि की, श्री मुनियों की रक्षा की।
जय जयकार धर्म का गूँजा, वात्सल्य की शिक्षा दी ॥
नवधा भक्ति पूर्वक सबने, मुनियों को आहार दिया।
बलि आदिक का हुआ हृदय, परिवर्तन जयजयकार किया ॥
रक्षासूत्र बाँधकर तब, जन - जन ने मंगलाचार किये।
साधर्मी वात्सल्य भाव से, आपस में व्यवहार किये ॥

समकित के वात्सल्य अंग की, महिमा प्रगटी इस जग में ।
रक्षा बन्धन पर्व इसी दिन, से प्रारम्भ हुआ जग में ॥
श्रावण शुक्ल पूर्णिमा का दिन, था रक्षासूत्र बँधा कर में ।
वात्सल्य की प्रभावना का, आया अवसर घर घर में ॥
प्रायश्चित ले विष्णुकुमार ने, पुनः व्रत ले तप ग्रहण किया ।
अष्ट कर्मबन्धन को हरकर, इस भव से ही मोक्ष लिया ॥
सब मुनियों ने भी अपने, अपने परिणामों के अनुसार ।
स्वर्ग मोक्ष पद पाया जग में, हुई धर्म की जय जयकार ॥
धर्म भावना रहे हृदय में, पापों के प्रतिकूल चलूँ ।
रहे शुद्ध आचरण सदा ही, धर्म मार्ग अनुकूल चलूँ ॥
आत्म ज्ञान रुचि जगे हृदय में, निज पर को मैं पहिचानूँ ।
समकित के आठों अंगों की, पावन महिमा को जानूँ ॥
तभी सार्थक जीवन होगा, सार्थक होगी यह नर देह ।
अन्तर घट में जब बरसेगा, पावन परम ज्ञान रस मेह ॥
पर से मोह नहीं होगा, होगा निजात्म से अति नेह ।
तब पायेंगे अखंड अविनाशी, निज सुखमय शिवगेह ॥
रक्षाबन्धन पर्व धर्म का, रक्षा का त्यौहार महान ।
रक्षाबन्धन पर्व ज्ञान का, रक्षा का त्यौहार प्रधान ॥
रक्षाबन्धन पर्व चरित का, रक्षा का त्यौहार महान ।
रक्षाबन्धन पर्व आत्म का, रक्षा का त्यौहार प्रधान ।
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि, सात शतक को करूँ नमन ।
मुनि उपसर्ग निवारक, विष्णुकुमार महामुनि को वन्दन ॥

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

रक्षा बन्धन पर्व पर, श्री मुनि पद उर धार ।
मन वच तन सो पूजते, पाते सौख्य अपार ॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

गणधरवलय पूजन

जयवीर रहें महावीर अमित गुरु, स्याद्वाद को नमन करें ।
आठ ऋद्धि धारी गणधर हैं उनका हम आह्वान करें ॥
अत्र अत्र तिष्ठौ ! हे ऋषिवर ! स्थापन के भाव धरैं ।
भव बषट् करैं भक्ति सौं, कर जोरैं हम पाय परैं ॥

ॐ ह्रीं द्विपञ्चाशच्चतुःशताधिक-सहस्र-गणधरसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।

"परिपुष्पांजलिं क्षिपामि"

गंगा हृद निरमल नीर, सुवरन कलश भरूँ ।
मेरी जनम मरण की पीर, मेंटो अरज करूँ ॥
तुम चार ज्ञान के नाथ, ऋषिवर तपधारी ।
कर जोरें दोऊ धर माथ, गणधर उपकारी ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां द्विपञ्चाशच्चतुःशताधिक - सहस्र - गणधरेभ्यो जन्म जरा - मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

भव भव में भटको नाथ, ताप न मिट पायो ।
भव ताप पाप सब नाशि, चन्दन घिस लायो ॥
गुणधारी भारी आप, ताप नशै मेरी ।
मोहि भयो भरोसो आज, पल की नहिं देरी ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां द्विपञ्चाशच्चतुःशताधिक - सहस्र - गणधरेभ्यः संसार - ताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

मोती से चावल लेय, पाँच जगह धारूँ ।
पाँचो पापनि कूं जारि, अक्षय पद धारूँ ॥
वसु ऋद्धिन के भरतार, मोहित नहिं होवे ।
तव भक्ति मुक्ति करतार, जग में शुभ बोवे ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां द्विपञ्चाशच्चतुःशताधिक - सहस्र - गणधरेभ्यो अक्षयपद - प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

सब दिव्य लोक के फूल, भौंरा मंडरावैं ।
अब काम व्यथा के शूल, मेरे मिट जावैं ॥
कंदर्प बली के वान, तुम पर नहिं लागैं ।
तुम्हें देखि दूर तें आप, उल्टे पग भागैं ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां द्विपञ्चाशच्चतुःशताधिक - सहस्र - गणधरेभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

गोला की चटक बनाय, थाल भरायो है ।
अब क्षुधा रोग नशि जाय, चरण चढ़ायो है ॥
त्रिभक्ति करैं हम आप, त्रिगुप्ती धारी ।
आवे न असाता वेद, पूजत नर नारी ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां द्विपञ्चाशच्चतुःशताधिक - सहस्र - गणधरेभ्यः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अज्ञान तिमिर को नाश, दीपक करि डारै ।
रतननि के दीप संभारि, चरणन ढिंग धारै ॥

घी के रतननि के दीप और कपूर कहे ।
भक्ति तें धरे समीप, फल भरपूर लहे ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां द्विपञ्चाशच्चतु:शताधिक - सहस्र - गणधरेभ्यो मोहांधकार - विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

हम अगर तगर सब लेय धूपयान डारैं ।
सब आठ भाँति के होंय, करमन कौं जारैं ॥
सब आठ ऋद्धि कौ ठाठ, तुमने पायो है ।
होवे ऋद्धिन की सिद्धि, हम सिर नायो है ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां द्विपञ्चाशच्चतु:शताधिक - सहस्र - गणधरेभ्यो अष्टकर्म - दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीफल दक्षिण ते लाय, दोऊ कर ले लीनो ।
शिव नारि वरैं हम जाय, मनभावन भीनौ ॥
हे गणधर ! वर ऋषिराज ! गुणगण भूषित हो ।
शिव रमणी रमने आज, ज्ञान विभूषित हो ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां द्विपञ्चाशच्चतु:शताधिक - सहस्र - गणधरेभ्यो महामोक्षफल - प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल फल लीने हरषाय, भक्ति में नाचे ।
तुम चरणन देत चढ़ाय, पद अनरघ जाचें ॥
वृषभादि वीर चौबीस, गणधर सहस्र कहे ।
सब चार सौ बावन औरु, तिन हम शीश नऐ ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां द्विपञ्चाशच्चतु:शताधिक - सहस्र - गणधरेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं क्ष्वीं श्रीं अर्हं अ सि अ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं नम : ।

(१०८ बार जाप करें)

जयमाला

(दोहा) - ज्ञान बिना नहिं जगत में, जीव जानिए कोय ।
मनपर्यय मति श्रुत अवधि, गणधर कहिए सोय ॥

(पद्धरि छन्द)

चौरासी गणधर आदिनाथ । भये वृषभ सेन तहां मुख्य साथ ।
नब्बे गणधर हैं अजित संग । सिंहादिसैन कहिए मतंग ॥ १ ॥
चारुसेन मुखिया बनाय । संभव के सौ अरु पाँच गाय ।
एक शतक तीन गणधर प्रमान । अभिनन्दन के वज्रनाभि जान ॥ २ ॥

चामर है गणधर सुमति नाथ । जहाँ एक शतक सोलहसु साथ ।
दश औरु शतक वज्रादि कहे । पद्म प्रभ तब उपदेश दये ॥ ३ ॥
श्री सुपार्श्वनाथ के समोशरण । बलदत्तादि पाँच नब्बे को नमन ।
सप्तघाटि शतकहै गणधराय । दत्तादि चंद्रप्रभ ढिंग रहाय ॥ ४ ॥
अठ्ठासी सब तिनमें विदर्भ । पुष्पदन्त प्रभु पद नमत सर्व ।
इक्यासी सब अनगार मुख्य । शीतल प्रभु पदमानै सुसौख्य ॥ ५ ॥
कुंथ्वादि सतत्तर गणधराज । श्रेयांसनाश तारण जहाज ।
छियासठ गणधर उनमें सुधर्म । नमि वासुपूज नित लहें शर्म ॥ ६ ॥
मदराय पचास रु पाँच जान । नित सुनें विमल की विमल वानि ।
गणधर जयादि सब हैं पचास । पूजां अनन्त धरि कैं हुलास ॥ ७ ॥
तियालीस कहै गणधर अरिष्ट । श्री धर्मनाथ मेटें अनिष्ट ।
चक्रायुधादि छत्तीस मान । श्री शांतिनाथ के संगजान ॥ ८ ॥
स्वयंभू है मुखिया तीस पाँच । श्री कुन्थुनाथ गणधर सुसाँच ।
गणधर कुंभार्य हैं सकल तीस । श्री अरहनाथ नित नमें शीश ॥ ९ ॥
गणधर विशाख सब बीस आठ । मल्लिनाथ पदहिं सेवें सुठाठ ।
दश आठ मल्लिसब गणधरेश । पूजें मुनिसुव्रत पद हमेश ॥ १० ॥
सुप्रभादि कहे सत्रह सुसार । नमिनाथ भक्ति करते अपार ।
वरदत्त मुख्य ग्यारह सुगाय । श्री नेमिनाथ पद शीश नाय ॥ ११ ॥
स्वयंभ्यादि मुख्य सब दश गिनेय । श्रीपार्श्व वानि सुनि थकत नाहिं ।
ग्यारह तिन गौतम मुख्यजान । श्रीमहावीर गणधर महान ।

(सवैया छंद)

जब लग गणधर होंय न भाई ! वाणी प्रभु की कभी न होय ।
गणधर सुनिकर प्रभु वाणी कूँ, द्रव्यरूप श्रुत गूँथे सोय ॥
ये उपकार महा गणधर का, यातें सब जग पढ़ि पावै ।
जो भवि इनकी भक्ति करै जग, "अजित" जीत शिव चढ़ि जावै ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकराणां द्विपञ्चाशच्चतु:शताधिक - सहस्र - गणधरेभ्यो अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा) - गणधर पद मंगल करें, बढ़े सु ज्ञान निधान ।
भक्ति करैं हम शक्ति से, पावैं पद निरवान ॥

॥ इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

चारित्रशुद्धि व्रत पूजन

(दोहा)- शुद्ध सुगुण छयालीस युत, समवशरण के ईश ।
निज आतम उद्धार हित, नमत चरण में शीश ॥
आतम शुद्धि के अर्थ हम, जिनवर पूज रचाय ।
रत्नत्रय के प्राप्ति हित, श्री जिनेन्द्र गुण गाय ॥
करूँ त्रिविधशुद्ध योग से, आह्वानम् विधिसार ।
आवहु तिष्ठहु हृदय में, नाथ त्रिलोक आधार ॥

(सोरठा)-व्रत चारित्र महान, इस बिन मुक्ति न पावहीं ।
चारित्र शुद्धि विधान, इसीलिए अर्चन करूँ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित- चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक - शुद्ध - चारित्रव्रत - मण्डितार्हत् - परमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।

"परिपुष्पांजलि क्षिपेत्"

अष्टक - गंगादिक निर्मल नीर, कंचन कलश भरूँ ।
प्रभू वेग हरो भव पीर, चरणन धार करूँ ॥
बारह सौ चौंतीस सार प्रोषध सुखकारी ।
मैं पूजूँ विविध प्रकार आतम हितकारी ॥ टेक ॥

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक - शुद्ध - चारित्रव्रत - मण्डितार्हत् परमेष्ठिभ्यो जन्म जरा - मृत्यु - विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

मलयागिर चन्दन सार, केशर रंग भरी ।
प्रभु भव आताप निवार, यह विनती हमरी ॥ बारह सौ.... ।

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक - शुद्ध - चारित्रव्रत - मण्डितार्हत् परमेष्ठिभ्यो भवाताप - विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

ले चन्द किरण सम शुद्ध, अक्षत शुचि सारे ।
तसु पुञ्ज धरूँ अवरुद्ध, तुम पग तल धारे ॥ बारह सौ..... ।

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक - शुद्ध - चारित्रव्रत - मण्डितार्हत् परमेष्ठिभ्यो अक्षयपद - प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

सुर तरु के सुमन समेत, अलि गुञ्जार करें ।
मैं जजूँ चरण निज हेत, मद गद व्याल हरें ॥ बारह सौ..... ।

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक - शुद्ध - चारित्रव्रत - मण्डितार्हत् परमेष्ठिभ्यो कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

नाना विधि के पकवान, कंचन थाल भरूँ ।
मैं जजूँ चरण ढिंग आन, भूख व्यथा जु हरूँ ॥ बारह सौ.... ।

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक - शुद्ध - चारित्रव्रत - मण्डितार्हत् परमेष्ठिभ्यो क्षुधा-रोग-विनाशाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

तम खण्डन दीप अनूप, तुम पद निकट धरूँ ।
मम मोह हरो शिव भूप, याते पूज करूँ ॥ बारह सौ..... ।

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक - शुद्ध - चारित्रव्रत - मण्डितार्हत् परमेष्ठिभ्यो मोहन्धकार - विनाशाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

दस विधि की धूप बनाय, पावक में खेऊँ।
मम दुष्ट करम जर जाय, तुम पद नित खेऊँ ॥ बारह सौ... ।

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक - शुद्ध - चारित्रव्रत - मण्डितार्हत् परमेष्ठिभ्यो अष्टकर्म - दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

बादाम सुपारी लाय, केला फल प्यारे ।
तुम शिव फल देहु दयाल, तुम पद फल धारे ॥ बारह सौ..... ।

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक - शुद्ध - चारित्रव्रत - मण्डितार्हत् परमेष्ठिभ्यो मोक्षफल - प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल फल वसु कंचन थाल, आठों द्रव्य भरूँ ।
छोटे नित नावत भाल, तुम पद अर्घ्य करूँ ॥ बारह सौ..... ।

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक - शुद्ध - चारित्रव्रत - मण्डितार्हत् परमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद - प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

मंगल अर्घ्य बनाय गाय गुण, कंचन थाली भरिये ।
अर्घ्य देत जिनराज चरण में, महाहर्ष उर धरिये ।
चारित शुद्धि व्रत के हित मैं, जिन पद पूज रचाऊँ ।
आतम हित के हेत जिनेश्वर, पद में शीश नवाऊँ ॥

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतक - शुद्ध - चारित्रव्रत - मण्डितार्हत् परमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद - प्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जाप - ॐ ह्रीं असिआउसा चारित्र- शुद्धि - व्रतेभ्यो नमः ।

(१०८ बार जाप्य करे)

जयमाला

जिसकी शुद्धि के बिना, जिनवर सीझें नाहिं ।
उसकी शुद्धि के लिये, जिनवर पूज रचाहिं ॥

व्रत चारित को शुद्ध कर, पहुँचे अविचल थान ।
उनके ही पद कमल का, धरूँ हृदय में ध्यान ॥

(पद्धरि छन्द)

जय जय जय जिनवर देव भूप, जय जय जय शिव वल्लभ अनूप ।
जय जगपति जय-जय जगन्नाथ, जय मंगल मय हम नमत नाथ ॥
जय शिव शंकर जय विष्णु देव, जय ब्रह्मा जय मंगल विशेष ।
जय कमलासन कृत कर्म ईश, इन्द्रादि चरण नित नमत शीश ॥
अष्टादश दोष विमुक्त धीर, जय मंगलमय भव हरत पीर ।
जय अन्तरिक्ष जानत जिनेश, जय चतुर्गति काटत क्लेश ॥
जय इन्द्रिय जय जय धर्मवीर, जय कर्म दलन भर अति गम्भीर ।
जय जगत शिरोमणि गुण निधान, जय शत्रु मित्र जानत समान ॥
जय व्रत चारित धारो करण्ड, जय शुद्ध बिहारी आत्म पिण्ड ।
जय सत् चित घन आनन्द रुप, जय शुद्ध चिदानन्द सत् स्वरूप ॥
जय पञ्च महाव्रत धरण धीर, जय पञ्च समिति पालक सु वीर ।
जय तीन गुप्ति के रथ सवार, यह तेरह विधि चारित्र धार ॥
जय चारित्र शुद्ध धर व्रत दयाल, इक क्षण में तोड़ा कर्म जाल ।
ऐसा विशुद्ध वर व्रत विधान, उस व्रत को हम पूजत सु आन ॥
यह व्रत है सब जग में प्रसिद्ध, है नित्य अनादि स्वयं सिद्ध ।
इसके बिन मुक्ति नहीं होय, यह व्रत है तारण सिन्धु तोय ॥
हे व्रताधीश हे व्रत दिनेश, हे शिव वल्लभ काटो क्लेश ।
अब तेरी शरण गही सु आन, छोटे चाहत नित आत्म ज्ञान ॥

(दोहा) - व्रत चारित मन से सदा, चारित पालें वीर ।
ते पावें निर्वाण सुख, आठों कर्म नशाय के ॥

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशदधिक - द्वादशशतक जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा) - जो विशुद्ध मन से सदा, चारित पालें वीर ।
ते वसु कर्म नसाय के, पहुँचे भव के तीर ॥

॥ इत्याशीर्वाद: परि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

चौसठऋद्धि पूजा

संसार सकल असार जामें सारता कछु है नहीं ।
धन धान धरणी और गृहणी त्यागि लीनी वन मही ।
ऐसे दिगम्बर हो गये, अरु होयेंगे बरतत सदा ।
इत थापि पूजों मन वचन करि देहु मंगल विधि तदा ॥

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल - सम्बन्धि - पुलाकबकुशकुशील निर्ग्रन्थ - स्नातक - पञ्चप्रकार - सर्व - मुनिश्वरसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनं । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

"परिपुष्पांजलिं क्षिपामि"

लाय शुभ गंगाजल भरि कै, कनक भृंगार धरि कर कै ।
जन्म जरा मृत्यु के हरनन, यजों मुनिराज के चरणन ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल - सम्बन्धि - पुलाकबकुशकुशील निर्ग्रन्थ - स्नातक - पञ्चप्रकार - सर्व - मुनिश्वरेभ्यो जन्मजरामृत्यु - विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

घसों काश्मीर संग चन्दन, मिलावो केलि को नन्दन ।
करत भवाताप को हरनन, यजों मुनिराज के चरणन ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल - सम्बन्धि - पुलाकबकुशकुशील निर्ग्रन्थ - स्नातक - पञ्चप्रकार - सर्व - मुनिश्वरेभ्य: संसारताप - विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अक्षत शुभ चंद्र के कर से, भरौं कनथाल में सरसे ।
अक्षयपद प्राप्ति के करणन, यजों मुनिराज के चरणन ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल - सम्बन्धि - पुलाकबकुशकुशील निर्ग्रन्थ - स्नातक - पञ्चप्रकार - सर्व - मुनिश्वरेभ्यो अक्षयपद - प्राप्तये - अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

पहुप ल्यौं घ्राण के रंजन, उड़त ता माहिं मकरंदन ।
मनोभव बाण के हरनन, यजों मुनिराज के चरणन ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल - सम्बन्धि - पुलाकबकुशकुशील निर्ग्रन्थ - स्नातक - पञ्चप्रकार - सर्व - मुनिश्वरेभ्य: कामबाण - विध्वंसनाय - पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

लेय पक्वान्न बहुविधि के, भरौं शुभ थाल सुवरण के ।
असातावेदनी क्षरणन, यजों मुनिराज के चरणन ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल - सम्बन्धि - पुलाकबकुशकुशील निर्ग्रन्थ - स्नातक - पञ्चप्रकार - सर्व - मुनिश्वरेभ्य: क्षुधारोग - विनाशनाय - नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जगमगे दीप ले करि के, रकाबी स्वर्ण में धरि के ।
मोहविध्वंस के करणन, यजों मुनिराज के चरणन ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल - सम्बन्धि - पुलाकबकुशकुशील निर्ग्रन्थ - स्नातक - पञ्चप्रकार - सर्व - मुनिश्वरेभ्यो मोहांधकार - विनाशनाय - दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

अगर मलयागिरी चन्दन, खेयकरि धूप के गंधन ।
होय कर्माष्ट को जरनन, यजों मुनिराज के चरणन ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल - सम्बन्धि - पुलाकबकुशकुशील निर्ग्रन्थ - स्नातक - पञ्चप्रकार - सर्व - मुनिश्वरेभ्यो अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

सिरीफल आदि फल ल्यायो, स्वर्ण को थाल भरवायो ।
होय शुभ मुक्ति को मिलनन, यजों मुनिराज के चरणन ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल - सम्बन्धि - पुलाकबकुशकुशील निर्ग्रन्थ - स्नातक - पञ्चप्रकार-सर्व - मुनिश्वरेभ्यो मोक्षफल - प्राप्तये - फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जलादिक द्रव्य मिलवाए, विविध वादित्र बजवाये ।
अधिक उत्साह करि तन में, चढ़ावों अर्घ चरणन में ॥

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल - सम्बन्धि - पुलाकबकुशकुशील निर्ग्रन्थ - स्नातक - पञ्चप्रकार-सर्व - मुनिश्वरेभ्यो अनर्घ्यपद - प्राप्तये - अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

तारण तरण जिहाज, भवसमुद्र के माहिं जी ।
ऐसे श्री ऋषिराज, सुमरि सुमरि विनती करों ॥ १ ॥

जय जय जय मुनियुगल पाय, मैं प्रणमों मन वच शीश नाय ।
ये सब असार संसार जानि, सब त्याग कियो आतम कल्याण ॥ २ ॥
क्षेत्र वास्तु अरु रत्न स्वर्ण, धन धान्य द्विपद अरु चतुकचर्ण ।
अरु कौप्य भांड दश बाह्य भेद, परिग्रह त्यागे नहिं रंचखेद ॥ ३ ॥
मिथ्यात्व तज्या संसार मूल, मुनि हास्य अरति रति शोक शूल ।
भय सप्त जुगुप्सा स्त्रीवेद, पुनि पुरुष वेद अरु क्लीव वेद ॥ ४ ॥
अरु क्रोध मान माया रु लोभ, ये अन्तरंग में करत क्षोभ ।
इम ग्रन्थ सबै चौबीस येह, तजि भए दिगम्बर नग्न जेह ॥ ५ ॥
गुण मूल धारि तजि रागदोष, तप द्वादश धरि तन करत शोष ।
तृण कंचन महल मसान मित्त, अरु शत्रुनि में समभाव चित्त ॥ ६ ॥

अरु मणि पाषाण समान जास, पर परणति में नहिं रंच वास ।
यह जीव देह लखि भिन्न भिन्न, जे निजस्वरूप में भाव किन्न ॥ ७ ॥
ग्रीष्मऋतु पर्वत शिखर वास, वर्षा में तरुतल है निवास ।
जे शीतलकाल में करत ध्यान, तटनी तट चोहट शुद्ध थान ॥ ८ ॥
हो करुणासागर गुण अगार, मुझ देहि अखय सुख को भंडार ।
मैं शरण गही मुझ तार तार, मा निज-स्वरूप द्यो बार - बार ॥ ९ ॥
यह मुनि गुणमाला, परम रसाला, जो भविजन कण्ठे धरही ।
सब विघ्न विनाशहि मंगल भासहि, मुक्तिरमा वह नर वर ही ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं भूतभविष्यद्वर्तमानकाल - सम्बन्धि - पुलाकबकुशकुशील निर्ग्रन्थ - स्नातक - पञ्चप्रकार - सर्व - मुनिश्वरेभ्यो अनर्घ्यपद - प्राप्तये - अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सर्व मुनिन की पूज यह, करै भव्य चित्त लाय ।
ऋषि सर्व घर में बसै, विघ्न सबै नशि जाय ॥ ११ ॥

॥ इत्याशीर्वादः परिपुष्पाजलिं क्षिपेत् ॥

जिनगुण सम्पत्ति व्रत पूजा

(गीता छन्द)

जैनेन्द्र गुण की सम्पदा के नाम त्रेसठ मुख्य हैं ।
सोलह सुकारण भावनावर, प्रतिहार्य जु अष्ट हैं ॥
चौंतीस अतिशय पञ्चकल्याणक सुत्रसेठ जानिये ।
श्रीजिनगुणों की स्थापना कर पूजते सुख मानिये ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिषष्टि-जिनगुण-सम्पत्ति-समूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।

"परिपुष्पांजलि क्षिपेत्"

(चाल-पूजों-पूजों श्री अरिहंत देवा)

नीर गंगा नदी का लाऊँ हेमझारी से धारा कराऊँ।
मैल आतम का शीघ्र हटाऊँ जिनेन्द्रगुणसम्पद जजूँ मनलाके ॥
तीर्थंकर गुणों की संपद, पूजते क्षीण होती विपत सब ।
शीघ्र मिलती निजातम संपद, जिनेन्द्रगुणसंपद जजूँ मनलाके ॥१॥

ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुण-संपद्भ्यो जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्वेत चंदन सु केशर लाऊँ, नाथ के गुण की पूजा रचाऊँ।
ताप संसार का सब मिटाऊँ, जिनेन्द्रगुणसंपद जजूँ मनलाके ॥ तीर्थंकर..
ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुण-संपद्भ्य: संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

चन्द रश्मि सदृश अक्षत है, पुञ्ज धरते नशत सब अघ हैं ।
मिलें आतम की सब संपद है, जिनेन्द्रगुणसंपद जजूँ मनलाके ॥ तीर्थंकर..
ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुण-संपद्भ्यो अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

कुन्द मंदार चंपक मल्ली, पूजते ही कटे भव वल्ली ।
फैले जगमें भविक यशवल्ली, जिनेन्द्रगुणसंपद जजूँ मनलाके ॥ तीर्थंकर...
ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुण-संपद्भ्य: कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

फैनी घेवर कलाकंद लाके, व्याधि विरहित प्रभु गुण गाके ।
भूख बाधा को पूर्ण मिटाके, जिनेन्द्रगुणसंपद जजूँ मनलाके ॥ तीर्थंकर...
ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुण-संपद्भ्य: क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीप में शुद्ध गोघृत जलाऊँ, ज्योति से पूजते भ्रम भगाऊँ।
चित्त में ज्ञान ज्योति जगाऊँ, जिनेन्द्रगुणसंपद जजूँ मनलाके ॥ तीर्थंकर ....
ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुण - संपद्भ्यो मोहान्धकार - विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

धूप कृष्णागरु चन्दन है, खेवते पापराशि दहन है ।
आत्मपीयूष वर्षा सघन है, जिनेन्द्रगुणसंपद जजूँ मनलाके ॥ तीर्थंकर ....
ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुण - संपद्भ्यो अष्टकर्म - दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

आम, अंगूर, अमरूद फल हैं, पूजते विघ्न राशि विफल हैं ।
शीघ्र मिलता निजातमफल है, जिनेन्द्रगुणसंपद जजूँ मनलाके ॥ तीर्थंकर ....
ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुण - संपद्भ्यो मोक्षफल - प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

नीर गंधादि अर्घ बनाऊँ, आपकी नित्य पूजा रचाऊँ ।
अनमोल रतन तीन पाऊँ, जिनेन्द्रगुणसंपद जजूँ मनलाके ॥ तीर्थंकर ....
ॐ ह्रीं त्रिषष्टिजिनगुण - संपद्भ्यो अनर्घ्यपद - प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दोहा - शान्तिधारा करते है, त्रिभुवन में नित शान्ति ।
जिनगुण संपद् अर्चना, करें निजातम शान्ति ॥ १० ॥
॥ शान्तये शान्तिधारा ॥

(दोहा) - कमल केतकी मालती, पुष्प सुगन्धित लाय ।
पुष्पाञ्जलि कर पूजते, सुख संपत्ति अधिकाय ॥
पुष्पाञ्जलि: ।

जयमाला

(सोरठा)- मिले मुक्ति साम्राज्य, जिनगुण सम्पत्ति पूजते ।
तुमगुण मणि की माल, धारूँ कंठ विषै सदा ॥ ११ ॥

(चाल - श्रीपति जिनवर करुणायतनं)

जय - जय जिन गुण संपत जग में, मुक्ति पद कारण भानी है ।
जय - जय तीर्थंकर प्रकृति बंध, की सोलह भावना मानी है ॥
जय - जय दर्शन सुविशुद्ध आदि, गुण निधि को जो जन पाते हैं ।
सोलह कारण भावन भाके, तीर्थंकर पद पा जाते हैं ॥ १ ॥

गर्भावतार जिन गुण संपत, जन्माभिषेक कल्याण महा ।
दीक्षा केवल निर्वाणरूप, कल्याणक होते पाँच अहा ॥
जो भविजन इनको पा लेते, वे धर्मचक्र नेता होते ।
भव पञ्च परावर्तन तजकर, तीर्थंकर जग वेत्ता होते ॥ २ ॥

वे आठ प्रातिहार्यो से नित, भूषित अगणित महिमाधारी ।
तरुवर अशोक सुर पुष्प वृष्टि, दिव्यध्वनि चामर सुखकारी ॥
सिंहासन भामंडल शोभे, त्रय छत्र त्रिजग वैभव गाते ।
प्रभु समवशरण लक्ष्मी भर्ता, त्रिभुवन के गुरु माने जाते ॥ ३ ॥

वे जन्म समय के दश अतिशय, पाकर के अतिशयशाली हैं ।
कैवल्य रमापति होते ही, दश अतिशय गुण मणि माली हैं ॥
देवों के द्वारा किये गये, चौदह अतिशय भी गाये हैं ।
चौंतीसों अतिशय सहित हुये, अर्हंत प्रभु कहलाये हैं ॥ ४ ॥

इस विधि त्रेसठ जिन गुण संपत, व्रत का भवि पालन करते हैं ।
सोलह प्रतिपद के सोलह अर, पञ्चमी के पाँच उचरते हैं ॥
अष्टमी तिथि के व्रत आठ गिने, दशमी के बीस कहाये हैं ।
चौदश के चौदह व्रत करके, त्रेसठ जिन गुण व्रत पाये हैं ॥ ५ ॥

इस विधि से जो नर नारी गण, उपवास सहित व्रत करते हैं ।
अथवा एकाशन से करके, जिन गुण संपत वरते हैं ॥
धन्य धान्य समृद्धि सुख पाते, चक्री की पदवी पाते हैं ।
देवेन्द्र सुखों को भोग - भोग, तीर्थंकर भी हो जाते हैं ॥ ६ ॥

मैं भी श्रद्धा से जिन गुण में, नितप्रति भाव लगाता हूँ।
प्रत्येक भावना पुनः पुनः अनुरागी होकर गाता हूँ ॥
निज आत्म गुणों की सम्पत्ति को मैं पाने हेतु ही आया हूँ।
रागादिक दोष मिटा दीजे, यह आश हृदय में लाया हूँ ॥ ७ ॥
हे देव कृपा ऐसी करिये, मेरे दुःखों का क्षय होवे।
कर्मों का क्षय हो बोधि लाभ, होवे अरे सुमतिगमन होवे ॥
होवे समाधि के मरणनाथ, मुझको जिन गुण संपत्ति होवे।
कैवल्य ज्ञानमति हो करके, नित मुक्तिरमा में रति होवे ॥ ८ ॥

(दोहा) - गुण अनन्त सागर प्रभो, कोई न पावे पार।
किंचित गुणमणि गुंथ के, धरूँ कंठ में हार ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं त्रिषष्टि - जिनगुण - संपद्भ्यो जयमाला - पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

"शांतये शान्तिधारा।"

(दोहा)- गणपति गुणगणना करे, निज आतम गुण हेतु।
जो नर नारी भी गिने, शीघ्र लहें भव सेतु ॥ १० ॥

॥ इत्याशीर्वादः परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

णमोकार महामन्त्र पूजा

(गीता छन्द)

अनुपम अनादि अनन्त है, यह मन्त्रराज महान है।
सब मंगलों में प्रथम मंगल, करत अघ की हान है ॥
अर्हत सिद्धाचार्य पाठक, साधुओं की वन्दना।
इस शब्दमय परब्रह्म को, थापूँ करूँ नित अर्चना ॥१॥

ॐ ह्रीं अनादिनिधन पंचनमस्कार मंत्र ! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वानम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

"परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामि"

(अथाष्टकं - भुजंगप्रयात छन्द)

महातीर्थ गंगानदी नीर लाऊँ, महामन्त्र की नित्य, पूजा रचाऊँ।
णमोकार मंत्राक्षरों को जजूँ मैं, महाघोर संसार दुःख से बचूँ मैं ॥१॥

ॐ ह्रीं अनादिनिधन पंचनमस्कार मंत्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कपूरादिचंदन महागंध लाके, परं शब्द ब्रह्मा की पूजा रचाके ॥णमो. ॥२॥

ॐ ह्रीं अनादिनिधन पंचनमस्कार मंत्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

पयः सिंधु के फेन सम अक्षतों को, लिया थाल में पुंज से पूजने को ॥ णमो. ॥३॥

ॐ ह्रीं अनादिनिधन पंचनमस्कार मंत्राय अक्षयपद प्राप्ताये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

जुही कुंद अरविन्द मंदार माला, चढ़ाऊँ तुम्हें काम को मार डाला ॥णमो. ॥४॥

ॐ ह्रीं अनादिनिधन पंचनमस्कार मंत्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

कलाकंद लड्डू इमरती बनाऊँ, तुम्हें पूजते भूख व्याधी नशाऊँ॥ णमो. ॥५॥

ॐ ह्रीं अनादिनिधन पंचनमस्कार मंत्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शिखा दीप की ज्योति विस्तारती, है महामोह अन्धेर संहारती है ॥णमो.॥६॥

ॐ ह्रीं अनादिनिधन पंचनमस्कार मंत्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

सुगंधी बढ़े धूप खेते अगनि में, सभी कर्म का भस्म हो एक क्षण में ॥णमो. ॥७॥

ॐ ह्रीं अनादिनिधन पंचनमस्कार मंत्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अनानास अंगूर अमरूद लया, महा-मोक्ष-संपत्ति हेतु चढ़ाया ॥ णमो. ॥८॥

ॐ ह्रीं अनादिनिधन पंचनमस्कार मंत्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

उदक गंध आदि मिला अर्घ्य लाया, महामंत्र नवकार को मैं चढ़ाया ॥णमो. ॥९॥

ॐ ह्रीं अनादिनिधन पंचनमस्कार मंत्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा - शांती धारा मैं करूं, तिहुजग शांतीहेत।
भव-भव आतप शांत हो, पूजूं भक्ति समेत ॥१०॥

शांतये शांतिधारा।

दोहा - वकुल मल्लिका पुष्प ले, पूजूँ मंत्र महान।
पुष्पांजलि से पूजते, सकल सौख्य वरदान ॥११॥ पुष्पांजलिं

जाप्य - ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं। ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं।
ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं। ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं।
ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

जयमाला

(सोरठा)

पंच परम गुरुदेव, नमूँ नमूँ नत शीश मैं।
करो अमंगल छेव, गाऊँ तुम गुणमालिका ॥१॥

(चाल - हे दीनबन्धु)

जैवंत महामंत्र मूर्तिमंत्र धरा में ।
जैवंत परमब्रह्म शब्दब्रह्म धरा में ॥
जैवंत सर्वमंगलों में मंगलीक हो ।
जैवंत सर्वलोक में तुम सर्व श्रेष्ठ हो ॥१॥
त्रैलोक्य में हो एक तुमहीं शरण हमारे ।
माँ शारदा भी नित्य ही तुम कीर्ति उचारे ॥
विघ्नों का नाश होता है तुम नाम जाप से ।
सम्पूर्ण उपद्रव नशे हैं तुम प्रताप से ॥२॥
छयालीस सुगुण को धरें अरिहंत जिनेशा ।
सब दोष अठारह से रहित त्रिजग महेशा ॥
ये घातिया को घात के परमात्मा हुए ।
सर्वज्ञ वीतराग और निर्दोष गुरू हुए ॥३॥
जो अष्ट कर्म नाश के ही सिद्ध हुये हैं ।
वे अष्ट गुणों सदा विशिष्ट हुए हैं ॥
लोकाग्र में हैं राजते वे सिद्ध अनन्ता
सर्वार्थ सिद्धि देते हैं वे सिद्ध महन्ता ॥४॥
छत्तीस गुण को धारते आचार्य हमारे ।
चउसंघ के नायक हमें भवसिन्धु से तारें ॥
पच्चीस गुणों युक्त उपाध्याय कहाते ।
भव्यों को मोक्षमार्ग का उपदेश पढ़ाते ॥५॥
जो साधु अट्ठाईस मूलगुण कों धारतैं ।
वे आत्म साधना से साधु नाम धारतैं ॥
ये पंच परम देव भूत काल में हुए ।
होते हैं वर्तमान में भी पंचगुरू ये ॥६॥
होंगे भविष्य काल में सगुरू अनन्ते ।
ये तीन लोक तीन काल के हैं अनन्ते ॥

विमल नित्य पाठावली

इन सब अनन्तानन्त की मैं वन्दना करूं ।
शिवपथ के विघ्न पर्वतों की खण्डना करूँ ॥७॥
इक ओर तराजू पे अखिल गुण को चढाऊँ।
एक और महामंत्र अक्षरों को धराऊँ॥
इस मन्त्र के पलड़े को उठा न सके कोई ।
महिमा अनन्त यह धरे, ना इस सदृश कोई ॥८॥
इस मन्त्र के प्रभाव श्वान देव हो गया ।
इस मन्त्र से अनन्त का उद्धार हो गया ।
इस मन्त्र की महिमा को कोई गा नहीं सके ।
इसमें अनन्त शक्ति, पार पा नहीं सके ॥९॥
पाँचों पदों से युक्त मन्त्र सार भूत है ।
पैंतीस अक्षरों से मन्त्र परमपूत है ॥
पैंतीस अक्षरों के जो पैंतीस व्रत करें ।
उपवास या एकाशन से सौख्य को भरे ॥१०॥
तिथि सप्तमी के सात पंचमी के पाँच हैं ।
चौदस के चौदह नवमीं के नव विख्यात हैं ।
इस विध से महामन्त्र की आराधना करैं ।
वे मुक्ति बल्लभा प्रति निज कामना करैं ॥११॥
(दोहा) - यह विष को अमृत करे, भव-भव पाप बिदूर ।
पूर्ण 'ज्ञानमति' हेतु मैं, जजूं भरो सुख पूर ॥१२॥

ॐ ह्रीं अनादिनिधन पंचनमस्कार मंत्राय जयमाला अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(सोरठा) - मन्त्रराज सुखकार, आतम अनुभव देत हैं ।
जो पूजें रूचिधार, स्वर्ग मोक्ष के सुख लहैं ॥१३॥

इत्याशीर्वादः । शांतिधारा, परिपुष्पांजलिं ।

तत्त्वार्थसूत्र पूजा

षट् द्रव्य को जामें कह्यो, जिनराज - वाक्य प्रमाण सों ।
किये तत्त्व सातों का कथन, जिन - आप्त - आगम मान सों ।।
तत्त्वार्थ - सूत्रहिं शास्त्र सो, पूजों भविक मन धारि के ।
लहि ज्ञान तत्त्व विचार, भवि शिव जा भवोदधि पार के ।।
जामें षट् द्रव्यहिं कह्यो, कह्यो तत्त्व पुनि सात ।
सो दश सूत्रहिं थापि के, जजैं कर्म कटि जात ।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत - तत्त्वार्थसूत्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

"पुष्पाञ्जलिं क्षिपामी"

सुरसरी का नीर सुलाय के, करि सुप्रासुक कुम्भ भराय के ।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहिं शिववरो ।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत - तत्त्वार्थसूत्राय - जन्मजरामृत्यु - विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

मलय तगर पवित्र मंगाय के, पीसकर कपूर मिलायके ।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहिं शिववरो ।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत - तत्त्वार्थसूत्राय - संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

सुनव शालि सुगंधित लायके, खंड विवर्जित थाल भरायके ।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहिं शिववरो ।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत - तत्त्वार्थसूत्राय - अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

सुमन बेल चमेलहिं केवरा, जिन सुगंध दशों दिश विस्तरा ।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहिं शिववरो ।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत - तत्त्वार्थसूत्राय - कामबाण - विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

वर सुहाल सुफेनिहिं मोदका, रसगुला रसपूरित मोदका ।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहिं शिववरो ।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत-तत्त्वार्थसूत्राय-क्षुधारोग - विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

घृत कपूर मणीमय दीयरा, करहिं उद्योत हरौ तम हीयरा ।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहिं शिववरो ।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत - तत्त्वार्थसूत्राय - मोहान्धकार - विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

बहु सुगंधित धूप दशांगहिं, धरि हुताशन धूम उड़ावहिं ।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहिं शिववरो ।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत - तत्त्वार्थसूत्राय - अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

क्रमुक दाख्र बादाम अनार ला, नारंग नीबूहिं आमहिं श्रीफला ।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहिं शिववरो ।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत - तत्त्वार्थसूत्राय - मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जलसुचंदन आदिक द्रव्य ले, अरघके भरि थालहिं ले भले ।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहिं शिववरो ।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत - तत्त्वार्थसूत्राय - अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(सवैया)

विमल - विशद वाणी, श्री जिनवर बख्रानी ।
सुन भये तत्त्वज्ञानी ध्यान - आत्म पाया है ।।
सुरपति मनमानी, सुरगण सुख्रदानी ।
सुभव्य उर आनी, मिथ्यात्व हटाया है ।
समझहिं सब नीके, जीव समवशरण के ।
निज - निज भाषा माहिं, अतिशय दिख्रानी है ।।
निरअक्षर अक्षर के, अक्षरन सों शब्द के ।
शब्द सों पद बने, जिन जु बख्रानी है ।
संसार मोह में मोह भरा, प्रगटी जिनवाणी मोह हरा ।
उद्धरत हो तम नाश करा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा ।

अति मानसरोवर झील खरा, करुणारस पूरित नीर भरा ।
दश - धर्म बहे शुभ हंस तरा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा ॥
कल्पद्रुम के सम जान नरा, रत्नत्रय के शुभ पुष्ट वरा ।
गुण तत्त्व पदार्थन पात्र करा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा ॥
वसुकर्म महारिपु दुष्ट खरा, तसु उपजी फैली बेली वरा ।
तसु नाशन वाहि कुठार करा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा ॥
मद माया लोभऽरु क्रोध धरा, ए कषाय महादु:खदाय तरा ।
तिन नाशि भवोदधि पार करा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा ॥
वर षोडश कारण भाव धरा, षट् कायन रक्षण नियम करा ।
मद आठहुँ मदि के गर्द करा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा ॥
जिनवाणी न जाने त्रिजगत फिरा, जड़ चेतन भाव न भिन्न वरा ।
नहिं पायो आतम बोध वरा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा ॥
शुभ-कर्म उद्योत कियो-हियरा, जिनवाणिहिं ज्ञान जग्यो जियरा ।
भवभर मणहर शिव मार्ग धरा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा ॥
सुत 'कन्हैयालाल' परणाम करा,'भगवानदास' जिहि नाम धरा ।
जिनवाणी बसो नित तिहि हियरा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा ॥

(धत्ता छन्द)

जिनवाणी माता, सब सुख दाता, भवभ्रमहर मुक्तिकरा !
शुभ सूत्रिहिं शास्त्रहिं, बारहि बारहि, दास जोरिकर नमन करा ॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूत - तत्त्वार्थसूत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जे पूजै ध्यावें भक्ति बढ़ावें जिनवाणी सेती ।
ते पावहिं धन धान्य सम्पदा पुत्र पौत्र जेती ॥
निरोग शरीर लहैं कीरति जग हरै भ्रमण फेरी ।
अनुक्रम सेती लहैं मोक्षथल तह के होय बसेरी ॥

॥ इत्याशीर्वाद: पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

तीस चौबीसी पूजा

पाँच भरत शुभ क्षेत्र पाँच ऐरावते, आगत-नागत वर्तमान जिन शाश्वते ।
सो चौबिस जिन तीस जजूँ मन लायके, आह्वानम् विधि करूँ बार त्रय गायके ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धि - भरतैरावत - क्षेत्रस्थ - आगतानागत - वर्तमान - सम्बन्धि - चतुर्विंशतितीर्थंकरसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।

नीर दधि क्षीर समल्यायो, कनक को भृंग भरवायो,
चरण तुम पास ले आयो, जनम जर रोग नशवायो ॥
द्वीप अढ़ाई सरस राजे, क्षेत्र दस ता विषै छाजें,
सात शत बीस जिनराजे, पूजताँ पाप सब भाजें ॥

ॐ ह्रीं पञ्चभरतैरावतक्षेत्रस्थ - विंशत्युत्तरसप्तशत - जिनेन्द्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

सुरभि श्रीखण्ड ले आयो, संग करपूर घसवायो ।
धार तुम चरण ढरवायो, भव आताप नशवायो ॥ द्वीप ० ॥

ॐ ह्रीं पञ्चभरतैरावतक्षेत्रस्थ - विंशत्युत्तरसप्तशत - जिनेन्द्रेभ्य: चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

चन्द्रसम तन्दुलं सारं, किरण मुक्ता जु उनहारं ।
पुञ्जतुम चरण ढिंग धारं, अक्षयपद प्राप्त के कारन ॥ द्वीप०॥

ॐ ह्रीं पञ्चभरतैरावतक्षेत्रस्थ-विंशत्युत्तरसप्तशत - जिनेन्द्रेभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

पुष्प शुभ गंधजुत सौहे, सुगंधित अक्ष मन मोहै ।
जजत तुम मदन क्षय होते, मुक्तिपद पलक में जोवे ॥ द्वीप ० ॥

ॐ ह्रीं पञ्चभरतैरावतक्षेत्रस्थ - विंशत्युत्तरसप्तशत - जिनेन्द्रेभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

सरस व्यंजन लिया ताजा, तुरत बनवाय के खाजा ।
चरन तुम जजत महाराजा, क्षुधारोग पलक में भाजा ॥ द्वीप ० ॥

ॐ ह्रीं पञ्चभरतैरावतक्षेत्रस्थ - विंशत्युत्तरसप्तशत - जिनेन्द्रेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीप तमनाशकारी है, सरस शुभ जोतिधारी है ।
दशें दिस हो उजारी हैं, धूम्र मिस पाप हारी है ॥ द्वीप०॥

ॐ ह्रीं पञ्चभरतैरावतक्षेत्रस्थ - विंशत्युत्तरसप्तशत - जिनेन्द्रेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

सरस शुभ धूप दश अंगी, जलाऊँ अग्नि के संगी ।
करम की सेन चतुरंगी, चरन तुम पूजते भंगी ॥ द्वीप० ॥

ॐ ह्रीं पञ्चभरतैरावतक्षेत्रस्थ - विंशत्युत्तरसप्तशत - जिनेन्द्रेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

मिष्ट उत्कृष्ट फल ल्यायो, अष्ट अरि दुष्ट नशवायो ।
श्रीजिन भेंट धरवायो, मोक्ष पद प्राप्त करवायो ॥ द्वीप० ॥

ॐ ह्रीं पञ्चभरतैरावतक्षेत्रस्थ - विंशत्युत्तरसप्तशत - जिनेन्द्रेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

द्रव्य आठों जु लीना है, अर्घ कर में नवीना है ।
पूजते पाप छीना है, 'भानुमल' जोर कीना है ॥ द्वीप० ॥

ॐ ह्रीं पञ्चभरतैरावतक्षेत्रस्थ - विंशत्युत्तरसप्तशत - जिनेन्द्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

प्रत्येक अर्घ्य

जम्बूद्वीप की प्रथममेरु की, दक्षिण दिशा भरत शुभ जान ।
तहाँ चौबीसी तीन विराजैं, आगत नागत जिन वर्तमान ॥
तिनके चरण कमल को निशदिन, अर्घ चढ़ाय करूँ उर ध्यान ।
इस संसार भ्रमण ते तारो, अहो जिनेश्वर ! करुणावान ॥

ॐ ह्रीं सुदर्शन-मेरु-दक्षिणदिशि भरतक्षेत्रसम्बन्धि - त्रिकालवर्ती- चतुर्विंशति - जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सुदर्शन मेरु की उत्तर दिश में, ऐरावत क्षेत्र शुभ जान ।
आगत नागत वर्तमान जिन, बहत्तर सदा शाश्वते तिनजान । तिनके ०

ॐ ह्रीं विजय - मेरोत्तरदिशि ऐरावतक्षेत्रसम्बन्धि - त्रिकालवर्ती- चतुर्विंशति - जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

खण्ड धातकी विजय मरुके, दक्षिण दिशा भरत शुभ जान
तहाँ चौबीसी तीन विराजे, आगत नागत अरुवर्तमान ॥ तिनके ०

ॐ ह्रीं सुदर्शन-मेरु-दक्षिणदिशि भरतक्षेत्रसम्बन्धि - त्रिकालवर्ती- चतुर्विंशति - जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

इसी द्वीप की प्रथम शिखर को, उत्तर ऐरावत जू महान
आगत नागत वर्तमान जिन, बहत्तर सदा सासते जान ॥ तिनके ०

ॐ ह्रीं विजय - मेरोत्तरदिशि ऐरावतक्षेत्रसम्बन्धि - त्रिकालवर्ती- चतुर्विंशति - जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

खण्ड धातकी अचल सुमेर, दक्षिण तास भरत चहूँ घेर ।
तामें चौबीसी त्रय जान, आगत नागत और वर्तमान ॥ तिनके ०

ॐ ह्रीं अचल-मेरु-दक्षिणदिशि भरतक्षेत्रसम्बन्धि - त्रिकालवर्ती- चतुर्विंशति-जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अचल मेरु की उत्तर दिशजान, ऐरावत शुभ क्षेत्र बखान ।
तामैं चौबीसी त्रयजान, आगत नागत और वर्तमान ॥ तिनके ०

ॐ ह्रीं अचल-मेरोत्तरदिशि ऐरावतक्षेत्रसम्बन्धि - त्रिकालवर्ती- चतुर्विंशति-जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

द्वीप पुष्पकर की पूरब दिशा, मन्दर मेरु की दक्षिण भरत - सा ।
ताविषे चौबीसी तीन जु, अर्घ लेय जजूं परवीन जू ॥ तिनके ०

ॐ ह्रीं मन्दर-मेरु-दक्षिणदिशि भरतक्षेत्रसम्बन्धि - त्रिकालवर्ती- चतुर्विंशति-जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

गिरि सूं मन्दर उत्तर जानिये, ताके पूर्व दिशा बखानिये ।
ताविषें चौबीसी तीनजू, अर्घ लेय जजूँ परवीनजू ॥ तिनके ०

ॐ ह्रीं मन्दर - मेरोत्तरदिशि ऐरावतक्षेत्रसम्बन्धि - त्रिकालवर्ती- चतुर्विंशति-जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पश्चिम पुष्पगिरि विद्युन्माल, ताके दक्षिण भरत विशाल
तामें चौबीसी है जु तीन, वसु द्रव्य लेय जजूं परवीन ॥ तिनके ०

ॐ ह्रीं विद्युन्माली -मेरु-दक्षिणदिशि भरतक्षेत्रसम्बन्धि - त्रिकालवर्ती- चतुर्विंशति-जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

याहि गिरि के उत्तर जू ओर, ऐरावत क्षेत्र बनो निहोर ।
तामें चौबीसी है जु तीन, वसु द्रव्य लेय जजूँ परवीन ॥ तिनके ०

ॐ ह्रीं विद्युन्माली- मेरोत्तरदिशि ऐरावतक्षेत्रसम्बन्धि - त्रिकालवर्ती - चतुर्विंशति - जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

द्वीप अढ़ाई के विषै, पञ्चमेरु हित दाय ।
दक्षिण उत्तर तासकैं, भरत ऐरावत भाय ॥
भरत ऐरावत भाय, सु जंबूद्वीप के मॉही ।
चौबीसी हैं तीन, दशों दिशि के ही मॉही ॥
दशों क्षेत्र में राजे सप्त शती बीस जिनेश्वर ।
अर्घ ल्याय चढ़ाय भानुमल जजहिं सुमनकर ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धि - भरतैरावतक्षेत्रस्थ - त्रिकालवर्ती - चतुर्विंशति - जिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा) - चौबीसी तीसों नमों, पूजा परम रसाल ।
मन वच तन को शुद्ध कर, अब वरणो जयमाल ॥

(पद्धरि छंद)

जय द्वीप अढ़ाई में जु सार, गिरि पाँच मेरु उन्नत अपार ।
तागिरि पूर्व - पश्चिम जु ओर, शुभ क्षेत्र विदेह बसै जु ठौर ॥

ता दक्षिण क्षेत्र भरत जु जान, है उत्तर ऐरावत महान ।
गिरि पाँच तने दश क्षेत्र जोय, छवि ताकी कहि न सकै कोय ॥
ताको वरणू वरणन विशाल, तैसा ही ऐरावत है रसाल ।
इस क्षेत्र बीच विजयार्द्ध एक, ता ऊपर विद्याधर अनेक ॥
इस क्षेत्र विषैं षट्खण्ड जान, तहाँ छहौं काल वरतै महान ।
जो तीन काल में भोग भूमि, दस जाति कल्पतरु रहे झूमि ॥
जब चौथा काल लगै जु आय, तब कर्म भूमि बर्ते सुहाय ।
तब तीर्थंकर को जन्म होय, सुर लेय जजै गिरि पर सु जोय ॥
बहुभक्ति करैं सब देव आय, ता थेई थेई थेई की तान ल्याय ।
हरि ताण्डव नृत्य करे अपार, सब जीवन मन आनन्दकार ॥
इत्यादि भक्ति करके सुरेन्द्र, निजनाथ जाय जुत देव वृन्द ।
इह विधि पाँचों कल्याण होय, हरिभक्ति करै अतिहर्ष जोय ॥
या कालविषै पुण्यवन्त जीव, नर जन्म धार शिव लहै अतीव ।
तब श्रेष्ठ पुरुष परवीन होय, सब याही काल विषै जु होय ॥
जब पञ्चम काल करै प्रवेश, मुनिधर्म तणों नहीं रहें लेश ।
विरले कोई दक्षिन देश माँहि, जिनधर्मी नर बहुते जु नाहिं ॥
जब षष्ठम काल करै प्रवेश, तब धर्म कर्म नहिं रहें लेश ।
दस क्षेत्रन में रचना समान, जिनवाणी भाष्यो सो प्रमाण ॥
चौबीसी होइके क्षेत्र तीन, दश क्षेत्रनि में जानों प्रवीन ।
आगत अनागत वर्तमान, सातशतक अरु बीस जान ॥
सबही महाराज नमूँ त्रिकाल, मम भवसागर तैं लेहु निकाल ।
यह वचन हिय में धार लेव, मम रक्षा करहु जिनेन्द्र देव ॥
'विमल' की विनती सुनहु नाथ, मैं पाँय परूँ जुग जोरि हाथ ।
ममवांछित कारज करौ पूर, यह अरज हृदय में धरि जरूर ॥

(घत्ता छन्द)

शत सात सु बीसं श्री जगदीशं, आगतनागत अर वर्ततु हैं ।
मन वच तन पूजै सुध मन हूजै, सुरग मुक्ति पद पावत है ॥

ॐ ह्रीं पञ्चभरतैरावतक्षेत्रस्थ - विंशत्युत्तरसप्तशत - जिनेन्द्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा) - तीनकाल चौबीस जिन, पूजें मन वच काय ।
पुण्य लाभ सब सुख लऐ, निश्चय सुर शिव जाय ॥

॥ इत्याशीर्वाद: परि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

भक्तामर स्तोत्र पूजा

अनुष्टुप् - परम ज्ञान वाणासि, घाति-कर्म प्रघातिनम् ।
महाधर्म प्रकर्त्तारं, वन्देऽहमादि नायकम् ॥
भक्तामरमहास्तोत्रं, मन्त्रपूजां करोम्यहम् ।
सर्वजीव-हितागारं, आदिदेवं नमाम्यहम् ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।

"पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि"

(अथाष्टकं)

सुरसुरी-नद-संभृत-जीवनैः सकल-ताप-हरैः सुख-कारणैः ।
वृषभनाथ वृषांक-समन्वितं शिवकरं प्रयजे हत किल्विषं ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ-जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा । ॥ १ ॥

मलय-चन्दन-मिश्रित-कुंकुमैः सुरभितागत-षट्पद-नन्दनैः ।
वृषभनाथ वृषांक-समन्वितं शिवकरं प्रयजे हत किल्विषं ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ-जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा । ॥ २ ॥

कमल-जाति-समुद्भवतन्दुलैः परम-पावन-पञ्च-सुपुञ्जकैः ।
वृषभनाथ वृषांक-समन्वितं शिवकरं प्रयजे हत किल्विषं ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ-जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

जलज-चम्पक-जाति-सुमालती वकुलपाडलकुन्द-सुपुष्पकैः ।
वृषभनाथ वृषांक-समन्वितं शिवकरं प्रयजे हत किल्विषं ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ-जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा । ॥ ४ ॥

वटक-खज्जक-मण्डक-पायसैर्विविध-मोदकव्यञ्जनषट्रसैः ।
वृषभनाथ वृषांक-समन्वितं शिवकरं प्रयजे हत किल्विषं ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ-जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा । ॥ ५ ॥

रविकरद्युति-सन्निभ-दीपकैः प्रबलमोह-घनान्ध-निवारकैः ।
वृषभनाथ वृषांक-समन्वितं शिवकरं प्रयजे हत किल्विषं ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ-जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा । ॥ ६ ॥

स्वगुरु-धूपभरै-र्घटनिष्ठितैः प्रतिदिशामिलितालिसमूहकैः ।
वृषभनाथ वृषांक-समन्वितं शिवकरं प्रयजे हत किल्विषं ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ-जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा । ॥ ७ ॥

सरस-निम्बुकलांगलिदाडिमै:कदलि-पुंगकपित्थशुभै: फलै: ।
वृषभनाथ वृषांक-समन्वितं शिवकरं प्रयजे हत किल्विषं ॥
ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ-जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा। ॥ ८ ॥
सलिल-गन्ध-शुभाक्षत-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घकै: ।
वृषभनाथ वृषांक-समन्वितं शिवकरं प्रयजे हत किल्विषं ॥
ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा। ॥ ९ ॥
वन-सुगन्ध-सुतण्डुल-पुष्पकै: प्रवर-मोदक-दीपक-धूपकै: ।
फल वरै: परमात्म-पदप्रदं, प्रतियजे श्रीआदि-जिनेश्वरम् ॥
ॐ ह्रीं श्रीअष्टचत्वारिंशत्कमलेभ्य: पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

लक्ष्मीचन्द्र गुरुर्विज्ञो, मूलसंघ विदाग्रणी:
पट्टेऽभय चन्द्रोदेवो, दयानन्दि विदाम्बर:
रत्नकीर्ति: कुमुदेन्दुं सुमति: सागरान्तक:
भक्तामर महास्तोत्र पूजां चक्रे गुणाधिकम् ॥

जयमाला

प्रमाणद्वय-कर्त्तारं स्यादस्ति-वाद-वेदकं ।
द्रव्यतत्त्व-नयागार- मादिदेवं नमाम्यहम् ॥

आदि जिनेश्वर योगागारं, सर्व जीववर दया सुधारं।
परमानन्द रमा सुखकन्दं, भव्य जीव हित करणममन्दं ॥ २ ॥
परम पवित्र वंशवर मण्डन, दु:ख दारिद्र काम बल खण्डन।
वेद-कर्म दुर्जय बल दण्डन, उज्ज्वल ध्यान प्राप्ति शुभ मण्डन ॥ ३ ॥
चतु अस्सीलक्ष पूर्व जीवित पर, धनुष पञ्च शत मानस जिनवर।
हेमवर्ण रुपौघ विमल कर, नगर अयोध्या स्थान व्रत धर ॥ ४ ॥
नाभिराज परमात्म सु वेत्ता, माता मरुदेवी गुण नेता।
सोल स्वप्न पर भेद विख्याता, त्रिभुवननायक पुत्र विधाता ॥ ५ ॥
गर्भ कल्याणक सुरपति कीधा, जन्मकल्याणक मेरु शिर सीधा।
स्वयं स्वयंभू दीक्षाधारी, केवल बोध सु त्रिभुवन प्यारी ॥ ६ ॥
अष्ट गुणाकर सिद्ध दिवाकर, परम धर्म विस्तारण जय भर।
शीतताप रहितं भव हारी, सर्व सौख्य निरुपम गुणधारी ॥ ७ ॥

(घत्ता छंद)

जय आदि सु ब्रह्मा, त्रिभुवन ब्रह्मा, ब्रह्मस्वात्म स्वरुप परं।
जय बोध सु ब्रह्मा, पञ्च सु ब्रह्मा, बह्मा सुमति जलधिनिकरं ॥
ॐ ह्रीं श्रीवृषभनाथपरमदेवाय जयमालाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(शार्दूल विक्रीडित छंद)

देवोऽनेक-भवार्जितो गत-महापाप: प्रदीपानल: ।
देव: सिद्ध-वधू विशाल-हृदयालंकार-हारोपम: ॥
देवोऽष्टादश दोष सिन्दुरघटा दुर्भेद पञ्चाननो ।
भव्यानां विदधातु वाञ्छित-फलं श्रीआदिनाथो जिन: ॥

इत्याशीर्वाद:। पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

कल्याणमन्दिर व्रत पूजा

स्थापना

प्राणतस्व: समायातं, फणिलाञ्छन-सयुतम् ।
वामामातृसुतं पार्श्वं, यजेऽहं तद्गुणाप्तये ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महाबीजाक्षरसम्पन्न ! श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र मम हृदये अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वानम्। तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनम्। समीपे सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरण्।

परिपुष्पांजलिं क्षिपामि:।

अष्टकम्

वियद्गङ्गासिन्धु प्रमुखशुचितीर्थाम्बुनिवहै: ।
शरच्चन्द्राभासै:, कनकमय-भृङ्गार-निहितै: ॥
यजेऽहं पार्श्वेशं, सुरनरखगाधीशमहितं ।
चिदानन्दप्राज्ञं, कमठ रचितोपद्रव-जितम् ॥
ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्री पार्श्वनाथ जलम् ।
स्फुरद्गन्धाहूत-प्रचुर-फणिसंरुद्ध-तरुजै: ।
रसै: कर्पूरास्यै र्निविडभवसन्तापहरणै: ॥यजे.॥
ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्री पार्श्वनाथ अक्षतम् ।

अखण्डै: शालीयै-रपगत-तुषै-रक्षतमयै: ।
प्रपुञ्जैरानन्द-प्रणयजनकै नेत्रिमनसाम् ।। यजे.।।

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्री पार्श्वनाथाय अक्षतान् ।

मरुद्दारुद्भूते - विकचसरसी - जातबकुलै: ।
लवङ्गैरामोद-भ्रमरमिलितै: पुष्पनिचयै: ।।यजे.।।

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्री पार्श्वनाथाय पुष्पम् ।

सदन्नैरापूर्ण - प्रवरघृतपक्वान्नसहितै: ।
रसाढ्यैर्नैवेद्यै-रतुलकाञ्चनपात्रविधृतै: ।। यजे.।।

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्री पार्श्वनाथ नैवेद्यं ।

हविर्जातै: रम्यै-र्विदलितदिशाकीर्णतमर्स: ।
प्रदीप्तै र्माणिक्यै र्विशदकलधौतर्चिरमलै: ।।यजे.।।

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्री पार्श्वनाथाय दीपम् ।

सुकर्पूरोत्पन्नै-रमरतरु-सच्चन्दनभवै: ।
सुधूपौधै: श्लाघ्यै-र्मिलदलिगणागुञ्जित खै: ।।यजे.।।

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्री पार्श्वनाथ धूपम् ।

सुपक्वै: नारङ्ग-क्रमुकशुचिकूष्माण्डकरकै: ।
फलै र्मोचाम्राद्यै विबुधशिवसम्पद्वितरणै: ।।यजे.।।

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्री पार्श्वनाथाय फलम् ।

जलै र्गन्धद्रव्यै विशदसदकै: पुष्पचरुकै: ।
सुदीपै: सद्धूपै र्बहुफ लयुतैरर्घ्यनिकरै: ।।यजे.।।

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्री पार्श्वनाथ अर्घ्यम् ।

जयमाला

शताब्दजीवी समशत्रुमित्रो, हरित्प्रभाङ्गो हतमारदर्प ।
सपादचापद्वयतुङ्गकायो, यस्तं सदा पार्श्वजिनं नमामि ।।
निराभूषशोभं, परिध्वस्तलोभं, चिदानन्दरूपं, नतानेकभूपं ।
स्तुवे पार्श्वदेवं, भवाम्भोधिनावं, त्रिष ड्दोषहीनं, जगत्पूज्यमानम् ।।
शिवं सिद्धकार्य वरानन्ततुर्य, रमानाथमीशं, जितानङ्गपाशम् ।।स्तुवे.।।
शतेन्द्रार्च्यपादं स्फुरद्दिव्यनादं, गणाधीशमाद्यं, लसद्देववाद्यम् ।। स्तुवे.।।
हरं विश्वनेत्रं, त्रिशुभ्रातपत्रं, क्षुधावह्निनीरं, द्विधासङ्गदूरम् ।।स्तुवे.।।

दिशाचेलवन्तं, वरं मुक्तिकान्तं, निरस्तारिमोहं, पुरुं सौख्यगेहम् ।।
स्तुवे पार्श्वदेवं, भवाम्भोधिनावं, त्रिषड् दोषहीनं, जगत्पूज्यमानम् ।।
जराजन्ममुक्तं, वरानन्दयुक्तं, हतक्रोधमानं, कृतज्ञानदानम् ।।स्तुवे.।।
अविद्यापहारं, सुविद्यागभीरं स्वयंदीप्तिमूर्ति, जगत्प्राप्तकीर्तिम् ।।स्तुवे.।।
यतिवरवृषचन्द्रं, चित्कलापूर्णचन्द्रं । विमलगुण समृद्धं, नम्रनागामरेन्द्रम ।।
जिनपतिमहिधारं, दुःखसन्तापहारं । भजति नमति सारं, सौख्यसारं लभेत ।।

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्री पार्श्वनाथ जयमालार्घ्यम् ।

सर्वजीवदयायुक्त:, सर्वलौकान्तिकार्चित: ।
पाश्वदेव: श्रियं दद्यात् नित्यं पूजाविधायिनाम् ।

।। इत्याशीर्वाद: परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामी ।।

सहस्रनाम समुच्चय पूजा

दोहा - वृषभादिक चौबीस जिन, प्रणमूँ बारम्बार ।
सहस्रनाम पूजा रचूँ, उर धर हर्ष अपार ।।

ॐ ह्रीं श्री मदादि - धर्मसाम्राज्यनायकान्ताष्टाधिकसहस्रन्ता - शुभनाम - धारक - श्री जिनेन्द्रदेव अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।

"परिपुष्पांजलि क्षिपामि"

भव-भव का सारा मैल धुला, अब इच्छाओं की प्यास नहीं ।
सम्यक् ज्ञानामृत पा करके, मृग जल पर अब विश्वास नहीं ।।
जिन सहस्रनाम की भक्ति भावना, हृदय हिलोरें लेती है ।
सद्भक्तों के चेतन में छा तन मन पावन कर देती है ।।

ॐ ह्रीं अष्टाधिक- सहस्रनामधारक - श्री जिनेन्द्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

तन-मन तपन मिटी मेरी, बुझ रही राग की आग यहाँ ।
वचनामृत शीतल चन्दन से, चेतन में उठा विराग यहाँ ।। जिन ०

ॐ ह्रीं अष्टाधिक-सहस्रनामधारक - श्री जिनेन्द्राय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

क्षत-विक्षत पर्यायों पर से, उठ गई हमारी दृष्टि प्रभो ।
निज को अखण्ड अक्षत पाकर, बदली सब लौकिक सृष्टि विभो ।। जिन ०

ॐ ह्रीं अष्टाधिक - सहस्रनामधारक - श्री जिनेन्द्राय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

इन रंग बिरंगे फूलों पर, अब कभी नहीं मंडराऊँगा ।
विषयों के चुभते शूलों पर अब, नहीं भूल कर जाऊँगा ॥ जिन०
ॐ ह्रीं अष्टाधिक-सहस्रनामधारक - श्री जिनेन्द्राय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।
जब दर्शन पूजन करने से, तन-मन-लोचन सब तृप्त हुए ।
तब क्षुधा मिटाने तथा कथित, ये षट्रस व्यञ्जन व्यर्थ हुए ॥ जिन०
ॐ ह्रीं अष्टाधिक-सहस्रनामधारक-श्री जिनेन्द्राय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
इस ज्ञान दीप के जलने से, मिथ्यात्व अँधेरा भाग गया ।
जग का व्यापार सचेत हुआ, निश्चय अपने में जाग गया ॥ जिन०
ॐ ह्रीं अष्टाधिक - सहस्रनामधारक - श्री जिनेन्द्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।
प्रभु भक्ति वन्दन के द्वारा, शुभ अशुभ विकार हुए स्वाहा ।
शुद्धोपयोग की पावक में, चिच्चमत्कार चमका आहा ॥ जिन०
ॐ ह्रीं अष्टाधिक - सहस्रनामधारक - श्री जिनेन्द्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।
है नर्क निगोद अशुभ का फल, शुभ का फल मानवता है ।
मानवता का फल संयम है, संयम को देव तरसता है ॥ जिन०
ॐ ह्रीं अष्टाधिक - सहस्रनामधारक - श्री जिनेन्द्राय फलं निर्वपामीति स्वाहा ।
जल चंदन अक्षत पुष्प और, नैवेद्य एकाकार हुए ।
जड़ दीप धूप फल अष्ट द्रव्य, ये पूजा के उपचार हुए ॥ जिन०
ॐ ह्रीं अष्टाधिक - सहस्रनामधारक - श्री जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

श्री जिनेन्द्र की भक्ति में, होकर अति तल्लीन ।
गाऊँ गुणमाला विशद, समता भाव प्रवीण ॥
अस्तित्व आपका प्रतिक्षण ही, सन्मार्ग प्रकाशित करता है ।
श्री जिनवाणी का अवलम्बन, सम्यक्त्व हृदय में भरता है ॥
कर्मों की छाया क्षणभंगुर, रागादि निमित पा जाती है ।
चरणारविन्द की रज लेकिन, परिणाम सुखद कर जाती है ॥
सद्ध्यान कसौटी चढ़ करके, आतम कुन्दन हो जाता है ।
तप सौरभ का स्वर्णिम सपना, साकार स्वयं हो जाता है ॥
भावों की सुन्दर सरिता भी, कण-कण से नि:सृत होती है ।
सुर गंगा भी बहकर पावन, भव भव के कल्मष धोती है ॥
सत अनेकान्त मय वस्तु तत्त्व को, स्याद्वाद दर्शाता है ।
प्रत्येक धर्मी बन मुख्य गौण, अपनी आभा बिखराता है ॥

जिनसेन तथा जिन बैन मृदुल, जिन कल्पवृक्ष की छावों में ।
वचनों के नामों की माला, गूँथी गुण सूत्री भावों में ॥
ॐ ह्रीं अष्टाधिक-सहस्रनामधारक-श्री जिनेन्द्राय जयमाला अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
नाम-मन्त्र के जाप से, भव-भव के सन्ताप ।
कटते अपने आप ही, कोटि जन्म के पाप ॥

इत्याशीर्वाद: । परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

त्रिकाल चौबीसी पूजा

(अडिल्ल छंद)

भूत भविष्यत वर्तमान चौबीस को, जंबू भरत मंझार तीन जग ईशको ।
निरवाणादि अतीत वर्त्त वृषभादि हैं, महा पद्मादि भविष्य करत अरि नाश हैं ॥ १ ॥
ये तीनों चौबीस बहत्तर नाथकों, थापि जजूँ मन वचन नाय निज माथकों ।
आह्वानम् संस्थापन मम सन्निहित युता, भाव भक्ति अति आनि हानि मति भ्रमयुता ॥ २ ॥
ॐ ह्रीं त्रिकालचतुर्विंशतिजिनसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनं । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

"परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामि"

(गीतिका छंद)

गंग क्षीर सुनीर निर्मल स्वर्ण झारी में भरैं,
जन्म जर मरणादि हारन अचल पद प्राप्ति करैं ।
भरत जम्बूद्वीपके त्रयकाल त्रय चौबीस को,
पूजूँ सदा मन वचन तनतें दाय पद जगदीश को ॥ १ ॥
ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थ - भरतक्षेत्रोत्पन्न - त्रिकालसम्बन्धिचतुर्विंशति - जिनेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।
कर्पूर केसर मिलत चंदन अगर आदि सुगन्ध तैं ।
भरिस्वर्ण झारी धार देते छूटते भवतापतें ॥ भरत २ ॥
ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थ - भरतक्षेत्रोत्पन्न - त्रिकालसम्बन्धिचतुर्विंशति - जिनेभ्य: संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अति श्वेत सुन्दर सुरभि मंडित तंदुलौघ सुथाल में ।
भरि जजत जिनके चरन युगको अख्रैपद के पावने ॥ भरत ३ ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थ - भरतक्षेत्रोत्पन्न - त्रिकालसम्बन्धिचतुर्विंशति - जिनेभ्यो अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

सुमन स्वर्ण स्वरुप मय शुभ स्वर्ण थाल भराईये ।
अरि अनंत भंग सु करन कारणशील सार बढ़ाइये ॥ भरत ४ ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थ - भरतक्षेत्रोत्पन्न - त्रिकालसम्बन्धिचतुर्विंशति - जिनेभ्यः कामबाण - विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

पकवान मेवा आदि चरुवर कनक भाजन में भरैं ।
क्षुधा वेदनी के नाश कारण प्रभु चरण सन्मुख धरै ॥भरत ५ ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थ - भरतक्षेत्रोत्पन्न - त्रिकालसम्बन्धिचतुर्विंशति - जिनेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीप मणिमय ज्योति भरकर प्रभा सुन्दर रवि समा ।
ते धारिथारी कनक निर्मित पूजिये सब तम हना ॥भरत ६॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थ - भरतक्षेत्रोत्पन्न - त्रिकालसम्बन्धिचतुर्विंशति - जिनेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

धूप मेलि सुगन्ध नाना कीजिये अरि नाश ही ।
सो कनक धूपायन हि खेवत अष्ट कर्म विनाश ही ॥ भरत ७ ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थ - भरतक्षेत्रोत्पन्न - त्रिकालसम्बन्धिचतुर्विंशति - जिनेभ्यो अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीफल दाख बदाम पिस्ता फल अनेक सु लाइये ।
सो कनक भाजन भरि सुपूजत मोक्ष महाफल पाइये ॥भरत ८॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थ - भरतक्षेत्रोत्पन्न - त्रिकालसम्बन्धिचतुर्विंशति - जिनेभ्यो मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल गन्ध तन्दुल सुमन चरुवर दीप धूप फलौघ ही ।
करि अर्घ्य द्रव्य अनर्घ ले के नसैं भव अघ औघ ही । भरत ९।

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थ - भरतक्षेत्रोत्पन्न - त्रिकालसम्बन्धिचतुर्विंशति - जिनेभ्यो अनर्घ पद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा) - **ये तीनों चौबीस जिन, सकल सुखनि को मूल ।**
कहूँ तास जयमालिका, पृथक अनुकूल पृथक युत थूल । १ ।

(चौपाई)

तामें प्रथम भूत चौबीस, नाम जपौ भ्रम हरन मुनीश ।
निर्वाणरु सागर महासाध, विमल विमलप्रभ शुद्ध अराध । २ ।
श्रीधर दत्तनाथ अमलेश, उधरन अगनिनाथ शुभभेश ।
संजम पुष्पांजलि शिवगुणा, उत्साहरु चक्षु ज्ञान सुभणा । ३ ।
परमेश्वर विमलेश्वर सार, और यथार्थ जसोधर सार ।
कृष्ण ज्ञानमति विशुद्धमतीय, भद्ररु शांत युक्त शिवपीय । ४ ।
ये चौबीस अतीत जिनेश, वंदौं दायक पद परमेश ।
आगे वर्तमान जिन ईश, नाम जपौं नम कर जगदीश । ५ ।
ऋषभ अजित संभव सुख बीज, अभिनंदन सु सुमत भव-ईश ।
पद्मप्रभु जु सुपारस नाथ, चंद्र-प्रभ चन्द्र सम गात । ६ ।
पुष्पदन्त शीतल तपहार, श्रेयांस वासुपूज सुखकार ।
विमल अनंत धर्म जिनराज, शांति कुंथु दायक सुख साज । ७ ।
अर मलि मुनिसुव्रत जगनाथ, नमि अरु नेमनाथ सुख साथ ।
पार्श्वरु वीराधिप महावीर, कर्म चूरि पहुँचे भव तीर । ८ ।
ये चौबीस कहे वर्तमान, भव तारन जग गुरुवर महान ।
आगे कहूँ अनागत जिना, चतुर्विंश संख्या तिन गिना । ९ ।
महापद्म पुनि सुर सुदेव, सुप्रभ स्वयंप्रभ करत सेव ।
सर्वायुध जगदेव जिनेश, उदयदेव उदयंक महेश । १० ।
प्रश्नकीर्ति जयकीर्ति उदार, पूर्णबुद्ध निः कषाय सार ।
विपुलप्रभ जिन बहल सु भले, चित्र समाधि गुप्त निर्मले । ११ ।
स्वयंभू व कंदर्प जिनेश, जयनाथ जिन विमल प्रभेश ।
दिव्यवाद जिन अनंत सुवीर, अनंतवीर्य चौबीस समधीर । १२ ।
ये चौबीस अनागत जिना, भव उधरन कारण शिवसना ।
भूत भविष्यत वर्त चौबीस, कीनी थुति भव हरन जगीश । १३ ।
तिन सबके बहत्तर जिनराज, वंदों भवदधि तरन जहाज ।
त्रय चौबीसनिके परसाद, गिरि कैलाश विषै सुख साध । १४ ।
निर्मापित थे भरत चक्रीश, पूजै तासु शक्र चक्रीश ।
ये ही कर्मनाश के कार, ये ही शिव रमणी भरतार । १५ ।
ये ही परम पूज्य परमेश, ये ही सकल सुखनि के वेश ।
ये ही मो मन वांछित कार, या भव पर - भव सुखदातार । १६ ।
ये ही जनम जरा मृतु हरैं, ये ही परम रिद्धि को करैं ।
जाके शरण और नहिं कोय, ताके बड़ो शरण यह जोय । १७ ।

कोई हुये कारनते संघ, ये बिन कारण सब जगबंध ।
ये जिन बहत्तर की गुनमाल, जे पहरैं निज कंठ विशाल । १८ ।
ते भव भव जग विभव अनेक, लाभे परभव होय शिवेश ।
पूजूँ ताकौं अर्घ सुदेय, मन वच तन बहु भक्ति सुलेय । १९ ।
दोहा - ये चौबीस तीनकी, समुचय करि सुपूज ।
आगै भिन-भिन करत हों, भक्ति अधिक मम हूज । २० ।

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थ - भरतक्षेत्रोत्पन्न - अतीत - वर्तमान- अनागत -चतुर्विंशति - जिनेभ्यो जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

। इत्याशीर्वाद: परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ।

श्रीमण्डप (समवशरण) पूजा

(अडिल्ल छन्द)

श्रीमण्डप में जाय विराजें देव जू, सुर नर पूजत पाँय करें नित सेव जू ।
हम पूजत शिरनाय यहाँ कर थापना, जजत जिनेश्वर पाय लहें हित आपना ।।

ॐ ह्रीं समवशरणस्थ-चतुर्विंशति जिनेन्द्रसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।

"पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि"

सुकारण पूजत हों, जय समवसरण में जाय, सुकारण पूजत हों ।
श्रीचौबीस जिनके पाँय, सुकारण पूजत हों । टेक
कञ्चन की झारी में भरिकें, उज्जवल नीर सु लावो ।
जन्म जरा दुख नाशन कारण, श्री जिनचरण चढ़ावो ।। सुकारण ०

ॐ ह्रीं समवशरणस्थित चतुर्विंशतिजिनेन्द्रेभ्यो जन्मजरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

केशर में कर्पूर मिलायके मलयागिर सुखराशी ।
चरण पूज जिनराज प्रभू के, भव आताप विनाशी ।। सुकारण ०

ॐ ह्रीं समवशरणस्थित चतुर्विंशतिजिनेन्द्रेभ्य: संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

देवजीर सुखदास सु अक्षत्, मुक्ताफल सम आनो ।
पुञ्ज मनोहर जिनपद आगे, देत अखय पद जानो ।।

ॐ ह्रीं समवशरणस्थित चतुर्विंशतिजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

कमल केतकी जुही चमेली, बेला सुभग सुहावे ।
ले गुलाब जिनवर पद पूजो, काम नाश शिव पावे ।। सुकारण ०

ॐ ह्रीं समवशरणस्थित चतुर्विंशतिजिनेन्द्रेभ्य: कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

फेनी घेवर मोदक लाडू, गोझा सरस सुहाते ।
क्षुधारोग निर्वारन कारन, पूजन कर धर ताते ।। सुकारण ०

ॐ ह्रीं समवशरणस्थित चतुर्विंशतिजिनेन्द्रेभ्य: क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

मणिमय दीप अमोलक लेकर, बाती तुरत प्रजालो ।
मोह तिमिर भहरात फिरे तँह, जगमग होत दिवालो ।। सुकारण ०

ॐ ह्रीं समवशरणस्थित चतुर्विंशतिजिनेन्द्रेभ्यो मोहन्धकार - विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

कृष्णागरु कर्पूर कूटके, धूप दशांगी खेवो ।
अष्टकर्म छिनमाहिं जारिके, छार होंय प्रभु सेवो ।। सुकारण ०

ॐ ह्रीं समवशरणस्थित चतुर्विंशतिजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीफल लोंग सुपारी भारी, पिस्ता नये चढ़ावो ।
कहत जिनेश्वर मुखतें वानी, तुमहू सुर शिव जावो ।। सुकारण ०

ॐ ह्रीं समवशरणस्थित चतुर्विंशतिजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल फल अर्घ्य बनाय गाय गुण, पढ़ि जयमाल सुनाचो ।
तुच्छबुद्धि "कवि लाल" पायके, वाँचत मन धर साँचो ।। सुकारण ०

ॐ ह्रीं समवशरणस्थित चतुर्विंशतिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा) - समवशरण के बीच में, श्रीमण्डप सुविशाल,
बीच विराजें शम्भु जी, "लाल" भने जयमाल ।

(त्रिभंगी छंद)

जय जय गुण - सुन्दर, नमत पुरन्दर, धरम धुरन्धर जगतपते ।
जगमगतसु ज्ञानं, दुर्णय भानं, जोगिनधानं देव नते ।।

(पद्धरि छंद)

जय चारघातिया घात नमस्ते, राग द्वेष दो टारि नमस्ते ।
केवल दर्शन पाय नमस्ते, परमौदारिक काय नमस्ते ।।
इन्द्र पूज आनन्द नमस्ते, पूजा करत सुछन्द नमस्ते ।
क्षीरोदधि जल लाय नमस्ते, स्तुति करत बनाय नमस्ते ।
सब देवन शिरताज नमस्ते, गुणमण्डित जिनराज नमस्ते ।।
महा मोह हतिकार नमस्ते, भव्यन को सुखदाय नमस्ते ।

पर - परिणति - परिहार नमस्ते, ज्ञाननिधान सु भान नमस्ते ॥
निष्पृह हो जगतें जु नमस्ते, धरि समाधि वैराग्य नमस्ते ।
सिद्ध-चिदानंद राय नमस्ते, शिवमारग दरशाय नमस्ते ॥
सुरनर मिल नित ध्याय नमस्ते, करुणासागर देव नमस्ते ।
अशरण - शरण जिनेश नमस्ते, वचन दयारस लीन नमस्ते ॥
हरिहर करि प्रभु पूज नमस्ते, लोकालोक विलोक नमस्ते ।
जय जय जग आधार नमस्ते, सुर जय जय उच्चार नमस्ते ॥
पञ्चाचार सु पाय नमस्ते, इन्द्र सु स्तुति गाय नमस्ते ।
फिर निजभाल नमाय नमस्ते, मण्डितनृत्य सु ध्याय नमस्ते ॥
थेइ थेइ थेइ धुनि होत नमस्ते, जगमग जिनतन ज्योति नमस्ते ।
बाजत बीन मृदंग नमस्ते, दे प्रदक्षिणा तीन नमस्ते ॥
बहुविध पुण्य उपाय नमस्ते, जय जय जय सुखदाय नमस्ते ।
प्रातिहार्य वसु पाय नमस्ते, तरु अशोक हो पास नमस्ते ॥
सुर वरषावत पुष्प नमस्ते, वाणी खिरत जिनेश नमस्ते ।
तीन छत्र शिरधार नमस्ते, ढोरत चौंसठ चमर नमस्ते ॥
सिंहासन थिर देव नमस्ते, भामण्डल छवि पेख नमस्ते ।
बाजत दुन्दुभि द्वार नमस्ते, श्रावक श्राविका करें नमस्ते ॥
देव असंख्याते सु नमस्ते, गुण अनन्त विख्यात नमस्ते ।
श्रावक गण सुखदाय नमस्ते, क्षमावान गुणवान नमस्ते ॥
जय जय भाल नवाय नमस्ते, तुच्छबुद्धि "कवि लाल" नमस्ते ।
भववारिधितें तार नमस्ते, यह विनती उरधार नमस्ते ॥

(दोहा) - श्री अरिहन्त जिनेश की, गूँथी शुभ जयमाल ।
जो पहिरे भवि कण्ठ में, तिनके भाग्य विशाल ॥

ॐ ह्रीं श्रीमण्डपकेवलिसंयुक्त-समवशरणस्थित-जिनेन्द्रेभ्य: जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(अडिल्ल छंद)

जो बांचे यह पाठ सरस मन लायकें, सुने भव्य दे कान सु मन हरषायकें ।
धनधान्यादिक पुत्र पौत्र सम्पति वरे, सुर नर के सुख भोगि बहुरि शिवतियवरे ॥

॥ इत्याशीर्वाद: परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

कर्मदहन पूजा

स्व. कविवर चन्द्रजी कृत

स्थापना

(दोहा) - तीर्थंकर जिनको नमें, सुर नर मुनिगण सन्त ।
जयवन्ते वरतो सदा, ऐसे सिद्ध महन्त ॥१॥

(छप्पय) - ऋषभ अजित सम्भव, जिनेन्द्र अभिनन्दन जानो ।
सुमति पद्म जिनदेव, सुपारस चन्द्र, बखानो ।
पुष्पदन्तशीतल श्रेयांस, जिन वासुपूज्य वर ।
विमल अनंत धर्मशांति, कुंथुजिन अरह कर्महर ॥
मल्लिमुनिसुव्रतसु नमि, नेमि पार्श्व महावीर जी ।
ये चौबीसों वन्दन करों, हरो जगत की पीर जी ॥

(सोरठा) - गुरू के लागों पांय, आचारज उवझाय मुनि ।
शारद माय मनाय, दे सुबुद्धि नाशो मुमति ॥

(सवैया) - मोहनीय कर्म नाशि, सुख अनन्तको प्रकाश ।
ज्ञानावरणी सु हनि, अनन्तज्ञान को प्रकाश ॥
दरशनावरणी सुघाति, अनन्त दरश पाय है ।
अन्तराय नाश के, अनन्त वीर्य पाय है ॥
आयुकर्म नाश से, अवगाहन गुण प्रगट भयो ।
वेदनीय के नशे, अव्याबाध पायो है ।
नामहानि अमूर्ति गुण, जबै गोत्र नाशा ।
गुरू लघु आत्मविलासी, भये त्रिजग दर्शायो है ॥

(दोहा) - ऐसे सिद्ध महन्त को, पूजों में शिर नाय ।
उतर उतर अपवर्गसे, तिष्ठ तिष्ठ इत आय ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्रागच्छागच्छ सम्वौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनम् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

"परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामि"

(अष्टक त्रिभंगी छन्द)

गंगाजल आनो, निरमल छानो, तप्त करानो शुद्ध महा ।
झारी ले नाचों, तनमन राचों, आनद सांचो हृदय लहा ॥
ते सिद्ध महन्ता, सब गुणवंता, पूजत सन्ता भक्ति करों ।
निजमन हरषाऊँ, पुण्य कमाऊँ, करम नशाऊँ मुक्तिवरों ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धपरमेष्ठिने जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा ।

केसरँग पियरा, घिसके नियरा, चन्दन सियरा गन्ध महा ।
धरि हेम कटोरा, युगका जोरा, षटपदशोरा करत जहां ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धपरमेष्ठिने संसार ताप विनाशनाय चंदन् निर्वपामीति स्वाहा ।

तन्दुल बहु लीने, खण्ड विहीने, शुद्ध सु बीने धोय किये ।
धरिमध्यसोधारा, शशिउनहारा, देखत प्यारा हरष हिये ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

ले सुमन घनेरे, ऋतु ऋतु केरे, मन हुलसेरे देखत ही ।
धरि मध्य सुथारा, भाव उजारा, मदन निवारा सेवत ही ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धपरमेष्ठिने कामबाण विध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ।

नेवज कर ताजा, लाडू खाजा, अति छविछाजा मनभाया ।
षटरस कर भीना, स्वाद नवीना, थाल भरीना, हरषाय ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीपक ले नीका, ज्योति जगीका, रतनन ही पा, परजालों ।
धर मध्य सुथारा, विपुल उजारा, मोहनिवारा, तम टालो ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकार विनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

वर धूप कुचर कें, दशविध करकें, उत्तम धरकें खेवत हों ।
तसु धूम उडाना, मन हरषाना करम नशाना सेवत हों ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्म दहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

उत्तम फल धारा, आम अनारा, श्रीफल भारा ले सु धरों ।
तुमशरणें आया, मन हरषाया, सुकृत कमाया पार करो ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफल प्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा ।

जल गन्ध सुधारे, अक्षत न्यारे, पुष्प सु प्यारे, नेवज ले ।
द्युति दीप उचारी, धूप सुधारी, फलधर भारी, सरस भले ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

(अडिल्ल) - **अष्ट करम जे दुष्ट, तिन्हें तुम नाशियो ।**
अष्ट महागुण सुष्ट, तिन्हें सुप्रकाशियो ॥
अष्ट द्रव्य से पूजों, मन वच काय जी ।
आठों अंग नवाय, नमो तुम पांय जी ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धपरमेष्ठिने पूर्णार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

(ज्ञानावरण कर्मविनाश पूजा)

(दोहा) - **ज्ञानाचरण सु पचविध, सो तुम नाशे देव ।**
ज्ञान प्रकाशे पंचेविध, करों तुम्हारी सेव ॥

(गीता छन्द)

मतिज्ञानावरण सु घातके, मतिज्ञान सुन्दर पाइयो ।
श्रुतज्ञानावरण नाशकर, श्रुतज्ञान निज उर पाइयो ॥
विधि अवधि मनपर्यय सु भारी, ज्ञानावरण निवारियो ।
तब अवधि मनपर्यय सु भारी, ज्ञान निज उर धारियो ॥

(दोहा) - **केवल ज्ञानावरण हनि, प्रगटो केवलज्ञान ।**
लोकालोक निहारते, पूजों सिद्ध महान ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचप्रकारज्ञानावरणकर्मनिवारणाय श्री सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यम् ।

(दर्शनावरण कर्म-विनाश पूजा)

(दोहा) - **दरशन घातक प्रकृति नव, दरशन होन न देत ।**
ताहि विनाश प्रकाशियो, अनन्त दरशन सेत ॥

प्रथम चक्षुर्दर्शनावरण विधि जानिये । द्वितीया अचक्षुर्दर्शनावरण वखानिये ॥
तीजो अवधि दर्शनावरणी गाइये । चौथा केवलदर्शनावरण लहाइये ॥

(दोहा) - **सुख से सोवे सुख जगे, सो निद्रा पहिचान ।**
टेरे से जागे न सो, निद्रानिद्रा जान ॥

(चौपाई)

उठता बैठा ऊंधे सोई, प्रचलाकरम उदय जिय होई ।
चलतफिरत जिहिं नींद सतावे, सो प्रचलाप्रचला कहलावे ।
जाके उदय बडोबल होई, नारायण प्रतिहरिसम सोई ।
सो सत्यानगृद्धि है भाई, इसको हते भये शिवराई ॥

ॐ ह्रीं श्री नवप्रकारदर्शननावरणकर्मविनाशनाय श्री सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यम् ।

वेदनीयकर्म-विनाश पूजा

अब कर्म वेदनी मानो, दो प्रकृति तासकी जानो ।
इस साता द्वितीय असाता, सब जीवन जेर कराता ।

(दोहा) - **साता सुख आभास हो, दुःख आसाता देत ।**
इनको हनि शिवपुर गये, ते पूजों निजहेत ॥

ॐ ह्रीं श्री द्विप्रकारवेदनीयकर्मविनाशनाय श्री सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यम् ।

(मोहनीय कर्म विनाश पूजा)

(दोहा) - **बीस आठ भट मोहके, बडे बडे सरदार ।**
जेर किये जग जीव सब, छोडत नांहि गमार ॥
प्रथम प्रकृति मिथ्यात्वहनि, द्वितिय मिश्र मिथ्यात्व ।
सम्यक्प्रकृति तृतीय हनि, तब पायो सम्यक्त्व ॥

अनन्तानुबन्धी के चार बखानिये। क्रोध मान अरू माया लोभहि जानिये ।।
चार अप्रत्याख्यानरू प्रत्याख्यानके। चार संज्वलन इति षोडश भटहानिके ।।

(दोहा) - प्रथम नाश सम्यक्त्व लहि, द्वितिय अणुव्रत ठान।
तृतिय घाति मुनिपद धरे, चौथो हनि जिनजान ।।
चार चौक सोलह भये, ये क्रोधादि कषाय।
इनको हनि शिवपुर गये, जजों सिद्ध सुखदाय ।।

ॐ ह्रीं त्रिमिथ्यात्वषोडशकषायप्रकृतिघाताय सिद्ध परमेष्ठिने अर्घ्यम्।

(गीता छन्द)

अब हास्य रत्यारती शोक, भय जुगुप्सा जानिये ।
स्त्री पुरुष तीजो नपुँसक, वेद त्रिविध बखानिये ।।
नव नो कषाय विनाश कर, इमि मोहनीका क्षय किया।
सो सिद्ध मन वच काय पूजों, शुभोदय अवसर लिया ।।

ॐ ह्रीं नोकर्मसहितसर्वमोहविनाशाय श्री सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यम्।

(दोहा) - त्रय षोडस नव मिल प्रकृति, अट्ठाईस बखान।
तिन सबही को नष्टकर, जो पहुंचे शिवधान ।।

ॐ ह्रीं मोहकर्मरहिताय श्री सिद्धपरमेष्ठिने पुर्णार्घ्यम्।

(आयु कर्म विनाश पूजा)

(दोहा) - आयुकर्म योद्धा प्रबल, ताके हैं भट चार।
ताको जिय बन्धन करे, तहाँ धरत निर्धार ।।

देव आयु के उदय, देवपद पाइये। मनुष आयु के उदय, मनुष्य कहाइये ।।
तिर्यगायु के उदय तिर्यग्गति में परे। नरक आयु के उदय, नारकी अवतरे ।।

(दोहा) - चारों गतिके दुख सहे, पडो कर्मवश जीव।
ताको हनि शिवपुर गये, पूजों सिद्ध सदीव ।।

ॐ ह्रीं चतु:प्रकारायु: कर्मविनाशनाय श्री सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यम्।

(नाम कर्म विनाश पूजा)

(दोहा) - नाम करम के उदय जिय, नाना नाम धरात।
ताकी प्रकृति तिरानवे, सो जानो इस भांत ।।

(गीता छन्द)

सित पीत श्याम अरूण हरित, ये पंच वरण वखानिये।
तिक्त आम्लसु क्षार कडुवा, मिष्ट रस पन जानिये ।।
दुर्गन्ध और सुगन्ध दो, स्पर्श वसुविध लेखिये ।
लघु और भारी तपत शीत, कठोर नरम विशेखिये ।।

(दोहा) - चिक्कण रुक्ष मिलाय सब, वर्णादिक के बीस।
ते हरिके शिवपुर गये, पूजों ते जगदीश ।।

ॐ ह्रीं वर्णादिकविंशतिप्रकृतिविनाशाय सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यम्।

(दोहा) - सँहनन छह संस्थान छह, गति पुनि चार गनीस।
आनुपूर्वी चार मिल, संस्थानादिक बीस ।।

(कुसुमलता छन्द)

वज्रवृषभ- नाराच, वज्र-नाराच दुतिय भनि ।
तीजा है नाराच, अर्घ नाराच चतुर्गति ।।
कीलक पंचम जान, षष्टम स्फाटक नामा ।
छहों संहनन धार, जीव भटके जगधामा ।।

(पाइता छन्द)

समचतुर प्रथम संस्थाना, न्यग्रोधोपरिमण्डलना ।
स्वातिक तृतीय गनि लीजे, बावन फिर कुब्ज भनीजे ।।
हुंडक छठमों सो जानो, ये छह शरीर संस्थानो ।
गति चार पूर्वीचारा, सुरनर, पशु नारक धारा ।।

(दोहा) - षट षटचतु चतु बीस सब, संस्थानादिक जान।
तिनको हनि शिवपुर गये, ते पूजों भगवान ।।

ॐ ह्रीं शरीरादिविंशतिप्रकृतिविनाशनाय सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यम्।

(कुसुमलता छन्द)

औदारिक वैक्रियकाहारक वैक्रियकाहारक तैजस जानों।
कार्मण मिल पन शरीर, ये ही परमानो ।।
येही बंधन नाम, ये ही संघात पंच भनि ।
इन्द्री पंच मिलाय, शरीरादिक सु बीस गनि ।।

ॐ ह्रीं शरीरादिविंशतिप्रकृतिविनाशनाय सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यम्।

(दोहा) - औदारिक वैक्रियक, आहारक अङ्गोपाँग ।
अशुभचाल शुभचालमिल, पैंसठ प्रकृति सुआंग ।।

ॐ ह्रीं उपांगशुभाशुभप्रकृतिविनाशनाय सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यम्।

(अडिल्ल) - वर्णादिकको बीस, सेत आदिक सु जान तन ।
संस्थानादिककी बीस, आदि समचतुर नाम भन।
शरीरादि-पुन बीस, औदारिक आदि बखानो ।
दोय चाल मिलके, उनसँग पैंसठ पहिचानो ।।

ॐ ह्रीं पंचाधिकर्षाष्टपिंडप्रकृतिविनाशनाय सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यम्।

(अडिल्ल) - अब अट्ठाइस प्रकृति, अपिंड बखानिये ।
प्रथम अगुरूलघु, दुतिय स्वास सो जानिये ।।
तीजी है उपघात, तुर्य परघात तू ।
आतप वा उद्योत, जान विख्यात जू ।।
(दोहा) - तीर्थंकर निर्माण मिल, प्रकृति हनी तिन आठ ।
वसुविध द्रव्य मिलायकर, जजों सिद्धकर ठाठ ।।
ॐ ह्रीं अगुरूलध्वाद्यष्टप्रकृतिघाताय सिद्धपरमेष्ठि अर्घ्यम् ।

(कुसुमलता छन्द)

सूक्ष्म बादर जान, प्रकृति साधारण कहिये ।
त्रस स्थावर शुभ अशुभास्थिर स्थिर पुनि लहिये ।।
सुस्वर दुस्वर सुभग, और दुर्भग बखानिये ।
अपर्याप्त पर्याप्त, और आदेय जानिये ।।
(दोहा) - अनादेय यशकीर्ति भनी, अयशकीर्ति पुन जान ।
ये दश दुक्की बीस हनि, पायो शिवस्थान ।
ॐ ह्रीं विंशतिप्रकृतिविनाशनाय श्री सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यम् ।
(दोहा) - पैंसठ पिण्ड अपिण्ड पुनि, अटठाईस बखान ।
नाम प्रकृति सब त्रानवे, घात लिया शिवथान ।।
ॐ ह्रीं नामकर्मरहिताय श्रीसिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यम् ।

गोत्र कर्मविनाश पूजा

(कुसुमलता छन्द)

गोत्रकर्म बलवान, प्रकृति दो ताकी जानी ।
एक ऊँच्य पुनि द्वितिय, नीच कुल गोत्र बखानो ।।
उच्च्य उदय पद उच्च्य, नीच के उदय नीच लहि ।
इनहिं घाति शिव गये, तिनहिं पूजों सु चरण गति ।।
ॐ ह्रीं द्विप्रकारगोत्रकर्मविनाशनाय सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यम् ।

(अन्तराय कर्म विनाश पूजा)

(बेसरी छन्द)

अंतराय अष्टमविधि जानी, ताकी पाँच प्रकृति पहिचानी ।
दानान्तराय उदय जु आये, दान न देय सके न सुहाये ।।
लाभान्तराय उदय जु होई, करे उपाय लाभ ना कोई ।
भोगान्तराय उदय जु जीके, भोग मिलें भोगे न खुशी के ।।

(दोहा) - अन्तराय उपभोग के जानो उदय सु मांहि ।
वस्त्राभूषण रखे पर, चेतन भोगत नांहि ।।
वीर्यान्तराय के उदय, जीव न वीरज पाय ।
पाँचो हनि शिवपुरगये, पूजों मन वच काय ।।
ॐ ह्रीं पंचप्रकारान्तरायकर्मघाताय सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यम् ।

(कुसुमलता छन्द)

ज्ञानावरणजु पाँच, दरश की नवविध जानो ।
कही वेदनी दोय, मोह अठबीस बखानो ।।
आयु तनी गनिचार, त्रानवें नाम की कहिये ।
गोत्र करमकी दोय, पंच अन्तराय की लहिये ।।
दोहा - आठ करमकी प्रकृति सब, इकशत अडतालीस ।
सबको हनि शिवपुर गये, भये त्रिजगके ईश ।।
ॐ ह्रीं अष्टकर्महिताय श्री सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यम् ।

जयमाला

दोहा - सुरपुर नरपुर नागपुर, तीन भुवन के ईश ।
तिनगुण की जयमालिका, गाऊँ कर धर शीश ।।

(तोटक छन्द)

जबमोह महारिपु दुष्ट हरो, तबसुख अनन्त परकाशकियो ।
जिनज्ञानावरणजुघातकिया, निजशक्तिअनंतविकासकिया ।।
दर्शनआवरण निवार कियो, दर्शन अनंत तब धार लियो ।
अंतरायबलीजब नाशकियो, तब वीर्य अनंत प्रकाश कियो ।।
जब घाति नाशभये, तब चार अनंत चतुष्ट लये ।
अब चार अघातिया शेष रहे, तिनको भी अन्तिमकाल दहे ।।
क्षय वेदनि अव्यावाध लहा, विधि आयुहता अवगाहगहा ।
हनिनाम अमूर्तिकगुण गहनं, प्रगटो अगुरूलघुगोत्र हनं ।।
ये आठों काम विनाश किये, गुण प्रगटे आठ प्रकाश लिये ।
जा भवमें तनका त्याग किया, तासे कछु ऊन शरीर लिया ।।
तिनके न क्षुधा न तृषदरशें, नहिं रागद्वेष तिन्हें परशे ।
फिर होय न जन्मजरा मरना, स्थितिकाल अनंततहांकरना ।।
नहिं रोग न शोक सदातिनके, भवविस्मय व्यापानतिनके ।
निद्रा नहि खेद न स्वेद तहां, मदमोह अरतिचिंता न तहां ।।

त्रयलोक विलोकतहैं सु सदा, निरइच्छ न इच्छाधारकदा ।
निशिवासर संतसुध्यान करें, चिरकाल लगे सो करम हरे ॥
गणधरनिजधार हृदयचरणा, तुकोध्यावत मनहर वचना ।
मुनिराज तुम्हें जोध्यावत है, तुम्हरे ढिगसो चलआवत है ॥
अहमिन्द्रसदा तुम ध्यान करें, नित चेतन की चरचाउचरें ।
इन्द्रादिक भक्ति करें तुम्हरी, निजथानक दो विनती हमरी ॥
किन्नर तुम्हरे गुणगावत हैं, स्वरताल समाज बजावत हैं ।
द्रुमद्रुम बाजें सु मृदंग जहाँ, मुरली धुनिबाजरही सुतहां ॥
वर बीन बजाय सुगान करें, स्वरसप्त महामुखसों उचरें ।
संगीतकला तहां ठानत हैं, तननं तन तानसु, तानत है ॥
छम छम नूपूर बाजता है, तत थेई थेई धुनि साजत है ।
इस भांति सुरस्तुति गावत है, जयजयजय शब्द सुनावत हैं ॥
जयजय जयवन्त सदा सुरहो, शिवथानमँझार व आनचहों ।
जयभक्तनको सुखदायक हो, शिवमारग जात सहायक हो ॥
मैं दीनदुखी भवफंद परो, करूणाकर आप उद्धार करो ।
जबलीयह, फंद सुनाहिं नशे, तबलोंतुमभक्ति हृदय सुवसे ॥
यह मांग हों तुमसे धरजी, करूणाकर आप सुनों अरजी ।
तुमकोतजआन न शरण गहों, कहें चंद्र सदा तुवशरणरहों ॥

(धत्ता छंद)

जयजय सुरदेवा, सुरनर सेवा, करत स्वयमेवा, भक्ति सही ।
मैं मनवचध्याऊँ तुम गुण गाऊँ तो फल पाऊँ मोक्षमही ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धपरमेष्ठिने पूर्णार्घ्यम् ।

(दोहा) - देव नमत अरिहंपद, नित सेवत गुरूनिर्ग्रंथ ।
दया धरम सुहृदय वसत, 'चद्र' चलत निजपन्थ ॥
बुधजन से विनती करों, बार बार शिर नाय ।
अनरथ घट बढ़ शब्द हों, तो शुध करो बनाय ॥
मैं मतिहीन विवेक नहिं, अरू प्रमाद आधीन ।
थिरता जगकी जानलघु, कर के रची नवीन ॥

॥ इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

चन्दनषष्ठी-व्रत पूजा

दोहा

सुखदायक सुख निधि सदा, गुण अनन्त सुखधाम।
विघ्न विनाशक चन्द्र प्रभ! बारंबार प्रणाम।।
गुरु गौतम गणधर नमूं, कुन्दकुन्द आचार्य।
पूज्यपाद अकलंक को, सिद्धि हेतु मम कार्य।।
चन्दन षष्ठी व्रत महा, पूजा अति सुखदाय।
भव बाधा के नाश हित, करना चित उमगाय।।

।। इति पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।।

प्रथम कोष्ठ पूजा

चन्द्र चिह्न पद में है जिनके, चंचल चित्त जहां ठहराय।
श्वेतवर्ण अति आनन्द दायक, भक्तों के चितको हरषाय।।
दोष विनाशक तिहुँ जग शासक, दया धुंरधर परम उदार।
चन्द्र समान शांति सुखदायक, नमों चन्द्रप्रभ बारंबार।

ॐ ह्रीं श्रीचन्दन-षष्ठी-व्रतोद्यापने श्रीचन्द्रप्रभ परमदेव! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्रीचन्दन-षष्ठी-व्रतोद्यापने श्रीचन्द्रप्रभ परमदेव! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्रीचन्दन-षष्ठी-व्रतोद्यापने श्रीचन्द्रप्रभ परमदेव! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्, सन्निधिकरणम्।

अष्टक

उज्ज्वल यश सम निर्मल जल ले, आया मैं चरणों में नाथ!
जन्म जरा औ मिटाकर, प्रभो! निभाओ मेरा साथ।।
चन्द्रप्रभ अष्टम तीर्थंकर, चन्द्रनाथ त्रिभुवन के राय।
चन्दन-षष्ठी व्रत कर पूजे, रोग शोक दुख दारिद जाय।।

ॐ ह्रीं चन्दन-षष्ठी-व्रतोद्यापने चन्द्रप्रभदेवाय जन्म-जरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।।1।।

मलयागिरि का लेकर चन्दन, केशर संघ मिलाया नाथ।
भव भव के संताप मेट दो, बार-बार मैं जोड़ूं हाथ ॥चन्द्र.॥
॥चन्दनं॥२॥

मुक्ता फल सम उज्जवल अक्षत, लेकर आया तेरे द्वार॥
अक्षय पद दे दीजे मुझको, हे अक्षय सुख के भंडार॥चंद्र.॥
॥अक्षतं॥३॥

सब प्रकार के फूल सुगंधित, दशों दिशा जिन से महकाय।
काम बाण विध्वंस हेतु ले, मन वच तन से पूजूं पाय॥चंद्र॥
॥पुष्पं॥४॥

सुन्दर सरस स्नेहयुत, व्यंजन चरण चढाऊं भर भर थाल।
क्षुधा वेदनी नाश करो मम, दीनबन्धु शरणागत पाल ॥चंद्र॥
॥नैवेद्यं॥५॥

मणिमय दीप सजाकर सुन्दर, करूं आरती त्रिभुवन ईश।
भ्रम तममोह निवारो मेरा, पुनि पुनि चरण नमाऊं शीश॥चंद्र॥
॥दीपं॥६॥

दश विधि गंध मनोहर लेकर, तुम चरणन ढिग खेऊं आय।
अष्ट कर्म कष्टों के कारण, दयानिधे! सारे जल जांय ॥चंद्र.॥
॥धूपं॥७॥

नीबू आम अनार नरंगी, श्रीफल लौंग छहारा लाय ।
चरण कमल पूजूं प्रभु तेरे, महा मोक्ष फल आनन्ददाय ॥चंद्र॥
॥फलं॥८॥

जल फलादि सब द्रव्य मिलाकर, चरण चढाऊं हे जगपाल।
हो अनर्घ्य पद प्राप्त मुझे यह, करूं प्रार्थना दीनदयाल ॥चंद्र॥
॥अर्घ्यं॥९॥

जयमाला

दोहा- **बन्दौं चन्द्रप्रभ सदा, जगतीतल आधार।**
देव इन्द्र नागेन्द्र भी, पा न सके गुण पार।।
है अचिन्त्य महिमा अगम, मिला न अब तक थाह।
गुण वर्णन क्या कर सके, गुणातीत तुम नाह।।

जय चन्द्रनाथ देवाधिदेव, सुर नर विद्याधर करत सेव।
जय राग द्वेष मद मोह मार, सब जीत लिये तुम निराकार।।
जय भव भय भंजन निर्विकार, जय रोग शोक दुख विपदटार।
जय शांति सुधा के सिंधु देव, तुम स्वयं बुद्ध ज्ञाता स्वमेव।।
जय मोह शत्रु नाशक प्रवीन, जय ज्ञान ध्यान में सदालीन।
जय महा तपस्वी गुण निधान, जय दयानिधे! सुख वीर्यवान।।
जय जन्म-जरा-मृत-हरण धीर, जय खेद स्वेद विजयी सुधीर।
तुम दोष अठारह सभी जीत, हो गये पूर्ण हे गुणातीत।।
पा लिया सहज दर्शन सुज्ञान, सुख वीर्य अनन्त दया निधान।
सब को दे तुमने सदुपदेश, हर लिये जगत के सभी क्लेश।।
जय भव भव की हर पीर नाथ, सन्मार्ग दिखा ना छोड़ साथ।
जय धर्म धुरंधर धीर वीर, सब हरलो मेरे कष्ट पीर।।
मैं यही याचना करूं देव, हो ज्ञान प्रकट जानूं स्वमेव।
भव भव के पातक कटें आप, सब शांत स्वयं हों विघ्नताप।।
मिल जाय मुझे वह निज स्वरूप, जो समझूं अपना स्वयंरूप।
हो दूर सभी मद मोह जाल, सद्ज्ञान प्राप्त हो सदा काल।।
है यही प्रार्थना और नाथ, तेरे चरणों के रहूँ साथ।
वरदान मिले बस यही एक, तुम सदा निभाते रहो टेक।।

घता

जय ज्ञान उजागर, गुण गण आगर, मोह महा मद हर्त्ता हो।
जय सन्मति दाता, ज्ञान प्रदाता, विश्ववंद्य कर्त्ता हो।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्दन-षष्ठी-व्रतोद्यापने श्रीचन्द्रप्रभ-जिनाय जय मार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

अथ द्वितीय कोष्ठ पूजा

सोरठा- **निर्मल जल शुचि लाय, चरण चढाऊं चन्द्र के।**
जन्म रोग मिट जाय, चन्दन षष्ठी व्रत किये ॥१॥

ॐ ह्रीं गौ क्षीरवत् उज्जवल-यश-धारकाय श्रीचन्द्रप्रभ-जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन मलय सुलाय, केशर से जन पूजते।
भव बाधा नश जाय, चन्दन षष्ठी व्रत किये ।2।चन्दनं।
उज्ज्वल अक्षत लाय, मन वच जिन पूजा करे।
अक्षय पद मिल जाय, चन्दन षष्ठी व्रति किये ।अक्षतं।
पुष्प सुगन्धित लाय, श्री जिनकी पूजा करे।
काम बाण नश जाय, चन्दन षष्ठी व्रत किये ।पुष्पं।
व्यंजन सरस बनाय, भर भर थाल चढाइये।
क्षुधा रोग मिट जाय, चन्दन षष्ठी व्रति किये।नैवेद्यं।
सुन्दर दीप संजोय, कर जिनवर की आरती।
भ्रम तम सब क्षय होय, चन्दन षष्ठी व्रति किये।दीपं।
धूप सुगंधित खोय, जिनवर आगे अग्नि में।
अष्ट कर्म क्षय होय, चन्दन षष्ठी व्रत किये।धूपं।
श्रीफल लौंग बिदाम, फल से जिनवर पूजते।
पावे मोक्ष सुधाम, चन्दन षष्ठी व्रत किये।फलं।
जल फल आदि मिलाय, अर्घ्य चढाऊं चर्ण में।
अनुपम पद मिल जाय, चन्दन षष्ठी व्रत किये।अर्घ्यं।

जयमाला

दोहा- **कृपा कोर मुझ पर करो, कृपा सिन्धु महाराज।**
अष्ट कर्म सब नष्ट कर, हे अष्टम जिनराज।

जय जिनन्द दुति चन्द नमस्ते, निर्विकार गुण वृन्द नमस्ते।
निराकार निरमान नमस्ते, गुण गरिष्ठ गुण थान नमस्ते।
चिदानन्द चिद्रूप नमस्ते, स्वयं बुद्ध शुचि रूप नमस्ते।
ज्ञान ध्यान शुभ योग नमस्ते, महा मोक्ष सुख भोग नमस्ते।।
चन्द्रपुरी सुख धाम नमस्ते, जन्मभूमि अभिराम नमस्ते।

राग द्वेष मद ध्वांत नमस्ते, शुद्ध स्वयंभू शांत नमस्ते।।
गर्भ जन्म तप ज्ञान नमस्ते, शिखर शैल निर्वाण नमस्ते।
जय जय पंच कल्याण नमस्ते, जय जय जय गुण गान नमस्ते।।
धीर वीर भगवान नमस्ते, कर्म हान गुण खान नमस्ते।
संसारांबुधि-तार नमस्ते, क्षुधा तृषादि निवार नमस्ते।।
चक्रीपद दातार नमस्ते, मुक्ति-रमा-भरतार नमस्ते।
मुझे भवोदधि तार नमस्ते, सुख दुख के आधार नमस्ते।।
हे अष्टम जिनराज नमस्ते, दयानिधे सुख साज नमस्ते।
कृपा सिंधु जग पाल नमस्ते, शरणागत प्रतिपाल नमस्ते।।
शुद्धि बुद्धि दातार नमस्ते, सुखकारी दुखहार नमस्ते।
शांति सुधा के सार नमस्ते, चन्द्रप्रभ जग-सार नमस्ते।।
रोग शोक दुख हार नमस्ते, भव भव के दुख टार नमस्ते।
चरण शरण को तार नमस्ते, मोह माह मद मार नमस्ते।।

घता

सुख शांति विधाता शिव पद दाता जन्म मरण भय दूर करो।
तुम ज्ञान प्रकाशक भ्रमतम नाशक, रोग शोक संताप हरो।।

ॐ ह्रीं गोक्षीरवत् उज्जवलयशधारकाय चन्दन-षष्ठी-व्रतोद्यापने श्री चन्द्रप्रभ-जिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तृतीय कोष्ठ पूजा

सोरठा- **गंगा जल समनीर, निर्मल झारी में भरौं।**
पूजों चन्द्र सुधीर, जन्म मरणंभय परिहरौं।।

ॐ ह्रीं चन्दनषष्ठी-व्रतोद्यापने श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जलं नि.।

चन्दन गंध समेत, घिस घिस लायो चर्ण में।
भव भव भंजन हेत, पूजों श्री जिनराज को।चंदनं।
मुक्ता फल सम श्वेत, अक्षत की थाली भरी।
अक्षय पद के हेत, पूजों चन्द्र जिनेश को।अक्षतं।
जूही चंपक लाय, पुष्प सुगन्धित आदि ले।
पूजों श्री जिनराय, काम बाण विध्वंस हित।पुष्पं।
षट् रस व्यंजन लाय, स्नेह सुवासित रसमयी।
क्षुधा रोग मिट जाय, श्री जिनके पद पूजते।नैवेद्यं।

जगमग दीप संवार, वाति कपूर बनायके।
भ्रम तप जड से जार, श्री जिनवर नित पूजकर।दीपं।
धूपं दशांग बनाय, खेऊं अग्नि समूह में।
कर्म बन्ध जल जाय, पूजूं श्री जिन भावसों।धूपं।
केला दाख मंगाय, श्री फल लौंग बिदाम ले।
मोक्ष फल मिल जाय, श्री जिन पूजूं हर्ष युत।फलं।
जल फल अक्षत धूप, दीप पुष्प चरु गंध ले।
पूजूं श्री जिन रूप, पद अनर्घ्य के प्राप्ति हित।अर्घ्यं।

जयमाला

दोहा- **आया शरण जिनेश मैं, रखिये मेरी लाज।**
भव-दधि से प्रभु तारिये, तुम ही एक जहाज॥

जय चन्द्र जिनेश दिनेश वीर, जय चन्द्रानन अतिशय गंभीर।
जय शांति सुधा के सुखद सिंधु, भवि कमल विकासन भव इंदु॥
अद्भुत महिमा तव चन्द्रनाथ, प्रभु सदा निभाओ चरण साथ।
यश विमल तुम्हारा चन्द्र देव, फैला है चहुँ दिशि में स्वमेव॥
पद पद पर करते नमस्कार, सुर नर विद्याधर गण अपार।
जय चन्द्रप्रभ तुम करे गान, सब धरें तुम्हारा सुखद ध्यान॥
तुम जन्म महोत्सव में जिनेश, सब देव इन्द्र आये खगेश।
ले पांडुशिला पर गया इन्द्र, अभिषेक तुम्हारा किया चन्द्र॥
निर्मल यश फैला सभी ओर, सब सदा चाहते कृपा कोर।
कुछ दिन ही तुमने राज भोग, तज दिये सभी को समझ रोग॥
जिन दीक्षा धर कर वन विहार, उपदेश दिया आनन्द कार।
सबको तुमने शिव मग बताय, हे दया निधे आनन्द पाय॥
वे कर्म सताते महा नीच, गोता देते भव सिंधु बीच।
तुम चार घातिया किये नष्ट, निज पर के करने दूर कष्ट॥
पतितोद्धारक हे दीनबन्धु, उद्धार करो हे कृपा-सिंधु।
सम्मेदशैल जा किया ध्यान, पाया अति उत्तम मोक्ष थान॥
मेरे उर आओ हे दयाल, सब दूर करो मम जगत जाल।

मैं भव दुख से होकर अधीर, आया हूं तेरी शरण वीर।
हे जगत-वन्द्य प्रभु सुन पुकार, भव सागर से अब तारतार।।

घता

हे जग उजियाला परम कृपाला, भरो ज्ञान भंडाराजी।
मैं शरणे आयाशीश नमाया, भव भव आनन्द का राजी।।

ॐ ह्रीं चन्दनषष्ठी-व्रतोद्यापने श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

चतुर्थ कोष्ठ पूजा

अति उज्ज्वल निर्मल नीर लेकर प्रभु आया।
हर जन्म मरण दुख नाथ इन से घबराया।।
श्री चन्द्र नाथ जिनराज तेरे चरण जजों।
हर रोग शोक भय क्लेश निश दिन नाम भजों।

ॐ ह्रीं श्री चन्दनषष्ठी-व्रतोद्यापते चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।।

चन्दन केशर कर्पूर घिसि घिसि कर ल्यायो।
प्रभु भव भव की संताप मेटो मैं आयो ।।श्रीचन्द्र.।।चन्दनं।।
ले उत्तम अक्षत पुंज, तेरे आयो।
दे अय पद जिन देव, अब मैं अकुलायो ।।श्रीचन्द्र.।।अक्षतं।।
अति दिव्य सुगंधित पुष्प, अलि गुंजार करे।
तुम चरण चढाये नाथ, मनमथ बाण हरे ।।श्रीचन्द्र.।।पुष्पं।।
सब व्यंजन सरस मंगाय, चरण धरों तेरे।
मम क्षुधा रोग मिट जाय, पाप कटें मेरे ।।श्रीचन्द्र.।।नैवेद्यं।।
शुचि सुन्दर दीप जगाय, रखता तुम आगे।
कर कृपा दयानिधि देव, मोह तिमिर भागे ।।श्रीचन्द्र.।।दीपं।।
प्रिय धूप दशांग अनूप, लेकर अग्नि धरों।
सब कर्म पुंज जल जाय, तेरे चर्ण परों ।।श्रीचन्द्र.।।धूपं।।
ले नीबू आम अनार, श्रीफल भेट धरूं।

प्रभु मोक्ष महा फल देहु, ये ही अर्ज करूं।
प्रभु सहज मुक्ति मिल जाय, तेरे पांय परूं ।।श्रीचन्द्र.।।अर्घ्यं।।

जयमाला

दोहा- **सब जीवों के प्राण धन, जग जीवन आधार।**
क्यों ना प्रभु सुनते कहो, मेरी आप पुकार।।
गुण गाऊं मैं आपके, निश दिन हे भगवान।
कृपा करो सद्ज्ञान दो, जागृति मंत्र महान।।

प्रभु चन्द्रनाथ गुणगण अगार, तुम गुण का किसने लहा पार।
तुम नीति निपुण जयवान देव, जानत भव भव की तुम स्वमेव।।
तुम स्वयं-बुद्ध शुभ ध्यान धीर, हरते हो जग की महापीर।
उपदेशामृत बरसा अनूप, समझाया तुमने तत्व रूप।।
षट् द्रव्य बताकर सप्त तत्व, बतलाता तुमने परम तत्व।
है जीव चेतनामयी जान, जड रूप रूप पुद्गल बखान।।
मन वचन काय की क्रिया योग, कहलाता आश्रव महारोग।
जब आत्म साथ पुद्गल प्रदेश, चिप जाय बंध होता अशेष।।
कर्मो का आना रूके आप, संवर हो जाता कटे पाप।
धीरे धीरे जब खिरे कर्म, है वही निर्जरा तत्त्व मर्म।।
जब सब कर्मों का मिटे सत्त्व, हो प्रकट 'अनूपम' मोक्षतत्त्व।
इन तत्त्वों का श्रद्धान पूर्ण, करने से होते कर्म चूर्ण।।
ये ही तप जप संयम पवित्र, सदृष्टि ज्ञान सम्यक् चरित्र।
हे दयासिंधु सद्ध्यान धीर, काटो भव भव की दुःख पीर।।
हम दुखी दरिद्री दीन लोग, लग रहा हमें संसार रोग।
अब करो कष्ट चक चूर-चूर, उर आनन्द से भर पूर-पूर।।

घता

यह गुणमणिमाला, परम रसाला, पढते ही काटे भवफंद।
शिव सुखकारी जग दुखहारी, सहज प्रकट हो परमानन्द।।

ॐ ह्रीं चन्दनषष्ठी-व्रतोद्यापने चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचम कोष्ठ पूजा

कनक कलश में शुचि जल लेकर, आया नाथ तुम्हारे द्वार।
जन्म जरा औ मरण मिटा दो, यही प्रार्थना बारंबार।।

ॐ ह्रीं चन्दनषष्ठी-व्रतोद्यापने श्री चन्द्रप्रभ-जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

केशर मिश्रित वारि सुगंधित, ले तब चरण चरचता नाथ।
भव भव के संताप मिटा दो, विनती करूं जोड़ कर हाथ।।चं।।
मोती सम शुचि अक्षत लेकर, भर कर कंचन थाल अनूप।
अक्षय पद के प्राप्ति हेतु मैं, पूज रहा हे त्रिभुवन भूप ।।अक्षतं।।
चंपक बेल चमेली जूहो, ओ गुलाब के फूल सजाय।
चरण शरण में आया तेरे, कामव्यथा सारी नशजाय ।।पुष्पं।।
नाना विधि पकवान मनोहर, सरस शुद्ध लाया स्वादिष्ट।
चरण कमल जिनराज पूजते, क्षुधा रोग हो जावे नष्ट ।।नैवेद्यं।।
दीपक जग मग जग मग करता, लिये हाथ में आया देव।
ज्ञान-ज्योति हो प्रकट अनूपम, हो जाऊं ज्ञाता स्वयमेव ।।दीपं।।
रूला रहे हैं अष्ट कर्म ये, भव-दधि-बीच मुझे लग साथ।
धूप दशांग सुगंधित खेऊं, कर्मक्षय के कारण नाथ ।।धूपं।।
श्रीफल केला दाख छुहारा, कमल बीज बादाम अनार।
महा मोक्षफल प्राप्ति हेतु मैं, आया लेकर प्रभु के द्वार ।।फलं।।
जल आदिक सब अष्ट द्रव्यं ले, अर्घ बनाया शुद्ध पुनीत।
अब अनर्घ्य पद मिले मनोहर, औ कर्मों को लेऊं जीत ।।अर्घ्यं।।

जयमाला

दोहा- **चिदानन्द चिद्रूप को, ध्याऊं बारंबार।**
विघ्न सकल सबके कटें, होवे शीघ्र सुधार।।
भव सागर का अंत ना, नौका है बेकार।
कृपा करो अब दास, पर पहुँचे परली पार।।

चौपाई

जय चन्द्रप्रभ देवाधि देव, सुर नर विद्याधर करें सेव।
तुम दिव्य विचक्षण परम धीर, हो महा सिंधु से अति गंभीर।।
तुम दया धुरंधर दया धाम, जीता है तुमने अजय काम।
तुम शांति मूर्ति औ सत्य निष्ठ, समझा है जग को अति निकृष्ट
धन धान्य दास दासी अनेक, सब तजे परिग्रह धर विवेक।
तर्ज राज पाट वैभव अपार, चल दिये जान जगको असार।
समझा दुखमय संसार रूप, तुम छोड़ चले जग अंध कूप।
जाना ये विषय असाध्य रोग, ठुकरा कर इनको धरा योग।।
तज गये पुत्र पुत्री सुमित्र, प्रिय बांधव स्नेही जन कलत्र।
जन परिजन से मुंह लिया मोड, बन गये संत सब विभव छोड़।
उपदेश दिया जग को महान, करने को निज पर का कल्याण।
तप सत्य अहिंसा दया दान, सिखलाया तजना मोह मान।।
फिर तुमने कर चहुं दिशि बिहार, धर्मोपदेश देकर अपार।
तारे भवि जीवनि को अनेक, बतलाकर सच्चा मार्ग एक।।
तुम पूर्ण तपस्वी ज्ञानवान, बन गये स्वयं ही अति महान।
तुमने पद अविचल किया प्राप्त, कहलाये सब से बड़े आप्त।।
अब दया दृष्टि करदो दयाल, हम हो जावे तुम से निहाल।
हों ज्ञानवान विद्या संयुक्त, सब वैभव युत संक्लेश मुक्त।।
तुम चरणों में मैं धरूं शीश, देवाधिदेव! सुनलो मुनीश।
भव सिंधु बीच से तार तार, करुणानिधि भय भय हार हार।।
जय श्री जिनचन्दा आनन्द कन्दा, जनम मरण दुख दूर करो।
मैं भव में भटका तुम बिन अटका कर्म शत्रु को चुर करो।।

ॐ ह्रीं श्री चन्दनषष्ठी-व्रतोद्यापने श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

षष्ठम कोष्ठ पूजा

अमल सुगंधित वारि सुलेकर, चरण कमल पर देऊं धार।
भव के कष्ट निवारण कारण, आ पहुँचा प्रभु तेरे द्वार।।
चन्द्रकलासम शांति सुवर्द्धक, चन्द्रप्रभु सन्मति दातार।
पूर्ण ज्ञान की ज्योति जगादो, हो जाऊं तुमसा अविकार।।१।।

ॐ ह्रीं चन्दनषष्ठी-व्रतोद्यापने चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन केशर और कपूर घिस, चरण सरोज जजूं तव देव।
भव संताप मिटे प्रभु मेरा, पहिचानूं निज को स्वयंमेव।।
।। चन्द्रकला. ।। चन्दनं ।।

उज्ज्वल यश सम धवल अनूपम, अक्षत से पूजूं पद नाथ।
अक्षय पद की प्राप्ति स्वयं हो, हो जाऊं मैं सदा सनाथ।।
।। चन्द्रकला. ।। अक्षतं ।।

सुन्दर फूल सुवासित की भर, अंजुलि भेंट चढाता आज।
कामव्यथा नशजाय समूची, सद्‌भावों का जुटे समाज।।
।। चन्द्रकला. ।। पुष्पं ।।

महा मनोहर स्नेह प्रपूरित, उत्तम व्यंजन से भर थार।
क्षुधा वेदनी के क्षय कारण, पूजूं पद तब बारंबार।।
।। चन्द्रकला. ।। नैवेद्यं ।।

जगमग जगमग दीप शिक्षा से, करूं आरती धरे विवेक।
नाश होय अज्ञान तिमिर का, जले ज्ञान के दीप अनेक।।
।। चन्द्रकला. ।। दीपं ।।

अगर तगर कृष्णागुरु निर्मित, धूप सुगन्धित ले भर पूर।
खेऊं बीच हुताशन में मैं, होवें कर्म सभी चकचूर।।
।। चन्द्रकला. ।। धूपं ।।

अति स्वादिष्ट सुपक्व मनोहर, फल ले चरण जजूं तिहुंकाल।
महामोक्ष फल मिले तुरंत ही, कटे सकल जग के जंजाल।।
।। चन्द्रकला. ।। फलं ।।

आठों द्रव्य मिलाकर उत्तम, अर्घ बनाया पूजन काज।
भव भव की प्रभु व्याधि मिटादो, अवि चल पद देओ जिनराज।।
।। चन्द्रकला. ।। अर्घ्यं ।।

जयमाला

दोहा- **तारण तरण जिनेश हे, ध्याऊं तुम दिन रैन।**
कृपा करो निज दास पर, खुले ज्ञान के नैन।।

तुम ज्ञान प्रकाशक भवतम नाशक सब जग के उजियारे हो।
सुख शांति प्रदाता जग विख्याता त्रिभुवन के रखवारे हो।।
मैं दीन अनाथ महा हत भागी, रागी द्वेषी दोषी हूँ।
मैं पर निंदक आलोचक हूँ पंचेन्द्रि-विषय का पोषी हूँ।।
सन्मार्ग दिखाओ कष्ट मिटाओ मोह महा मद दूर करो।
मैं शरणे आया अति सुख पाया शांति सुधा रस पूर करो।।

चौपाई

श्रीचन्द्रप्रभ महिमा निधान, यश गौरव गरिमा सुगुणथान।
सुख शांति सुधा के जलधिरूप, शूचि सत्य अहिंसा के स्वरूप।।
तुम चन्द्र बदन लखि चन्द्र देव, सुर नर विद्याधर करत सेव।
तुम गुणगण को, को! लहे पार, कर सके नहीं वर्णन अपार।।
महिमा प्रभु तेरी जगत प्याप्त, तुम परम पिता सर्वज्ञ आप्त।
तुम चन्द्रप्रभ जग के सुचन्द्र, यश गान करें निशिदिन कवींद्र।।
तुमने संसार असार जान, तज दिया सकल वैभव महान।
जन परिजन समझा पापमूल, ये ही दुख दायक महाशूल।।
इन से मुंह मोडा हे जिनेश, मिट गई सकल संपति अशेष।
वन में जो दीक्षा धरी आप, तोड़ें बंधन सब पुण्य पाप।।
क्रोधादि कषायें भगा दूर, रागादि दोष को किया चूर।
मद मोह मान माया प्रचंड, कर दिये सहज ही खंड खंड।।
कर चार घातिया कर्म नाश, पालिया आपने शुचि प्रकाश।
सुख दर्शन वीर्य अनन्त ज्ञान, कर प्राप्त बने तुम शक्तिमान।।
पा केवल ज्ञान जिनेशचन्द, भविजीवनि को आनन्दकन्द।

कर समवशरण रचना विशाल, कर दिया दूर भ्रम तिमिर जाल।।
दर्शाया तुमने जगत रूप, समझाया सबको शिवस्वरूप।
तुम गंधकुटी राजत जिनेश, जयकार करे सुर नर अशेष।।
मणिमय सिंहासन लसत जान, ता ऊपर चउ अंगुलप्रमान।
प्रभु आप विराजो जगत ईश, सुरनर इन्द्रादिक नमत शीश।।
चहुँ ओर सभा द्वादश विशाल, सब निज थानक बैठे संभाल।
चहुँ दिशि मुख दीखत हैं अनूप, खिर रही दिव्य ध्वनि विशदरूप
तुमने दर्शाया जगतरूप, समझाया सबको शिव स्वरूप।।
अमृतमय वाणी के प्रभाव, तज दिये सिंह मृग वैर भाव।
बैठे मयूर अहि एक ठौर, ना वैर परस्पर रहा और।।
सुन जिनवाणी आनंदकार, हों मन में हर्षित सब अपार।
कितने जाते भव सिंधु पार, निश्चित ही पाते मुक्ति द्वार।
प्रभु करो बेग मेरी सहाय, मैं तुम चरणों में पड़ा आय।
मेरी भव बाधा टार टार, पहुँच मुझको अब लोक पार।
मेरी यह विनती बार बार, भव सागर से अब तार तार।
घता-चन्द्रप्रभ स्वामी हे जगनामी दयाधुरंधर दया करो।
अनुपम गुणगाऊं शीश झुकाऊं प्रभु मेरे सब पाप हरो।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्दनषष्ठीव्रतोद्यापने श्रीचन्द्रप्रभ जिनाय जयमालार्घ्यं।।

दोहा- **चन्दनषष्ठी व्रत करे, जो भवि मनवच काय।**
सब प्रकार आनन्द हो, विघ्न सकल नश जाय।।

।।इत्याशीर्वादः।।

दोहा- **श्रावण शुक्ला अष्टमी, है रविवार महान।**
संवत वो हज्जार अरु, ऊपर चौदह जान।।
व्रत पूजा रचना करी, संस्कृत के अनुसार।
भाव सहित पूजा किये, लग जाते भव पार।।

इति

॥ व्रतोद्यापन विधि ॥

दोहा

भादव कृष्णा षष्ठि को, इस व्रत का दिन जान।
तन मन से आरंभ तज, करे जिनेश्वर ध्यान॥
सब प्रकार रस त्याग कर, ले उपवास महान।
पूजा जप स्वाध्याय में, करे कर्म की हान॥
छह वर्षों तक व्रत करे, भविजन इसी प्रकार।
फिर व्रत उद्यापन करे, तज कर सकल विकार॥
यथा शक्ति मंडल मड़ा, पूजा रचे अनूप।
रोग शोक भय दूर हों, पावे शुद्ध स्वरूप॥
उत्तम लेकर ग्रंथ छह, धरे हेतु स्वाध्याय।
हानि होय अज्ञान की, संशय तिमिर नशाय॥
वा असहाय सु छात्र हो, उनकी करे सहाय।
पढ़ने में सुविधा मिले, ऐसा करे उपाय॥
अति प्राचीन सुग्रंथ का, लेय प्रकाशन भार।
हो प्रभावना धर्म की, फैले ज्ञान प्रचार॥
अथवा ऐसे कार्य हों, जिनसे बढ़ती शान।
देश राष्ट्र औ जाति का, होय स्व पर कल्याण॥
उद्यापन की शक्ति ना, तो दुगुना व्रत जान।
ग्रथों में ये ही कहा, निश्चित रूप प्रमान॥

॥ इति शुभम् ॥

अथ श्रीचंदनषष्ठी व्रत कथा

(कवि खुशालचन्द्र कृत)

चौपाई

जिनपद बंदौ दुति शशि जेम। त्रिभुवन पूजत है जुत पेम।।
कल्याणक करता भगवान। सब विद्या स्वामी गुणखानि ।।1।।
मुनि समंतभद्र मन लाय। पूज्यपाद ध्याऊं सुध भाय।।
प्रभाचंद्र विद्यानंदि मुनी। इत्यादिक सुमिरूं बहु गुनी ।।2।।
शारद बंदौ अति बुधदाय। चंदनषष्ठी व्रत सुखदाय।।
ताहि कथा भाषूं इहसार। भविक सुनो इह व्रत भवतार ।।3।।
श्रेणिक गौतम ऋषि सौं कही। तुम मुनिगण मांहीं मुख सही।।
मो सौं कहौ दया मनलाप। चंदनषष्ठि सुव्रत सुखदाय ।।4।।
सो किन कीन्हौं फल किम लयौ। इम सुनि गणी वचन इह दयौ।।
अहो भूप सार्दूल महान। सम्यक्रतन तणैं सुनिधान ।।5।।
भावि-जिनंद नृपति में सार। कहूँ कथा सुन तू विस्तार।।
जाहि कथा सुनतैं सुख थाय। कर्त्ता की तो बात अनघाय ।।6।।
इह व्रत करत महा सुख होय। पाप तनूं क्षय निश्चय जोय।।
भरतक्षेत्र एही नृप जान। तामें काशी देश बखान ।।7।।
वाणारसि नगरी जहिं कही। जिन अपनी शोभा अतिलही।।
जहां भंग नाहीं किन मांहि। जल तरंग तिय केश कहाहिं ।।8।।
तहां कलंक न पावे कहाँ। अरु शशि विषै कहतु सब जहां।।
अरु वियोग किन में नहिं सुणै। चकवा मांहि सकल जनभुणै ।।9।।
सुख निद्रा निज समय सब लहै। दुखित होय तो जाग्रत रहै।।
जागै तो वन में मृग जांन। और सर्व जन सुखित अमान ।।10।।
इत्यादिक शोभा पुर मांहि। हमसे वरण सकै बहु काहि।।
राजा सूर सुभद्रा नारि। सूरसेन सुत सब सुखकारि ।।11।।
जाकै कमलश्री तिय जान। पति कूं प्यारी है अधिकान।।
सूरसेन राजा अब भयौ। पूरव पुण्य तणौं फल लयौ ।।12।।
इक दिन श्रावक लोग अपार। ले करि पूजा अष्ट प्रकार।।
परम हर्ष जुत जात निहार। मंत्री सो इम वचन उचार ।।13।।

श्रावक लोग कहां इय जाय। तब मंत्रीश कहे सिरनाय।।
अपराजितक महा मुनिराज। आये हैं वन धर्म जिहाज ।।14।।

दोहा

तिनकी पूजा करन कौं, जाबतु हैं सब लोग।
इह बातैं सुनि राजई, परमानंदित होय ।।15।।
आप तवैं मुनि बंदनै, मन कीन्हूँ ततकाल।
गज चढि करि तब चालियो, सहित सकल परिवार ।।16।।

चौपाई

चाले सब आनन्द उपाय। श्रीमुनिवर जब नैंन लखाय।
तब गज सौं उतरयौं तत्काल। मुनिवर बंदे वर भूपाल ।।17।।
तीन प्रदक्षण दीन्ही भाय। करि नमोस्तु बैठो तब राय।
धर्म वृद्धि जब मुनिवर दई। सुन राजा मन साता लई ।।18।।
पूछै नृप भो मुनि वृष कोय। सर्व जीव रक्षण तुव जोय।
कौन देव इम सुनि मुनिराय। कहित घात जिन कर्मनसाय ।।19।।
सो अरिहंत देव तुम जान। आगैं और सुनो सु बखान।
हे तापस उत्तम गुरु कोय। ज्ञान ध्यान तप मंडित जोय ।।20।।
दया गेहि कहु सम्यक किसौ। देव गुरु वृष श्रद्धा इसौ।
हे उपदेशक हित किम होय। मोक्ष प्राप्त सो हित अवलोय ।।21।।
हे तपसी मुख अघ को जान। जो मिथ्यात दशा दुख खान।
कौन असाता मन फैलाव। विषय आदि मांही रत भाव ।।22।।
सो प्रत्यक्ष तूं जान असात। आगैं भूपति और कहात।
सार कहा जिन दीक्षा धरै। को तप जो इच्छा नहिं करै ।।23।।

दोहा

को सुख जो स्वाधीनता, उम्र तिथी गुरु सेव।
को महंत जांचै नहीं, शील सुव्रत रखि एव ।।24।।
को अपराजित तत्त्व निज, परहित को गुणपाल।
इत्यादिक परसन किये, सुनि मुनि दीनदयाल ।।25।।
भिन्न-भिन्न उत्तर दिये, सुणि करि जब पुर लोय।
श्रीमुनि की प्रशंस तब, करत भये सुख होय ।।26।।
अब सु धन्य हम अधिक हैं, दृग देखे मुनिराय।

अरु राजा अति धन्य है, ऋषि की कहा कहाय ।।27।।
श्रीमुनि मुख तैं धर्म इम, सुनि राजा सुख पाय।
पुनि ऐसै परसन कीयौ, अपनौ मस्तक नाय ।।28।।
हे अनंग मातंग हरि, मोहि कहौ इह बात।
मम रानी पदमावती, सो मोहि अधिक सुहात ।।29।।
सो कारण इह कौन हैं, मोहि बतावो सार।
तबहि कहैं मुनिराज जू, सुनो भूप विस्तार ।।30।।
पुरुष नेह नारी विषै, सदा करत इह रीति।
अधिक प्रीत सो जान इह, पूरब की दृढ मीति ।।31।।

राजा ने पूछा

चौपाई

काम सर्प कौं गरुड समान। पूरब प्रीत किसी विधि जान।
ताहि कथा मोकूं मुनि कहौ। मो मन कौ इह संशय जहौ ।।32।।

मुनि ने उत्तर दिया:-

जिनपद कमल विषै अलिराय। मैं भाषूं सुनि तू मनलाय।
देश अवंती जानो सार। नगर उजैनी सुर मनहार ।।33।।
वीरसेन राजा जिंहि थान। वीरमती रानी गुण खान।
तापुर की उत्तर दिशा ग्राम। जाहिं पलासकूट वर नाम ।।34।।
जिनदत नाम सेठ जिहिं रहै। जयावती नारी सुख लहै।
तिनके ईश्वर नन्दन भयौ। रूपवान गुण जोवन लयौ ।।35।।
ताके नारि चन्दना जान। ऐसे सेठ रमैं सुख मान।
तात मात तप धरि भाय। स्वर्गस्थानक पायौ जाय ।।36।।
अब ईश्वर भोगां मधि बह्यौ। तब सब ही धन जातौ रह्यौ।
एकाकी उद्यम को करे। कठिन थकी सु उदर को भरे ।।37।।
एक समय भासो उपवास। करि मुनि आये धर्म निवास।
अतिमुक्तक नामा मुनिराय। रक्षा करि हैं षट विधि काय ।।38।।
ईश्वर पडिगाहे मुनि सोय। मनमांही अति हर्षित होय।
जाय तिया सौ वचन उचार। आये हैं मुनिवर भवतार ।।39।।
इनको भोजन दे अब सार। मैं जावत हूं काम अबार।
सुन करि वचन चंदना कह्यौ। मो अब काय अपावन भयौं ।।40।।
मैं रतिवंत भई सुन सोय। बोल्यौ इम भाषौ मत कोय।
जो यह वचन सुनैं मुनिराय। तो अपने घर तैं उठिजाय ।।41।।

दोहा

मुनिवर को आसन दिये, आरत मन में लाय।
भोजन तो दीन्हू सही, भयौ अपूठौ पाय ।।42।।

चौपाई

श्रीमुनि तो कानन में गये। ए दोनों कुष्टातुर भये।
तीजे ही दिन जानों राय। गांस निकस निर्जरे आय ।।43।।
चरड-2 तन फाटै घणौ। रूप भयानक भयौ जुग तणौं।
अजुगति दांन महा दुखदाय। ताते दीजे विधिवत भाय ।।44।।
विधियुत अल्पदान जो देय। तो पुनि पुण्य अधिक उपजेय।
इक दिन श्रीभद्रमुनिराय। अवधि ज्ञानधारी वन आय ।।45।।
तब ही सकल लोग मिल जहां। ईश्वर नारि गये सुनि तहां।
करि नमोस्तु बहु पुण्य उपाय। तिष्ठे और सुनो मन लाय ।।46।।
सिर नमाय ईश्वर पूछियो। कौन भवां को अघ इह भयौ।
ता करि कोढ थयौ दुखदाय। उत्तर दे मुनि दया उपाय ।।47।।
अन्य जन्म कौ अघ मत जान। उदय भयौ इह भव को आन।
वास मास करि इक मुनिराज। तुम घर आये भोजन काज ।।48।।
भोजन दियौ क्रिया विन जबैं। ता करि पाप उपायौ तबै।
दियो असन तुम तो सुख हेत। क्रिया विना उलटो दुखदेत ।।49।।
तातैं मुनि पोषौं भवि लोय। क्रिया सहित जातें शुभ होय।
पुनि ईश्वर पूछै सिरनाय। कैसी विधि यह पाप पलाय ।।50।।
सुनि मुनिवर भाषैं जिहिंबार। चंदन षष्ठी व्रत सुखकार।
सो व्रत धरहुँ कथित जिनराय। तासुनि व्रत अंगीकर भाय ।।51।।
पुनि पूछी कैसी विधि होय। मुनि बोले सुनि भाषूं सोय।
भादव पहली षष्ठी जान। ता दिन प्रोषधवास बखान ।।52।।
जिनपूजा गुरुश्रुत की सेव। कीजे भाव सहित स्वमेव।
बहुरि जिनालय कै मधि जाय। कीजे बहुत उछाह सुभाय ।।53।।
चौक विषै वेदी रचिसार। मन मोहन लखितैं सुखकार।
अष्टम जिन को बिंब सुजहां। पधराजे शुभकारण महा ।।54।।
छंदचाल-पंचामृत स्नपन कीजे। षट पूजा कर सुख लीजे।।
पुनि अर्घ फेरिये भाई। फल षटविधि ए सु चढाई ।।55।।
नारेल विजौरा सो है। दाडिम पेठा सम को है।
पुंगीवर पनस चढावे। अति ही शुभभाव बढावे ।।56।।

दोहा

अष्टोत्तर शत लौंग करि, जायफली वा सार।
ता करि मंत्र जपै महा, चंद्रप्रभ सुखकार ।।57।।

ॐ ह्रीं शशांक गोक्षीरहारधवलगात्राय विश्वविद्याकुलग्रहाय, समस्त विघ्नहराय श्रीचंद्रप्रभ तीर्थंकराय नमः ।।बार 108।।

द्वितीय मंत्र-

ॐ ह्रीं श्री अर्हं चन्द्रप्रभ श्रीं ह्रीं कुरु कुरु स्वाहा।।

दोहा

इष्ट पुष्ट अरु सिद्धि को, दाता है नवकार।
तीस पंच अक्षर जुतो, जाप करै अघटार ।।58।।

चौपाई

पूजा चन्द्र प्रभ की करै। भाव सहित बहुगुण उच्चरै।
पीछे पात्रन को दे दान। तबहि असन करि है व्रतवान ।।59।।
अैसे षट संवत्सर करै। बहुरि सुव्रत अैसी विधिधरै।
श्री जिन के चैत्यालय जाय। अष्ट द्रव्य सौं पूज रचाय ।।60।।
थाली ठोना आदिक महा। ए उपकर्ण चढावै जहां।
पुण्य हेत जिनगेह चढाय। छत्र चमर आदिक शुध भाय ।।61।।
संघ चतुर्विधि पोषै सार। ताकरि पुण्य उपाय अपार।
अैसी विधि व्रत पूरण करै। ते नर नारि स्वर्ग अवतरै ।।62।।
इम मुनि मुख तैं सुनि सुखपाय। दोनों व्रत धारयौ उमगाय।
करत थकी तन स्वर्ण समान। बहु विधि भई संपदा आन ।।63।।
दोऊ शर्म भोगवै सार। फल चन्दन षष्ठी व्रत धार।
अंत समाधि प्राण तज दोय। आदि स्वर्ग उपजे सुख होय ।।64।।
ईश्वर सो सुर वर पद पाय। नाम थकी मणिचूल कहाय।
नारि चंदना देवी भई। संज्ञा मणि माला निज लई ।।65।।

दोहा

जदां शर्म बहु भोग कै, रहे जहां बहु काल।
चय वाणारसि के विषै, तुम उपजे भूपाल ।।66।।
देवी चय जग के विषै, शुभ-शुभ निज भव पाय।
आय भई तेरी तिया, रूपवती अधिकाय ।।67।।

पूरव यह सम्बन्ध जो, तोहि सुनायो राय।
प्रथम जुगल भव कामनी, ताते मोह अघाय ।।68।।

चौपाई

राजा सुनि आनंद करि भरयौ। पुनि चंदनषष्ठी व्रत धरयौ।
कीन्हों तहां दोनों मनलाय। बहुरि तपस्या धारी जाय ।।69।।
तेरह विधि चारित धरि भाय। द्वादश तप तपि हैं मनलाय।
पालत गुण छत्तीस महंत। करूणा करिहै षट् विधिजंत ।।70।।
इत्यादिक तप करि शुध भाय। शुक्ल ध्यान करि कर्म नसाय।
केवल ज्ञान उपायौ सार। हरि सुर आय किये जयकार ।।71।।
गंधकुटी तत्काल सुर रची। जिन आगे नाचे हरि सची।
जय जयकार शब्द को करै। इंद्रादिक गण थुति उच्चरै ।।72।।
श्री जिन बहु भवि कौ समझाय। मोक्ष नगर को पंथ बताय।
कर्म अघाति सकल क्षय किया। शिवथानक अपना पदलिया ।।73।।
पीछै कमलश्री सो देवि। पंच सुगुरु को मन वच सेवि।
होय अर्जिका करि तप भाय। अच्युत स्वर्ग पहौंची जाय ।।74।।
चयी तहां तैं भूपति होय। तप जप करि कर्म मल धोय।
जाय लहेगी मोक्ष सुथान। श्रेणिक सुन अति ही सुख मान ।।75।।
नर नारी लेसी व्रत कोय। भव समुद्र तिरसी जन सोय।
श्रुत सागर जू कै अनुसार। मैं पुनि कह्यौ तुच्छ बुधि धार ।।76।।
छप्पय- चंदन षष्ठी सार कह्यौ व्रत यह जिनराजा।
जो करि हैं मन लाय होय सो शिव शिरताजा।।
अरु जे ते भव मांहि रहै तेते सुख पांही।
सो पुनीत बुधिवान तास सम अवर जु नाहीं।।
महिमा निधान यह सार व्रत, सो स्वचित में लाइयै।
भाषा 'खुशाल' भाषै यहां, वीतराग गुण गाइये ।।77।।

इति चन्दनषष्ठी व्रत कथा सम्पूर्ण

निर्वाणक्षेत्र पूजन

परम पूज्य चौबीस, जिहँ जिहँ थानक शिव गये ।
सिद्धभूमि निश-दीस, मन-वच-तन पूजा करौं ।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं "परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामी"

(गीता छंद)

शुचि क्षीर-दधि-सम नीर निरमल, कनक-झारी मैं भरौं ।
संसारपार उतार स्वामी, जोर कर विनती करौं ।
सम्मेदगढ़, गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलासकों ।
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि निवासकों ।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

केशर कपूर सुगन्ध चन्दन, सलिल शीतल विस्तरौं ।
भव-तापकौं सन्ताप मेटो, जोर कर विनती करौं ।। सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रभ्यः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

मोती-समान अखण्ड तन्दुल, अमल आनन्द धरि तरौं ।
औगुनहरौ गुनकरौ हमको, जोर कर विनती करौं ।।सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

शुभ फूल-रास सुवास-वासित, खेद सब मन को हरौं ।
दुखधामकाम विनाश मेरो, जोरकर विनती करों ।।सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

नेवज अनेक प्रकार जोग, मनोग धरि भय परिहरौं ।
मम भूखदूखनटार प्रभूजी, जोर कर विनती करौं ।।सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रभ्यः नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीपक-प्रकाश उजास उज्ज्वल, तिमिरसेती नहिं डरौं ।
संशयविमोहविभरमतमहर, जोरकर विनती करौं ।।सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

शुभ-धूप परम-अनूप पावन, भाव पावन आचरौं ।
सब करमपुञ्जजलायदीज्यौ, जोर कर विनती करौं ।।सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

बहु फल मँगाय चढ़ाय उत्तम, चार गतिसों निरवरौं ।
निहचै मुकतिफल देहु मोको, जोर कर विनती करौं ॥सम्मेद.॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल गन्ध अक्षत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं ।
'द्यानत' करो निरभय जगतसों, जोर कर विनती करौं ॥सम्मेद.॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रभ्यो अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

श्री चौबीस जिनेश, गिरि कैलाशादिक नमों ।
तीरथ महाप्रदेश महापुरुष निरवाणतैं ।

(चौपाई)

नमों ऋषभ कैलास पहारं, नेमिनाथ गिरनार निहारं ।
वासुपूज्य चम्पापुर वन्दौं, सन्मति पावापुर अभिनन्दौं ॥
वन्दौं अजित-अजित पददाता, वन्दौं, सम्भव भवदु:ख घाता ।
वन्दौं अभिनन्दन गुणनायक, वन्दौं सुमति सुमति के दायक ॥
वन्दौं पदम मुकति-पदमाकर, वन्दौं सुपास आश-पासाहर ॥
वन्दौं चन्द्रप्रभ प्रभु चन्दा, वन्दौं सुविधि सुविधिनिधि-कन्दा ॥
वन्दौं शीतल अघ-तप-शीतल, वन्दौं श्रेयांस श्रेयांस महीतल ।
वन्दौं विमल-विमल उपयोगी, वन्दौं अनन्त अनन्त सुखभोगी ॥
वन्दौं धर्म धर्म विस्तारा, वन्दौं शान्ति शान्ति मनधारा ।
वन्दौं कुन्थु, कुन्थु रखवालं, वन्दौं अर अरि हर गुणमालं ॥
वन्दौं मल्लि, काम मल चूरन, वन्दौं मुनिसुव्रत व्रत पूरन ।
वन्दौं नमि जिन नमित सुरासुर, वन्दौं पास-पास भ्रम जगहर ॥
बीसों सिद्धभूमि जा ऊपर, शिखर सम्मेद महागिरि भूपर ।
भावसहित बन्दे जो कोई, ताहि नरक पशुगति नहिं होई ॥
नरपतिनृप सुर शक्र कहावे, तिहुँ जग भोग भोगि शिव पावै ।
विघन विनाशन मंगलकारी, गुण-विलास वन्दौं भवतारी ॥

(दोहा)

जो तीरथ जावै पाप मिटावै, ध्यावै गावै, भगति करै ।
ताको जसकहिये, संपति लहिये, गिरि के गुण को बुध उचरै ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये महार्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

श्री गौतम गणधर पूजा

(अरुणा जैन भारती)

मगधदेश के गौतमपुर में, वसुभूति ब्राह्मण थे श्रेष्ठ ॥
माता पृथ्वीदेवी के थे, पुत्र तीन इन्द्रभूति ज्येष्ठ ॥
हुए प्रथम गणधर श्री वीर के, द्वादशांग का ज्ञान लिया ।
प्रभु के पावन पथ पर चलकर, अपना भी कल्याण किया ।
वीर देशना को गुंजित करके, जग को सुज्ञान दिया ।
तुम सम बनने को ही स्वामी ! मैंने तुव-आह्वान किया ॥

ॐ ह्रीं श्री गौतम गणधर स्वामिन् ! अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।

श्री गुरुवर के चरणों में, प्रासुक जलधार कराऊँ ।
जन्म-मरण का रोग मिटे, बस ये ही आस लगाऊँ ॥
परम पूज्य गौतम स्वामी के, पद पंकज नित ध्याऊँ ।
गुरुवाणी पर श्रद्धा करके, निज शाश्वत पद पाऊँ ।

ॐ ह्रीं श्री गौतम गणधर स्वामिने जन्म-जरा-मृत्युरोग विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

गुरु पद वन्दन करने को, शीतल चन्दन घिस लाऊँ ।
भवआताप मिट जाए मेरा, अत: गुरु-गुण गाऊँ ॥परम०

ॐ ह्रीं श्री गौतम गणधर स्वामिने संसार ताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

तन्दुल धवल अखण्डित लेकर, जिनवर पूज रचाऊँ ।
अक्षय पद पा जाऊँअपना, सोच-सोच हर्षाऊ ॥परम०

ॐ ह्रीं श्री गौतम गणधर स्वामिने अक्षय पद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

पुष्प सुगंधित मकरन्द मण्डित, भाँति-भाँति के लाऊँ ।
कामवासनायें मिट जायें, आतम ध्यान लगाऊँ ॥परम०

ॐ ह्रीं श्री गौतम गणधर स्वामिने कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

नाना व्यंजन, मिष्ट बनाकर, स्वर्ण थाल में लाऊँ ।
हे प्रभु क्षुधा रोग मिट जाए, परम शान्ति पा जाऊँ ॥परम०

ॐ ह्रीं श्री गौतम गणधर स्वामिने क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीप प्रज्ज्वलित अर्पण करके, ज्ञान की ज्योति जलाऊँ ।
काल अनादि से छाया यह, मोह तिमिर विघटाऊँ ॥परम०

ॐ ह्रीं श्री गौतम गणधर स्वामिने मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

अगर-तगर-कलागुरु चन्दन की सुवास फैलाऊँ।
मानों वसुकर्मों की दुर्गन्ध, इस विधि दूर भगाऊँ।।परम.

ॐ ह्रीं श्री गौतम गणधर स्वामिने अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफलादि अति श्रेष्ठ फलों को, प्रभुचरणों में लाऊँ।
मुक्ति-मार्ग पर चल कर मैं भी, जीवन सफल बनाऊँ।।परम०

ॐ ह्रीं श्री गौतम गणधर स्वामिने मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठों द्रव्य मिलाकर मै, मनहर अर्घ बनाऊँ।
निज अनर्घ पद के पाने को, गीत प्रभु के गाऊँ।। परम ०

ॐ ह्रीं श्री गौतम गणधर स्वामिने अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

जय-जय-जय-जय गौतम गणेश, तुमने सब कर्म किए निःशेष।
हम भी अपने आतम के काज, तुम चरणों में आए हैं आज।।
तुम ज्ञान मान के मतवारे, सब विद्या के जानन हारे।
पर जब तक नाहिं प्रभु दर्श किए, तब तक छाया था मान हिए।।
देवेन्द्र ने योग जुटाया था, तब तुमने दर्शन-पाया था।
जैसे ही मानस्तम्भ देखा, नहीं रही हृदय में मद-रेखा।।
निर्मल मन से सीढ़ी चढ़ते, प्रभु के चरणों में सिर धरते।
जैनेश्वरी दीक्षा धारण की, हर शंका तभी निवारण की।।
हुए चार ज्ञानधारी तत्क्षण, मन शुद्धि बढ़ी क्षण-क्षण प्रतिक्षण।
गणधर तुम पहले कहलाए, विपुलाचल पर यह फल पाए।।
आश्चर्य हुआ जग को अपार, जब खिरी दिव्यध्वनि सौख्यकार।
सब जीव करें आकण्ठ पान, पाया सबने दुःखों से त्राण।।
लघु द्वय भ्राता भी साधु बने, गणधर बनकर फिर कर्म हने।
थे शिष्य पाँच सौ जो संग में, वे भी रंग गए मुक्ति-रंग में।।
पशुओं का भी कल्याण हुआ, उनको भी आतम ज्ञान हुआ।
सामान्य जनों ने भी धारे, अणुव्रत आदिक भी स्वीकारे।।
हे स्वामी ! यदि तुम ना होते, प्रभु-वाणी से वंचित रहते।
हैं हम पर ये उपकार महा, जो हमने आतम ज्ञान लहा।।
इसलिए प्रथम सुमरण करते, श्रद्धा प्रसून अर्पण करते।
हे गुरुवर ! पायें ज्ञानदान कर सकें निजातम का कल्याण।।
तुमने प्रभु को जितना जाना, अपने को उतना लघु माना।

ऐसा अपूर्व साहस कीना, मद कर्मशत्रु का हर लीना।।
जब जिनवर का निर्वाण हुआ, तब तुमको केवलज्ञान हुआ।
होती प्रभात में प्रभु-पूजा, सन्ध्या को दीप जले दूजा।।
प्रातः मोदक ले आते हैं, मुक्ति का मोद मनाते हैं।
सन्ध्या को ज्ञानोत्सव करते, मन से अज्ञान तिमिर हरते।।
घर-घर में रंगोली करते हैं, समोशरण ही मानों रचते हैं।
तब बरसे थे बहुमूल्य रतन, बरसाते खील-बताशे हम।।
प्रभू आयेंगे मेरे घर पर, इसलिए सजाते हैं सब घर।
घर-द्वार स्वच्छ करते पहले, फिर साफ करें तन-मन मैले।।
लो स्वागत को तैयार हुए, अन्तर में हर्ष अपार हुए।
सचमुच प्रभु हिरदय में आओ, मन ज्ञान की ज्योति जगा जाओ।।
अब 'अरुणा' का अज्ञान हटे, यह चतुर्गति का चक्र घटे।
गुरु आनन्दसागर-आज्ञा से, पूजा रचना की भावों से।।

ॐ ह्रीं श्री गौतम गणधर स्वामिने जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गुरुगणधर के वचन पर, जो भी श्रद्धा लाए।
इस भव में सुख भोग कर, परभव सुखी बनाए।
इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

सरस्वती पूजन

(दोहा)

जनम-जरा-मृतु छय करै, हरै कुनय जड़रीति।
भवसागर सों ले तिरै, पूजै जिन वच प्रीति।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतिवाग्वादिनी ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम्।
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

"परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामि"

(त्रिभंगी छंद)

छीरोदधिगंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा सुखसंगा।
भरि कंचन झारी, धार निकारी, तृषा निवारी हितचंगा।।
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई।
सो जिनवर वानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतिदेव्यै जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

करपूर मंगाया, चंदन आया, केशर लाया रंग भरी ।
शारद पद वंदो, मन अभिनंदो पाप निकंदों दाह हरी ।।तीर्थ.।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतिदेव्यै संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

सुखदास कमोदं, धारकमोदं अति अनुमोदं चंदसमं ।
बहुभक्ति बढ़ाई, कीरति गाई, होहु सहाई मात ममं ।।तीर्थ.।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतिदेव्यै अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

बहुफूल सुवासं, विमल प्रकाशं, आनन्दरासं लाय धरे ।
मम काम मिटाओ, शीलबढ़ाओ, सुख उपजायो दोषहरे ।।तीर्थ. ।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतिदेव्यै कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

पकवान बनाया, बहु घृत लाया, सब विधि भाया मिष्ट महा ।
पूजूँ थुति गाऊँ प्रीति बढ़ाऊँ, क्षुधा नशाऊँ हर्ष लहा ।।तीर्थ.।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतिदेव्यै क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

करि दीपक जोतं, तमछय होतं, ज्योति उदोतं तुमहिं चढ़ै ।
तुमहो परकाशक भरम विनाशक हमघट भासक ज्ञान बढ़ै ।। तीर्थ.।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतिदेव्यै मोहान्धकार विध्वंसनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

शुभगंध दशों कर, पावक में धर, धूप मनोहर खेवत हैं ।
सबपापजलावैं, पुण्य कमावैं, दास कहावैं सेवत हैं ।।तीर्थ.।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतिदेव्यै अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

बादाम छुहारी, लोंग सुपारी, श्रीफल भारी ल्यावत हैं ।
मनवांछित दाता, मेट असाता तुम गुन माता ध्यावत हैं ।।तीर्थ.।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतिदेव्यै मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

नयनन सुखकारी, मृदुगुणधारी, उज्जवल भारी, मोल धरैं ।
शुभगंधसम्हारा, वसननिहारा, तुम तन धारा ज्ञान करैं ।।तीर्थ. ।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतिदेव्यै दिव्यज्ञान प्राप्तये वस्त्रं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल चंदन अच्छत, फूल चरु, अरु दीप धूप अति फल लावैं ।
पूजा को ठानत, जो तुम जानत, सो नर द्यानत सुख पावैं ।।तीर्थं.।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतिदेव्यै अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(सोरठा)

ओंकार ध्वनिसार, द्वादशांगवाणी विमल ।
नमों भक्ति उरधार, ज्ञान करै जड़ता हरै ।।

(चौपाई)

पहलो आचारांग बखानो, पद अष्टादश सहस प्रमानो ।
दूजो सूत्रकृतं अभिलाषं, पद छत्तीस सहस गुरु भाषं ।।
तीजो ठाना अंग सु जानं, सहस बियालिस पद सरधानं ।
चौथो समवायांग निहारं चौंसठ सहस लाख इक धारं ।।
पंचम व्याख्या प्रज्ञप्ति दरसं, दोय लाख अट्ठाइस सहसं ।
छट्ठो ज्ञातृकथा विस्तारं पाँच लाख छप्पन हजारं ।।
सप्तम उपासकाध्ययनंगं सत्तर सहस ग्यारलख भंगं ।
अष्टम अन्तकृत दश ईसं, सहस अट्ठाइस लाख तेईसं ।।
नवम अनुत्तरदश सुविशालं, लाख बानवै सहस चवालं ।
दशम प्रश्न व्याकरण विचारं, लाख तिरानवै सोल हजारं ।।
ग्यारम सूत्रविपाक सु भाखं एक कोड़ि चौरासी लाखं ।
चार कोड़ि अरु पन्द्रह लाखं दो हजार सब पद गुरुशाखं ।
द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं, इकसौ आठ कोड़िपनवेदं ।
अड़सठ लाख सहस छप्पन हैं, सहित पंचपद मिथ्याहन हैं ।।
इकसौ बारह कोड़ि बखानो, लाख तिरासी ऊपर जानो ।
ठावन सहस पंच अधिकाने, द्वादश अंग सर्वपद माने ।।
कोड़ि इकावन आठ हि लाखं, सहस चुरासी छह सौ भाखं ।
साढ़े इक्कीस श्लोक बताये, एक-एक पद के ये गाये ।।

(दोहा)

जा वानी के ज्ञान तैं, सूझै लोक-अलोक ।
'द्यानत' जग जयवन्त हो, सदा देत हों धोक ।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतिदेव्यै जयमाला महार्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

।। पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।।

श्री धवल ग्रन्थ पूजा

स्थापना-गीता छन्द

जय जय धवल तुम हो धवल कर दो धवल इस दास को।
जिनवाणी के तुम अंश हो मुझ वास दो निज पास को॥
तुम ज्ञान अरु विज्ञान के दाता हरो सन्ताप को।
ये भाव भर अति भक्ति से करते नमन हम आपको॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतमहाकर्मप्रकृतिप्राभृतधवलश्रुतज्ञान ! अत्र अवतरावतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतमहाकर्मप्रकृतिप्राभृतधवलश्रुतज्ञान ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ:ठ ।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतमहाकर्मप्रकृतिप्राभृतधवलश्रुतज्ञान ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

सुरसरिता को जलसार, निर्मल भावन सों।
कंचनझारी के धार, ढारूं उमड़्गन सों॥
ये प्राभृत के अधिकार, चौबीसों भारी।
मैं धवल नमों सुखकार, चिरचितअघहारी॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत धवलश्रृतज्ञानाय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।।1।

मलयागिरी चन्दनसार, शीतल मुनिचित सों।
तुम आगे दूं यह धार, छूटूं भव दुख सों॥ ये प्रा.॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत धवलश्रृतज्ञानाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।।1।

ये तन्दुल उज्ज्वल सार, चोखे अनियारे।
दीने तुम चरणन डार, उत्तमदृगहारे॥ ये प्रा.॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत धवलश्रृतज्ञानाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।।1।

ले सुमन सुगन्धित सार, सुन्दर सुरतरु के।
तुमको अर्चत मदहार, शिवसुन्दरि वर के॥ ये प्रा.॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत धवलश्रृतज्ञानाय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।1।

नेवज नानाविधि सार, मिष्ट सुरम्य बने।
मेटन को क्षुधा प्रहार, गौघृत मांहि सने॥ ये प्रा.॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतधवलश्रृतज्ञानाय क्षुधारोगविनाशयान नैवेद्यं निर्वपामीति निर्वपामीति स्वाहा।।1।

यह दीप ज्योति तम खोय, शिवमग दरशावे।
पद जजत भगत तम मोह, उत्तम पद पावे॥ ये प्रा.॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत धवलश्रृतज्ञानाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।1।

यह अगरु तगर ले सार सुरभित मनभावन।
पूजों धूपायन डार, तसु मिस विधि जारन॥ ये प्रा.॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतधवलश्रृतज्ञानाय अष्टकर्मविध्वंसनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।।1।

बादाम छुहारे लाय, पिस्ता दाखन सों।
पूजत तुमको हरषाय, शिवफल पावन सों॥ ये प्रा.॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतधवलश्रृतज्ञानाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।1।

जल आदिक द्रव्य चढाय, शुभ गुण सिद्धन से। पूजों बहु
चित हुलसाय, मम भव फन्द नसे॥ ये प्रा.॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत धवलश्रृतज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।1।

श्री जय धवल पूजा

स्थापना

जय धवल परम प्रकाश से अरि मोहतिमिर विनाशिया।
गुणधरवदनशशिकिरण निरखत मोक्षमार्गप्रकाशिया॥
यतिवृषभ ने शुभसूत्रचूर्णि सहस्रषट्रचना करी।
जयधवल टीका अति मनोहर शेष ऋषिवर विस्तरी॥१॥

दोहा:

पूरब ज्ञान प्रवाद के, दशम वस्तु अधिकार।
नाम पेज्ज पाहुड त्रितय, सार खींच निरधार॥२॥
अस्सी शत गाथा सुगम, श्री गुणधर मुनि ईश।
रच पन्द्रह अधिकार में, जो भाखी गणधीश॥३॥
ऐसो पन्द्रह अधिकार में, हृदय विराजो आय।
आह्वानन सन्निधिकरण, करूं हर्ष उर लाय॥४॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतस्याद्वादमुद्रांकित जय धवल श्रुतज्ञान !
अत्रावतरावतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतस्याद्वादमुद्रांकितजय धवल श्रुतज्ञान !
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतस्याद्वादमुद्रांकितजय धवल श्रुतज्ञान !
अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

श्री महाधवल पूजा

महामोहनाशक प्रबल महाधवल विख्यात।
महाबन्ध प्रणमूं तुम्हें करहु मुझे अवदात॥1॥
भूतबली आचार्यकृत बन्धतत्व का ज्ञान।
दुर्नयहारि सुनयकरी हृदय विराजो आन॥2॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतस्याद्वादमुद्रांकितमहाधवलग्रन्थ !

अत्र अवतरावतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतस्याद्वादमुद्रांकितमहाधवलग्रन्थ !
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतस्याद्वादमुद्रांकितमहाधवलग्रन्थ !
अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(चाल - करले करले तू नित प्राणी पूजन करले जिनवाणी।)

निर्मल सलिल लेय कर कर में निर्मल भाव सों भाऊं।
जन्म जरा मृतु नाश करन को महाधवल हृवल लाऊं।
आगम वाणी मुक्तिनिशानी महापावनी भवि मानी॥
पुण्यपापविच्छेदकृपानी, चिदानन्दकी रजधानी॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतमहाधवलग्रन्थाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मुनिचितसम शीतल चन्दन ले साम्यभाव को अपनाऊं
भव आताप मिटावन कारण महाधवल हृदय लाऊं॥आगम॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतमहाधवलग्रन्थाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

चंद्रोज्ज्वल सम उज्ज्वल अक्षत लेकर निज गुण मन भाऊं।
अक्षयपद प्राप्ति के हेतु मैं महाधवल हृदय लाऊं॥आगम.॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतमहाधवलग्रन्थाय अक्षतान निर्वपामीति स्वाहा।

सुमन सुगन्धित लेकर कर में चिदवदनी तुम गुण गाऊं।
समर शूल निर्मूल करन को महाधवल हृदय लाऊं॥आगम.॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतमहाधवलग्रन्थाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मोदक खाजे गूझा ताजे, श्रुतचरण में लाय चढाऊं।
क्षुधा निवारण कारण अब मैं महाधवल हृदय लाऊं॥आगम॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतमहाधवलग्रन्थाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्दीप रतनत्रये से अब निज परिणतिको विकसाऊं।
भक्ति भाव से दीप चढाकर महाधवल हृदय लाऊं॥आगम॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतमहाधवलग्रन्थाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूपायन में पावक धर कर धूप सुगन्धित प्रज्वलाऊं।
अष्ट करम के नाश हेतु मैं महाधवल हृदय लाऊं।।आगम।।
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतमहाधवलग्रन्थाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम छुहारी लौंग सुपारी श्रीफल भारी ले आऊं।
आवागमन निवारण कारण महाधवल हृदय लाऊं।।आगम।।
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतमहाधवलग्रन्थाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

करम मरम का भरम न जाने बहुविध जगमें भरमाऊं।
हरन भ्रमण थिरता पद कारन महाधवल हृदय लाऊं।।आगम।।
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतमहाधवलग्रन्थाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अथ अष्टमदले पुष्पांजलिः

दोहा

जो धर्म अर्थ अरु काम मोक्ष, पुरुषार्थ कहे अरु चरित कहे।
त्रेसठ शलाका पुरुषों के, आदर्श महान पुराण कहे।।
वह पुण्य रूप है रत्नत्रय मय बोधि समाधि निधान महा।
मैं पूजूँ उसको उसही का, प्रथमानुयोग यह नाम कहा।।
ॐ ह्रीं श्री जिनेंद्रदेवमुखकमलविनिर्गतप्रथमानुयोगसम्यग्ज्ञानाय अर्घ्यं...

जो लोक अलोक विभाग कहे, षट्काल परावर्तन कहता।
चारों गति के संसरण कहें, भव पंच परावर्तन कहता।।
दर्पण समान वह त्रिभुवन का, सब चित्त सामने झलकाता।
मैं जजूँ उसे करणानुयोग यह, नाम धरे भुवि सुखदाता।।
ॐ ह्रीं श्री जिनेंद्रदेवमुखकमलविनिर्गतकरणानुयोगसम्यग्ज्ञानाय अर्घ्यं.....

श्रावक मुनि के आचार रूप, चारित्र सही जो बतलाता।
उसकी उत्पत्ती वृद्धि और, रक्षा के साधन सिखलाता।।
चरणानुरोग है शास्त्र वहीं, जो मोक्ष महल में चढ़ने को।
चरणों को रखने हेतु सहज, सोपान रूप पूजूँ इसको।।
ॐ ह्रीं श्री जिनेंद्रदेवमुखकमलविनिर्गतचरणानुयोगसम्यग्ज्ञानाय अर्घ्यं.....

जो जीव अजीव सुतत्वों को, अरु पुण्य पाप को बतलाता।
आस्रव संवर अरु बंध मोक्ष, तत्त्वों को विधिवत् समझाता।।
वह दीप सदृश द्रव्यानुयोग, द्रव्यों को प्रकट दिखाता है।
श्रुत विद्या का सुन्दर प्रकाश, मैं जूजूँ इसे सुखदाता है।।
ॐ ह्रीं श्री जिनेंद्रदेवमुखकमलविनिर्गतद्रव्यानुयोगसम्यग्ज्ञानाय अर्घ्यं.....
शांतये शांतिधारा। दिव्यपुष्पांजलिः।

कतिपथ ग्रन्थों को अर्घ्यः

चाल (हे दीनबन्धु)

जो है कसायपाहुड, गुणधर गुरु रचित।
क्रोधादि कषायो, सब विध किया ग्रथित।।
जयधवल नाम टीका, गाथायें दो सौ तेंतिस।
पूजूँ मैं भक्ति धरके, हो पूर्ण ज्ञान विकसित।।
ॐ ह्रीं पूर्वाचार्यमुखकमलविनिर्गतजयधवलाटीकासमेतकषायप्राभृतग्रन्थाय अर्घ्यं...
..धरसेन सूरिवर से पाया जो ज्ञान मुनि ने।
श्री पुष्पदंत मुनिवर अरु भूतबलि मुनि ने।।
षट्खंड जिनागम की रचना रची उभय ने।
धवला प्रसिद्ध टीका पूजूँ धरूँ विनय मैं।।
ॐ ह्रीं पूर्वाचार्यमुखकमलविनिर्गतधवलाटीकासमेतषट्खण्डागमग्रन्थाय अर्घ्यं.....

महाबंध ग्रन्थ माने, टीका महाधवल युत।
उनको जजूँ रुचि से हो ज्ञानवृद्धि संतत।।
कर्मों का बंध सत्ता उदयादि को बखाने।
इसको जजें भविकजन वे कर्मबंध हाने।।
ॐ ह्रीं पूर्वाचार्यमुखकमलविनिर्गतमहाधवलाटीकासमेतमहाबंधग्रन्थाय अर्घ्यं.....
श्रीयति वृषभ की रचना तीलोय पण्णती है।
इससे त्रिलोक रचना स्पष्ट झलकती है।।
इस ग्रन्थ के पढ़े से होता त्रिलोक दर्शन।
मैं अर्घ ले जजूँ नित होगा निजात्म दर्शन।।

ॐ ह्रीं पूर्वाचार्यमुखकमलविनिर्गतत्रिलोकप्रज्ञप्तिग्रन्थाय अर्घ्यं.....

जम्बुद्वीप की पण्णत्ति इस द्वीप को दिखाती।
मेरु कुलाचलादिक सब वस्तु को बताती।।
इसके पठन से जम्बूद्वीपपादि को समझ लो।
भक्ती से अर्घ करके, निजलोक भी समझ लो।।

ॐ ह्रीं पूर्वाचार्यमुखकमलविनिर्गतजंबूद्वीपप्रज्ञप्तिग्रन्थाय अर्घ्यं.....

पंचास्तिकाय, प्रवचन सारादि समयसारा।
चौरासि पाहुड़ादी अरु ग्रन्थ नियम सारा।।
इन सबको अर्घ लेके पूजूँ निजात्म रुचि से।
अज्ञान भाव हटकर निज ज्ञान ज्योति चमके।।

ॐ ह्रीं पूर्वाचार्यमुखकमलविनिर्गतपंचास्तिकायप्रवचनसारसमयसार नियमसार चतुरशीतिप्राभृतग्रन्थेभ्य: अर्घ्यं.....।

आचारसार मूलाचारादि शास्त्र मुनि के।
जो रत्नकरंडादी श्रावक क्रियादि कहते।।
आचार शास्त्र पूजा दानादि को बखाने।
उनको जजूँ रुचि से वे सर्वदु:ख हाने।

ॐ ह्रीं पूर्वाचार्यमुखकमलविनिर्गतमूलाचारसाररत्नकरण्डश्रावकाचारादिशास्त्रेभ्य: अर्घ्यं.....।

जो हैं पुराणआदी बहु शास्त्र मान्य जग में।
हरिवंश पुराणादि अरु पद्म चरित इनमें।।
तीर्थंकरों व चक्री नारायणादिकों का।
वर्णे चरित्र सुन्दर उनको जजूँ सुनीका।।

ॐ ह्रीं पूर्वाचार्यमुखकमलविनिर्गतमहापुराणउत्तरपुराणहरिवंशपुराणापद्मपुराणादिग्रन्थेभ्य: अर्घ्यं....।

तत्त्वार्थ सूत्र तत्त्वों को वर्णता है सुन्दर।
गुरु गृद्धपच्छि इसमें भर दीना श्रुत समुंदर।।
सर्वार्थसिद्धि आदिक टीका इसी पे बहुती।
हैं आप्तमीमांसादि रचना जजूँ सुभक्ती।।

ॐ ह्रीं पूर्वाचार्यमुखकमलविनिर्गततत्त्वार्थसूत्रग्रन्थतट्टीकासर्वार्थसिद्धितत्त्वार्थराजवार्तिकश्लोकवार्तिकगंधहस्तिमहाभाष्य=आप्तमीमांसाअष्टशती अष्टसहस्रीआदि-तत्संबंधिसर्वग्रन्थेभ्य: अर्घ्यं....।

गोमट्टसार जीवकांड कर्मकांड श्रुत।
त्रिलोक सार लब्धि सार क्षपण सार श्रुत।
ये पंच संग्रहादि ग्रन्थ अर्थ पूर्ण हैं।
इनको जजूँ इन्हीं से अनेकांत पूर्ण हैं।।

ॐ ह्रीं पूर्वाचार्यमुखकमलविनिर्गतगोमम्मट्टसारजीवकांडकर्मकांडत्रिलोकसारलब्धिसार क्षपणसारपंचसंग्रहनामग्रन्थेभ्य: अर्घ्यं....।

शंभुछंद

जितने जिनश्रुत उपलब्ध आज, जिनमंदिर मठ ग्रन्थालय में।
गुरुपरंपरा से प्राप्त लिखा, भवभीरु महाव्रती मुनिजन ने।।
सर्व अंग पूर्व के अंश-अंश, जिनवर की वाणी मानी है।
मैं पूजूँ अर्घ चढ़ाकर के, ये स्वात्म सुधारस दानी है।।

ॐ ह्रीं पूर्वाचार्यमुखकमलविनिर्गतगुरुपरंपरागतजिनमंदिरमठग्रन्थालयस्थितसर्वजिन शास्त्रेभ्य: पूर्णार्घ्यं....।

शांतये शांतिधारा। दिव्यपुष्पांजलि:।

जाप्य : ॐ ह्रीं श्रीं वद वद वाग्वादिनि भगवति सरस्वति ह्रीं नम:।

श्री सम्मेद शिखर पूजा

शिखर सम्मेद नमूं सदा, जग में तीर्थ प्रधान।
स्वर्ग मुक्ति दातार है, जन्म जरा मृत हान॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्मेद शिखर क्षेत्र तीर्थेभ्यो अत्र अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीसम्मेद शिखर क्षेत्र तीर्थेभ्यो अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं शिखर क्षेत्र तीर्थेभ्यो अत्र मम सन्निहितो भव भव संवौषट्।

सुर सरिता जल उज्ज्वल लेकर प्रासुक गन्ध मिलाऊं।
कर्म कलंक विनाशन कारण धारा दे हर्षाऊँ।
तीर्थराज सम्मेदशिखर को नित प्रति शीश नवाऊं।
जिनके पूजें पाप कटें सब अरु शिव ''लक्ष्मी'' पाऊं॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्मेद शिखर शैलसे अनन्तानंत चौबीसी मोक्ष पधारे तिनके चर्णारविंद नमोः जन्मजरामृत्यु विनाशयाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

बावन चन्दन कदली नन्दन केसर संग घिसाऊं।
भवआताप विनाशन कारण श्रीजिन चरण चढ़ाऊ॥ तीर्थं.॥ चंदनं.॥
तंदुल शशि सम उज्ज्वल लेकर थाल सुवर्ण भराऊं।
पुंजधरु तुम चर्णन आगे शीघ्र अक्षयपद पाऊं॥ तीर्थं.॥ अक्षतं.॥
बेला चम्पा तथा चमेली सुमन सुगन्धित लाऊं।
मन्मथ भट मदभंजन करण भेंटधरु गुणगाऊं॥ तीर्थं.॥ पुष्पं.॥
घेवर बावर फैनी मोदक नैवज सद्य बनाऊं।
क्षुधा रोग केनाान कारण पूजत हिय हुलसाऊं॥ तीर्थं.॥ नैवेद्य.॥
कनक दीप कर्पूर वर्ति खे दश दिश में छवि छाऊं।
मोह तिमिर के नाशकरण को तुम पद पद्म चढ़ाऊं॥ तीर्थं.॥ दीपं.॥
अगर तगर कृष्णागरु चन्दन लेकर अनल जलाऊं।
अष्ट कर्म के नष्ट करन को धूप सु धूम उड़ाऊं॥ तीर्थं.॥ धूपं.॥
श्रीफल लोंक छुहरादिक फल कंचन थाल भराऊं।
मोक्ष महाफल प्राप्ति हेतु प्रभु पद पूजूं हुलसाऊं॥ तीर्थं.॥ फलं.॥
जल चंदन अक्षत सुपुष्प चरु दीप धूप फल लाऊं।
अर्घ बनाय धरूं तुम आगे आठों अंग नमाऊं॥ तीर्थं.॥ अर्घ.॥

प्रत्येक अर्घ चौपाई

कूट ''ज्ञानघर'' सुन्दर जान। जहाँ से कुन्थप्रभु निर्वान।
छयानव कोड़ा कोड़ी कोड़। बत्तीस लाख और भी जोड़॥
छयानव सहस सातसै जान अरु वयालीस गए शिवथान।
तिनपद वंदू मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्थु नाथ जिनेन्द्रादि 96 कोड़ा कोड़ी 96 कोड़ 32 लाख 96 हजार 742 मुनि ज्ञानधर कूट से सिद्ध भए अर्घम् निव.

गौतम गणधर श्रीमतवीर। शुक्ल ध्यान धरकर वर वीर।
अति सुखसागर अथिर असार। छोड़ समस्त परिग्रह भार॥
क्षेत्र गुणावा शोभावन्त। हुएतहां से शिव तिय कन्त।
तिनपद वंदू मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय॥

ॐ ह्रीं श्री पंडित गौतम स्वामी आदि गणधर देव गुणावाग्राम के उद्यान आदि भिन्न-भिन्न स्थानों से निर्वाण पधारे तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घम्।

कूट ''मित्रवर'' परम महान्। श्रीनमिनाथ मुकति शुभथान।
नवशत कोड़ा कोड़ी दक्ष। एक अरब पैंतालीस लक्ष॥
सप्तसहस नौसो ब्यालीस। शिव पहुँचे ऋषिवर जगदीश।
तिनपद वंदू मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेन्द्रादि 900 कोड़ा कोड़ी 1 अरब 45 लाख 7 हजार 942 मुनि मित्रवर कूट से सिद्ध भये तिनके चर्णारविंद जलादि अर्घम्।

''नाटक'' कूट मनोज्ञ महान। अरह जिनेश्वर को शिव थान।
क्रोड़ लक्ष अरु सहस सुजान। निन्यावन हैं सर्व प्रमान॥
इतने ऋषि इस कूट मंझार। लहि शिव हुए भवोदधिपार।
तिनपद वंदू मन वचकाय। शिवर सम्मेद जजू सुखदाय॥

ॐ ह्रीं श्री अरहनाथ जिनेन्द्रादि 99 क्रोड़ 99 लाख 99 हजार मुनि नाटककूट से सिद्ध भए तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घम्।

''सम्बल'' कूट अतिव विशाल। शोभा जिसकी परमरसाल।
मल्लिजिनेश्वर मुक्ति मंझार। गए त्याग संसार असार॥
छयानवे क्रोड़ और ऋषि जान। तंहते कीनो मुक्तिपयान।
तिनपद वंदू मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय।

ॐ ह्रीं श्री मल्लि जिनेन्द्रादि मुनि 96 क्रोड़ मुनि सम्बल कूट से सिद्ध भए तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घं।

''संकुल'' कूट मनुज मनहार। श्री श्रेयांस अमर पदधार।
छयानव कोड़ा कोड़ी जान। क्रोड़ लक्ष छयानव परमान।
साढ़े नौ सौ सहस मुनीश। ब्यालीस और भये शिवईश।
तिनपद वंदू मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांस नाथ जिनेन्द्रादि 96 कोड़ा कोड़ी 96 क्रोड़ 96 लाख 9 हजार 582 मुनि संकुल कूट से सिद्ध भये तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घं।

''सुप्रभु'' कूट मनोहर मही। पुष्पदंत शिव पदवी लही।
कोड़ा कोड़ी एक विज्ञप्त। न्यानव लक्ष सहस है सप्त॥
चतुशत अरु अस्सी ऋषिराज। पहुँचे मोक्ष भए जिनराज।
तिनपद वंदू मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय॥

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंत जिनेन्द्रादि मुनि 1 कोड़ाकोड़ी 99 लाख 7 हजार 480 मुनि सुप्रभकूट से सिद्ध भए तिनके चर्णारविंद कोजलादि अर्घं।

'मोहन' कूट परम सोहनो। पद्मप्रभ यहां ते शिव भनौ।
कोटिनिन्यानवै लक्ष सतासि। सैंतालिस सहस शुभराशि॥
सप्त शतक सत्ताईस जान। श्री मुनिराज गए निर्वान।
तिनपद वंदू मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय॥

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंत जिनेन्द्रादि मुनि 99 कोड़ा 87लाख 47 हजार 727 मुनि मोहनकूट से सिद्ध भए तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घं।

''निर्जर'' कूट महासुखदाय। मुनिसुव्रत प्रभु मुक्ति लहाय।
कोड़ा कोड़ी निन्यानव जान। और सत्तानव कोड़ जुआन॥
नौ सौ निन्यानवे नव लक्ष। मुक्ति पधारे ऋषि अतिदत्त।
तिनपद वंदू मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय॥

ॐ ह्रीं मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 99 कोड़ा 97 कोड़ 9 लाख 999 मुनि निर्जन कूट से सिद्ध भए तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घं।

''ललित'' कूट शौभे अभिराम। श्री चन्द्रप्रभु शिवधाम।
नौ सौ अरख चौरासि जोड़, अस्सी लाख बहत्तर क्रोड़॥
पंच शतक चौरासि हजार। पचपन मुनिशिव गए निहार।
तिनपद वंदू वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभु जिनेन्द्रादि मुनि 984 अरब 72 कोड़ा 80 लाख 84 हजार 555 मुनि ललित कूट से सिद्ध भए तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घं।

गिरिकैलाश शिखर विख्यात। अद्भू शोभासहित लसात।
महिमा जाकी अकथ अपार। वरनत कौन लहे कविपार॥
श्री आदीश्वर को शिव थान। सिद्ध क्षेत्र हैं परम महान।
तिनपद वंदू मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय॥

ॐ ह्रीं ऋषभादि जिनेन्द्रादि असंख्यात मुनि केलाश पर्वत से सिद्ध भए तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घं।

'विद्युत' कूट सु आनन्दाय। शीतल नाथ जहां शिवपाय।
कोड़ा कोड़ अठारह जान। और बयालिस कोड़ी प्रमाण।
बत्तीस लक्ष सहस ब्यालिस। नौ सो पांच हुए शिव ईश।
तिनपद वंदू मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 18 कोड़ा कोड़ी 42 कोड़ 32 लाख 42 हजार 905 मुनि विद्युत कूट से सिद्ध भए तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घं।

कूट स्वयंभू सुन्दर महा, जँहते प्रभु अनन्त शिवलहा।
कोड़ा कोड़ छियानवे जान, सत्तर कोड़ लियो परमान॥
सत्तर सत्तर लक्ष हजार। सप्त शतक मुनि मुक्तिमंझार।
तिनपद वंदू मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 96 72 कोड़ा कोड़ा 70 कोड़ा 70 लाख 70 हजार 700 मुनि स्वयं भू कूट से सिद्ध भए तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घं।

''धवलदत्त'' है कूट महान। संभवनाथ गए निर्वान।
नव कोड़ा कोड़ी मुनि संत। लक्ष बहत्तर करि जग अंत॥
पंच शतक ब्यालीस हजार। पहुँचे मुक्ति अमर पद धार।
तिनपद वंदू मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय॥

ॐ ह्रीं श्री संभवनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 9 कोड़ा कोड़ी 72 लाख 42 हजार 500 मुनि धवलदत्त कूट से सिद्ध भए तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घं।

श्री चम्पापुर क्षेत्र महान, वासुपूज्य तीर्थंकर जान।
वरी तहां ते शिव सुन्दरी, नाशे अष्ट कर्म मदहरी॥
वंदत कूट अधिक सुख होय, कोटि जनम कृत अघक्षय होय।
तिनपद वंदू मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्रादि चम्पापुर मन्दागिरि से सिद्ध भए तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घं।

आनन्द कूट मोद दातार, अभिनन्दन पाई शिव नार।
कोड़ा कोड़ बहत्तर लाख, सत्तर कोड़क छत्तीस लाख॥
सप्त शतक बयालीस हजार, पहुँचे श्री ऋषि मुक्ति मंझार।
तिनपद वंदू मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनंदन नाथ जिनेन्द्रादि मुनि 72 कोड़ा कोड़ी 70 करोड़ 36 लाख 42 हजार 700 मुनि आनन्द कूट से सिद्ध भए तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घं।

कूट ''सुदत्त'' परम सुखदाय, श्री जिन धर्म नाथ शिव पाय।
श्री मुनि उन्नीस कोड़ा कोड़, लक्ष सहस नव नव अरजोड़॥
सप्त शतक पंचानव सही, इतने ऋषि पंचम गति लही।
तिनपद वंदू मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 19 कोड़ा कोड़ी 19 करोड़ 9 लाख 9 हजार 795 मुनि सुदत्त कूट से सिद्ध भए तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घं।

''अवचिल'' कुट महाअभिराम, सुमति जिनेश्वर को शिवधाम।
कोड़ा कोड़ एक मुनिदक्ष, कोड़ चौरासी बहत्तर लक्ष॥
सहस इक्यासी और सुजान, सप्तशतक ऋषिवर निर्वान।
तिनपद वंदू मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय॥

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 1 कोड़ा कोड़ी 84 करोड़ 72 लाख 81 हजार 700 मुनि अविचल कूट से सिद्ध भए तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घं।

कूट ''प्रभास'' मनोज्ञ महान, शांति नाथ प्रभु को शिवधान।
कोड़ा कोड़ी लक्ष हजार, नौ नौ संख्या में चित्तधार॥
नौ सौ निन्यानवे ऋषि राज, कर्म काट पायो शिव-राज।
तिनपद वंदूं मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय॥

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 9 कोड़ा कोड़ी 9 लाख 9 हजार 999 मुनि प्रभास कूट से सिद्ध भए तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घं।

चर्म जिनेश महा अतिवीर, सन्मति वर्धमान अतिवीर।
मन वांछित सुख के दातार, कर्म कलंक विनाशहार॥
श्री पावापुर क्षेत्र मंझार, मुक्ति भए परणी शिवनार।
तिनपद वंदूं मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्रादि पांवापुर सिद्ध भए तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घं।

''कुट प्रभास'' सुमहिमा युक्त, भए सुपार्श्व तहां से मुक्त।
कोड़ा कोड़ी गिनो उनचास, मुनि चौरासी कोड़ प्रकाश।।
लाख बहत्तर सात हजार, सप्तशतक बयालिस मुक्ति मंझार।
तिनपद वंदूं मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय।

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 49 कोड़ा कोड़ी 84 करोड़ 72 लाख 7 हजार 742 मुनि प्रभास कूट से सिद्ध भए तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घं।

श्री सुवीर कुल कूट महान, पहुँचे मुक्ति विमल भगवान।
सप्त लक्ष और सत्तर करोड़, सप्त शतक षट सहस जुजोंड।।
ब्यालिस और महा ऋषि सही, कर्म काट शिव पदवी लही।
तिनपद वंदूं मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय।

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 70 करोड़ 7 लाख 6 हजार 742 मुनि सुवीर कुल कूट से सिद्ध भए तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घं।

कूट ''सिद्धवर'' मंगलधाम, अजित प्रभु तिन साथ ललाम।
एक अरब अरु अस्सी क्रोड, चौवन लाख साथ इन जोड़।
श्री मुनिराज सकल अघनाश, पहुँचे मुक्ति अचल अविनाश।
तिनपद वंदूं मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय।।

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 7 अरब 80 करोड़ 54 लाख मुनि सिद्धवर कूट से सिद्ध भए तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घं।

श्री गिरनार शिखर विख्यात, नरनारि सब वंदन जात।
सजुल तज नेमीश्वर स्वाम, दीक्षा लीनी तिसही धाम।।
शिव नारी के है जो कन्त अन्तकहर पहुँचे लो कन्त।
तिनपद वंदूं मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्रादि गिरनार शैल से सिद्ध भये चर्णारविंद जलादि अर्घं।

सुवरणकूट महा छविवान, पार्श्व प्रभु का है शिवथान।
चौरासी लख व्यासी क्रोड़, और सहस पैंतालिस जोड़।।

सप्तशतक ब्यालिस मुनि संत मुक्ति गए शिव ''लक्ष्मी'' कंत।
तिनपद वंदूं मन वचकाय। शिखर सम्मेद जजू सुखदाय।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 82 करोड़ 84 लाख 45 हजार 742 मुनि सुवर्ण भद्र कूट से सिद्ध भए तिनके चर्णारविंद को जलादि अर्घं।

जयमाला

श्री जिनवर के पद कमल। नमूं सु मन वच काय।
रोग शोक सब दूर हो। जन्म मरण नश जाय।।
श्री आदिनाथ बंदूं जिनेश, मेटो भवदुःख काटो कलेश।
श्री अजित प्रभुस्वामी महान, अहर्निश मैं तुम्हारा धरुंध्यान।।
श्री संभवनाथ नमूँ त्रिकाल, श्री अभिनन्दन को नमूं भाल।
श्री सुमतिनाथ प्रभुजी दयाल, मुझ सुमति प्रकाशो हे कृपाल।।
श्री पद्मप्रभु सुपार्श्वनाथ, तुमको नमूं निशदिन जोड़ हाथ।
श्री चन्द्रप्रभु श्री पुष्पदन्त, शीतल श्रेयांस अघक्षय करंत।।
श्री वास पूज्य श्री विमलनाथ, मैं नमूं अनंत और धर्मनाथ।।
श्री शांतिनाथ के पाय, अघ शांत करो भ्रमतम नशाय।।
श्री कुंथनाथ श्री अरनाथ, नितप्रति, ध्याऊं श्री मल्लिनाथ।
श्री मुनिसुव्रत करुणानिधान, श्रीनमि प्रभु बूंदूं जोड़ जुग पाग।।
श्री नेमिनाथ श्री पार्श्वनाथ, तुम पदसरोज मैं धरूं माथ।
श्री महावीर वंदू महंत, जो शिव ''लक्ष्मी'' के भए कंत।।
चौबीसों जिन राज को, वंदूं बारम्बार।
महिमा जिनकी अगम है, लहि नसकहि कविपार।।
तुम गुण मैं चिन्तन करूं, है यह ही अरदास।
ईति भीति सब दूर हो, अष्ट कर्म को नाश।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज श्री सम्मेदशिखर क्षेत्र से अनन्तानन्त चौबीसी मोक्ष गये व जायेंगे उने चर्णारविंद को बारम्बार नमस्कार हो जजलादि जयमाला पूर्णार्घम् निर्वपामीति स्वाहा।

आचार्य श्री १०८ आदिसागर जी महाराज

सिद्धगौड़ा अक्काबाई के नन्दन, शिवगौंड़ा युवराज ।
स्वर्ग लोकतैं आये विराजे, मनुष्य लोक उदारन काज ॥
जनपद नगर सभी नर-नारी, मिलकर करते जय-जयकार ।
आओ तिष्ठों मम मन मांहि, आदि सिंधु अंकली आचार्य ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य आदिसागर यतिवरेभ्यो अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।

"परिपुष्पांजलिं क्षिपामि !"

तीर्थों का उज्ज्वल जल लाया, गुरु के चरण चढ़ाऊँ आज ।
भव सागर में भटक रहा हूँ, जनम मरण के मेटन काज ॥
छत्तीस मूलगुण पालन करके, किया स्वयं तुमने निजध्यान ।
आदि सिन्धु आचार्य अंकली, वाले तुमको नम्र प्रणाम ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य आदिसागर यतिवरेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

मलयागिरि चंदन अतिशीतल, देह दाह हर लेता है ।
भव सागर का ताप मिटाओ, मन तव चरनन धोता है ॥ छत्तीस ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य आदिसागर यतिवरेभ्यो भवाताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

तंदुल पुंज अखण्डित लेकर, अक्षत चरणों में लाया ।
अक्षय पद को मैं पा जाऊँ, ऐसा तुमसे फरमाया ॥ छत्तीस ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य आदिसागर यतिवरेभ्यो अक्षय पदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।

अति सुगंधित चित्त चुराते, कोमल सुमन चढ़ाऊँ मैं ।
काम बान को नाश करो तुम, चित्त सुमन सा पाऊँ मैं ॥ छत्तीस ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य आदिसागर यतिवरेभ्यो कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

मदझीना सौरभ बिखराते, नाना व्यंजन विविध प्रकार ।
क्षुधा रोग को नाश करूँ मैं, मैं पाऊँ निज का आचार ॥ छत्तीस ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य आदिसागर यतिवरेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जगमग करता दीपक लाया, चरण धरूँ तुमरे गुरुराज ।
सम्यग्ज्ञान ज्योति जल जाती, पा जाऊँ मैं निज का राज ॥ छत्तीस ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य आदिसागर यतिवरेभ्यो मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

गंध सुगंधित नाना विध के, महके खुद महकाते लोक ।
धूप जलाऊँ कर्म नशाऊँ इसीलिये तव चरणन धोक ॥ छत्तीस ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य आदिसागर यतिवरेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

पिस्ता श्रीफल, और सुपारी, भांति - भांति के फल लाया ।
परम धाम फल मैं पा जाऊँ फल अर्पण कर हर्षाया ॥ छत्तीस ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य आदिसागर यतिवरेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल चंदन अक्षत अरु सुमनस, नैवेध दीप धूप फल लाय ।
देख मिलाऊ अर्घ चढ़ाऊँ पद अनर्घ मुझको मन भाय ॥ छत्तीस ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य आदिसागर यतिवरेभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा) - आदि में आदि हुये, आदिनाथ भगवान
प्रथम सूरि आदि हुये, गाऊँ मैं गुणगान

आचार्य आदि सिन्धु मुनीश, तव चरणों में नमन शीश ।
तो तारण तरण जहाज आप, भवि जीवों का हरते सुताप ॥
हो नग्न दिगम्बर निर्विकार, जिन धर्म किया तुमने प्रचार ।
व्रत पंच महासमिति सु पाँच. पन इन्द्रियरोध किये सु सांच ॥
छह आवश्यक धारे सु धीर, औ सप्त शेष गुणधरत वीर ।
मन वचन काय गुप्ति सु धार, पाले सु पंच आचार सार ॥
दश धर्म तपत द्वादश प्रकार, बाईस परिषह विजित भार ।
वन गुफा आदि में करत ध्यान, निर्भय गुरु गुण के निधान ॥
सद्धर्म किया उपदेश सार, मुनि नर नारी सुनते अपार ।
निज में निज आतम को चितार, करते सुध्यान बहुवार ॥
सप्तोपवास गुरु आप कीन, इक वस्तु अशन लीना प्रवीण ।
महावीर कीर्ति गुण के निधान, आचार्य स्वयं पद दिया जान ॥
फिर किया मरम को वरण आप, करते-करते निज का ही जाप ।
हो धन्य अंकलीकर गुरुवर, तुम सदा-सदा को हुये अमर ॥
मेरी बस एक ही विनती जान, खुद बनूँ आपसा ही महान ।
बिन मति को सन्मति कर देना, सन्मति सागर सा भर देना ॥

ॐ ह्रूँ श्री आदिसागर महाराज जयमाला अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे गुरुवर गुण के तुम निधान, मौनी ध्यानी त्यागी महान।
तुमरे ही गुरु परम शिष्य, जिनको जाने हैं सकल विश्व॥

(दोहा)- निज को निज में जानकर, हुये स्वयं में लीन।
निज में निज को मैं गहूँ, यह वर मांगू दीन॥

॥ इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत्॥

आचार्य श्री १०८ महावीर कीर्ति जी महाराज

जिनवर सिहद मुनीन्द्र धर्मपद वंदना, शुभ मंगल लोकोत्तम शरण प्रवर्तना।
सूरि शिरोमणी संत महंत उबारिये, महावीर कीर्ति महाराज पधारिये॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य महावीर कीर्ति महाराज अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं। परिपुष्पांजलिं क्षिपामि

कंचनझारी प्रासुक जल भरि, जन्म जरा मृत्यु हरना।
महावीर कीर्ति मुनीन्द्रवर, मैं पूजूँ तव चरना॥
नाथ मोहि राखो हो सरना, जय वीतराग मुनिराज जी (मोहि.)।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य महावीर कीर्ति महाराज जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

दिव्यगंध मलयागिरि चंदन, भवाताप क्षय करना।
महावीर कीर्ति मुनीन्द्रवर, पद जुग अर्चन करना॥ नाथ मोहि.॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य महावीर कीर्ति महाराज भवाताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत खण्ड विवर्जित लीने, अक्षयपद अनुसरना।
महावीर कीर्ति मुनीन्द्रवर, पद पूजूँ अघ हरना॥ नाथ मोहि.॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य महावीर कीर्ति महाराज अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

बेला चंपा जूही चमेली, कुसुम भ्रमर मन हरना।
महावीर कीर्ति मुनीन्द्रवर, पूजौं मदन विनशना॥ नाथ मोहि.॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य महावीर कीर्ति महाराज कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

दिव्य नव्य पकवान रसीले, क्षुधा व्याधि क्षय करना।
महावीर कीर्ति मुनीन्द्रवर, चरण थाल भरि धरना॥ नाथ मोहि.॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य महावीर कीर्ति महाराज क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जगमग ज्योति प्रदीप समुज्ज्वल, मिथ्या तिमिर विघटना।
महावीर कीर्ति मुनीन्द्रवर, पूजों भव न भटकना॥ नाथ मोहि.॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य महावीर कीर्ति महाराज मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप दशांगी पावक जारी, अष्टकर्म रिपु जरना।
महावीर कीर्ति मुनीन्द्रवर, तव चरणाम्बुज सरना॥ नाथ मोहि.॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य महावीर कीर्ति महाराज अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

दाड़िम केला आम आदिफल, पक्वमिष्ट मन हरना।
महावीर कीर्ति मुनीन्द्रवर, जजों मोक्षफल वरना॥ नाथ मोहि.॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य महावीर कीर्ति महाराज मोक्षफल प्राप्तेय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ले जलादि वसुद्रव्य चाव से, कनक थाल जगमगाना।
महावीर कीर्ति मुनीन्द्रवर, चरण चित्त चिंतवना॥ नाथ मोहि.॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य महावीर कीर्ति महाराज अनर्घ्य पद प्राप्तेय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)- आदिसागराचार्य वर, गुरुपद वन्दूँ त्रिकाल।
महावीर कीर्ति थकी, अब वरनूँ जयमाल॥

जय पंचाचार धरै पवित्र, जय पंच महाव्रत दृढ़ चरित्र।
जय पंच समितिवर गुप्ति तीन, जय पंचेन्द्रिय जीते प्रवीन॥
जय षट् आवश्यक शुद्धधार, कचलोंच करें ममता निवार।
बाईस परीषह सहत घोर, सुध्यान ज्ञान तप में विभोर॥
जय निष्कषाय मदलोभ नाहिं, आरम्भ परिग्रह रंच नाहिं।
जय नानाव्रत उपवास ठान, कृशकाय भये तप दीप्त मान॥
जय एक भुक्ति तृष्णा निवार, अटपटी प्रतिज्ञा चित्त धार।
जय नीरस भोजन खंगकाय, ले नवधा भक्ति निरन्त राय॥
जय रत्नत्रय निर्मल सुधार, जय पालै दशविधि धर्म सार।
जय अनुप्रेक्षा बारह प्रकार, चितचिंतै समता भाव धार॥
जय नग्न दिगम्बर जात रुप, नत मस्तक विनवै सेठ भूप।
जय भूमि शयन निज आत्ममग्न, जय विविधासन सुध्यानमग्न॥
जय स्नान दंत धावन विहीन, जय मूलोत्तर गुण वृन्द लीन।
जय पीड़ै दुष्ट अनेक भांति, जय सहें चित्त धरिक्षमा शांति॥

जय सम्मेदाचल तीर्थ राज, प्रतिवंदन आये सूरिराज ।
जय गौतम गणधर टोंक मांहि, गुरु अचल भये सुध्यान मांहि ॥
तहँ एक दुष्टभाला सम्हारि, उपसर्ग कियो निशि भर अपार ।
जय रंच न भटको मनसुमैर, नतमस्तक दुष्ट भयौं अबेर ॥
बड़वानी बीकानेर आदि, उपसर्ग सहे गुरु धरि समाधि ।
जय नगर फिरोजाबाद धन्य, तित जन्म लियो गुरु महापुण्य ॥
जय रत्नलाल बूंदा सुनंद, जय बाल यतीश्वर सुगुण वृन्द ।
जय महावीर कीर्ति मुनीश, छत्तीस सूरि गुणगण निधीश ॥
जय कुंद-कुंद आम्नाय शुद्ध, जय तुम रक्षक ताके प्रसिद्ध ।
अन्तर्जातीय विधवा विवाह, जे करैं छोड़ि आगम प्रवाह ॥
जे शुद्धाशुद्ध विचार हीन, तिन घर आहार न ले प्रवीन ।
जय सिंह वृत्ति निर्भय विहार, तप तपैं तेज अद्‌भुत युक्तिजाल ॥
जे मन-वच-काय विशुद्धि लाय, तव पदपंकज चरचै विमाय ।
ते पावैं बहुविधि रिद्धि सिद्धि, सुख सम्पति ले विनसे दरिद्री ॥
आचार्यवर्य ! शतशः नमोस्तु, गुरुदेव ! नमोस्तु नमः नमोस्तु

(घत्ता छंद)

मुनिराज विशाल तुम जयमाला भवदुखमाला नाश करें ।
सद्‌गुण रत्नाकर भवि पद्माकर, धर्मदिवाकर भ्रांति हरें ॥
जो पूजें ध्यावें, संस्तुति गावें, भक्ति बढ़ावें मोद धरें ।
इह भव यश पावें, दुख नशावें, स्वर्ग सुहावें मुक्ति वरें ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य महावीर कीर्ति महाराज जयमाला अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

महावीर कीर्ति गुरो, तुम अनंत गुणपूर ।
पार न पाऊँ मम करो, अष्ट करम चकचूर ॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

आचार्य श्री १०८ विमल सागर जी महाराज

निमित्त ज्ञानी, सबके स्वामी, जन - जन को सिद्धि देते हैं ।
साधक मुक्ति पथ के गुरुवर, आराधक सुख लेते हैं ॥
जिनशासक के मार्ग प्रभावक, तन-मन-धन दुख हरते हैं ।
विमल सिंधु के चरण कमल में, कोटि -कोटि हम नमते हैं ॥

(दोहा) - हृदय विराजों आन के, आव्हानन त्रय बार ।
तब गुण कीर्तन गान से, मिटे कोटि संताप ।

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य विमल सागर जी महाराज अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

(परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

उज्ज्वल जल मैं लेकर आयो, समता नीर भराई,
जन्म-जरा-मृत्यु नाश कराकर, आठों कर्म नशाई ।
परम पूज्य सन्मार्ग दिवाकर, विमल सिन्धु के गुण गाऊँ
निज निधि ज्ञान सुधारस पाकर, भव वन में ना भटकाऊँ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य विमल सागर महाराज जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

मलयागिरि का चंदन लेकर, गुरुवर चरण चढ़ाई,
गुरु चरणन के ही प्रसाद से, भव आताप नशाई ।
करुणा निधि आचार्य रत्न श्री, विमल सिन्धु के गुण गाऊँ,
निज निधि ज्ञान सुधारस पाकर, भव वन में ना भटकाऊँ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य विमल सागर महाराज भव आताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

क्रोध कषाय की ज्वालाओं ने, खण्डित जीवन कर डाला,
अक्षत पुंज अखण्ड चढ़ाऊँ, मिटे कर्म मल सब काला ।
निमित्त ज्ञान शिरोमणि गुरुवर, विमल सिन्धु के गुण गाऊँ,
निज निधि ज्ञान सुधारस पाकर, भव वन में ना भटकाऊँ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य विमल सागर महाराज अक्षय पद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।

कमल पुष्प की माल चढ़ाकर, काम नशाने आया हूँ,
बाल ब्रह्मचारी गुरुवर मैं, भक्ति सुमन ले आया हूँ ।
चक्रवर्ती चारित्र निधि श्री, विमल सिन्धु के गुण गाऊँ,
निज निधि ज्ञान सुधारस पाकर, भव वन में ना भटकाऊँ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य विमल सागर महाराज कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

मैसूर पाक जलेबी घेवर, भर - भर थाल सजाया हूँ ,
क्षुधा वेदना से अकुलाया, अर्पण करने आया हूँ ।
वात्सल्य रत्नाकर गुरुवर श्री, विमल सिन्धु के गुण गाऊँ,
निज निधि ज्ञान सुधारस पाकर, भव वन में ना भटकाऊँ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य विमल सागर महाराज क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

मोह तिमिर भटकाया मैं प्रभु, सतपथ अब तक ना पाया,
रत्नमयी दीपक लेकर मैं, ज्ञान ज्योति पाने आया ।
तीर्थोद्धारक चूड़ामणि श्री, विमल सिन्धु के गुण गाऊँ,
निज निधि ज्ञान सुधारस पाकर, भव वन में ना भटकाऊँ ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य विमल सागर महाराज मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

कर्म आठ से पीड़ित हूँ प्रभु, अब तक चैन नहीं पाया,
गुग्गल धूप दशांगी लेकर, कर्म नशाने मैं आया ।
अतिशय योगी बाल ब्रह्म यति, विमल सिन्धु के गुण गाऊँ,
निज निधि ज्ञान सुधारस पाकर, भव वन में ना भटकाऊँ ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य विमल सागर महाराज अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीफल आम नारंगी केला, थाल सजाकर लाया हूँ,
मोक्षमहाफल पाने की गुरु, आशा लेकर आया हूँ ।
खण्ड विद्या धुरन्धर गुरुवर, विमल सिन्धु के गुण गाऊँ,
निज निधि ज्ञान सुधारस पाकर, भव वन में ना भटकाऊँ ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य विमल सागर महाराज मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

आठ द्रव्य की भर थाली ले, आठों कर्म खपाऊँ ,
अष्ट गुणों की सिद्धि पाकर, सिद्ध लोक बस जाऊँ ।
परम तपस्वी त्याग मूर्ति श्री, विमल सिन्धु के गुण गाऊँ,
निज निधि ज्ञान सुधारस पाकर, भव वन में ना भटकाऊँ ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य विमल सागर महाराज अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा) - सरल स्वभावी विमल गुरु, चरणन शीश नवाय ।
कमल केतकी पुष्प ले, अर्पण करूँ हर्षाय ॥

जै मुक्तिदूत विमल सिन्धु गुरु हैं हमारे, जै तीन लोक से निराले देव हमारे ।
जै जै तपस्वी एक नाथ आप राजते, जै जै भवि जनों के हृदय आप साजते ॥
जै वीर महावीर कीर्ति गुरु हैं तुम्हारे, जै मुक्तिदूत विमल गुरु देव हमारे ।
जै धन्य जन्म भूमि कोसमा के ग्राम की, जै जै सु धन्य मात कटोरी के लाल की ॥
जै जै सुधन्य पिता बिहारी के प्राण की, जै जै सुधर्म सिन्धु गुरु देवराज की ।
जै वीर धीर बाल ब्रह्मचारी सितारे, जै मुक्तिदूत विमल सिन्धु देव हमारे ॥
जै जै सुसिद्ध क्षेत्र सोनागिर के राज की, जै जै सुयहाँ दीक्षा पाय मुनिराज की ।
जै जै सुध्यान धारते जिनराज की मही, जै जै सु वीर धीर तपस्वी महाशयी ॥
जै जै सुनिमित्त ज्ञान शिरोमणि हैं हमारे, जै मुक्तिदूत विमल सिन्धु देव हमारे ।

टुण्डला नगर था धन्य आप से हुआ, आचार्य पद प्रदान कर सब जग प्रसन्न हुआ ॥
दे शिक्षा दीक्षा दान भव्य जीव उबारे, हैं योग्य-योग्य शिष्य विश्व में जो तुम्हारे ॥
जै भरत सिन्धु पाठक सुशिष्य तुम्हारे, जै शरण आप की लहें तिरते ही जा रहे ।
जै कर विहार भूमि-भूमि तीर्थ निहारे, जै करके वंदना सभी तो तीर्थ उद्धारे ॥
दे भव्य जीव दीक्षा दान तुमने उबारे, जै मुक्ति दूत विमल सिन्धु देव हमारे ।
जै राजगृही का जो स्वाध्याय, भवन भारी है, जै धन्य धन्य गुरु स्मृति में देन थारी है ॥
जै नंगानंग मूर्तियाँ, ये शान से खड़ी, जै चौबीसी निर्माण की ये श्रृंखला जुड़ी ।
जै श्रुतस्कंध के ये प्रेरक देव हमारे, ये मुक्तिदूत विमल सिन्धु देव हमारे ॥
तन दुखी और मन दुखी और धन दुखी आते, नवकार मंत्र जाप करो, सबको बताते ।
लख-लख के जाप करते, सब पुण्य कमाते, पापों का नाश करके सभी चैन को पाते ॥
जै मंत्र-यंत्र तंत्र विज्ञ गुरु ये हमारे, जै मुक्ति दूत विमल सिन्धु देव हमारे ।
करते चरण में वंदना गुरुदेव आपके, हो पार भव समुद्र से आशीष आपके ॥
नित तीन बार सिर नवा मैं वंदना करूँ, भर भाव भक्ति से गुरु पद क्षालना करूँ ।
नित रोम-रोम में बसे गुरुदेव हमारे, जै मुक्तिदूत विमल सिन्धु देव हमारे ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य विमल सागर महाराज जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

गुणमाला तुमरी गुरु ! शब्दों लिखी न जाये
ज्यों सागर के मोती ले, गिनती कभी न पाये ।
स्याद्वाद वाणी विमल, स्याद्वाद पथ सार
स्याद्वादमती नित नमें, भव से करो सुपार ॥

॥ इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥

आचार्य श्री १०८ सन्मति सागर जी महाराज

हो आप सन्मति सिन्धु मुनिवर परम तप अवतार हो
गंभीर्य ध्यानी शांत मुद्रा, शिवरमणी भरतार हो
आव्हान करता पूज्य गुरुवर, हृद कमल पर आइये
पूज हूँ मन-वच-तन से, पाप मम नस जाइये

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य सन्मति सागर महाराज अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

"परिपुष्पांजलिं क्षिपामि"

गंगानदी शुभवार ले भृंगार भरा
गुरु चरणों में दे धार नाशे जन्म जरा ।

श्री सन्मति ! सिन्धु मुनीश, तुम पद पूज करुँ
काटो भवबेड़ी गुणीश यातें पग पकरुँ ॥
ॐ ह्रूँ श्री आचार्य सन्मति सागर महाराज जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

ले उत्तम चंदन लाय, केसर संग घसूँ
गुरु चरण चढ़ाऊँ आय, भव भव रोग नसूँ ।
श्री सन्मति ! सिन्धु मुनीश, तुम पद पूज करुँ
काटो भवबेड़ी गुणीश यातें पग पकरुँ ॥
ॐ ह्रूँ श्री आचार्य सन्मति सागर महाराज भवआताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

ले अक्षत धवल अनूप सुन्दर अणियारे
धर पद पंकज में खूब अक्षय निधि धारे ।
श्री सन्मति ! सिन्धु मुनीश, तुम पद पूज करुँ
काटो भवबेड़ी गुणीश यातें पग पकरुँ ॥
ॐ ह्रूँ श्री आचार्य सन्मति सागर महाराज अक्षय पद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।

जुहि बेला कमल मंगाय, पुष्प सु जाति घने
गुरु चरणों में सु चढ़ाये, काम व्यथा जु हने ।
श्री सन्मति ! सिन्धु मुनीश, तुम पद पूज करुँ
काटो भवबेड़ी गुणीश यातें पग पकरुँ ॥
ॐ ह्रूँ श्री आचार्य सन्मति सागर महाराज कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

घेवर बाबर शुभ भाव व, व्यंजन लाय धरे
भर कंचन थाल चढ़ात, रोग क्षुधादि हरे ।
श्री सन्मति ! सिन्धु मुनीश, तुम पद पूज करुँ
काटो भवबेड़ी गुणीश यातें पग पकरुँ ॥
ॐ ह्रूँ श्री आचार्य सन्मति सागर महाराज क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

ले गोघृत सुन्दर जोत, अरु कपूर लिया
गुरु आरती करूँ तमखोत, आत्म प्रकाश किया ।
श्री सन्मति ! सिन्धु मुनीश, तुम पद पूज करुँ
काटो भवबेड़ी गुणीश यातें पग पकरुँ ॥
ॐ ह्रूँ श्री आचार्य सन्मति सागर महाराज मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

ले नानाविधि शुभ, धूप सुगंध अति
डारो वैश्वानर खूब, नाशे कर्म गति ।
श्री सन्मति ! सिन्धु मुनीश, तुम पद पूज करुँ
काटो भवबेड़ी गुणीश यातें पग पकरुँ ॥
ॐ ह्रूँ श्री आचार्य सन्मति सागर महाराज अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

शुभ आम काम फल सार, श्रीफल अति प्यारे
धर कंचन थाल मझार, छोडूँ पद थारे ।
श्री सन्मति ! सिन्धु मुनीश, तुम पद पूज करुँ
काटो भवबेड़ी गुणीश यातें पग पकरुँ ॥
ॐ ह्रूँ श्री आचार्य सन्मति सागर महाराज मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

वसुद्रव्य सुसुन्दर सार, हाटक थाल भरा
पद छोडूँ भक्ति अपार, भवभ्रम तुरत हरा ।
श्री सन्मति ! सिन्धु मुनीश, तुम पद पूज करुँ
काटो भवबेड़ी गुणीश, यातें पग पकरुँ ॥
ॐ ह्रूँ श्री आचार्य सन्मति सागर महाराज अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)- सन्मति सिन्धु आचार्य पद, नमन करूँ त्रय बार ।
कहूँ सुगुण गुण मालिका, जो है जन-मन हार ॥

जय जय श्री सन्मति सिन्धुराज, गुण गावे सब जन नाथ आज ।
जिला एटा में इक नगर जान, है नाम फफूता सुखद वान ॥ १ ॥
वहाँ रहते प्यारे लाल सेठ, जयमाला पत्नि अधिक श्रेष्ठ ।
है पद्मावती पुरवाल जाति, जो अति विशुद्ध है चमचमाती ॥ २ ॥
उन्नीसौ पंचान्नु मझार, शुभमाघ सिता अठवीं सुधार ।
जयमाला कुक्षी जन्म होय, उस घर में था आनंद सोय ॥ ३ ॥
सुत मुस्कुरान से मोद देय, सब देखे बालक हर्ष लेय ।
उन मात - पिता तब रखा नाम, हो ओम प्रकाश सु सुखद धाम ॥ ४ ॥
बढ़ते दुतिया इन्दु समान, सब जन को करते हर्ष मान ।
जब आया यौवन काल आप, नश दिया सुभट कु काम चाप ॥ ५ ॥
हो बाल ब्रह्म गुरुदेव आप, वैराग्य बढ़ा मन नस कु पाप ।
गुरु दर्शन कीने विमल सिन्धु, ली सप्तम प्रतिमा सुख निकन्दु ॥ ६ ॥
है दो हजार सतरह सु साल, श्रावण सित अठमीं सुखद चाल ।
क्षुल्लक दीक्षा दी विमल सिन्धु, तब नाम रखा है नेमि सिन्धु ॥ ७ ॥
फिर कर विहार गुरु संघ आप, उपदेश देय जन धोय पाप ।
जब आय शिखर समेद जान, तुम दर्शन कीने महान ॥ ८ ॥
वहाँ विमल सिंधु से कहत आप, दो दीक्षा दैगम्बरी सु आप ।
कार्तिक शुक्ला द्वादशी सुजान, ली दीक्षा दिगम्बरी महान ॥ ९ ॥
तब विमल सिन्धु सूरि सुदेश, घर सन्मति सिन्धु नाम एक ।

जय भारत पद से कर विहार, उपदेश देय भविजन सुधार ॥ १० ॥
महावीर कीर्ति गुरु गुरु सुदेव, उन दर्शन कीने की सुसेव ।
महशाना में ली गुरु समाधि, उन सूरिपद तुमको प्रसादि ॥ ११ ॥
द्वय सहसा अट्ठाविस मझार, फाल्गुन शुक्ला द्वितीया विचार ।
है नगर उदयपुर में सुजान, विधिवत कीना तुम पद प्रदान ॥ १२ ॥
हो सौम्य मूर्ति गुरु तुम दयाल, षट् जीवन के हो रक्षपाल ।
दशधर्मादिक सेवत प्रवीण, अब द्वादश तप में हो विलीन ॥ १३ ॥
षट् आवश्यक हो नित करन्त, अरु पंचाचार में हो निरन्त ।
मनवचतन गुप्ति वश में कीन, अरु बाले हितमित प्रिय सुचीन ॥ १४ ॥
हो परम तपस्वी गुण निधान, विद्वान परम धारत सुध्यान ।
नहीं राग द्वेष मन में विचार, सब जीवों में मैत्री अपार ॥ १५ ॥
संसार सिन्धु गहरा अपार, उसमें डूबत हूँ नहीं विचार ।
सूरजमल करता नमस्कार, गुरुवर करो भव सिन्धु पार ॥ १६ ॥

(धत्ता छन्द)

जय-जय सन्मति जी दो सन्मति जी, तारण तरण जहाजा हो ।
पद पंकज नावे किरति गावे, अमल गुणों के भाजा हो ॥

ॐ ह्रूँ श्री आचार्य सन्मति सागर महाराज अनर्घ्यपद प्राप्तये जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा)- सन्मति सिन्धु आचार्य की, पूज करे जो कोय ।
सुख सम्पति पावे सही, अन्तिम में शिव होय ॥

॥ इत्याशीर्वाद पुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥

.पू. राष्ट्रसंत गणाचार्य
श्री १०८ विराग सागर जी महाराज

स्थापना

परम पूज्य आचार्य शिरोमणी, विराग सागर जी गुरुवर ।
बालयति अरु स्याद्वाद जो, प्रज्ञा जिनकी बड़ी प्रखर ॥
अपने ज्ञान ध्यान तप बल से, भव्यों का तम करें हनन ।
ऐसे गुरु का अर्चन करने, आव्हानन कर करें नमन ॥

ॐ ह्रूँ परम पूज्य गणाचार्य श्री विराग सागर महाराज यतिवरेभ्यो अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

"परिपुष्पांजलिं क्षिपामि"

भवतापों से तपा हुआ हूँ, तुम चरणों में शांति मिले ।
क्रोध लोभ मद मान अरु मत्सर, गुरु भक्ति से शीघ्र धुले ॥
भक्ति भाव का निर्मल जल ले, गुरु चरणों में धार करूँ ।
परम पूज्य आचार्य शिरोमणि, विराग सिंधु को नमन करूँ ॥

ॐ ह्रूँ परम पूज्य गणाचार्य श्री विराग सागर महाराज यतिवरेभ्यो जन्म मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जग की आकुलतायें सारी, ममता का विष पिला रही ।
तृष्णा मोह क्रोध की अग्नि, अंतर्मन को जला रही ॥
गुरु चरणों में विनय भाव का, चंदन लेकर शांति करूँ ।
परम पूज्य आचार्य शिरोमणि, विराग सिन्धु को नमन करूँ ॥

ॐ ह्रूँ परम पूज्य गणाचार्य श्री विराग सागर महाराज यतिवरेभ्यो भवाताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

जितने भी पद पाये मैंने, सबका अब तक नाश हुआ ।
नहीं अभी तक मेरा गुरुवर, सच्चे पद में वास हुआ ॥
अक्षय पद के अक्षत लेकर, गुरु महिमा का गान करूँ ।
परम पूज्य आचार्य शिरोमणि, विराग सिन्धु को नमन करूँ ॥

ॐ ह्रूँ परम पूज्य गणाचार्य श्री विराग सागर महाराज यतिवरेभ्यो अक्षय पद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।

अब तक जग में भटका गुरुवर, पर की आस वासना से ।
नहीं कभी भी तृप्त हुये हम, अग्नि घी सम प्यास से ॥
समता शील व्रतादिक लेकर, काम वासना शमन करूँ ।
परम पूज्य आचार्य शिरोमणि, विराग सिंधु को नमन करूँ ॥

ॐ ह्रूँ परम पूज्य गणाचार्य श्री विराग सागर महाराज यतिवरेभ्यो कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

तीन लोक के सकल पदारथ, क्षुधा अग्नि का ग्रास बने ।
क्षुधा शांत न होती फिर भी, हम आशा के दास बने ॥
ले नैवेद्य आस तजने को, इच्छाओं का दमन करूँ ।
परम पूज्य आचार्य शिरोमणि, विराग सिन्धु को नमन करूँ ॥

ॐ ह्रूँ परम पूज्य गणाचार्य श्री विराग सागर महाराज यतिवरेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

ज्ञानदीप बिन अब तक जग में, निज पद का नही भान हुआ ।
तेरी दिव्य देशना से ही, निज शक्ति का ज्ञान हुआ ॥

यशोगान का दीपक लेकर, निज कुटिया को चमन करूँ ।
परम पूज्य आचार्य शिरोमणि, विराग सिन्धु को नमन करूँ ॥

ॐ ह्रूँ परम पूज्य गणाचार्य श्री विराग सागर महाराज यतिवरेभ्यो मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

वसुविधि के वश होकर गुरुवर, भवसागर में भटक रहा ।
अष्टकर्म के दहन करन को, सम्यक् तप है धर्म महा ॥
तुमसे संयम मय तप पाकर, अष्टकर्म को दहन करूँ ।
परम पूज्य आचार्य शिरोमणि, विराग सिंधु को नमन करूँ ॥

ॐ ह्रूँ परम पूज्य गणाचार्य श्री विराग सागर महाराज यतिवरेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूप निर्वपामीति स्वाहा ।

जिस फल के बिन निष्फल सब कुछ, वह फल मैं भी पा जाऊँ।
ऐसा मोक्ष महाफल पाने गुरु चरणों को नित ध्याऊँ ॥
मोक्ष महाफल को पाने मैं, मोहकर्म को दमन करूँ ।
परम पूज्य आचार्य शिरोमणि, विराग सिंधु को नमन करूँ ॥

ॐ ह्रूँ परम पूज्य गणाचार्य श्री विराग सागर महाराज यतिवरेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फल निर्वपामीति स्वाहा ।

शुभ भावों का निर्मल जल है, विनय भाव का है चंदन ।
गुरुवंदन ही अक्षत है यह, भक्ति सुमन का अभिनंदन ॥
मन-वच-तन से आत्म समर्पण, मोह क्षोभ का शमन करूँ ।
परम पूज्य आचार्य शिरोमणि, विराग सिंधु को नमन करूँ ॥

ॐ ह्रूँ परम पूज्य गणाचार्यश्री विराग सागर महाराज यतिवरेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा) - माँ श्यामा के लाडले, कपूरचंद के लाल ।
विराग सिन्धु आचार्य की, अब वरणूँ जयमाल ॥

सम्यक् श्रद्धा निजगुण का है, जिससे मैं नित दूर रहा ।
मिथ्याभाव छोड़ नहीं पाया, दुःखों से भरपूर रहा ॥
ऐसी सम्यक् निजनिधि पाकर, निज का मैं उद्धार करूँ ।
परम पूज्य आचार्य शिरोमणि, विराग सिन्धु को नमन करूँ ॥ १ ॥

सम्यक् बोध नहीं मैं पाया, जो शिवसुख का साधन है ।
ऐसे बोध अगम्य पुंज तम, अतः तुम्हें अभिवादन है ॥
तुमसे सत्यबोध को पाकर, शिवमारग में गमन करूँ ।
परम पूज्य आचार्य शिरोमणि, विराग सिंधु को नमन करूँ ॥ २ ॥

सम्यक् चारित्र बिन सब सूना, ज्यों बिना गंध के पुष्प कहा ।
ऐसे सत्य चरण बिन गुरुवर, जग में अब तक भटक रहा ॥

तुमसे चरण निधि मैं पाकर, शिवरमणी का वरण करूँ ।
परम पूज्य आचार्य शिरोमणि, विराग सिंधु को नमन करूँ ॥३॥

सम्यक् तप ही इक साधन है, जो कर्म भस्म कर देता है ।
सारे दुःख अशांति जगत की, आप स्वयं हर लेता है ॥
घोर तपोनिधि को पा कर के, क्यों न मैं अनुशरण करूँ ।
परम पूज्य आचार्य शिरोमणि, विराग सिंधु को नमन करूँ ॥

निज शक्ति को नहीं छिपाकर, घोर तपस्या करते हो ।
उपसर्ग परीषह के सहने में, नहीं कभी तुम डरते हो ॥
ऐसा वीर्याचार पालते, उसका मैं अनुशरण करूँ ।
परम पूज्य आचार्य शिरोमणी, विराग सिंधु को नमन करूँ ॥५॥

उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव, सत्य शौच और संयम है ।
उत्तम तप और त्याग अकिंचन ब्रह्मचर्य विमलतम है ॥
दस धर्मों का अगम सिंधु पा, मैं भी नित स्नान करूँ ।
परम पूज्य आचार्य शिरोमणि, विराग सिंधु को नमन करूँ ॥६॥

अशरण अनित्य संसार भावना, अशुचि एकत्व और अन्यत्व ।
आस्त्रव संवर निर्जर लोकहि, दुर्लभ बोधि धर्म है तत्व ॥
इसको तुम भाते हो निशदिन, मैं भी इनका मनन करूँ ।
परम पूज्य आचार्य शिरोमणि, विराग सिंधु को नमन करूँ ॥७॥

निश्चित श्रद्धा ज्ञान चरित्र को, निर्विकल्प बनाया है ।
अभेद रत्नत्रय को पाने, मैंने शीश झुकाया है ॥
अप्रमत्त दशा को पाने, मुनि बन निज में मनन करूँ ।
परम पूज्य आचार्य शिरोमणी, विराग सिंधु को नमन करूँ ॥८॥

सप्तम पूजा भक्त ने, लिखी भक्ति के हेतु ।
भक्ति भाव से भक्ति कर, बांधू भव का सेतु ॥
तुम चरणों का दास मैं, करता हूँ अरदास ।
नाश पास भव का करो, दीजे चरण निवास ॥

ॐ ह्रूँ परम पूज्य गणाचार्य श्री विराग सागर जयमाला अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

भूल चूक सब माफ हो, मैं हूँ निपट अजान
एक भावना बस यही, हो सबका कल्याण

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

निर्वाणकाण्ड (भाषा)

(भैयालाल जी)

दोहा - वीतराग वंदौं सदा, भाव सहित सिरनाय ।
कहूँ कांड निर्वाण की, भाषा सुगम बनाय ।।1।।

॥ चौपाई ॥

अष्टापद आदीश्वर स्वामी, वासुपूज्य चंपापुरि नामि ।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, वन्दों भाव-भगति उरधार ।।2।।
चरम तीर्थंकर चरम-शरीर, पावापुर स्वामी महावीर ।
शिखरसम्मेद जिनेश्वर बीस, भावसहित बन्दौं निश-दीश ।।3।।
वरदतराय रु इन्द्र मुनिन्द्र, सायरदत्त आदि गुणवृन्द ।
नगर तारवर मुनि अठ कोड़ि, बंदों भावसहित कर जोड़ि ।।4।।
श्री गिरनार शिखर विख्यात, कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात ।
शंबु-प्रद्युम्न कुमार द्वै भाय, अनिरुद्ध आदि नमूं तसु पाय ।।5।।
रामचन्द्र के सुत द्वै वीर, लाड-नरिंद आदि गुणधीर ।
पाँच कोड़ि मुनि मुक्ति मंझार, पावागिरि बंदों निरधार ।।6।।
पांडव तीन द्रविड़-राजान, आठ कोड़ि मुनि मुकति पयान ।
श्री शत्रुञ्जय-गिरि के सीस, भावसहित बंदो निश-दीस ।।7।।
जे बलभद्र मुकति में गये, आठ कोड़ि मुनि औरहु भये ।
श्रीगजपंथ शिखर सुविशाल, तिनके चरण नमू तिहूं काल ।।8।।
राम हनू सुग्रीव सुडील, गवय गवाख्य नील महानील ।
कोड़ि निन्याणवै मुक्ति पयान, तुंगीगिरि बंदौं धरि ध्यान ।।9।।
नंग अनंग कुमार सुजान, पाँच कोड़ि अरु अर्ध प्रमान ।
मुक्ति गये सोनागिरि-शीश, ते वंदौं त्रिभुवनपति ईश ।।10।।
रावण के सुत आदिकुमार, मुक्ति गये रेवा-तट सार ।
कोटि पंच अरु लाख पचास, ते वंदौ धरि परम हुलास ।।11।।

रेवानदी सिद्धवर कूट, पश्चिम दिशा देह जहँ छूट ।
द्वै चक्री दश कामकुमार, अठकोड़ि बन्दौं भव पार ।।12।।
बड़वानी बड़नयर सुचंग, दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग ।
इन्द्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण, ते बन्दौं भव-सागर तर्ण ।।13।।
सुवरण-भद्र आदि मुनि चार, पावागिरि-वर-शिखर मंझार ।
चेलना-नदी-तीर के पास, मुक्ति गये बन्दों नित तास ।।14।।
फलहोड़ी बड़गाम अनूप, पच्छिम दिशा द्रोणगिरि रूप ।
गुरुदत्तादि-मुनिश्वर जहाँ, मुक्ति गये बन्दौं नित तहाँ ।।15।।
बाल महाबाल मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय ।
श्री अष्टापद मुक्ति मंझार, ते बंदों नित सुरत संभार ।।16।।
अचलापुर की दिश ईशान, जहाँ मेंढगिर नाम प्रधान ।
साढ़े तीन कोड़ि मुनिराय, तिनके चरण नमूं चित लाय ।।17।।
बंसस्थल वन के ढिंग होय, पश्चिम दिशा कुंथुगिरि सोय ।
कुलभूषण देशभूषण नाम तिनके, चरणनि करूँ प्रणाम ।।18।।
जसरथ राजा के सुत कहे, देश कलिंग पाँच सौ लहे ।
कोटिशिला मुनि कोटि प्रमान, वंदन करूँ जोड़ जुग पान ।।19।।
समवसरण श्रीपार्श्व-जिनन्द, रेसिंदीगिरि नयनानन्द ।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, ते वन्दौं नित धरम-जिहाज ।।20।।
मथुरापुर पवित्र उद्यान जम्बू स्वामीजी निर्वाण
चरम केवली पंचम काल ते बंदों नित दीन दयाल ।।21।।
तीन लोक के तीरथ जहाँ, नित प्रति वंदन कीजै तहाँ ।
मन-वच-काय सहित सिरनाय, वंदनकरहिंभविकगुणगाय ।।22।।
संवत सतरहसौ इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल ।
भैया बंदन करहिं त्रिकाल, जय निर्वाणकांड गुणमाल ।।23।।

अर्घ्यावली

(अकृत्रिम चैत्यालय अर्घ्य)

कृत्याकृत्रिम-चारु-चैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकीगतान्,
वन्दे भावन-व्यन्तर-द्युतिवरान् स्वर्गामरावासगान् ।
सद्-गन्धाक्षत-पुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलै -
र्नीराद्यैश्च यजे प्रणम्य शिरसा दुष्कर्मणां शान्तये ॥

ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(वर्तमान चौबीसी अर्घ्य)

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ्य करों ।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों ।
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्दकन्द सही ।
पद जजत हरत भवफन्द, पावत मोक्ष मही ।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि-वीरान्त-चतुर्विंशति-तीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री आदिनाथ अर्घ्य)

शुचि निर्मल नीरं गन्ध सुअक्षत, पुष्प चरु ले मन हरषाय ।
दीप धूप फल अर्घ्य सु लेकर, नाचतताल मृदंग बजाय ।
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर बलि बलि जाऊँ मन वच काय ।
हो करुणानिधि भव दुख मेटो, यातें मैं पूजों प्रभु पाय ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री अजितनाथ अर्घ्य)

जल फल सब सज्जै, वाजत वज्जै, गुनगनरज्जै मनमज्जै ।
तुम पदजुगमज्जै सज्जन जज्जै, ते भव भज्जै निजकज्जै ॥
तुम अजित जिनेशं नुत चक्रेशं चक्रधरेशं खग्गेशं ।
मन वांछित दाता त्रिभुवन त्राता, पूजों ख्याता जग्गेशं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री सम्भवनाथ अर्घ्य)

जल चन्दन तन्दुल पुष्प चरु, दीप धूप फल अर्घ्य किया ।
तुमको अरपो भावभगतिधर, जै जै जै शिवरमनि पाया ॥

सम्भवजिन के चरन चरचतें, सब आकुलता मिट जावै ।
निज निधि ज्ञान-दरश-सुख-वीरज, निराबाध भविजन पावै ॥

ॐ ह्रीं श्री सम्भवनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री अभिनन्दन अर्घ्य)

अष्ट द्रव्य संवारि सुन्दर, सुजस गाय रसाल ही ।
नचत रजत जजों चरन जुग, नाय नाय सुभाल ही ॥
कलुष ताप निकन्द श्री अभिनन्द, अनुपम चन्द हैं ।
पदवन्द वृन्द जजे प्रभू भवद्वन्द-फन्द निकन्द है ॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दननाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री सुमतिनाथ अर्घ्य)

जल चन्दन तन्दुल प्रसून चरु, दीप धूप फल सकल मिलाय ।
नाचिराचि शिरनाय समरचों, जय जय जय जयजिनराय ॥
हरिहर वन्दित पाप निकन्दित, सुमतिनाथ त्रिभुवन के राय ।
तुम पद पद्म सद्म शिवदायक, जजत मुदित मन उदित सुभाय ।

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ - जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री पद्मप्रभ अर्घ्य)

जलफल आदि मिलाय गाय गुन, भगत भाव उमगाय ।
जजों तुमहिं शिवतियवर जिनवर, आवागमन मिटाय ॥
पूजों भाव सों श्री पद्मनाथ पद सार, पूजों भाव सों ॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री सुपार्श्वनाथ अर्घ्य)

आठों दरव सजि गुनगाय, नाचत राचत भगति बढ़ाय ।
दया निधि हो, जय जगबन्धु दयानिधि हो ॥
तुम पद पूजों मन वच काय, देव सुपारस शिवपुरराय ।
दया निधि हो जय जगबन्धु दयानिधि हो ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथ - जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री चन्द्रप्रभ अर्घ्य)

वसु विधि अर्घ्य बनाय मनोहर, श्री जिन मन्दिर जावो ।
अष्टकर्म के नाश करन को, श्री जिन चरण चढ़ावो ॥

चञ्चल चित को रोक, चतुर्गति चक्रभ्रमण निरवारो ।
चारु चरण आचरण चतुरनर, चन्द्रप्रभ चितधारो ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री पुष्पदन्त अर्घ्य)

जलफल सकल मिलाय मनोहर मनवचतन हुलसाय ।
तुम पद पूजों प्रीति लायकें जय जय त्रिभुवनराय ॥
मेरी अरज सुनीजे, पुष्पदन्त जिनरायजी मेरी अरज सुनीजे ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदन्त - जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री शीतलनाथ अर्घ्य)

कंश्रीफलादि वसु प्रासुक द्रव्य साजे ।
नाचे रचे मचत बज्जत सज्ज साजे ॥
रागादिदोष मलमर्दन हेतु येवा ।
चर्चों पदाब्ज तव शीतल नाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ- जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री श्रेयांसनाथ अर्घ्य)

जल मलय तन्दुल सुमन चरु, अरु दीप धूप फलावली ।
करि अर्घ्य चरचों चरनजुग प्रभु मोहि तार उतावली ॥
श्रेयांसनाथ जिनेन्द्र त्रिभुवन वन्द आनन्द कन्द है ।
दुख द्वन्दफन्द निकन्द पूरनचन्द्र जोति अमन्द है ॥

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथ - जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री वासुपूज्य अर्घ्य)

जल फल दरव मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई ।
शिवपदराज हेतु हे श्री पति ! निकट धरों यह लाई ॥
वासुपूज्य वसुपूज तनुज पद, वासव सेवत आई ।
बाल ब्रह्मचारी लखि जिनको, शिवतिय सनमुख धाई ॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य - जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री विमलनाथ अर्घ्य)

आठों दरब संवार, मनसुखदायक पावने ।
जजों अर्घ्य भर थार विमल विमल शिवतिय रमन ॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ - जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री अनन्तनाथ अर्घ्य)

शुचि नीर चन्दन शालितन्दुल, सुमन चरुदीवा धरों ।
अरु धूप फल जुत अरघ करि कर, जोर जुग विनती करों ॥
जगपूज परमपुनीत मीत, अनन्त सन्त सुहावनों ।
शिवकन्तवन्त महन्त ध्यावों, भ्रन्त वन्त नशावनों ॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथ - जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री धर्मनाथ अर्घ्य)

आठों दरव साज शुचि चितहर, हरषि हरषि गुन गाई ।
बाजत दृमदृम दृम मृदंगगत, नाचत ता थेइ थाई ॥
परम धरम शमरमण धरम-निज, अशरनशरन निहारी ।
पूजूँ पाय गाय गुन सुन्दर, नाचूँ दै दै तारी ॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ- जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री शान्तिनाथ अर्घ्य)

वसु द्रव्य संवारी, तुम ढिंग धारी, आनन्दकारी दृग प्यारी ।
तुम हो भवतारी, करुणाधारी, यातै थारी शरनारी ॥
श्री शान्ति - जिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं, चक्रेशं ।
हनि अरि चक्रेशं, हे गुनधेशं, दयामृतेशं, मक्रेशं ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ - जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री कुन्थुनाथ अर्घ्य)

जल चन्दन तन्दुल प्रसून चरु, दीप धूप लेरी ।
यफलजुत जजन करों मन सुखधरि, हरों जगत फेरी ॥
कुन्थु सुन अरज दासकेरी, नाथ सुन अरज दासकेरी ।
भवसिन्धु परयो हों नाथ, निकारो बाँह पकर मेरी ॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथ - जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री अरनाथ अर्घ्य)

सुचि स्वच्छ पटीरं, गन्धगहीरं, तन्दुलशीरं पुष्प चरुं ।
वर दीपं धूपं, आनन्दरूपं, लै फल भूपं अर्घ करुं ॥

प्रभु दीनदयालं अरिकुलकालं, विरद विशालं सुकुमालम् ।
हरि मम जंजालं, हे जगपालं, अरगुनमालं वरभालम् ॥
ॐ ह्रीं श्री अरनाथ - जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री मल्लिनाथ अर्घ्य)

जलफल अरघ मिलायगाय गुन पूजों भगति बढ़ाई ।
शिवपदराज हेत हे श्रीधर, शरनगहो मैं आई ॥
राग द्वेष मद मोह हरन को, तुम ही हो वरवीरा ।
यातें शरन गही जगपतिजी, वेग हरो भव पीरा ॥
ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथ - जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री मुनिसुव्रतनाथ अर्घ्य)

जलगन्ध आदि मिलाय आठों, दरब अरघ सजों वरों ।
पूजों चरनरज भगति जुत, जातें जगत सागर तरों ॥
शिवसाथ करत सनाथ सुव्रतनाथ मुनिगुनमाल है ।
तुम चरन आनन्दभरन तारन, तरन विरद विनशाल है ॥
ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ - जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री नमिनाथ अर्घ्य)

जल फलादि मिलाय मनोहरं, अरघ धारत ही भव भय हरं ।
जजतु हों नमि के गुन गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय कें ॥
ॐ ह्रीं श्री नमिनाथ - जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री नेमिनाथ अर्घ्य)

जलफल अर्घ्य बनाय गाय गुन, रतन थाल भरिये सुखदान ।
अष्टकर्म के नाशक प्रभु को, पूजूँ निजगुणदायक जान ॥
बाल ब्रह्मचारी जगतारी, नेमिश्वर जिनराज महान ।
मैं नित ध्यान करूँ प्रभु तेरा, मोकूँ दीजे अविचल थान ॥
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ - जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री पार्श्वनाथ अर्घ्य)

संधर्षों में उपसर्गों में तुमने समता का भाव धरा ।
आदर्श तुम्हारा अमृत बन भक्तों के जीवन में बिखरा ॥

मैं अष्टद्रव्य से पूजा का शुभथाल सजाकर लाया हूँ ।
जो पदवी तुमने पाई है मैं भी उस पर ललचाया हूँ ॥
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ - जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री महावीर अर्घ्य)

जलफल वसु सजि हिम थार, तन मन मोद धरों ।
गुणगाऊँ भवदधितार, पूजत पाप हरों ॥
श्री वीर महा अतिवीर, सन्मति नायक हो ।
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मतिदायक हो ॥
ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमान- जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(श्री बाहुबलि अर्घ्य)

वसु विधि के वस वसुधा सब ही परवश अति दुख पावें,
तिहिं दुख दूर करन को भविजन अर्घ जिनाग्र चढ़ावें ।
परम पूज्य वीराधिवीर जिन बाहुबलि बलधारी,
तिनके चरण कमल को नित प्रति धोक त्रिकाल हमारी ॥
ॐ ह्रीं श्री बाहुबलि - जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(सोलहकारण अर्घ्य)

जल फल आठों दरब चढ़ाय, 'द्यानत' वरत करों मनलाय ।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
दरश विशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकर पद दाय ।
परम गुरुहो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
ॐ ह्रीं श्री दर्शन - विशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(रत्नत्रय अर्घ्य)

आठ दरब निरधार, उत्तम सों उत्तम लिये ।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ ॥
ॐ ह्रीं सम्यक् - रत्नत्रयाय अनर्घ्यपद - प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(पञ्चमेरु का अर्घ्य)

आठदरब मय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजों श्री जिनराय ।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ।

पाँचो मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा को करो प्रणाम ।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धशीति-जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(नन्दीश्वरद्वीप का अर्घ्य)

यह अरघ कियो निज-हेत, तुमको अरपतु हों ।
'द्यानत' कीज्यो शिव-खेत, भूमि समरपतु हों ॥
नन्दीश्वर श्री जिनधाम, बावन पूज करों ।
वसुदिन प्रतिमा अभिराम, आनन्द भाव धरों ॥
नन्दीश्वर द्वीप महान चारो दिशि सोहें ।
बावन जिन मन्दिर जान सुर-नर-मन मोहे ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशत्-जिनालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(सिद्धचक्र अर्घ्य)

निर्मल सलिल शुभ वास चन्दन धवल अक्षययुत अनी ।
शुभ पुष्प मधुकर नित रमें, चरुप्रचुर स्वाद सुविधि घानी ॥
वर दीपमाल उजाल धूपायन फल भले ।
करि अर्घ्य सिद्ध समूह पूजित कर्मअरि सब दलमले ॥
ते क्रमावर्त नशाय युगपत ज्ञान निर्मल रूप हैं ।
दुख जन्म टार अपार गुण सूक्षम सरूप अनूप हैं ॥
कर्माष्ट बिन त्रैलोक्य पूज्य सदूज शिवकमलापती ।
मुनि ध्येय सेय अमेय चहुँगुण, ज्ञेय द्यो हम शुभमती ॥

ॐ ह्रीं अर्हं अनाहत - पराक्रमाय सकल - कर्म - विमुक्ताय श्री - सिद्धचक्राधिपतये सम्मत्त - णाण - दंसण - वीर्य - सुहम - अवग्गहणं - अगुरुलघु - अव्वावाहं अष्टगुण -संयुक्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(दशलक्षण का अर्घ्य)

आठों दरव संवार, 'द्यानत' अधिक उछाह सों ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजों सदा ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(नवदेवता अर्घ्य)

मध्ये कर्णिकमर्हदार्य - मनघं बाह्येष्ट - पत्रोदरे,
सिद्धान् सूरिवरांश्च पाठक-गुरुन् साधूंश्च दिक्पत्रगान् ।
सद्धर्मागम-चैत्यचैत्यनिलयान् कोणस्थ-दिक्पत्रगान्,
भक्त्या सर्वसुरासुरेन्द्र-महितान् तानष्टधेष्ट्य यजे ॥

ॐ ह्रीं अर्हदादि - नवदेवेभ्योऽ अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(विनायक यन्त्र अर्घ्य)

सुवरण के थाल भराये, शुचि आठों द्रव्य मिलाये ।
गुरुपञ्च परम सुखदाई, हम पूजें ध्यान लगाई ॥

ॐ ह्रीं अर्हं मंगलोत्तम - शरण्यभूतेभ्यो - अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(सरस्वती अर्घ्य)

जल चन्दन अक्षत, फूल चरु, अरुदीप धूप अति फल लावै ।
पूजा को ठानत, जो तुम जानत, सो नर 'द्यानत' सुख पावै ।
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनी, अंग रचे चुनि ज्ञान मई ।
सो जिनवर वानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(प.पू. गणाचार्य श्री विराग सागर जी महाराज का अर्घ)

शुभ भावों का निर्मल जल है विनय भाव का है चन्दन
गुरु वन्दन ही अक्षत है यह, भक्ति सुमन का अभिनंदन
मन-वच-तन से आत्म समर्पण, मोह क्षोभ का शमन करूँ ।
परम पूज्य आचार्य शिरोमणी, विराग सिन्धु को नमन करु ॥

ॐ ह्रूँ परम पूज्य गणाचार्य श्री विराग सागर महाराज यतिवरेभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तेय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

(सप्तर्षि अर्घ्य)

जल गन्ध अक्षत पुष्प चरुवर, दीप धूप सु लावना ।
फल ललित आठों द्रव्य मिश्रित, अर्घ कीजे पावना ॥
मन्वादि चारण ऋद्धि धारक, मुनिन की पूजा करूँ ।
ता करें पातक हरें सारे, सकल आनन्द विस्तरूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणसप्तर्षिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(निर्वाणक्षेत्र अर्घ्य)

जल गन्ध अक्षत पुष्प चरुफल दीप धूपायन धरौं,
द्यानत करो निर्भय जगत सों, जोरकर विनती करौं ।
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलाश कों,
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाण भूमि निवास कों ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

समुच्चय महाअर्घ्य

मैं देव श्री अर्हन्त पूजूँ, सिद्ध पूजूँ चाव सों ।
आचार्य श्री उवझाय पूजूँ, साधु पूजूँ भाव सों ॥
अर्हन्त-भाषित बैन पूजूँ, द्वादशांग रची गनी ।
पूजूँ दिगम्बर गुरुचरन शिव हेतु, सब आशा हनी ॥
सर्वज्ञ भाषित धर्म दशविधि, दया-मय पूजूँ सदा ।
जजूँ भावना षोडश रत्नत्रय, जा बिना शिव नहीं कदा ॥
त्रैलोक्य के कृत्रिम अकृत्रिम, चैत्य चैत्यालय जजूँ ।
पञ्चमेरु नन्दीश्वर जिनालय, खचर सुर पूजित भजूँ ॥
कैलाश श्रीसम्मेद श्रीगिरनार, गिरि पूजूँ सदा ।
चम्पापुरी पावापुरी पुनि, और तीरथ सर्वदा ॥
चौबीस श्री जिनराज पूजूँ, बीस क्षेत्र विदेह के ।
नामावली इक सहस-वसु जय, होय पति शिवगेह के ॥

दोहा - जल गन्धाक्षत पुष्प चरु दीप धूप फल लाय ।
सर्व पूज्य पद पूज हूँ बहु विधि भक्ति बढ़ाय ॥

ॐ ह्रीं भावपूजा भाववंदना त्रिकालपूजा त्रिकालवंदना करै करावै भावना भावै श्रीअरहन्तजी,सिद्धजी,आचार्यजी,उपाध्यायजी,सर्वसाधुजी,पञ्चपरमेष्ठिभ्यो नमः प्रथमानुयोग-करणानुयोग-चरणानुयोग-द्रव्यानुयोगेभ्यो नमः । दर्शन-विशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो नमः । उत्तमक्षमादि दशलक्षण धर्मेभ्यो नमः । सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्रेभ्यो नमः । जल के विषै, थल के विषै, आकाश के विषै, गुफा के विषै, पहाड़ के विषै, नगर नगरी विषै, ऊर्ध्वलोक-मध्य-लोक-पाताललोक विषै विराजमान कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालय जिनबिम्बेभ्यो नमः । विदेहक्षेत्रे विद्यमान बीस तीर्थङ्करेभ्यो नमः । पाँच भरत, पाँच ऐरावत दशक्षेत्र सम्बन्धी तीस चौबीसी के सात सौ बीस जिनबिम्बेभ्यो नमः । नंदीश्वर द्वीप सम्बन्धी बावन जिनचैत्यालयेभ्यो नमः । पञ्चमेरु सम्बन्धी अस्सी जिन चैत्यालयेभ्यो नमः । सम्मेदशिखर, कैलाश, चम्पापुर, पावापुर, गिरनार, सोनागिर, राजगृही, मथुरा आदि सिद्धक्षेत्रेभ्यो नमः । जैनबद्री, मूढ़बद्री, हस्तिनापुर, चन्देरी, पपोरा, अयोध्या, शुत्रञ्जय, तारङ्गा, चमत्कार जी, महावीर जी, पदमपुरी, तिजारा आदि अतिशय क्षेत्रेभ्यो नमः, श्री चारण ऋद्धिधारी सप्तपरमर्षिभ्यो नमः ।

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपावन्तं श्रीवृषभादि महावीर पर्यन्तचतुर्विंशतितीर्थङ्कर-परमदेवं आद्यानां आद्ये जम्बूद्वीपे भरत क्षेत्रे आर्य खण्डे ..... नाम्नि नगरे ... मासानामुत्तमे .... शुभ पक्षे ... तिथौ .... वासरे .... मुनि आर्यिकानां श्रावक-श्राविकानां सकलकर्मक्षयार्थं अनर्घ पद-प्राप्तये सम्पूर्णार्घं निर्वपामिती स्वाहा ।

शान्ति-पाठ

शांतिनाथ मुख शशि उनहारी । शील-गुणव्रत-संयमधारी ।
लखन एक सौ आठ विराजैं । निरखत नयन कमलदल लाजैं ।
पंचम चक्रवर्तिपद धारी । सोलम तीर्थंकर सुखकारी ।
इन्द्र नरेन्द्र पूज्य जिन नायक । नमो शांतिहित शांति विधायक ।
दिव्य विटप पहुपनकी वरषा । दुंदभि आसन वाणी सरसा ।
छत्र चमर भामंडल भारी । ये तुव प्रातिहार्य मनहारी ।
शांति जिनेश शांति सुखदाई । जगत्पूज्य पूजों शिर नाई ।
परम शांति दीजै हम सबको । पढ़ैं तिन्हें पुनि चार संघको ।

(वसंततिलका छन्द)

पूजैं जिन्हें मुकुटार किरीट लाके । इंद्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके ॥
सो शांतिनाथ वरवंश जगत्प्रदीप । मेरे लिये करहिं शांति सदा अनूप ॥

(इन्द्रवज्रा छन्द)

संपूजकों को प्रतिपालकोंको यतीनकों को यतिनायकोंको ।
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेशको ले कीजे सुखी हे जिन ! शांतिको दे ॥

(स्रग्धरा छन्द)

होवै सारी प्रजाको सुख बलयुत हो धर्मधारी नरेशा ।
होवै वर्षा समै पै तिलभर न रहै व्याधियोंका अंदेशा ।
होवै चोरी न जारी सुसमय वरतैं हो न दुष्काल मारी ।
सारे ही देश धारैं जिनवर-वृषको जो सदा सौख्यकारी ॥
घाति कर्म जिन नाश करि, पायो केवलराज ।
शांति करो सब जगत में, वृषभादिक जिनराज ॥

(मन्दाक्रान्ता छन्द)

शास्त्रों का हो पठन सुखदा लाभ सत्संगती का ।
सद्वृत्तोंका सुजस कहके दोष ढाकूँ सभी का ॥
बोलूँ प्यारे वचन हितके आपका रूप ध्याऊँ ।
तौ लौं सेऊँ चरण जिनके मोक्ष जौ लौं न पाऊँ ॥

(आर्य्या छन्द)

तव पद मेरे हिय में मम हिय तेरे पुनीत चरणों में ।
तब लौं लीन रहौं प्रभु जब लौं पाया न मुक्ति पद मैंने ॥
अक्षर पद मात्रा से, दूषित जो कछु कहा गया मुझसे ।
क्षमा करो प्रभु सो सब, करुणा करि पुनि छुड़ाहु भवदुख से ॥

हे जगबन्धु जिनेश्वर ! पाऊँ तव चरण शरण बलिहारी ।
मरण समाधि सुदुर्लभ, कर्मों का क्षय सुबोध सुखकारी ॥
कायोत्सर्ग करोम्यहम् - (नौ बार णमोकार मंत्र जाप करें ।)

विसर्जन पाठ भाषा

बिन जाने वा जान के, रही टूट जो कोय ।
तव प्रसाद तैं परमगुरु, सो सब पूरन होय ॥१॥
पूजनविधि जानूँ नहीं, नहिं जानूँ आह्वान ।
और विसर्जन हूं नहीं, क्षमा करहु भगवान ॥२॥
मन्त्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव ।
क्षमा करहुँ राखहुँ मुझे, देहु चरण की सेव ॥३॥
आये जो जो देवगण, पूजें भक्ति-प्रमान ।
ते सब जानहूँ कृपा कर, अपने अपने थान ॥४॥
श्री जिनवर की आशिका, लीजै शीश चढ़ाय
भव भव के पातक कटें, विघन दूर हो जांय ॥५॥
(कायोत्सर्ग करोम्यहम्)

पंच परमेष्ठी की आरती

इह विधि मंगल आरति कीजै, पंच परमपद भजसुख लीजे ।टेक।
पहली आरती श्री जिनराजा, भवदधि पार उतार जिहाजा ।इह।
दूसरी आरती सिद्धन केरी, सुमरन करत मिटै भव फेरी ।इह।
तीजी आरती सूर मुनिंदा, जनम मरन दुख दूर करिंदा ।इह।
चौथी आरती श्री उवज्झाया, दर्शन देखत पाप पलाया ।इह।
पंचमि आरती साधु तिहारी, कुमति विनाशन शिव अधिकारी ।इह ।
छट्ठी ग्यारह प्रतिमाधारी श्रावक बंदौ आनन्दकारी ।इह।
सातमि आरती श्री जिनवानी "द्यानत" सुरग मुकति सुखदानि ।इह।

श्री शांतिनाथजी

आरती

जय जिनवर देवा प्रभु जय जिनवर देवा ॥टेक॥
शांति विधाता शिव सुखदाता शांतिनाथ देवा ॥
१. ऐरा देवी धन्य जगत में जिस उर आन बसे ।
विश्वसेन कुल नभ में मानों पूनम चंद्र लसे ॥टेक॥

२. कृष्ण चतुदर्शी जेठ मास की आनन्द करतारी ।
हस्तिनापुर में जन्म महोत्सव ठाठ रचे भारी ॥टेक॥
३. बाल्य काल की लीला अद्भुत सुरनरमन भाई ।
न्याय नीति से राज्य कियो चिर सबको सुखदाई ॥टेक॥
४. पञ्चम चक्री काम द्वादशम सोलम तीर्थंकर ।
त्रय पदधारी तुमही मुरारी ब्रह्मा शिव शंकर ॥टेक॥
५. भवतन भोग समझ क्षणभंगुर मुनि व्रतधार लिए ।
षट् खण्ड नवनिधिरतन चतुर्दश तृणवत् छोर दिये ॥टेक॥
६. दुद्धर तपकर कर्म निवारे केवल ज्ञान लहा ।
दे उपदेश भविक जन बोधे ये उपकार किया ॥टेक॥
७. शांतिनाथ है नाम तिहारा सब जग शांति करो ।
अरज करे 'शिवराम' चरण में भवआताप हरो ॥टेक॥

श्री पार्श्वनाथ जी

आरती

ॐ जय पारस देवा, प्रभु जय पारस देवा ।
सुर नर मुनि जन तुम चरनन की, करते नित सेवा ॥ ॐ जय ॥
१. पौषवदी ग्यारसि काशी में, आनन्द अति भारी ।
अश्वसेन घर वामा के उर, लीनों अवतारी ॥ ॐ जय ॥
२. श्याम वर्ण नव हस्त काय पग, उरग लखन सोहे ।
सुरकृत अति अनुपम पट भूषण, सबका मन मोहे ॥ ॐ जय ॥
३. जलते देखे नाग नागनी को, पढ़ नवकार दिया ।
हरा कमठ का मान ज्ञान का, भान प्रकाश किया ॥ ॐ जय ॥
४. मात पिता तुम स्वामी मेरे, आश करूं किसकी ।
तुम बिन दूजा और न कोई, शरण गहूँ जिसकी ॥ ॐ जय ॥
५. तुम परमातम, तुम अध्यात्म तुम अन्तर्यामी ।
स्वर्ग मोक्ष पदवी के दाता, त्रिभुवन के स्वामी ॥ ॐ जय ॥
६. दीनबंधु दुख हरण जिनेश्वर, तुम ही हो मेरे ।
दो शिवपुर का वास दास यह, द्वार खड़ा तेरे ॥ ॐ जय ॥
७. विषय विकार मिटाओ मन का, अर्ज सुनो दाता ।
सेवक द्वय कर जोड़ प्रभू के, चरणों चित्त लाता ॥ ॐ जय ॥

श्री महावीर स्वामी

आरती

ॐ जय महावीर प्रभो, स्वामी जय महावीर प्रभो ।
कुण्डलपुर अवतारी, त्रिशलानन्द विभो ॥ ॐ जय.॥
१. सिद्धारथ घर जन्मे, वैभव था भारी, स्वामी वैभव था भारी ।
बाल ब्रह्मचारी व्रत पाल्यो, तपधारी ॥ ॐ जय.॥
२. आतम ज्ञान विरागी, समदृष्टि धारी ।
माया मोह विनाशक ज्ञान ज्योति जारी ॥ ॐ जय.॥
३. जग में पाठ अहिंसा आप ही बिस्तार्यो ।
हिंसा पाप मिटाकर सुधर्म परिचार्यो ॥ ॐ जय.॥
४. यह विधि चांदनपुर में, अतिशय दर्शायो ।
ग्वाल मनोरथ पूरयो, दूध गाय पायो ॥ ॐ जय.॥
५. प्राणदान मन्त्री को, तुमने प्रभु दीना ।
मन्दिर तीन शिखर का निर्मित है कीना ॥ ॐ जय.॥
६. जयपुर नृप भी तेरे, अतिशय के सेवी ।
एक ग्राम तिन दीनों, सेवा हित यह भी ॥ ॐ जय.॥
७. जो कोई देरे दर पर इच्छा कर आवे ।
धन सुत सब कुछ पावे, संकट मिट जावै ॥ ॐ जय.॥

आचार्य आदिसागर जी महाराज

आरती

आरती श्री आदि सिन्धु की, पाप निवारक जगबन्धु की ।
१. छत्तीस मूल गुणों के धारी, पंचमहाव्रत पंचाचारी ॥
पंच समिति पन इंद्रियरोध, लीन सुदर्शन चरणाबोध ।
शीत प्रदायक पूर्ण इंदु की, आरती श्री आदि सिन्धु की ....
२. सिद्ध गौड़ा के पुत्र कहाये, माता अक्का को मन भाये ।
सुन्दर अंकली ग्राम के वासी, मुक्ति रमा के ये अभिलाषी ॥
पावन शुभ्र सलिल बिन्दु की, आरती श्री आदि सिंधु की .....
३. मुनि पद पा सूरिपद पाये, भव्यों को शिवमार्ग दिखाये ।
शिष्य महावीर कीर्ति बनाये, निजपद सौंप परमपद पाये ॥
सन्मति पूर्ण धर्म सिन्धु की, आरती श्री आदिसिन्धु की.....

आचार्य महावीर कीर्ति जी महाराज

आरती

ओम जय महावीर कीर्ति महाराज, सूरि महावीर कीर्ति महाराज
हम सब आये द्वारे आपके, आरती करने आज ।
ओम ....

१. फिरोजाबाद में जन्म लिया, है बून्दा देवी माँ
रतनलाल के राज दुलारे, महेन्द्र सिंह कहलाया ॥
ओम ....

२. यह संसार दुखमय जाना, सूरि आदि सिंधु पाये
धरी दिगम्बर दीक्षा, समता अपनाये
ओम ....

३. छत्तीस मूलगुण को पाले, मन में बहु हर्षाय
करी तपस्या भारी, आतम रस फल पाय
ओम ....

४. आदिसागर जी अंकलीकर के, पट्ट शिष्य हो आप
करी प्रभावना जैन धर्म की, हो रही जय जय कार
ओम ....

५. दुखीजनों के गुरुवर तुमने, दूर किये संताप
गुरु तुमरी आरती करने से, दूर हो गये मम पाप
ओम ....

६. ज्ञान ध्यान अरु त्याग तपस्या, महिमा अपरमपार
तीर्थ भक्त थे आप गुरुवर, किया धर्म प्रचार
ओम ....

७. इन गुरुवर की करें आरती, जगमग दीप जलाया
पाप कटेगा पुण्य बढ़ेगा, हो जाये भव पार
ओम ....

आचार्य विमल सागर जी महाराज

आरती

तर्ज :- मेरे मन मंदिर में आन

गुरुवर सर्व गुणों की खान, विमल गुरु का जग में है नाम
जैसा नाम है वैसा काम, आरती हरती तम अज्ञान

I. णमोकार की जाप बताते, दु:खी के सर पिच्छी लगाते
रोते आते हँसते जाते, जो गुरु के आशीष को पाते
धन्य था गुरु का निमित्तज्ञान आरती.....

II. भूमण्डल पर राज तुम्हारा, जयकारा गुरुराज तुम्हारा
अद्भुत या हर काज तुम्हारा, ऋणी है जैन समाज तुम्हारा
गायें हम गुरु के गुणगान आरती.....

III. गुरु विराग हैं शिष्य तुम्हारे, जिनकी वाणी तुम्हें पुकारे
जगती जिनके चरण पखारे, समतामूर्ति गुरु हमारे
ऐसे शिष्य बनाये महान...... आरती......

आचार्य सन्मति सागर जी महाराज

आरती

तर्ज :- देख तेरे संसार की हालत

करो आरती सन्मति गुरु की, भक्तों सुबह-शाम होगा, निश्चित ही कल्याण - २
चरण धूलि को शीश चढ़ाओ, बनेंगे बिगड़े काम, होगा ....

I. ग्राम फफोतू में ये जनमे, खुशियाँ जयमाला के मन में
सुत ये प्यारे लाल के प्यारे, यश फैलाया धरा - गगन में
तम जग का हरने को पाया, ओम प्रकाश सु नाम होगा ....

II. तप की महिमा बहुत बढ़ाई, मुक्ति वधू से करी सगाई
विमल सिन्धु से गुरु तुम्हारे, शिक्षा दीक्षा जिनसे पाई
महावीर कीर्ति ने बनाया, पट्टाचार्य महान होगा ....

III. हे तपस्वी सम्राट हमारे, निशदिन हम तो तुम्हें पुकारे
गुरु विराग से गुरु दिये हैं, जो हैं उत्तम शिष्य तुम्हारे
अपनी छाया में बैठाकर, दिया जिन्हें है ज्ञान होगा ....

गणाचार्य श्री विराग सागर जी महाराज

आरती

१. हे गुरुवर तेरे चरणों में हम वंदन करने आये हैं - २
हम वंदन करने आये हैं, हम आरती करने आये हैं
हे गुरुवर ....

२. तुम काम क्रोध मद लोभ छोड़, निज आतम को पहचाना है
घर कुटुम्ब छोड़कर निकल पड़े, धर लिया दिगम्बर बाना है
हे गुरुवर ....

३. छोटी सी आयु में स्वामी, विषयों से मन अकुलाया है
तप संयम शील साधना में, दृढ़ अपने मन को पाया है
हे गुरुवर ....

४. कितना भीषण संताप पड़े, हो क्षुधा तृषा की बाधायें
स्थिर मन से सब सहते हो, बाधायें कितनी आ जायें
हे गुरुवर ....

५. नहीं ब्याह किया घर बार तजा, समता के दीप जलाये हैं
हे महाव्रती संयम धारी, चरणों में सेवक आये हैं
हे गुरुवर ....

६. तुम जैन धर्म के सूरज हो, तप त्याग की अद्भुत मूरत हो
है धन्य - धन्य महिमा तेरी, तम हरने वाले सूरज हो
हे गुरुवर ....

यज्ञोपवीत संस्कार विधि

संकलन - गणाचार्य श्री विराग सागर जी महाराज

यज्ञोपवीतं कथितं मुनीन्द्रे, रत्नत्रयं वा व्यवहार रूपम् ।
त्रिवण पुन्मिधियंते मनोज्ञ, धर्मार्थ कामाभि मुखै सुखा ॥

परम मुनिन्द्रों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्यों को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि के लिये व्यवहार रत्नत्रय रूप यज्ञोपवित धारण करने का उपदेश दिया।

पूजा दानादि सत् कर्म सन्ध्यावन्दनादिक तथा।
सदा कुर्यात स पुण्यात्मा यज्ञोपवीत धारकः ॥

यज्ञोपवीत धारी पुण्यात्मक प्राणी को पूजा, दान, संध्यावदन आदि सत्कर्मों को सदा करना चाहिये। बिना जनेऊ के मनुष्यों को (गृहस्थ को) दान वा जिनेन्द्र प्रभु को स्पर्श करने का अधिकार नहीं, यज्ञोपवीत धारी ही सतकर्मों को कर सकता है।

भगवान आदिनाथ ने राज्यावस्था में यज्ञोपवीत धारण किया था।

यज्ञोपवीत से सुशोभित भगवान मनोहर कल्पलता से युक्त कल्पवृक्ष के समान मालूम होते थे (१३२" सर्ग ८ हरिवंश पुराण) जिस प्रकार हिमवान पर्वत गंगा का प्रवाह धारण करता है उसी प्रकार वे (महाराज ऋषभकुमार जी) भी अपने कंधे पर यज्ञोपवीत धारण किये थे। **(पर्व १६ आदिपुराण)**

भगवान आदिनाथ ने राज्यावस्था में अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को यज्ञोपवीत पहनाया था (आदि पुराण १६४ पर्व १५) और वह जनेऊ राजकुमार भरत के कन्धे पर गंगा नदी की उपमा को धारण कर रहा था। (आदि पु.श्लो. १९८ पर्व १५)

यज्ञोपवीत धारण करने का उपदेश गणधरों से चला आ रहा है। (आदि पु. श्लोक १५८ वर्ष ४०)

गर्भ से आठवें वर्ष में बालक की उपनीति क्रिया के समय यज्ञोपवीत संस्कार हुआ है। (आदि पु.श्लोक १०४ वर्ष ३८)

जनेऊ वक्षस्थल का चिन्ह है और इस व्रतों की सिद्धि के लिए धारण किया जाता है। (आदि पु.श्लो.६६ वर्ष ३९)

तीन लर का जनेऊ व्यवहार रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन सम्यक् ज्ञान व सम्यक् चारित्र) का सूचक द्रव्य सूत्र है और निश्चय रत्नत्रय भाव सूत्र है। (आदि पु. श्लो. ९५ वर्ष ३९)।

सात लर का जनेऊ सात परमस्थानों (सज्जाति, सद् गृहस्थ आदि) का सूचक है। दीक्षा धारण करने योग्य कुल में उत्पन्न पुरुष ही जनेऊ ले सकता है। स्त्रियों के लिए या शेष पुरुषों के लिए आज्ञा नहीं है। (आदि पु. श्लो. १७० पर्व ४०)

भरत चक्रवर्ती ने पद्म नामक निधि से प्राप्त हुए १ से ११ लर (तार) तक के जनेऊ से यथायोग्य अर्थात् एक से ग्यारह प्रतिमाधारी व्रत श्रावकों के चिन्ह किये (आदि पु. श्लो. २१ पर्व ३८) भरत चक्रवर्ती ने कांक्णी रत्न से चिन्हित कर व्रतियों को यज्ञोपवीत पहिनाया। (हरिवंश पु. श्लो. १०६ वर्ष ११)

प्रतिमाओं के द्वारा किये हुये भेद के अनुसार एक से लेकर ग्यारह प्रतिमाधारी श्रावक, जिन्होंने यज्ञोपवीत धारण किये है उन सबका सत्कार किया और जो व्रती नहीं ये उन्हें वैसे ही रहने दिया। (आदि. पु.श्लो. २२ वर्ष ३८)

यज्ञोपवीत धारण करने का मन्त्र

१- ॐ नमः सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूप यज्ञोपवीतं धारयामीति स्वाहा।

२-ॐ नमः परमशांताय पवित्री कृतार्ह रत्नत्रयस्वरूप यज्ञोपवीतं दधामि (धारियामि) मम गात्र पवित्रं भवतु अर्ह नमः स्वाहा।

३. (जनेऊ बदलने का मंत्र) ॐ ह्रीं अर्ह नमो जीर्ण यज्ञोपवीतं उत्तीर्णाय नमः स्वाहा।

प्रतिज्ञायें

१-अरिहंत देव, दया धर्म जिनवाणी और निग्रंथ गुरूओं को ही नमस्कार करना (मस्तक झुकाना), अन्य को नहीं झुकाना।

२- सात व्यसन-जुआ, चोरी, मांस, शराब, वेश्यागमन, शिकार और परस्त्री गमन का त्याग करें।

३- अष्ट मूलगुणों को धारण करें। निम्नांकितों में से तीसरे नंबर वाले अष्ट मूलगुण आवश्यक पालनीय है।

अष्ट मूलगुणों के विषय में

१-मद्य, मांस, मधु, पांच उदम्बर (बड़, पीपल, गूलर, पाकर और अंजीर) का जीवन पर्यन्त त्याग। (पुरुषार्थ सिद्धयुपाय उपासकाध्ययन)

२- पांच पाप (हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह) का स्थूल रुप से त्याग तीन मकार (मद्य, मांस, मधु) का त्याग (आदि पुराण) (आ. जिनसेन) (रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

३- मद्य, मांस, मधु, रात्री भोजन, अनछना जल, पांच उदम्बर फल का त्याग, नित्य देव दर्शन एवं दया धर्म का पालन) अष्ट मूलगुणों में से एक भी मूलगुण कम होने पर श्रावक नहीं हो सकता है और जो श्रावक नहीं है वह यज्ञोपवीत धारण नहीं कर सकता। (सागर धर्मामृत) **(पं. आशाधर जी)**

मल (टट्टी पेजाब आदि) के स्पर्श हो जाने पर शव का स्पर्श करने पर या दाह संस्कार करने पर अशुद्ध हो जाता है, अतः सूत्र बदल लेना चाहिए। (३) श्रावण शुक्ल पूर्णिमा के दिन जिनदेव का अभिषेक कर, प्रथम गंधोदक छिड़ककर नया जनेऊअवश्य पहिनना चाहिए, हो सके तो हवन करके पहिने। (४) जनेऊ पहिन कर पुनः उतार देने पर एवं कोई भी प्रतिज्ञा भंग करने से महापाप का बंध होता है। (५) जनेऊ को कण्ठमाला के समान नहीं पहिनना चाहिए, किन्तु बांये कन्धे से दाहिने हाथ के नीचे उतारना चाहिए। (६) यदि भूल से जनेऊको कानादि स्थान पर नहीं चढ़ा पायें, तो नौ बार णमोकार मंत्र पढ़कर प्रायश्चित करें, इससे जनेऊ शुद्ध हो जाता है।

जनेऊ को कानादि विशिष्ट स्थानों में लगने की विशेषतायें

१-जनेऊ को कान में, ३ अंटे देने का अर्थ रत्नत्रयरूपधर्म का स्मरण है।

२-लघु शंका करते समय दाहिने कान में अंटा लगाने से हार्निया आदि की बीमारियाँ

या पेशाब सम्बन्धी रोग नहीं होते, अगर पहले से हो गये हो तो ठीक हो जाते है।)
३- शौच जाते समय बांये कान पर ३ अंटा देने से बबासीर आदि शौच सम्बन्धी बीमारियां नहीं होती अगर पहले से हुई हो तो ठीक हो जाती है।
४-मैथुन करते समय मस्तिष्क में लपेटने का अर्थ मस्तिक कमजोर नहीं होता तथा धातु का क्षरण सीमानुसार ही होता है।
५- वमन करते समय कण्ठ में लपेटने से जी नहीं मचलता।
६- यज्ञोपवीतधारी व्यक्ति को भूत, प्रेत, डाकिनी, शाकिनी आदि की बाधा नहीं होती तथा उस पर मूठ या टोटका आदि का प्रयोग नहीं चलता।

क्रियायें

लघु शंका (पेशाब) जाते समय दाहिने कान पर, शौच (दीर्घ शंका) जाते समय बाँये कान पर, बाल बनवाते समय कमर में, मैथुन (विषय सेवन) करते समय मस्तक पर, वमन करते समय कण्ठ में जनेऊ लगाना चाहिये, भूल जाने पर नौ बार णमोकार मंत्र की जाप करने पर शुद्धि होती है। जनेऊ खण्डित (टूट जाने) होने पर, मरघट में जाने पर, सूतक पातक हो जाने पर नया पहिनना चाहिए।
७. सुना जाता है कि यज्ञोपवीत धारी व्यक्ति का अगर मरण हो गया है, जो उसका जनेऊ श्मशान भूमि में, शव को चिता में रखते समय जनेऊ को निकाल कर किसी वृक्ष से बाँध देना चाहिए, क्योंकि अगर व्रत के प्रभाव से व्यक्ति देव हुआ किन्तु मिथ्यादृष्टि हुआ तो वहाँ से अपनी पूर्व चिता को देखने हेतु आये उस जनेऊ को देखते ही रत्नत्रय का बोध स्मृति होने पर, वह सम्यग्दर्शन को भी प्राप्त कर लेता है। बिना यज्ञोपवीत वाला प्राणी आहार दान और जिनेन्द्र की पूजा करने का अधिकारी नहीं है। यह हम इसमें देख चुके और यह जैन धर्म की ही प्राचीन परंपरा है जिसकी छाप अन्य धर्मों पर पड़ी।
अतः आप घबड़ाये नहीं; धारण करने की कोई बहुत बड़ी कठिनाई या प्रतिज्ञाएँ नहीं है।

यज्ञोपवीत बदलने की विधि

पहले नये जनेऊ को जल या गंधोदक से शुद्ध करें, फिर यज्ञोपवीत धारण करने वाला मंत्र पढ़कर यज्ञोपवीत धारण करें, उसके पश्चात् पुराना यज्ञोपवीत कंधे से नीचे उतार कर पैर में से धर्म का चिन्ह लें उसे निष्प्रयोजन बार-बार गले से निकालना योग्य नहीं है।

विमल नित्य पाठावली

माह के अनुसार व्रत का चार्ट

क्र.	हिन्दी माह	तिथि	व्रत का नाम	अवधि	पूजा	विधि	उद्यापन विधान	व्रत का फल
१.	चैत्र कृ.	२	स्त्रीवेद निवारण	९ माह	श्रेयांसनाथ	प्रत्येक कृष्ण द्वितीया को उपवास करें	पञ्चपरमेष्ठी	काम विकार विनाशक
	चैत्र कृ.	९	आदिनाथ जयंती	९ वर्ष	आदिनाथ	व्रत के दिन उपवास करें।	पञ्चपरमेष्ठी	जन्म मरण नाशक
	चैत्र शु.	१	मंगलभूषण	३ वर्ष	आदिनाथ	एकम् से तृतीया तक ३ दिन कांजी आहार	भक्तामर विधान	सुख समृद्धि प्रदायक
	चैत्र शु.	८	पञ्चाणुव्रत	२५ तिथि पूर्वक	चौबीस तीर्थंकर	८ व १४ को प्रोषध पूर्वक उपवास	पञ्चपरमेष्ठी	श्रावकोचित् सयमवर्धक
	चैत्र शु.	१३	महावीर जयन्ती	१३ वर्ष	महावीर	उपवास पूर्वक	पञ्चपरमेष्ठी	प्रशस्त जीवनकारक
२.	वैशाख कृ.	२	अज्ञान मिथ्यात्व निवारण	५ वर्ष	नव देवता	व्रत के दिन उपवास	पञ्चपरमेष्ठी	सम्यक्ज्ञान प्रदायक
	वैशाख कृ.	११	आर्त्त ध्यान निवारण	१ वर्ष	श्रेयांसनाथ	प्रत्येक माह की एकादशी को उपवास	पञ्चपरमेष्ठी	वेदना परिणाम निवारण
	वैशाख शु.	३	अक्षय तृतीया	३ वर्ष	आदिनाथ	व्रत के दिन उपवास करें।	पञ्चपरमेष्ठी	कुल परम्परा वर्धक
	वैशाख शु.	८	समाधि विधान	१ वर्ष	पञ्चपरमेष्ठी / गणधर पूजा	व्रत के दिन उपवास करें।	पञ्चपरमेष्ठी	आत्मशक्ति वर्धक
३.	ज्येष्ठ कृ.	२	विनय व्रत	५ वर्ष	सुमतिनाथ	प्रत्येक ज्येष्ठ कृ.२ को उपवास करें	पञ्चपरमेष्ठी	अहंकार निवारक
	ज्येष्ठ कृ.	५	कृष्णपञ्चमी	५ वर्ष	सुमतिनाथ	व्रत के दिन उपवास करें।	पञ्चपरमेष्ठी	अशुभ चिन्तन निवारक
	ज्येष्ठ कृ.	४	निर्णय व्रत	४ माह	श्रेयांसनाथ	प्रत्येक चतुर्थी को उपवास करें	पञ्चपरमेष्ठी	संकल्पशक्तिवर्धक
	ज्येष्ठ शु.	५	सरस्वती व्रत	१ वर्ष	सरस्वती	१२० उपवास प्रत्येक ५,८,११,१४,१ को उपवास करें।	श्रुतस्कन्ध	उत्कृष्टज्ञान प्राप्तिकारक
	ज्येष्ठ शु.	५	श्रुतपंचमी	५ वर्ष	सरस्वती	व्रत के दिन उपवास करें।	श्रुतस्कन्ध	ज्ञानवर्धक
४.	आषाढ़ कृ.	५	कोकिलापंचमी	५वर्ष,प्रत्येक वर्ष५माह (कार्तिक कृ.५ तक)	पञ्चपरमेष्ठी	प्रत्येक माह की कृष्ण पञ्चमीको उपवास	पञ्चपरमेष्ठी	विद्वेष निवारक
	आषाढ़ कृ.	८	ब्रह्मचर्य महाव्रत	१० माह	गुरुपूजा	प्रत्येक अष्टमी को उपवास	पञ्चपरमेष्ठी	एकत्व भावना प्रदायक
	आषाढ़ शु.	१	कायगुप्ति	४ माह	आदिनाथ	एक अन्न से एकासन	भक्तामर	साधनाशक्ति वर्धक
	आषाढ़ शु.	१	वचन गुप्ति	४ माह	अजितनाथ	आषाढ़ शु.१ से कार्तिक की अष्टाह्निका तक लगातार एक वस्तु का त्याग करके एकासन	पञ्चपरमेष्ठी	अशुभ वचन परिहारक
	आषाढ़ शु.	१	जिनगुण सम्पत्ति	६३ दिन	जिनगुणसम्पत्ति	उत्तम:-१६ प्रतिपदा, ५.पञ्चमी, ८-अष्टमी २० दशमी, १४ चतुर्दशी आदि उपवास मध्यम:- ५ बेला, २५ उपवास अर्थात् ३५ उपवास और ३० पारणाएँ। जघन्य:-६३गुणों के उपलक्ष्यमें ६३ एकासन	जिनगुण सम्पत्ति	सर्व सुख प्रदायक
	आषाढ़ शु.	४	कर्म दहन	१५६उपवासपूर्वक	लघुकर्मदहन	७ चतुर्थी, ३ सप्तमी, ३६ नवमी, १ दशमी १६, बारस, ८५ चतुर्दशी, ८ अष्टमी आदि को प्रोषध पूर्वक उपवास करें।	कर्मदहन	अष्टकर्म निवारक एवं पारमार्थिक सुख दायक
	आषाढ़ शु.	८	सर्वदोष परिहार	९तिथि (प्रत्येक माह के शु.पक्ष की अष्टमी)	पञ्चपरमेष्ठी	व्रत के दिन एक अन्न से एकासन	पञ्चपरमेष्ठी	अशुभ मान्यता निग्रहकारक
	आषाढ़ शु.	८	नित्य सौभाग्य	४ माह	चौबीस तीर्थंकर	८से कार्तिक पूर्णिमा तक उपवास या एकासन	पञ्चपरमेष्ठी	शाश्वत सौभाग्यवर्धक
	आषाढ़ शु.	७	णमोकार पैंतीसी	१वर्ष ६ माह में ४५दिन	नवकार मंत्र	७ सप्तमी, ५ पंचमी, १४चतुर्दशी, ९ नौमी उपवास के साथ करें।	णमोकार पैंतीसी	संकट निवारक

विमल नित्य पाठावली

क्र.	हिन्दी माह	तिथि	व्रत का नाम	अवधि	पूजा	विधि	उद्यापन विधान	व्रत का फल
	आषाढ़ शु.	८	नीति सागर	९अष्टमी(आष्टानहिका पर्व की अष्टमीसे प्रारम्भ	संभवनाथ एवं नंदीश्वर	तीन अन्न से एकासन करें।	नंदीश्वर	न्यायोपार्जित बुद्धिदायक
	आषाढ़ शु.	८	विनयसम्पन्नता	७दिन/१६ वर्ष	देवपूजा	अष्टमी से चतुर्दशी तक एकासन करें।	पञ्चपरमेष्ठी	अहंकार निवारक
	आषाढ़ शु.	८	ज्ञानसाम्राज्य	४ माह	पञ्चपरमेष्ठी	४माह तक प्रतिदिन एक रस छोड़कर एकासन	पञ्चपरमेष्ठी	केवलज्ञान प्रदायक
	आषाढ़ शु.	८	ज्ञानाचार	४माह(८अष्टमीपूर्वक)	आदिनाथ	व्रत के दिन उपवास	पञ्चपरमेष्ठी	सम्यग्ज्ञान कारक
	आषाढ़ शु.	१४	कर्मनिर्जरा	४ माह में ४ दिन	सिद्धपूजा	आषाढ़ शु.चतुर्दशी श्रावण शु.चतुर्दशी, भाद्र शु.चतुर्दशी, आसोज शु.चतुर्दशी उपवास करें	कर्मदहन	अशुभ कर्म निवारक
५.	श्रावण कृ	१	रस परित्याग	१ माह	पञ्चपरमेष्ठी	भाद्रपद कृष्ण प्रतिपदा तकषट्रस त्याग पूर्वक एकासन	पञ्चपरमेष्ठी	इन्द्रिय लोलुपता नाशक
	श्रावण कृ.	११	वीरशासनजयंती	जीवनपर्यन्त/शक्यनुसार	महावीरपूजा	उपवास पूर्वक	पञ्चपरमेष्ठी	असाता निवारक
	श्रावण शु.	५	गरुड़ पञ्चमी	५ वर्ष	सुमतिनाथ	व्रत के दिन उपवास	पञ्चपरमेष्ठी	निर्बिषकारक विधा सिद्धकारक
	श्रावण शु.	७	मुकुट सप्तमी	७ वर्ष	आदिनाथ	उपवास पूर्वक	पञ्चपरमेष्ठी	पारस्परिक सौहार्द सद्भावना वर्धक
	श्रावण शु.	७	मोक्ष सप्तमी	७ वर्ष	पार्श्वनाथ	व्रत के दिन उपवास	कर्मदहन	विघ्न विनाशक/सौख्य प्रदायक
	श्रावण शु.	१०	अक्षय फल दशमी	१० वर्ष	आदिनाथ	व्रत के दिन उपवास	पञ्चपरमेष्ठी	कुलवर्धक
	श्रावण शु.	१०	कलश दशमी	१० वर्ष	शीतलनाथ/वासुपूज्य सहित १० पूजायें	प्रोषध पूर्वक उपवास	पञ्चपरमेष्ठी	सौभाग्य एवं कुलवर्धक
	श्रावण शु.	१५	रक्षाबन्धन	८ वर्ष	रक्षाबन्धन	उपवास पूर्वक करें एवं हाथमें रक्षासूत्र बाँधे	पञ्चपरमेष्ठी	रक्षासंकल्प/वात्सल्य प्रभावना वर्धक
६.	भाद्र कृ.	१	मेघमाला	५ वर्ष	आदिनाथ	प्रति वर्ष भाद् कृ.१,८,१४ तथा शु.१,८,१४ असोज कृष्ण-१ सात तिथियों में उपवास।	पञ्चपरमेष्ठी	दारिद्र निवारक
	भाद्र कृ.	१	सोलहकारण	उत्तम-१६वर्ष	सोलहकारण	उत्तम-कृ.प.की एकम से दूसरे माहकी कृष्ण एकम तक ३१दिन के ३१ उपवास	सोलहकारण	तीर्थंकर प्रकृति दायक
	माघ			मध्यम-५वर्ष		मध्यम-१६ उपवास एवं १६ पारणा (क्रमशः एक उपवास एक पारणा क्रम से)		
	चैत्र			जघन्य-१वर्ष		जघन्य:- ३१ एकासन (लगातार)		
	भाद्र कृ.	३	तीन चौबीसी	३ वर्ष	त्रिकाल चौबीसी	व्रत के दिन उपवास करें।	तीन चौबीसी	त्रैकालिक आत्मप्रभावनाकारक
	भाद्र कृ.	६	चन्दन षष्ठी	६ वर्ष	चन्द्रप्रभ	व्रत के दिन उपवास करें।	पञ्चपरमेष्ठी	अशुद्धि से हुए अविनयकी निवृत्ति हेतु।
	भाद्र शु.		लब्धि विधान	३ वर्ष	महावीर पूजा	प्रथम विधि:- अमावस्या को एकासन कर पड़वा दोज एवं तृतीया का तेला कर चतुर्थी को पारणा ।द्वितीय विधि भाद्र, माघ एवं चैत्र मास मे शुक्ल पडवा, तीज का उपवास दोज, चतुर्थी को पारणा इस प्रकार ६ वर्ष करें। तृतीय:- भाद्र, माघ, चैत्र माह में शुक्ल पडवा	लब्धि विधान	शील बुद्धि प्रदाता

क्र.	हिन्दी माह	तिथि	व्रत का नाम	अवधि	पूजा	विधि	उद्यापन विधान	व्रत का फल
						एवं तीज का एकासन दोज का उपवास, चतुर्थी का एकाशन इस प्रकार दो वर्ष में व्रत पूर्ण करें।		
	भाद्र शु.	१	चारित्र शुद्धि	उत्कृष्ट ६ वर्ष १०माह ८ दिन मध्यम १०वर्ष ३माह १५ दिन जघन्य २५-३० वर्ष	चारित्र शुद्धि	उत्कृष्ट :- १२३४ उपवास (एकान्तर से) मध्यम :-१२३४ उपवास (एक महीना में १० उपवास) जैसे २ दोज, २पंचमी, २अष्टमी २ एकादशी एवं २ चतुर्दशी। जघन्यः- शक्त्यानुसार १२३४ उपवास	कर्मदहन	तप-बलवर्धक
	भाद्र शु.	३	रोटतीज	३,१२ या २४ वर्ष	रोटतीज/चौबीसी	उपवास या रस त्याग पूर्वक एकासन	पञ्चपरमेष्ठी	चोरी के परिणाम का अभाव
	भाद्र शु.	३	त्रिकोलतीज	३ वर्ष	अकृत्रिम चैत्यालय	व्रत के दिन उपवास करें।	त्रिलोक्य जिनालय	शोक निवारक
	भाद्र शु.	५	आकाश पंचमी	५ वर्ष	सुमतिनाथ	व्रत के दिन उपवास करें।	पञ्चपरमेष्ठी	निरोगता दायक
	भाद्र शु.	५	दशलक्षण	१० वर्ष	दशलक्षण	उत्तम-दस दिन के दस उपवास मध्यमः-पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी इन चार तिथियों में उपवास ६ दिन एकासन जघन्य-दस दिन के दस एकासन	दशलक्षण	आत्मस्वभाव प्राप्तिकारक
	भाद्र शु.	७	मुक्तावली (लघु)	९ वर्ष	वासुपूज्य	प्रत्येक वर्ष नौ उपवास करें भाद्र शु.७ आसोज कृ.६ एवं १३, आसोज शु.११ कार्तिक कृ.१२, कार्तिक शु. ३ एवं ११ मृगसिर कृ.११, मृगसिर-शु.३ इस प्रकार एक वर्ष में ९ उपवास।	कर्मदहन	अप्रशस्त नामकर्म क्षय-कारक
	भाद्र शु.	१०	धूप दशमी	१० वर्ष	शीतलनाथ	व्रत के दिन उपवास करें।	पञ्चपरमेष्ठी	शारीरिक सौन्दर्यवर्धक
	भाद्र शु.	१०	फल दशमी	१० वर्ष	शान्तिनाथ	व्रत के दिन उपवास करें।	कर्मदहन	सुफल दायक
	भाद्र शु.	१०	सुगंध दशमी	१० वर्ष	शीतलनाथ	व्रत के दिन उपवास करें।	पञ्चपरमेष्ठी	शारीरिक दुर्गन्धनाशक
	भाद्र शु.	१०	सौभाग्य दशमी	१० वर्ष	शीतलनाथ	व्रत के दिन उपवास करें।	पञ्चपरमेष्ठी	सौभाग्य वर्धक
	भाद्र शु.	१२	कर्म निर्झर	८ वर्ष	कर्म निर्झर	१२,१३,१४ तीन दिन तक शकत्यानुसार	कर्म निर्झर	परमार्थिक सुखदायक
	भाद्र शु.	१२	कांजीबारस	६ वर्ष	वासुपूज्य	व्रत के दिन उपवास करें	पञ्चपरमेष्ठी	संयम-तपवर्धक
	भाद्र शु.	१२	रत्नत्रय	उत्कृष्ट-१३वर्ष मध्यम-८ वर्ष जघन्य-५वर्ष/३वर्ष	रत्नत्रय	उत्कृष्ट-१३,१४,१५ तीन दिन उपवास प्रोषधपूर्वक जघन्य-व्रत के दिनों में एकाशन	रत्नत्रय	मोक्षमार्ग प्रदायक
	भाद्र शु.	१४	अनंतचतुर्दशी	१४ वर्ष	अनन्तनाथ	व्रत के दिन उपवास करें।	पञ्चपरमेष्ठी	दारिद्र निवारक
	भाद्र शु.	१४	सूतक परिहार	१६,११,९ या ५वर्ष	चौबीस तीर्थंकर	चतुर्दशी के दिन प्रोषधपूर्वक उपवास करें।	पञ्चपरमेष्ठी	अशुभ असातानाशक
७.	आश्विन कृ.	१	क्षमावाणी	१० वर्ष	क्षमावाणी	उपवास पूर्वक करें।	दशलक्षण	क्रोध परिणाम शान्तिकारक
	आश्विन शु.	८	जीवदयाष्टमी	८ वर्ष	शीतलनाथ	आश्विन शुक्ला अष्टमी को उपवास करें।	पञ्चपरमेष्ठी	सद्भावना वृद्धिकारक
	आश्विन शु.	१४	सकलसौभाग्य	८ वर्ष	नवदेवता	चतुर्दशी के दिन प्रोषधपूर्वक उपवास	पञ्चपरमेष्ठी	उत्कृष्ट पुण्यवर्धक
	आश्विन शु.	१५	चारित्रमाला	२७तिथि(२७माह)	पञ्चपरमेष्ठी	प्रत्येक पूर्णिमा को उपवास करें।	पञ्चपरमेष्ठी	आत्मोत्थान कारक
८.	कार्तिक कृ.	१४	दीपावली/लक्षावली	१४ वर्ष	महावीर भ.	कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को उपवास करें	पञ्चकल्याणक	सतज्ञान एवं सत् व्यापारवर्धक

विमल नित्य पाठावली

विमल नित्य पाठावली

क्र.	हिन्दी माह	तिथि	व्रत का नाम	अवधि	पूजा	विधि	उद्यापन विधान	व्रत का फल
	कार्तिक शु.	११	चूडामणि	११ एकादशी	नवदेवता	शुक्ल एकादशी के दिन उपवास	पञ्चकल्याणक	सातिशय पुण्यदायक
	अगहन कृ. (मार्गशीर्ष)	१०	चतुरशीति	४ माह	चौबीस तीर्थंकर	प्रत्येक कृष्ण दशमी उपवास	गणधर वलय	अज्ञाननिवारक एवं पूर्ण श्रुतज्ञान दायक
	अगहन शु.	८	कन्दर्प	१६अष्टमी पूर्वक(८माह)	पार्श्वनाथ	प्रत्येक अष्टमी को उपवास	कर्मदहन	अशुभ विचार निवारक
	पौष कृ.	३	त्रिलोक भूषण	३२माह	महावीर	प्रत्येक शुक्ल तृतीया के दिन उपवास करें	पञ्चपरमेष्ठी	सिद्धावस्था प्रदायक
	पौष शु.	५	सुगन्धदशमी (मासिक)	५ वर्ष	शीतलनाथ	५से१० तक उपवास या एकासन शक्त्यानुसार	पञ्चपरमेष्ठी	शारिरिक दुर्गंध निवारक
	माघ कृ.	९	आदिनाथ निर्वाण महोत्सव	९ वर्ष	आदिनाथ	व्रत के दिन उपवास करें।	पञ्चपरमेष्ठी	जन्ममरण नाशक
	माघ शु.	१४	समकित चौबीसी	२४ दिन	चौबीसतीर्थंकर	एकासन पूर्वक	तीन चौबीसी	तीर्थंकर पद दायक
	माघ शु.	१५	माघमाला व्रत	१ वर्ष	पञ्चपरमेष्ठी	प्रत्येक पूर्णिमा को उपवास करें।	पञ्चपरमेष्ठी	मनोकामना पूरक
	फाल्गुन कृ.	१४	आदिनाथ शासन	१४ वर्ष	आदिनाथ	व्रत के दिन उपवास करें।	पञ्चपरमेष्ठी	निर्वाण प्रदायक
	फाल्गुन शु.	१	अक्षयसुख सम्पत्ति	१ वर्ष	पञ्चपरमेष्ठी	प्रत्येक माह की प्रतिपदा का उपवास करें।	पञ्चपरमेष्ठी	शाश्वत सुख प्रदायक
	फाल्गुन शु.	८	कल्याण तिलक	८ वर्ष	चौबीसतीर्थंकर	अष्टमी से पूर्णिमा तक एकासन करें।	पञ्चकल्याणक	आत्मोत्थान कर्त्ता

किसी भी माह के अनुसार व्रत

व्रत आरम्भ तिथि	व्रत का नाम	अवधि	पूजा	विधि	उद्यापन विधान	व्रत का फल
कार्तिक, फाल्गुन आषाढ़ तीनों मास मे शुक्ल पक्ष की ८ से पूर्णमासी तक	अष्टाह्निक	उत्तम-१७ वर्ष मध्यम-८ वर्ष जघन्य-५ वर्ष या ३ वर्ष	नंदीश्वर	उत्तमः-अष्टमी से पूर्णमासी तक उपवास मध्यमः- प्रोषधपूर्वक ८ का उपवास ९को पारणा, १० को मात्र जल एवं चावल एकबार ले, ११ को एक बार अल्पाहार करें, १२को एकासन, १३को नीरस, १४को केवल चावल, १५ को उपवास, १ को पारणा करें जघन्य : अष्टमी से पूर्णमासी तक एकासन	नंदीश्वर	विशिष्ट विभूति कारक
अष्टाह्निक की ८	कल्याणमाला	४माह (लगातार)	पार्श्वनाथ	दस दिन तक उपवास या एकासन करें। व्रत अगली अष्टान्हिका तक करें।	पञ्चकल्याणक	पुण्य प्रदायक
चतुर्दशी	कल्याण मन्दिर	४४ चतुर्दशी	कल्याणमंदिर	प्रोषध पूर्वक उपवास	कल्याण मन्दिर	उपसर्ग निवारक
अमावस्या	कवलचन्द्रायण	१ माह	आदिनाथ	अमावस्या का उपवास, १ को ग्रास, २ को २ ग्रास इसी क्रम से बढ़ाते हुए १४ को १४ ग्रास एवं पूर्णमासी को उपवास, पश्चात् कृष्ण पक्ष की पड़वा को १४ ग्रास २ को १३ ग्रास इसी क्रम मे भोजन घटाते हुए १४ को १ ग्रास भोजन ले एवं अमावस्या को उपवास करें।	कर्मदहन कवलचन्द्रायण	तप बलवर्धक
अष्टान्हिका की ८	गणधरवलय	२४,१२,९,८ वर्ष या ३ वर्ष	गणधरवलय	अष्टमी से पूर्णिमा तक उपवास/एकासन	गणधरवलय	कार्यसिद्धि दायक
८ या १४	चौंसठ ऋद्धि	६४ व्रत	चौंसठ ऋद्धि	२,५,८,११,१४ को शक्त्यानुसार उपवास या एकासन	चौंसठ ऋद्धि	ऋद्धि कारक

विमल नित्य पाठावली

व्रत आरम्भ तिथि	व्रत का नाम	अवधि	पूजा	विधि	उद्यापन विधान	व्रत का फल
अष्टमी	तत्वार्थ सूत्र	१० दिन/३५७दिन	तत्वार्थसूत्र	उपवास पूर्वक	पंचपरमेष्ठी	मोक्षमार्ग प्रदायक
रविवार	नित्यरसी	१वर्ष,शक्त्यानुसार	चौबीस तीर्थंकर	प्रतिदिन रसीपूर्वक एकासन करें।	पंचपरमेष्ठी	रसना इन्द्रिय विजयकर्ता
अष्टान्हिका की ८	नीतिसागर	९ अष्टमी	संभवनाथ एवं नंदीश्वर	तीन अन्न से एकासन करें।	नंदीश्वर	न्यायोपार्जित बुद्धिदायक
रविवार	प्रत्याख्यान	रविवार से शनिवार तक ७दिन(एकवर्ष तक) शक्यनुसार, यम/नियम	नित्यमह	दैनिक रसी पूर्वक एकाशन	पञ्चपरमेष्ठी	व्रत दोष निवारक
दशमी	भावनापच्चीसी	उत्तम २५ दिन जघन्य ५० दिन	पञ्चपरमेष्ठी	उत्तम-२५, १० दसमी,५पंचमी, ८अष्टमी, दो पडवा के उपवास जघन्य:-५० एकासन उपर्युक्त विधि के अनुसार उपवासों के स्थान पर दुगुने एकाशन करें।	पञ्चकल्याणक	सद्भावना प्रदायक
भाद्र,माघ,चैत्रमाह की शुक्ल ५ से ९तक	पुष्पांजलि	५ वर्ष	पञ्चमेरू	उत्तम ५ से ९वी तक ५ उपवास मध्यम ५,७,९का उपवास, ८,६का एकासन जघन्य ५,९,का उपवास ६,७,९का एकासन	पञ्चमेरु	सातिशय पुण्यदायक
अष्टमी	भक्तामर	१ वर्ष	भक्तामर	व्रत के दिन उपवास करें।	भक्तामर	असाध्यरोग निवारक
कोई भी तिथि	षट्रसी	छह माह	चौबीस तीर्थंकर	प्रथम माह दूध, दूसरे माह दही, तीसरे माह घी,चौथे माह तेल,पाचवें माह नमक छठे माह मीठा त्याग कर भोजन करें।	पञ्चपरमेष्ठी	इन्द्रियइच्छा निग्रह
चतुर्दशी	समवशरण	१ वर्ष	श्रीमण्डप पूजा	चतुर्दशी को उपवास करते हुए २४ उपवास	समवशरण	अतिशय पुण्य फल दायक
चतुर्दशी	सहस्रनाम	१००८ या ११ दिन	सहस्रनाम	उपवास, व्रत ८ एवं १४ के दिन करें। सहस्रनाम का पाठ अवश्य करें।	सहस्रनाम	सद्गुण प्रदायक
रोहिणी नक्षत्र	रोहणी व्रत	५ वर्ष ९ दिने में ६७ उपवास	रोहिणी	रोहिणी नक्षत्र २७वें दिन आता है उस दिन उपवास करें। उत्तम:-८१ उपवास मध्यम : ६४ उपवास, जघन्य:३६ उपवास सामान्य : २७उपवास	पञ्चपरमेष्ठी	अतिशोक निवारक एवं उल्लासवर्धक
आषाढ़ शु.का प्रथम रविवार	रविव्रत	९ वर्ष	रविव्रत	आषाढ १ रविवार, श्रावण के ४ रविवार भाद्र ४ रविवार (१वर्ष में ९ रविवार करें) प्रथम विधि-प्रति रविवार को प्रोषधोपवास दूसरी विधि-आमिल(इमली-चावल)सेएकासन तीसरी विधि-एकबार का परोसा भोजन चतुर्थविधि-एकासन करना। शक्त्यानुसार विधिपूर्वक करें।	रविव्रत	मनोवांछित फल प्रदाता
अष्टमी	भक्तामर	१ वर्ष	भक्तामर	व्रत के दिन उपवास करें। अष्टमी एवं चतुर्दशी व्रत करते हुए ४८ दिन करें।	भक्तामर	संकट प्राकृतिक प्रकोप, महामारी असाह्य रोगादि निवारक

(व्रतों की जाप, जाप वाले चार्ट में देखें)

ध्वजस्थापना विधि

मन्त्र - शान्तिमन्त्र मण्डल-नवदेव मण्डल

यन्त्र - (१) विनायक यन्त्र (२) नवदेव यन्त्र

भक्तियाँ - (१) सिद्ध भक्ति (२) श्रुत भक्ति
(३) तीर्थंकर भक्ति

ध्वजस्थापन सावधानियाँ

१. ध्वजपीठिका मण्डल से लगभग १५ फुट की दूरी पर ढ़ाई से तीन फुट ऊँची तीन कटनी वाली होनी चाहिए।
२. ध्वजपीठिका भगवान् की वेदी के ठीस सामने हो।
३. ध्वजदण्ड लकड़ी का श्रेष्ठ होता है।
४. ध्वजदण्ड की ऊँचाई मण्डप से ऊँची रखें।
५. मंगलध्वज का कपड़ा मजबूत एवं सुन्दर होना चाहिए। ध्वज चौकोर एवं त्रिकोण दोनों प्रकार की तथा रंग केशरिया या पचरंगा हो सकता है।
६. ध्वज की लंबाई, चौड़ाई से डेढ़ गुनी (5 x 7.1/2) होना श्रेष्ठ है।
७. ध्वज पर स्वास्तिक बनायें।
८. ध्वज में सूती डोरी का ही उपयोग करें।
९. ध्वज के ऊपरी सिरे पर माला बाँधे एवं निचले सिरे को अच्छी तरह ध्वज डोरी से बाँधे।
१०. ध्वज में रजत पुष्पों का उपयोग करें।
११. ध्वजपीठिका को रंगोली से अलंकृत करें।
१२. ध्वजस्थल को चारों ओर से रस्सी या सांकल से सुरक्षित करें जिससे जूता चप्पल वहाँ तक न पहुँचे, जिससे वहाँ की शुद्धि बनी रहे।
१३. ध्वजस्थापन कर्ता सदाचारी व्यसन मुक्ती हो।
१४. ध्वजस्थापन कर्ता शुद्धधोती दुपट्टा पहिन कर ही पूजा एवं ध्वजा का कार्य करें।
१५. यदि ध्वज की दिशा प्रतिकूल हो तो शांति मन्त्र एवं विधान अनुष्ठान करें।
१६. ध्वजस्थापन कर्ता विधुर न हो।
१७. मांगलिक क्रियायें सौभाग्यवती स्त्री या कन्या से ही कराये।

विमल नित्य पाठावली

प्रतिष्ठाकारक लोक प्रभावक जुलूस की व्यवस्था बनाएँ, जिसमें ध्वजाएँ बैण्ड बाजे, कीर्तन पार्टी, इन्द्राणियाँ एव महिलाएँ मंगलकलश सिर पर रख कर चलें। विमान में जिनबिम्ब और विनायक सिद्धयन्त्र विराजमान करें और थाली में मंगलध्वज रखें।

जूलूस को श्री जैन मन्दिर से प्रारम्भ करें और यज्ञस्थल पर जावें। मंगलकार्य की निर्विघ्नता हेतु जुलूस में जिनबिम्ब के आगे प्रतिष्ठाचार्य रक्षामन्त्र पढ़ता हुआ पीले सरसों या पुष्प क्षेपण करते रहें। यज्ञस्थल पर शामयाना तथा चन्दोवा लगवाना आवश्यक है। श्री जिनबिम्ब एवं विनायक यन्त्र को उच्च स्थान पर विराजमान करें।

सर्वप्रथम मंगलाष्टक, पात्रशुद्धि, दिग्बन्धन, रक्षामन्त्र, शान्ति मन्त्राराधना कर यान्त्राभिषेक पूर्वक विनायक यन्त्र एवं नवदेव पूजा करें। तत्पश्चात् शान्ति मन्त्र का जाप करें एवं भक्तियाँ पढ़ें।

ध्वजभूमि-शुद्धि मन्त्र

ॐ ह्रीं महीपूतां कुरु कुरु हूं फट् स्वाहा।
(ध्वज चबूतरे के चारों ओर जल से शुद्धि करें)

क्षेत्रस्थित देवों से आज्ञा एवं आमन्त्रण

अहो धरायामिह ये सुराश्च क्षमन्तु यज्ञाधिकृतिं ददन्तु।
प्रीतिः पुराण बहुवासयोगात् क्षितावतोऽस्मद्धिनिवेदनं वः ॥२१५॥प्र.पा

ॐ अस्मिन्यक्षस्थाने स्थितदेवगणाः आज्ञप्रदानं कुर्युः विघ्ननिवारणार्थ अत्र आगच्छ आगच्छ।
(मंगलध्वज के स्थान पर पुष्पक्षेपण कर आज्ञा प्राप्त करके गोला भेंटकर आमन्त्रित करें।)
ॐ ह्रीं श्रीं क्षीं भूः स्वाहा। (पुष्प क्षेपण करें)

विहारकाले जगदीश्वराणा-मवाप्रसेवार्थकृतावदान।
हुत्वार्चितो वायुकुमारदेव ! त्वं वायुना शोधय यागभूमि् ॥६५०॥ प्र.ति.

भो वायुकुमारदेवगणाः ! सर्वविघ्नविनाशाय महीपूतां कुरु कुरु हूं फट् स्वाहा।

विहारकाले जगदीश्वराणा-मवाप्रसेवार्थ कृतावदान।
हुत्वार्चितो मेघकुमारदेव ! त्वं वारिणा शोधय यागभूमिम् ॥६५१॥प्र.ति.

भो मेघकुमारदेवगणाः सर्वविघ्नविनाशाय धरां प्रक्षालय प्रक्षालय अं हं सं तं पं झं यं क्ष्वीं क्षः भूः फट् स्वाहा।

गर्भान्वयादौ महिताद्विजेन्द्रै-र्निर्वाणसेवासु कृतावदान।
हुत्वार्चितो बह्निकुमारदेव ! त्वं ज्वालया शोधय यागभूमिम् ॥६५२॥प्र.ति.

भो अग्निकुमारदेवगणा ! सर्वविघ्नविनाशाय भूमिं ज्वालय ज्वालय अं हं सं पं झं ठं यः क्षः फट् स्वाहा।

श्रीनज्जिनस्य जगदीश्वरराता-ध्वजस्य, मीनध्वजादि-रिपुजाल जलध्वजस्य।
तन्यासदर्शन-जनागमन-ध्वजस्य, चारोपणं विधिवदाविदधु ध्वजस्य ॥१॥प्र.ति.

ॐ ह्रीं श्रीं क्ष्रीं भूः स्वाहा विधियज्ञ-प्रतिज्ञायै पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

(ध्वजा स्थान पर पुष्प क्षेपण करें।) पश्चात् यन्त्र अभिषेक करके नवदेव पूजा करें।

ध्वजदण्ड शुद्धि एवं संस्कार

ज्ञानशक्तिमयी मत्वा ध्वज दण्डाग्रयूलिकां।
अनादिसिद्धमन्त्रेण स्नपनं ते करोम्यहम् ॥१३॥प्र.ति.अ.६

ॐ णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व साहूणं।

चतारि मंगलं-अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरंण पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि। ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अनादिसिद्धमन्त्रेभ्यो नमः पवित्रजलेन ध्वजदण्डशुद्धिं करोमि।

(प्रतिष्ठाकारक जल से शुद्धि करे। दर्शकगण ध्वजदण्ड पर पुष्प क्षेपण करें)

ध्वजदण्डाग्रभागस्थ-कोकिलात्रयवर्तिनः।
वेणुदण्डस्य तस्याग्रे बध्नामि ध्वजकूर्चिकाम् ॥१२॥ प्र.ति. अं.५

ॐ ह्रीं श्रीं ध्वजदण्डं मालामंगलसूत्रेण वेष्टयामि।

(ध्वजदण्ड को माला मंगल सूत्र से वेष्टित करें एवं स्वस्तिक बनावें)

ध्वजगर्तशुद्धि

जहाँ ध्वजदण्ड लगाना है, उस गर्त की जलादि द्रव्यों से शुद्धि करें।

ॐ ह्रीं नीरजसे नमः (जलं) ॐ ह्रीं शीलगन्धाय नमः (सुगन्धं)
ॐ ह्रीं अक्षताय नमः (अक्षतं) ॐ ह्रीं विमलाय नमः (पुष्पं)

ॐ ह्रीं दर्पमथनाय नमः (पुष्पं) ॐ ह्रीं ज्ञानोद्योताय नमः (पुष्पं)
ॐ ह्रीं श्रुतधूपाय नम) (पुष्पं) ॐ ह्रीं अमीष्ट-फलप्रदाय नमः (पुष्पं)
ॐ ह्रीं परमसिद्धाय नमः (पुष्पं)
ॐ ह्रीं ध्वजदण्डगर्ते पञ्चरत्नहिरण्यस्वस्तिकादि-स्थापनं करोमि।

(गर्त में चाँदी का स्वस्तिक, पञ्चरत्न, पारद, डाले)

मंगलकलश स्थापन

अभिनवनवकुम्भान् पुण्यतीर्थाम्बुपूर्णान्।
विधिवदिह निवेश्याभ्यर्च्य पुण्यध्वजाग्रे॥
कलशनिकटदेशे सर्वतः स्थापयामि।
प्रकृतजयनयोग्यं मंगलद्रव्यजालम् ॥१८७॥प्र.ति.अ.१८७

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते पद्म-महापद्तिगिच्छकेशरिमहापुण्डरीक-पुण्डरीक गंगासिन्धु-रोहिद्रोहितास्या-हरिद्धरिकान्तासीतासीतोदा-नारीनरकान्ता-सुवर्णरूप्यकूला-रक्तारक्तोदाः क्षीराम्भोधिजलं स्वर्णघटप्रक्षिप्तं सर्वगन्ध-पुष्पाढ्यमोदकं पवित्रं कुरु कुरु झौं झौं वं वं मं मं हं हं तं तं पं पं पं स्वाहा जलाभिमन्त्रणाम्। (जल के छींटे लगाकर कलश शुद्धि करके मन्त्रोच्चारण कर कलश स्थापित करें।)

ॐ ह्रीं स्वस्ति-विधानाय मंगलकलश-स्थापनं करोमि।

दीपक स्थापन

रुचिरदीप्तिकरं शुभदीपकं सकललोकसुखाकरमुज्ज्वलम्।
तिमिर-जालहरं प्रकरं सदा किल धरामि सुमंगलकं मुदा॥

ॐ ह्रीं अज्ञानतिमिरहरं दीपकं स्थापयामि।

ध्वजस्थापन मन्त्र

तदग्रदेशे ध्वजदण्डमुच्चै-र्भास्वद्धिमानं गमनाद्धिरुन्धत्।
निवेश्य लग्ने शुभभोपदेश्ये महत्पताकोच्छ्रयणं विदध्यात् ॥३१८ प्र.

ॐ ह्रीं अर्ह जिनसासनपताके सदोच्छ्रिता तिष्ठ तिष्ठ भव भव वषट् स्वाहा।

रत्नत्रयात्मकतयाभिमतेऽत्रदण्डे, लोकत्रयप्रकृतकेवलबोधरुपम्।
संकल्प्य पूजितामिदं ध्वजमर्च्यलग्ने, स्वारोपयामि सति मंगलवाद्यघोषे।

ॐ णमो अरिहंताणं स्वस्ति भद्रं भवतु। सर्वलोकशान्तिर्भवतु स्वाहा।

ध्वजश्च तूर्यसंघेषु तंत्र संयोज्य संध्वजम्।
ध्यात्वा सर्वगतज्ञान - रूपमर्घेण मानयेत् ॥६६॥

ॐ ह्रीं जिनशासन-पताका-सर्वारिष्ट-निवारणाय अर्घ्य निर्व. स्वाहा ।

स जयतु जिनधर्मो यावदाचन्द्र-तारं व्रत-नियम-तपोभिर्वर्धतां साधुसंघः ।
अहरहरभिवृद्धिं यान्तु चैत्यालयास्ते तदधिकृतजनानां क्षेममारोग्यमस्तु

(प्रतिष्ठाकारक, प्रतिष्ठाचार्य एवं दर्शकगण ध्वजा पर पुष्प क्षेपण करे एवं वाद्यघोष के साथ ध्वज की परिक्रमा करे पश्चात ध्वज गीत पढ़े)

शांति भक्ति शांत पाठ पढकर विसर्जन करें ।

जापमाला शुद्धि विधि

मन्त्र-ॐ ह्रीं रत्नैः सुवर्ण सूत्रैर्बीजैर्या रचित जापमालिका सर्वजपेषु सर्वाणि वाञ्छितानि प्रयच्छतु ।

विधि-अभिषेक पीठ पर नव-निर्मित माला रखें । एक थाली पर केसर से 卐 बनाकर माला को उस पर रख दे । शुद्ध उच्चारण पूर्वक उपर्युक्त मन्त्र ७ बार पढ़कर दोनों हाथों से लवंग अथवा केसर से रंगे चावल (पुष्प) का क्षेपण करें । माला को इस प्रकार प्रतिष्ठित करके भूमि आदि पर न रखें ।

कदाचित् अशुद्ध हो जाए तो गंधोदक द्वारा पवित्र कर लें ।

मंगलकलश स्थापनामंत्र

ॐ अद्य भगवतों महापुरुषस्य श्रीमदादिब्रह्मणो मतेऽस्मिन् विधीयमाने महोत्सवकर्मणि । ....वीरनिर्वाण संवत्सरे, ...मासे, ...पक्षे, ...तिथौ, ...दिने, ...लग्ने, भूमिशुद्ध्यर्थं, पात्रशुद्ध्यर्थं, शान्त्यर्थं पुण्याहवाचनार्थं नवरत्नगन्ध-पुष्पाक्षतरीफलादिशोभितं शुद्धप्रासुकतीर्थजलपूरितं मंगल कलशस्थापनं करोमि श्रीं क्ष्वीं क्ष्वीं हंसः स्वाहा ।

नोट : - यह पढ़कर मण्डल के उत्तर कोने में जल, अक्षत, पुष्प, हल्दी, सुपारी, सवा रुपया, श्रीफल और पुष्पमाला सहित मंगलकलश श्रावक द्वारा स्थापित कराया जावे । इस कलश को पुण्याहवाचन कलश भी कहते हैं ।

तीर्थंकर कल्याणक दर्पण

क्र. तीर्थंकरों के नाम	गर्भ	जन्म	तप	केवलज्ञान	मोक्ष	मोक्षस्थल
१. वृषभनाथ	आषाढ़ वदी२	चैत्रवदी ९	चैत्र वदी ९	फाल्गुनवदी ११	माघ वदी १४	कैलाशपर्वत
२. अजितनाथ	ज्येष्ठ वदी ३०	माघ सुदी १०	माघ सुदी ९	पोष सुदी ११	चैत्र सुदी ४	सम्मेदशिखर
३. संभवनाथ	फाल्गुन सुदी ८	कार्तिक सुदी १५	मार्ग सुदी १५	कार्तिक वदी ४	चैत्र सुदी ६	सम्मेदशिखर
४. अभिनंदननाथ	वैशाख सुदी ६	माघ सुदी १२	मार्ग सुदी १२	पौष सुदी १४	वैशाख सुदी ६	सम्मेदशिखर
५. सुमतिनाथ	श्रावण सुदी २	चैत्र सुदी ११	वैशाख सुदी ९	चैत्र सुदी ११	चैत्र सुदी ११	सम्मेदशिखर
६. पद्मप्रभ	माघ वदी ६	कार्तिक वदी १३	कार्तिक वदी १३	चैत्र सुदी १५	फाल्गुनवदी ४	सम्मेदशिखर
७. सुपार्श्वनाथ	भाद्रपद सुदी ६	ज्येष्ठ सुदी १२	ज्येष्ठ सुदी १२	फाल्गुन वदी ६	फाल्गुन वदी ७	सम्मेदशिखर
८. चन्द्रप्रभ	चैत्र वदी ५	पौष वदी ११	पौष वदी ११	फाल्गुन वदी ७	फाल्गुन सुदी ७	सम्मेदशिखर
९. पुष्पदन्त	फाल्गुन वदी ९	मगसिर सुदी १	मगसिर सुदी १	कार्तिक सुदी २	भाद्र सुदी ८	सम्मेदशिखर
१० शीतलनाथ	चैत्र वदी ८	माघ वदी १२	माघ वदी १२	पौष वदी १४	आश्विन सुदी ८	सम्मेदशिखर
११ श्रेयांसनाथ	ज्येष्ठ वदी ६	फाल्गुन वदी ११	फाल्गुन वदी ११	माघ सुदी ३०	श्रावणसुदी १५	सम्मेदशिखर
१२ वासुपूज्य	आषाढ़ वदी ६	फाल्गुन वदी १४	फाल्गुन वदी १४	माघ सुदी २	भादो सुदी १४	चम्पापुरी
१३ विमलनाथ	ज्येष्ठ वदी १०	माघ सुदी ४	माघ सुदी ४	माघ वदी ८	आषाढ़ वदी ६	सम्मेदशिखर
१४ अनन्तनाथ	कार्तिक वदी १	ज्येष्ठ वदी १२	ज्येष्ठ वदी १२	चैत्र वदी ३०	चैत्र वदी ३०	सम्मेदशिखर
१५ धर्मनाथ	वैशाख सुदी ८	माघ सुदी १३	माघ सुदी १३	पौष सुदी १५	ज्येष्ठ सुदी ४	सम्मेदशिखर
१६ शान्तिनाथ	भाद्र वदी ७	ज्येष्ठ वदी १४	ज्येष्ठ वदी १४	पौष सुदी १०	ज्येष्ठ वदी १४	सम्मेदशिखर
१७ कुन्थुनाथ	श्रावण वदी १०	वैशाख सुदी १	वैशाख सुदी १	चैत्र सुदी ३	वैशाख सुदी १	सम्मेदशिखर
१८ अरनाथ	फाल्गुन सुदी ३	मगसिर सुदी१४	मगसिर सुदी१०	कार्तिकसुदी १२	चैत्र वदी ३०	सम्मेदशिखर
१९ मल्लिनाथ	चैत्र सुदी १	मगसिर सुदी ११	मगसिर सुदी ११	पौष वदी २	फाल्गुन सुदी ५	सम्मेदशिखर
२० मुनिसुव्रतनाथ	श्रावण वदी २	वैशाख वदी १०	वैशाख वदी १०	वैशाख वदी ९	फाल्गुनवदी १२	सम्मेदशिखर
२१ नमिनाथ	आश्विन वदी २	आषाढ़ वदी १०	आषाढ़ वदी १०	मगसिर सुदी ११	वैशाख वदी १४	सम्मेदशिखर
२२ नेमिनाथ	कार्तिक सुदी ६	श्रावण सुदी ६	श्रावण सुदी ६	आश्विन सुदी १	आषाढ़ सुदी ७	गिरनार जी
२३ पार्श्वनाथ	वैशाख वदी २	पौष वदी ११	पौष वदी ११	चैत्र वदी ४	श्रावण सुदी ७	सम्मेदशिखर
२४ महावीर	आषाढ़ सुदी ६	चैत्र सुदी १३	मगसिर वदी १०	वैशाख सुदी १०	कार्तिक वदी १५ या १४	पावापुरी

व्रतों की जाप

अक्षय फल दशमी, मेघ माला, कवलचन्द्रायण, आदिनाथ निर्वाण, आदिनाथ ज्ञानाचार, अक्षय तृतीया, मुकुट सप्तमी व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय नमः ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय नमः ।

वचनगुप्ति व्रत, कर्म निर्जरा व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री अजितनाथ तीर्थंकराय नमः ।

कर्म निर्जरा व्रत

१. ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनाय नमः । २. ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानाय नमः ।

३. ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्राय नमः । ४. ॐ ह्रीं सम्यक्तपसे नमः ।

कर्म निर्झर व्रत

१. ॐ ह्रीं द्वादश मिथ्यानिवारण हराय भगवज्जिनाय नमः ।

२. ॐ ह्रीं द्वादश तप धारकाय भगवज्जिनाय नमः ।

३. ॐ ह्रीं द्वादश भावना चिन्तक भगवज्जिनाय नमः ।

कर्म दहन व्रत - समुच्चय व्रत

ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा अनाहूत विधायै नमः ।

कलशदशमीव्रत, मुक्तावली (लघु), कांजी बारस व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय नमः ।

कल्याणमाला व्रत, कन्दर्प व्रत, मोक्षसप्तमी व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः ।

कल्याण मन्दिर व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं कमठोपद्रवजित पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः ।

कृष्ण पञ्चमी व्रत, आकाश पञ्चमी, विनय व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय नमः ।

गरुड़ पञ्चमी व्रत

ॐ ह्रीं अर्हं अर्हद्भ्यो नमः ।

विनय व्रत

णमोकार मन्त्र

चन्दनषष्ठी व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय नमः ।

चारित्र शुद्धि व्रत

ॐ ह्रीं श्री अ सि आ उ सा चारित्र शुद्धि व्रतेभ्यो नमः ।

तत्त्वार्थसूत्र व्रत

ॐ ह्रीं श्री जिन मुखोद्भव-द्वादशांग-सारभूत श्री तत्त्वार्थसूत्राय नमः ।

तीन चौबीसी व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री त्रिकालवर्ती चतुर्विंशति-तीर्थंकरेभ्यो नमः ।

दशलक्षण व्रत

ॐ ह्रीं अर्हन्मुख-कमल-समुद्गताय-उत्तम क्षमादि-दशलक्षण-धर्मेभ्यो नमः ।

वीरशासन जयंती व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री महावीराय नमः ।

महावीर जयंती व्रत, दीपावली व्रत, त्रिलोक भूषणव्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री महावीर जिनेन्द्राय नमः ।

लब्धि विधान व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री महावीर स्वामिने नमः ।

अनंत चतुर्दशी व्रत

ॐ ह्रीं अर्हं हं सः अनन्त केवलिने नमः ।

विनयसम्पन्नता व्रत

ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नताभावनायै नमः ।

प्रत्याख्यान व्रत

णमोकार मन्त्र

रक्षाबन्धन व्रत

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार मुनिभ्यो नमः ।

रोहिणीव्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय नमः ।

रविव्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं श्री पार्श्वनाथाय नमः ।

रोटतीज व्रत

ॐ ह्रीं वृषभादि महावीर पर्यंत चतुर्विंशति तीर्थंकर अ सि आ उ सा नमः स्वाहा ।

ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं अर्हं श्री वृषभनाथ - तीर्थंकराय नमः ।

फलदशमी व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय नमः ।

त्रिलोकतीज व्रत

ॐ ह्रीं त्रिलोक सम्बन्धि-अकृत्रिम-जिनचैत्यचैत्यालयेभ्यो नमः ।

चतुरशीति व्रत, गणधर वलय व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं चतुर्विंशति गणधरेभ्यो नमः ।

षट्रसी व्रत, नित्यरसी व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री वृषभादि वीरान्तेभ्यो नमः ।

कल्याण तिलक व्रत

ॐ ह्रीं अर्हं श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्रेभ्यो नमः ।

समकित चौबीसी व्रत, नित्यसौभाग्य व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री वृषभादि चतुर्विंशतिजिनेन्द्राय नमः ।

सूतक परिहार व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री वृषभादि चतुर्विंशति-तीर्थंकरेभ्यो नमः ।

पञ्चाणु व्रत

ॐ ह्रीं श्री क्लीं अर्हं चतुर्विंशति तीर्थंकरेभ्यो नमः ।

समाधि विधान व्रत

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अनाहत विद्यायै नमः ।

अक्षय सुख दशमी व्रत, माघमाला व्रत

ॐ ह्रीं अर्हं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यो नमः ।

सर्वदोष परिहार व्रत

ॐ ह्रीं अर्हं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यो नमः ।

ज्ञानसाम्राज्य व्रत

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यो नमः ।

रस परित्याग व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यो नमः ।

भावना पच्चीसी व्रत

ॐ ह्रीं अर्हं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधु पञ्च परमेष्ठिभ्यो नमः ।

धूप दशमी व्रत, सुगंध दशमी व्रत (मासिक), जीवदयाष्टमी व्रत, सौभाग्यदशमी व्रत,क्लश दशमी व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय नमः ।

सुगंध दशमी व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय नमः ।

क्षमावाणी व्रत

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मेभ्यो नमः ।

रत्नत्रय व्रत

ॐ ह्रीं अर्हं सम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्रेभ्यो नमः ।

सोलहकारण व्रत

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि-षोडशकारणेभ्यो नमः ।

सकलसौभाग्य व्रत, चूडामणि व्रत, अज्ञानमिथ्यात्व निवारण व्रत

ॐ ह्रीं अर्हं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधु जिन धर्म जिनागम जिन चैत्य-चैत्यालयेभ्यो नमः ।

नंदीश्वर द्वीप व्रत, अष्टान्हिका व्रत

ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपे-द्वापञ्चाशतजिनालयस्थ जिनेभ्यो नमः ।

कल्याण मन्दिर व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं कमठोपद्रवजित पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः ।

गणधर वलय व्रत, समाधि विधानव्रत

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा, अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौ.झ्रौ. नमः अनाहत विद्यायै नमः ।

निती सागर व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री संभवनाथ जिनेन्द्राय नमः ।

पुष्पांजलि व्रत

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुस्थ असीति जिनालयस्थ जिनेभ्यो नमः ।

सहस्रनाम व्रत

ॐ ह्रीं मदष्टाधिकसहस्र-नामधारक-जिनेन्द्राय नमः ।

समवशरण व्रत

ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनाय सकलगुण करण्डाय श्री सर्वज्ञाय अर्हत्परमेष्ठिने नमः ।

स्त्रीवेद निवारण व्रत, आर्तध्यान निवारण व्रत, निर्णय व्रत

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय नमः ।

श्रुतपंचमी व्रत

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतवस्याद्वाद- नमय-गर्भित द्वादशांग-श्रुतज्ञानाय नमः ।

सरस्वती व्रत

ॐ ह्रीं स्याद्वाद वाग्वादिनी सरस्वत्यै: नमः ।

णमोकार पैंतीसी व्रत

णमोकार मन्त्र

भक्तामर व्रत

ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं अर्हं श्री वृषभनाथ तीर्थंकराय नमः ।

चौसठ ऋद्धि व्रत की जाप

ॐ ह्रीं केवलज्ञान ऋद्धिधारक मुनीन्द्रेभ्यो नमः ।

(ॐ ह्रीं.........ऋद्धिधारक मुनीन्द्रेभ्यो नमः । आदि सभी में लगाकर जाप करना है)

१. केवलज्ञान	१७. प्रवादित्य	३३. वचनबल	४९. आमर्शौषधि
२. मनः पर्ययज्ञान	१८. अष्टांगमहानिमित्त	३४. कायबल	५०. सर्वौषधि
३. अवधिज्ञान	१९. जंघाचारण	३५. कामरुपित्व	५१. आशीविष
४. कोष्ठस्थधान्योपम	२०. अग्निशिखाचारण	३६. वशित्व	५२. दृष्टिविष
५. बीजबुद्धि	२१. श्रेणीचारण	३७. ईशत्व	५३. क्ष्वेलौषधि
६. संभिनं संश्रोतृत्व	२२. फलचारण	३८. प्राकाम्य	५४. विडौषधि
७. पदानुसारणी बुद्धि	२३. जलचारण	३९. अन्तर्धान	५५. जल्लौषधि
८. दूर स्पर्शन	२४. तन्तुचारण	४०. आप्ति	५६. मलौषधि
९. दूरश्रवण	२५. पुष्पचारण	४१. अप्रतिघात	५७. आशीविषरस
१०. दूरास्वादन	२६. बीजांकुरचारण	४२. दीप्ति	५८. दृष्टिविषरस
११. दूरघ्राण	२७. नभचारण	४३. तप्त	५९. क्षीरस्रावी
१२. दूरावलोकन	२८. अणिमा	४४. महोग्रतप	६०. घृतस्रावी
१३. प्रज्ञाश्रमत्व	२९. महिमा	४५. घोरतप	६१. मधुस्रावी
१४. प्रत्येक बुद्धि	३०. लघिमा	४६. घोरपराक्रम	६२. अमृतस्रावी
१५. दशपूर्वत्व	३१. गरिमा	४७. महाघोर	६३. अक्षीणसंवास
१६. चतुर्दशपूर्वत्व	३२. मनोबल	४८. अघोरब्रह्मचर्य	६४. अक्षीण महानस

श्रावक प्रतिक्रमण

हे जिनेन्द्र देव ! हे देवाधिदेव ! हे वीतरागी सर्वज्ञ हितोपदेशी ! अरिहन्त प्रभु ! मैं पापों के प्रक्षालन के लिए, पापों से मुक्त होने के लिए, आत्म उत्थान के लिए, आत्म जागरण के लिए, प्रतिक्रमण करता हूँ। (इस प्रकार प्रतिज्ञा करके एक आसन से बैठकर प्रतिक्रमण प्रारम्भ करें।)

समता में सर्वभूतेषु, संयमः शुभभावना।
आर्तरौद्र परित्याग स्तद्धि प्रतिक्रमणं मतं ॥

सब जीवों पर साम्यभाव धारण करके शुभ भावनापूर्वक संयम पालते हुए, आर्त-रौद्र ध्यान का त्याग प्रतिक्रमण कहलाता है।

पापी, दुरात्मा, जड़बुद्धि, मायावी, लोभी और रागद्वेष से मलिन चित्तवाले मैंने जो दुष्कर्म किया है। हे तीन लोक के अधिपति ! हे जिनेन्द्र देव ! निरंतर समीचीन मार्ग पर चलने की इच्छा करने वाला मैं, आज आपके पादमूल में निन्दापूर्वक उसका त्याग करता हूँ।

हाय ! मैंने शरीर से दुष्ट कार्य किया हो, हाय ! मैंने मन से दुष्ट विचार किया हो, हाय ! मैंने मुख से दुष्ट वचन बोला हो, उसके लिए मैं पश्चाताप करता हुआ भीतर ही भीतर जल रहा हूँ।

निन्दा और गर्हा से युक्त होकर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव पूर्वक किये गये आपराधों की शुद्धि के लिए मैं मन, वचन और काय से प्रतिक्रमण करता हूँ।

समस्त संसारी जीवों की सर्व योनियाँ (जातियाँ) चौरासी लाख हैं एवं सर्व संसारी जीवों सर्व कुल एक सौ साढ़े निन्यानवें (१९९.५) लाख करोड़ होते हैं, इनमें अवस्थित जीवों की विराधना की हो एवं इनके प्रति होने वाले राग-द्वेष से जो पाप लगे हो, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥** (तत्संबंधी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो)

जो एकेन्द्रिय, द्वीन्दिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय तथा पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक जीव हैं इनका जो उत्तापना, परितापन विराधना और उपघात किया हो, कराया हो, और करने वाले की अनुमोदना की हो-**तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

सूक्ष्म, बादर पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त जीवों में से किसी भी जीव की

विराधना की हो **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

हे दया के सागर ! मूल गुणों के अन्तर्गत मद्य त्याग व्रत में मर्यादा के बाहर अचार, मुरब्बा आदि सर्व प्रकार के सन्धानों का २ दिन व रात्रि व्यतीत हुए दही, छाछ एवं काँजी आदि का, आसवों एवं अर्कों का तथा भांग, नागफेन, धतूरा, पोस्ते का छिलका, चरस, गांजा आदि नशीले पदार्थों का स्वयं सेवन किया हो, कराया हो या सेवन करने वालों की अनुमोदना की हो तथा अन्य और भी जो अतिचार-अनाचार जन्य दोष लगे हो, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

हे करुणा के सागर ! मूल गुणों के अन्तर्गत मांस त्याग व्रत में चमड़े के बेल्ट, पर्स, जूता, चप्पल, घड़ी का पट्टा आदि का स्पर्श हो गया हो, चमड़े से आच्छादित अथवा स्पर्शित हींग, घी, तेल एवं जल आदि का, अशोधित भोजन का, जिसमें त्रस जीवों का संदेह हो ऐसे भोजन का बिना छाना हुआ अथवा विधि पूर्वक दुहरे छन्ने (वस्त्र) से नहीं छाना गया घी, दूध, तेल एवं जल आदि का, सड़े और घुने हुए अनाज आदि का, शोधन विधि से अनभिज्ञ साधर्मी या शोधन विधि से अपरिचित विधर्मी के हाथ से तैयार हुए भोजन का, बासा भोजन का, रात्रि भोजन का, चलित रस पदार्थों का, बिना दो फाड़ किये काजू, पुरानी मूंगफली, सेमफली आदि का, अमर्यादित दूध, दही, छाछ आदि पदार्थ का स्वयं सेवन किया हो, कराया हो, करने वालों की अनुमोदना की हो, तज्जन्य आदि जो भी अतिचार-अनाचार दोष लगे हों **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

हे परमपिता परमात्मा ! मूल गुणों के अन्तर्गत मधुत्याग व्रत में हरे औषधि के निमित्त मधु का, फूलों के रसों का, एवं गुलकन्द आदि का स्वयं सेवन किया हो, कराया हो, करते हुए अनुमोदना की हो, तज्जन्य अन्य जो भी अतिचार अनाचार, दोष, लगे हो **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

हे नित्य निरंजन देव ! मूलगुणों के अन्तर्गत जीवदया व्रत पालन में प्रमाद किया हो, अज्ञान रखा हो, अंगोपांग छेदन किया हो, कराया हो या करते हुए अनुमोदना की हो तज्जन्य जो भी दोष लगे हों, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

जुआ, मांस, मदिरा, शिकार, वैश्यागमन, चोरी, और परस्त्री गमन इन सप्तव्यसन सेवन में जो पाप लगा हो **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

देव दर्शन पूजन, साधु उपासना वैयावृत्ति, स्वाध्याय, संयम पालन, इच्छायें सीमित करना और अर्जित संपत्ति का सदुपयोग (दान देना) षडावश्यक पालन में अतिचार

पूर्वक जो भी दोष लगे हों, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

राज कथा, चोर कथा, स्त्री कथा और भोजनकथा करने से जो पाप लगे हों, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

जीवों को सताने वाला दुष्ट मन, दुष्ट विचार और दुष्ट काय से तीन दण्ड, माया, मिथ्या और निदान, तीन शल्य और शब्द गारव, ऋद्धि गारव और सात गारव द्वारा जो पाप लगे हों, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग इन पाँचों कारणों द्वारा जो बन्ध हुआ हो, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञाओं के द्वारा पाप बन्ध हुआ हो, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

इहलोक भय, लोक भय, मरणभय, वेदनाभय, अगुप्तिभय, अरक्षकभय अकस्मात भय द्वारा जो पापबंध हुआ हो, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

स्थूल हिंसा विरति व्रत का पालन करते हुए जीवों को मारा हो, आंगोपांग छेदे हों, अधिक बोझ लादा हो एवं अन्न पान का निरोध किया हो, इत्यादि अनेक दोष कृत, कारित, अनुमोदना से किया हो, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

स्थूल असत्य विरति व्रत का पालन करते हुये मिथ्या उपदेश देने का, एकांत में कही हुई बात का प्रगट कर देने से, झूँठा लेख लिखने से, तथा किसी की इंगित चेष्टा से अभिप्राय समझ कर भेद प्रकट कर देने से जो दोष, मन, वचन, काय एवं कृत, कारित, अनुमोदना से लगे हो **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

स्थूल अब्रह्मविरति व्रत पालन करने में व्यभिचारिणी स्त्री के साथ आने-जाने का व्यवहार रखा हो। कुमारी, विधवा एवं सधवा आदि अपरिगृहीत स्त्रियों के साथ आने-जाने या लेन-देन का व्यवहार रखा हो, काम सेवन के अंगों को छोड़कर दूसरे अंगों से कुचेष्टाएँ की हों, काम के तीव्र वेग से वीत्स विचार बने हों और मन-वचन-काय और कृत, कारित, अनुमोदना से अन्य पुत्र-पुत्रियों का विवाह किया हो, इस प्रकार जो भी दोष लगे हों, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

स्थूल-परिग्रह-परिमाण व्रत में, मन, वचन, काय एवं कृत, कारित, अनुमोदना से जमीन और मकान आदि के प्रमाण का उल्लंघन किया हो, गाय, बैल आदि धन, अनाज आदि धान, दासी-दास, चाँदी-सोना, वस्त्र एवं बर्तन आदि के प्रमाण का

उल्लंघन किया हो तो तज्जन्य जो भी दोष लगे हों, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप)

दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थ दण्डविरति व्रत ये तीन गुणव्रत और भोग परिभोग परिमाण व्रत, अतिथिसंविभाग व्रत, समाधि मरणव्रत ये चार शिक्षाव्रत रुप बारह व्रतों में जो दोष लगे हों, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

पाँच इन्द्रियों और मन को वश में न करने से जो पाप लगे हो, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

मोह के वशीभूत होकर अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम वस्त्र एवं स्त्रियों को आकर्षित करने वाला शरीर का श्रृंगार किया हो, राग के उद्रेक से हँसी युक्त अशिष्ट वचनों का प्रयोग किया हो, परस्पर प्रीति से रहने वालों के बीच द्वेष किया हो, तज्जन्य जो दोष लगे हों, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

तप और स्वाध्याय से हीन असम्बद्ध प्रलाप करने में, अन्यथा पढ़ने-पढ़ाने से, एवं अन्यथा ग्रहण (सुनने) करने से दोष लगे हों, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका की किसी भी प्रकार से निन्दा की हो, कराई हो, सुनाई हो इससे जो पाप लगे हो, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

साधुओं व साधर्मियों से कटुवचन बोला हो एवं आहार दान देने में प्रवाह करने दोष लगे हों, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

देव-शास्त्र-गुरु की अविनय एवं असादना से जो पाप लगे हों, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

पाश्चात्य वेशभूषा का उपयोग कर, टी.वी. आदि देखकर एवं उपन्यास आदि पढ़कर शील में जो दोष लगे हों, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

उच्च कुलों को गर्हित कुल बनाने में कृत कारित अनुमोदना से संयोग देने में जो पाप लगे हों, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

चलने-फिरने, शरीर के हिलने-हिलाने, उठने-बैठने, छींकने-खांसने, सोने-जम्हाई लेने और मार्ग में चलने-चलाने में, बिना देखे तथा जाने-अन्जाने में जो दोष लगें हों, **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

किसी भी जीव को मैंने दबा दिया हो, कुचल दिया हो, भयभीत कर दिया हो, त्रास दिया हो, वेदना पहुँचाई हो, छेदन, भेदन कर दिया हो, अन्य किसी प्रकार से, वेदना पहुँचाई हो **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं ॥**

जाने-अनजाने में और जो भी दोष लगे हों **तस्स-मिच्छा मे दुक्कडं** ॥

हे प्रभु ! मेरा किसी के भी साथ राग नहीं, द्वेष नहीं, बैर नहीं तथा क्रोध, मान, माया, लोभ नहीं है, अपितु सर्व जीवों के प्रति उत्तम क्षमा है ।

हे परमात्मा जब तक मोक्षपद की प्राप्ति न हो, तब तक भव-भव में मुझे शास्त्रों के पठन-पाठन का अभ्यास जिनेन्द्र पूजा, निरन्तर श्रेष्ठ पुरुषों की संगति, सच्चरित्र सम्पन्न पुरुषों के गुणों की चर्चा, दूसरों के दोष कहने में मौन, सभी प्राणियों के प्रति प्रिय और हितकारी वचन एवं आत्मकल्याण की भावना ये सब वस्तुएँ प्राप्त होती रहे ।

हे जिनेन्द्र ! मुझे जब तक मोक्ष की प्राप्ति न हो, तब तक आपके चरण मेरे हृदय में और मेरा हृदय आपके चरणों में लीन रहें ।

हे भगवान ! मेरे दुःखों का क्षय हों, तथा मेरा हृदयच कर्मों का नाश हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, शुभ गति हो, सम्यक्दर्शन की प्राप्ति हो, समाधिमरण हो और श्री जिनेन्द्र देव के गुणों की प्राप्ति हो, ऐसी मेरी भावना है, ऐसी मेरी भावना है, ऐसी मेरी भावना है ।

क्षमा प्रार्थना

किया अपराध जो मैंने, तुम्हारे जाने-अनजाने ।
क्षमा करना सभी मुझको, क्षमा करना सभी जन को ॥
सभी से मित्रता मेरी, किसी से बैर न मेरा ।
यही है भावना मेरी, जिनेश्वर हो कृपा तेरी ॥
क्षमा करना-क्षमा करना, न दिल में रोष को धरना ।
शुद्ध दिल से क्षमा मागूँ, क्षमाभावों को धरता हूँ ॥
(उत्तम क्षमा, उत्तम क्षमा, उत्तम क्षमा)

विमल नित्य पाठावली

व्रत कथाएँ

1. श्री अनन्त व्रत कथा

नमो अनन्त अनन्त गुण, नायक श्री तीर्थेश।
कहूँ अनन्त व्रत की कथा, दीजे बुद्धि जिनेश।।

इसी जम्बूद्वीप के आर्यखण्डों में कौशल देश हैं। उसमें अयोध्या नगरी के पास पद्मखण्ड नाम का ग्राम था। उस ग्राम में सोम शर्मा नाम का एक अति दरिद्र ब्राह्मण अपनी सोमा नाम की स्त्री और बहुत-सी पुत्रियों सहित रहता था। वह विद्याहीन और दरिद्र होने के कारण भिक्षा मांगकर उदर-पोषण करता था, तो भी भरपेट खाने को नहीं मिलता था।

तब एक दिन अपनी स्त्री की सम्मति से उसने सहकुटुम्ब प्रस्थान किया तो चलते समय मार्ग में शुभ शकुन हुए अर्थात् सौभाग्यवती स्त्रियाँ सन्मुख मिली। कुछ और आगे चला तो क्या देखता है कि हजारों नर-नारी किसी स्थान को जा रहे हैं। पूछने से विदित हुआ कि वे सब अनन्तनाथ भगवान के समवोशरण में वंदना के लिये जा रहे हैं।

यह जानकर यह ब्राह्मण भी उनके पीछे हो लिया और समवोशरण में गया। वहाँ प्रभु की वन्दना कर तीन प्रदक्षिणा दी और नर कोठे में यथास्थान जा बैठा, जहाँ समवशरण में दिव्यध्वनि सुनकर उसे सम्यगदर्शन की प्राप्ति हुई।

पश्चात् चारित्र का कथन सुनकर उसने जुआ, मांस, मद्य, वैश्यासेवन, शिकार, चोरी और परस्त्रीसेवन यह सात व्यसन त्याग किये। पाँच उदम्बर और तीन मकार त्याग यह अष्ट मूलगुण भी धारण किये। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पांच पापों का एकदेश त्यागरूप अणुव्रत और तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत भी ग्रहण किये। इस प्रकार सम्यक्त्व सहित बारह व्रत लिये। पश्चात् कहने लगा-

हे नाथ ! मेरी दरिद्रता किस प्रकार से मिटेगी कृपा करके कहिये।

तब भगवान ने उसे अनन्त चौदस का व्रत करने को कहा। इस व्रत की विधि इस प्रकार है कि भादों सुदी 11 का उपवास कर 12 और 13 को एकासन करें अर्थात् एकासन से मौन सहित स्वाद रहित प्रासुक भोजन करें, सात प्रकार गृहस्थों के अन्तराय पाले, पश्चात् चतुर्दशी के दिन उपवास करें तथा चारों दिन ब्रह्मचर्य रखे, भूमि पर शयन करे, व्यापार आदि गृहारंभ न करे। मोहादि राग-द्वेष तथा क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्यादिक कषायों को छोड़े। सोना, चाँदी या रेशम सूत आदि का अनन्त बनाकर, इसमें प्रत्येक गाँठ पर 14 गुणों का चिन्तवन करके 14 गाँठ लगाना।

प्रथम गाँठ पर ऋषभनाथ भगवान से अनन्तनाथ भगवान तक 14 तीर्थंकरों के नाम उच्चारण करे।

दूसरी गाँठ पर सिद्धपरमेष्टी के लिए 14 गुणस्थानों का चिन्तवन करे। तीसरी पर 14 मुनि जो मतिश्रुत अवधिज्ञान युक्त हो गये हैं उनके नाम उच्चारण करे।

चौथी पर केवली भगवान के 14 अतिशय का स्मरण करे। पाँचवीं पर जिनवाणी में जो 14 पूर्व हैं उनका चिन्तवन करे।

छठवीं पर चौदह गुणस्थानों का विचार करे। सातवीं पर चौदह मार्गणाओं का स्वरूप विचारें।

आठवीं पर 14 जीवसमासों का विचार करे। नवमीं पर गंगादि 14 नदियों का नामोच्चारण करे। दशवीं पर तीन लोक जो 14 राजू प्रमाण ऊँचा है उसका विचार करे।

ग्यारहवीं पर चक्रवर्ती के चौदह रत्नों का चिन्तवन करे। बारहवीं पर 14 स्वर (अक्षर अ से औ तक) का चिन्तवन करे। तेरहवीं पर चौदह तिथियों का विचार करे। चौदहवीं गाँठ पर मुनि के मुख्य 14 दोष टालकर जो आहार लेते हैं उनका विचार करे। इस प्रकार 14 गाँठ लगाकर मेरु के ऊपर स्थापित प्रतिमा के सन्मुख इस अनन्त को रखकर अभिषेक करे। अनन्त प्रभु का पूजन करे फिर नीचे लिखा मंत्र 108 बार जपे-

1. मंत्र-ऊँ णमो भगवदो अरहदो अणंत सिज्झ-धम्मे भगवदो विज्झर महाविज्झर अणंते अणंतणाणे अणंत केवलणाणे अणंतकेवलदंसणे अणु पुज्जवासणे अणंतागम कैवलियै स्वाहा।

2. मंत्र-ऊँ अर्हं हं स: अनन्तकेवलिने नम:

इस प्रकार चारों दिन अभिषेक, जप और जागरण, भजन, पूजनादि करे। फिर पूनम के दिन उस अनन्त को दाहिनी भुजा पर या गले में बाँधे।

पश्चात् उत्तम, मध्यम या जघन्य पात्रों से जो समय पर मिल सकें उनको आहार आदि दान देकर आप पारणा करे। इस प्रकार 14 वर्ष तक करे। पश्चात् उद्यापन करे तब 14 प्रकार के उपकरण मंदिर में देवें। जैसे- शास्त्र, चमर, छत्र, चौकी आदि। चार प्रकार संघों को आमंत्रण करके धर्म की प्रभावना करे। यदि उद्यापन की शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे।

इस प्रकार श्रीमुख से व्रत की विधि और उत्तम फल सुनकर उस ब्राह्मण ने स्त्री सहित व्रत लिया तथा और भी बहुत लोगों ने यह व्रत लिया।

पश्चात् नमस्कार करके वह ब्राह्मण अपने ग्राम में आया और भाव सहित 14 वर्ष तक व्रत को विधियुक्त पालन करके उद्यापन किया। इससे दिनोंदिन उसकी बढ़ती होने लगी। इसके साथ रहने से और भी बहुत लोग धर्म-मार्ग में लग गये। क्योंकि लोग जब उसकी इस प्रकार बढ़ती देखकर उससे इसका कारण पूछते तो वह अनन्त व्रत आदि व्रतों की महिमा और जिनभाषित धर्म के स्वरूप का कथन कह सुनाता। इससे बहुत लोगों की श्रद्धा उस पर हो जाती और वे उसे गुरु मानने लगते।

इस प्रकार वह ब्राह्मण भले प्रकार सांसारिक सुखों को भोगकर अन्त में सन्यास मरण कर स्वर्ग में देव हुआ। उसकी स्त्री भी समाधि से मरकर उसी स्वर्ग में उसकी देवी हुई। वहाँ अपनी पूर्व-पर्याय का अवधि से विचारकर धर्म-ध्यान सेवन करके वहाँ से चये, सो वह ब्राह्मण जीव अनन्तवीर्य नाम का राजा हुआ और ब्राह्मणी उसकी पटरानी हुई।

ये दोनों दीक्षा लेकर अनन्तवीर्य तो इसी भव से मोक्ष को प्राप्त हुए और

श्रीमती स्त्रीलिंग छेदकर अच्युत स्वर्ग में देव हुई। वहाँ से चयकर मध्यलोक में मनुष्य भव धारण कर संयम ले मोक्ष जावेगी।

इस प्रकार एक दरिद्र ब्राह्मणी अनन्त व्रत पालन कर सद्गति को पाकर उत्तमोतम पद को प्राप्त हुई। यदि अन्य भव्य जीव यह व्रत पालेंगे तो वे भी सद्गति पावेंगे।

सोमशर्मा सोम सहित, अनन्त चौदश व्रत पाल।
लहो स्वर्ग अरु मोक्षपद, ते वदूँ त्रैकाल।।

2. आष्टाह्निका/नन्दीश्वर व्रत कथा

वन्दों पाँचों परमगुरु, चौबीसो जिनराज।
अष्टाह्निका व्रत की कहूँ, कथा सबहि सुखकाज।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र सम्बन्धी आर्यखण्ड में अयोध्या नाम का एक सुन्दर नगर है। वहाँ हरिषेण नाम का चक्रवर्ती राजा अपनी गन्धर्वश्री नाम की पट्टरानी सहित न्यायपूर्वक राज्य करता था। एक दिन बसंत ऋतु में राजा नगरजनों तथा अपनी 96000 रानियों सहित वनक्रीड़ा के लिए गया।

वहाँ निरापद स्थान में एक स्फटिक शिला पर अत्यंत क्षीणशरीरी महातपस्वी परम दिगम्बर अरिंजय और अमितंजय नाम के चारण मुनियों को ध्यानारूढ़ देखा। सो राजा भक्तिपूर्वक निज वाहन से उतरकर पट्टरानी आदि समस्तजनों सहित श्रीमुनियों के निकट बैठ गया और सविनय नमस्कार कर धर्म का स्वरूप सुनने की अभिलाषा प्रगट की। मुनिराज जब ध्यान कर चुके तो धर्मवृद्धि का आशीर्वाद दिया और पश्चात् धर्मोपदेश करने लगे। मुनिराज बोले- राजा ! सुनो, संसार में कितने लोग गंगादि नदियों में नहाने को, कोई कन्दमूलादि भक्षण को, कोई पर्वत से पड़ने में, कोई गया में श्राद्धादि पिंडदान करने में, कोई ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक की पूजा करने में, कालभैरों, भवानी, काली आदि देवियों की उपासना में धर्म मानते हैं अथवा नवग्रहादिकों के जप कराने और मस्तसाँडों सदृश कुतपस्वियों को दान देने में कल्याण

होना समझते हैं, परन्तु यह सब धर्म नहीं है और न इससे आत्महित होता है, किन्तु केवल मिथ्यात्व की वृद्धि होकर अनन्त संसार का कारण बन्ध ही होता है।

इसलिये परम पवित्र अहिंसा (दयामयी धर्म को धारणकर), जो समस्त जीवों को सुखदायी है ओर निर्ग्रन्थ मुनि (जो संसार विषय भोगों से विरक्त ज्ञान, ध्यान, तप में लवलीन हैं, किसी प्रकार का परिग्रह आडम्बर नहीं रखते हैं और सबको हितकारी उपदेश देते हैं) को गुरु मानकर उनकी सेवा वैयावृत्त कर, जन्म, मरण, रोग, शोक, भय, परिग्रह, क्षुधा, तृषा, उपसर्ग आदि सम्पूर्ण दोषों से रहित, वीतराग देव का आराधन कर, जीवादि तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान करके निजात्म तत्त्व को पहचान, यही सम्यग्दर्शन है। ऐसे सम्यग्दर्शन तथा ज्ञानपूर्वक सम्यक्-चारित्र को धारण करो, यही मोक्ष (कल्याण) का मार्ग है।

सातों व्यसनों का त्याग, अष्ट मूलगुण धारण, पंचाणु व्रत पालन इत्यादि गृहस्थों का चारित्र है और सर्व प्रकार आरम्भ, परिग्रह रहित द्वादश प्रकार का तप करना, पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति आदि का धारण करना, सो अठ्ठाइस मूलगुणों सहित मुनियों का धर्म है (चारित्र है)। इस प्रकार धर्मोपदेश सुनकर राजा ने पूछा- प्रभो ! मैंने ऐसा कौन-सा पुण्य किया है जिससे यह इतनी बड़ी विभूति मुझे प्राप्त हुई है। तब श्रीगुरु ने कहा कि इसी अयोध्या नगरी में कुबेरदत्त नामक वैश्य और उसकी सुन्दरी नाम की पत्नी रहती थी। उसके गर्भ से श्रीवर्मा, जयकीर्ति और जयचन्द ये तीन पुत्र हुए। श्रीवर्मा ने एक दिन मुनिराज को वन्दना करके आठ दिन का नन्दीश्वर व्रत किया और उसे बहुत काल तक यथाविधि पालन कर आयु के अन्त में संन्यास मरण किया, जिससे प्रथम स्वर्ग में महार्द्धिक देव हुआ। वहाँ असंख्यात वर्षों तक देवोचित्त सुख भोगकर आयु पूर्णकर चया, सो अयोध्या नगरी में न्यायी और सत्यप्रिय राजा चक्रबाहु की रानी विमलादेवी के गर्भ से तू हरिषेण नाम का पुत्र हुआ है और तेरे नन्दीश्वर व्रत के प्रभाव से नवनिधि, चौदह रत्न, छयानवें हजार रानी आदि चक्रवर्ती की विभूति यह छः खण्ड का राज्य प्राप्त हुआ है।

तेरे दोनों भाई जयकीर्ति और जयचन्द भी श्री धर्मगुरु के पास से श्रावक के

बारह व्रतों सहित उक्त नन्दीश्वर व्रत पालकर आयु के अन्त में समाधिमरण करके स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुए थे, सो वहाँ से चलकर हस्तिनापुर में विमल नामा वैश्य की साध्वी सती लक्ष्मीमती के गर्भ से अरिंजय, अमितंजय नाम के दोनों पुत्र हुए, सो वे दोनों भाई हम ही है। हमको पिताजी ने जैन उपाध्याय के पास चारों अनुयोग आदि सम्पूर्ण शास्त्र पढ़ाये और अध्ययन कर चुकने के अनंतर कुमारकाल बीतने पर हम लोगों के ब्याह की तैयारी करने लगे, परन्तु हम लोगों ने ब्याह को बंधन समझकर स्वीकार नहीं किया और बाह्याभ्यन्तर परिग्रह त्याग करके गुरु के निकट दीक्षा ग्रहण की, सो तप के प्रभाव से यह चारण ऋद्धि प्राप्त हुई है। यह सुनकर राजा बोला- हे प्रभु ! मुझे भी कोई व्रत का उपदेश करो। जब श्रीगुरु ने कहा कि तुम नंदीश्वर व्रत पालो और श्री सिद्धचक्र की पूजा करो। इस व्रत की विधि इस प्रकार है सो सुनो-

इस जम्बूद्वीप के आस-पास लवण समुद्रादि असंख्यात समुद्र और धातकी खण्डादि असंख्यात द्वीप एक-दूसरे को चूड़ी के आकार घेरे हुए दूने विस्तार को लिये हैं। उन सब द्वीपों में जम्बूद्वीप नाभिवत् सबके मध्य है। जम्बूद्वीप को आदि लेकर जो धातकी खण्ड पुष्करवर, वारुणीवर, क्षीरवर, घृतवर, इक्षुवर और नंदीश्वर द्वीप की प्रत्येक दिशा में एक अंजनगिरि, चार दधिमुख और आठ रतिकर इस प्रकार (13) तेरह पर्वत हैं। चारों दिशाओं के मिलकर सब 52 पर्वत हुए। इन प्रत्येक पर्वतों पर अनादि निधन (शाश्वत्) अकृत्रिम जिन भवन हैं और प्रत्येक मंदिर में 108 जिनबिंब अतिशययुक्त विराजमान हैं। ये जिनबिंब 500 धनुष ऊँचे हैं। वहाँ इन्द्रादि देव जाकर नित्य प्रति भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं। वहाँ मनुष्य का गमन नहीं होता इसलिये मनुष्य उन चैत्यालयों की भावना अपने-अपने स्थानीय चैत्यालयों में ही भाते हैं और नंदीश्वर द्वीप का मण्डल माँडकर वर्ष में तीन बार (कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ मास के शुक्ल पक्षों में ही अष्टमी से पूनम तक) आठ दिन पूजनाभिषेक करते हैं और आठ दिन व्रत भी करते हैं अर्थात् सुदी सातम से धारण करने के लिये नहाकर प्रथम जिनेन्द्र देव का अभिषेक पूजा करें, फिर गुरु के पास अथवा गुरु न मिले तो जिनबिंब के सन्मुख खड़े होकर व्रत का नियम करें।

सातम से पड़िमा तक ब्रह्मचर्य रखे। सातम को एकासन करें, भूमि पर शयन करें, सचित्त पदार्थों का त्याग करें। आठम को उपवास करें, रात्रि जागरण करें, मंदिर में मंडल माँडकर अष्टद्रव्यों से पूजा और अभिषेक करें, पंचमेरु की स्थापना कर पूजा करें, चौबीस तीर्थंकरों की पूजा जयमाला पढ़ें, नंदीश्वर व्रत की कथा सुनें और **'ऊँ ह्रीं नंदीश्वरसंज्ञाय नमः'** इस मंत्र का 108 बार जाप करें।

आठम के उपवास से दस लाख उपवासों का फल मिलता है। नवमी को सब क्रिया आठम के समान ही करना, केवल **'ऊँ ह्रीं अष्टमहाविभूतिसंज्ञाय नमः'** इस मंत्र की 108 जाप करें और दोपहर पश्चात् पारणा करें। इस दिन दस हजार उपवासों का फल होता है।

दशमी के दिन भी सब क्रिया आठम के समान ही करें। **'ऊँ ह्रीं त्रिलोकसार संज्ञाय नमः'** इस मंत्र की 108 जाप करें और केवल पानी और भात खावें। इस दिन के व्रत का फल साठ लाख उपवास के समान होता है।

ग्यारस के दिन भी सब क्रिया आठम के समान करें, सिद्धचक्र की त्रिकाल पूजा करें और **'ऊँ ह्रीं चतुर्मुखसंज्ञाय नमः'** इस मंत्र का 108 जाप करें और ऊनोदर (अल्प भोजन) करें।

इस दिन के व्रत से 50 लाख उपवास का फल होता है। बारस को भी सब क्रिया ग्यारस के ही समान करें और **'ऊँ ह्रीं पंचमहालक्षणसंज्ञाय नमः'** इस मंत्र का 108 जाप करें तथा एकासन करें। इस दिन के व्रत से 84 लाख उपवासों का फल होता है।

तेरस के दिन भी सर्व क्रिया बारस के समान करें, केवल **'ऊँ ह्रीं स्वर्गसोपानसंज्ञाय नमः'** इस मंत्र का 108 जाप करें और इमली और भात का भोजन करें। इस दिन के व्रत से 40 लाख उपवास का फल मिलता है।

चौदस के दिन सब क्रिया ऊपर के समान ही करें और **'ऊँ ह्रीं सिद्धचक्राय नमः'** इस मंत्र का 108 जाप करें तथा तृण (सूखा) साग आदि शुद्ध हो तो उसके साथ अथवा पानी के साथ भात खावें। इस दिन के व्रत का फल 1 करोड़ उपवास का फल होता है।

पूनम के दिन सब क्रिया ऊपर के ही समान करें, केवल **'ऊँ ह्रीं इन्द्रध्वजसंज्ञाय नमः'** इस मंत्र का 108 जाप करें तथा चार प्रकार के आहार त्याग करें (अनशन व्रत करें) इस दिन के व्रत का तीन करोड़ पाँच लाख उपवास के जितना फल होता है।

पश्चात् पड़िमा के जिन पूजनादि क्रिया के अनन्तर घर आकर चार प्रकार संघों को चार प्रकार का दान करके आप पारणा करें।

जो कोई इस व्रत को तीन वर्ष तक करता है उसे स्वर्गसुख मिलता है। तत्पश्चात् नियम से मोक्ष पद पाता है और जो पाँच वर्ष तक करता है वह उत्तमोत्तम सुख भोगकर सातवें भव में मोक्ष जाता है तथा जो सात वर्ष एवं आठ वर्ष तक व्रत करता है वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की योग्यतापूर्वक उसी भव से मोक्ष जाता है।

इस व्रत को अनन्तवीर्य और अपराजित ने किया, सो वे दोनों चक्रवर्ती हुए और विजयकुमार इस व्रत के प्रभाव से चक्रवर्ती का सेनापति हुआ। जरासिंधु ने पूर्व जन्म में यह व्रत किया, जिससे वह प्रतिनारायण हुआ। जयकुमार-सुलोचना ने यह व्रत किया, जिसे वह अवधिज्ञानी होकर ऋषभनाथ भगवान का 72वाँ गणधर हुआ और उसी भव से मोक्ष गये। सुलोचना भी आर्यिका के व्रत धारण कर स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुई। श्रीपाल का भी इससे कोढ़ गया और उसी भव से मोक्ष भी हुआ। अधिक कहाँ तक कहा जाये ? इस व्रत की महिमा कोटि जीभ से भी नहीं कही जा सकती है। इस प्रकार तीन, पाँच व सात (आठ) वर्ष इस व्रत को करके उद्यापन करें। आवश्यकता हो तो नवीन जिनालय बनावें, सब संघों को तथा विद्यार्थी जनों को मिष्ठान भोजन करावें, चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमा पधरावें, शांति हवन आदि शुभ कार्य करें, प्रतिष्ठा करावें, पाठशाला बनावें, ग्रंथों का जीर्णोद्धार करें और प्रत्येक प्रकार के उपकरण आठ-आठ मंदिर में भेंट करें। इस प्रकार उत्साह से उद्यापन करें। यदि उद्यापन की शक्ति न हो तो व्रत दूना करें।

इस प्रकार राजा हरिषेण ने व्रत की विधि और फल सुनकर मुनिराज को नमस्कार किया और घर जाकर अनेक वर्षों तक यथा विधि यह व्रत पालन करके पश्चात् संसार भोगों से विरक्त होकर जिन दीक्षा ले ली। तप के प्रभाव व शुक्लध्यान

के बल से चार घातिया कर्मों का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया और अनेक देशों में विहार कर भव्य जीवों को संसार से पार होने वाले सच्चे जिन मार्ग में लगाया। पश्चात् आयु के अन्त में शेष कर्मों को नाश कर सिद्ध पद पाया।

इस प्रकार यदि अन्य भव्य जीव भी इस प्रकार पालन करेंगे तो वे उत्तमोत्तम सुखों को अपने-अपने भावों के अनुसार पाकर उत्तम गतियों को प्राप्त होवेंगे। तात्पर्य- व्रत का फल तब ही होता है जबकि मिथ्यात्व तथा क्रोध, मान, माया और लोभ आदि कषाय तथा मोह को मन्द किया जाए। इसलिए इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

नन्दीश्वर व्रत फल लियो, श्री हरिषेण नरेश।
कर्म नाश शिवपुर गयो, वन्दूँ चरण हमेश।।

3. अक्षय तृतीया व्रत कथा

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में राजगृह नाम की एक सुन्दर नगरी है। वहाँ मेघनाद नाम का महामण्डलेश्वर राजा राज्य करता था। वह रूप लावण्य से अत्यंत सुंदर था। वह रूपवान के साथ-साथ बलवान एवं योद्धा भी था। उसकी पट्टरानी का नाम पृथ्वीदेवी था। वह अति रूपवान व जैनधर्म रत थी। उसे जैन धर्म का पक्का श्रद्धान था। राजा मेघनाद के राज्य में सारी प्रजा प्रसन्न थी। राजा बड़े विनोद के साथ राज्य कर रहा था।

एक दिन पट्टरानी पृथ्वीदेवी अपनी अन्य सहेलियों के साथ अपने महल की सातवीं मंजिल से दिशावलोकन कर रही थी। आनंद से बैठी-बैठी विनोद की बातें कर रही थी, तब उसने देखा कि बहुत से विद्यार्थी विद्या पढ़कर अपने घर आ रहे थे, जो खेलने-कूदने में इतने मग्न थे कि उनका सारा बदन धूल से सना होने पर भी आठों अंग खेलने में क्रियारत थे।

रानी ने उक्त बालकों की सारी क्रिया देखी तो उसका चित्त विचारमग्न हो गया। रानी को कोई पुत्र नहीं था। बालकों का अभिनय देखकर उसे अपने पुत्र न होने का

दुःख प्राप्त हुआ। दिल में विचार किया कि जिस स्त्री के कोख से पुत्र जन्म नहीं होता उसका जीना इस संसार में वृथा है। इन्हीं विचारधाराओं के साथ वह नीचे आई तथा चिंताग्रस्त शरीर बनाकर शयनकक्ष में जाकर सो गई। कुछ समय पश्चात् राजा उधर आया तो उसने रानी को इस तरह देखकर विस्मितता प्रगट की।

रानी से पूछा- प्रिये ! आज आप इतनी चिंतित क्यों हो ? रानी चुप रही। पुनः राजा ने प्रश्न किया। अनेक बार राजा के प्रश्न करने पर उसने जवाब दिया- हे राजन् ! अपनी कोई सन्तान नहीं है और यह समस्त राज वैभव सन्तान अभाव में व्यर्थ है।

राजा ने उसे धैर्य बँधाते हुए जवाब दिया- इसमें किसके हाथ की बात है। जो होनहार होता है वह होता है। हमारे अशुभ कर्मों का उदय है। इसमें चिंता करने से क्या होगा। यदि भाग्य में होगा तो अवश्य होगा किन्तु !

होनहार होगा वही, विधि ने दिया रचाय।
'विमल' पुण्य प्रभाव से, सुख सम्पत्ति बहु पाय।।

कुछ समय बीता, नगर के बाहर उद्यान में सिद्धवरकूट चैत्यालय की वंदना हेतु पूर्व विदेह क्षेत्र से सुप्रभ नाम के चारणऋद्धिधारी मुनिश्वर आकाश मार्ग से पधारे। वनमाली यह सब देख अत्यंत प्रफुल्लित हुआ और उसने अनेक प्रकार के फल-फूल आदि से डाली सजाकर प्रसन्न चित्त से राजा के पास जाकर निवेदन किया-

हे राजन् ! श्रीमान के उद्यान में सुप्रभ चारणऋद्धिधारी मुनिराज पधारे हैं। राजा सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुआ। उसी समय सिंहासन से उतरकर 10 कदम आगे बढ मुनिराज को साष्टांग परोक्ष प्रणाम किया तथा प्रसन्नचित्त हो वनमाली को वस्त्राभूषण धनादि देकर प्रसन्न किया।

सारे नगर में आनंद भेरी बजवाई। आनंद भेरी सुनकर सब नगर निवासियों ने राजा के साथ चारण ऋद्धिधारी मुनि की वंदना को प्रस्थान किया। राजा ने अपने साथ में अत्यंत सुन्दर अष्ट द्रव्य मुनि पूजा हेतु लिये और अनेक गाजे-बाजे दुन्दुभि के साथ उद्यान में पहुँचा। वहाँ पहुँचकर चैत्यालय की वंदना की। सर्वप्रथम चैत्यालय की तीन प्रदक्षिणा दी तथा भगवान की स्तुति करके साष्टांग नमस्कार किया। फिर

भगवान को मणिमय सिंहासन पर विराजमान कर बड़े उत्साह के साथ कलशाभिषेक किया व अष्ट द्रव्यों से पूजा की। भगवत् आराधना के पश्चात् राजा मुनिराज के पास पहुँचा व नमस्कार कर चरण समीप बैठ गया और मुनिराज से प्रार्थना की- हे मुनिश्वर ! कृपाकर धर्म श्रवण कराईये। उधर रानी पृथ्वीदेवी ने (राजा की पट्टरानी ने) दोनों कर जोड़कर विनम्र निवेदन किया कि हे मुनिवर ! इस भव में मुझे सब सुख प्राप्त है, परन्तु संतान के अभाव में मेरा जन्म निरर्थक है।

कुछ क्षण रुककर मुनिराज ने जवाब दिया कि हे देवी ! तुम्हारे अन्तराय कर्म का उदय है, अस्तु तुम्हारे कोई संतान नहीं है। रानी ने पुनः निवेदन किया कि हे महाराज ! ऐसा कौन-सा पूर्वभव का उदय है, कृपाकर समझाइये। अर्थात् मेरे अंतराय कर्म होने का पूर्व भव सुनाईये-

भरतक्षेत्र में कश्मीर नाम का एक विशाल देश हैं, जिसमें रत्नसंचयपुर नाम का एक सुन्दर नगर है। वहाँ एक वैश्य कुल में उत्पन्न श्रीवत्स नाम का राजा सेठ रहता था, जिसकी सेठानी का नाम श्रीमती था। वह अत्यंत सुन्दर एवं गुणवान थी। दोनों सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते थे। तब इसी नगर में चैत्यालय की वंदना हेतु मुनिगुप्त नाम के दिव्यज्ञानधारी अन्य 500 मुनियों के साथ पधारे।

मुनिगण के दर्शन पाकर राजा सेठ अत्यंत प्रसन्न हुआ और अपना जन्म सफल समझा। वह मुनि महाराज को नमोस्तु कर मुनि संघ को अपने उद्यान में ले गया। घर जाकर अपनी स्त्री श्रीमती से कहा कि तुम आहार की व्यवस्था शीघ्र करो। आज हमारा पुण्योदय है, जिससे विशाल मुनि संघ का आगमन हुआ है। किन्तु सेठानी ने सुनी-अनसुनी कर दी और कोई व्यवस्था नहीं की। सेठ स्वयं आया और शुद्धतापूर्वक बहुत से पकवान तैयार कर सात गुणों से नवधा भक्तिपूर्वक आहार दिया। सबके निरंतराय आहार से वह बहुत संतुष्ट हुआ। महाराज ने सेठ को **'अक्षयदानमस्तु'** नाम का आशीर्वाद दे विहार किया। इधर सेठानी श्रीमती अत्यंत क्रोधित हुई और अन्तराय कर्म का बन्ध हो गया। उसी अन्तराय कर्म से तेरे इस भव में संतान नहीं है।

रानी ने मुनि महाराज के मुँह से अपना पूर्वभव सुना तो वह अपने कुकृत्य पर

अत्यंत दुःखी हुई और प्रार्थना की, कि हे मुनिराज ! अंतराय कर्म नष्ट हो इसके लिये कोई उपाय बताओ, जिससे मुझे संतान-सुख की प्राप्ति हो। मुनि ने कहा- हे महादेवी ! तुम अपने कर्मों का क्षय करने हेतु अक्षय तृतीया व्रत विधिपूर्वक करो। यह व्रत सुख को देने वाला तथा अपनी इष्ट पूर्ति करने वाला है। रानी ने प्रश्न किया- हे मुनिवर ! यह व्रत पहिले किसने किया और क्या फल पाया? इसकी कथा सुनाईये- मुनिराज ने कहा- रानी! इसकी पूर्वकथा सुनो-

विशाल जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में मगध देश नाम का एक देश है। उसी देश में एक नदी के किनारे सहस्रकूट नाम का चैत्यालय स्थित है। उस चैत्यालय की वन्दना हेतु एक धनिक नाम का वैश्य अपनी सुन्दरी नामा स्त्री सहित गया। वहाँ कुण्डल पंडित नाम का एक विद्याधर अपनी स्त्री मनोरमादेवी सहित उक्त व्रत (अक्षय तीज व्रत) का विधान कर रहे थे। उस समय (पति-पत्नी) धनिक सेठ व सुन्दरी नाम स्त्री ने विद्याधर युगल से पूछा कि यह आप क्या कर रहे हो अर्थात् यह किस व्रत का विधान है ?

विद्याधर ने जवाब दिया कि इस अवसर्पिणीकाल में अयोध्या नगरी में नाभिराय नाम के अन्तिम मनु हुए। उनके मरुदेवी नाम की पट्टरानी थी। रानी के गर्भ में जब प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ आये तब गर्भ कल्याणक उत्सव देवों ने बड़े ठाठ से मनाया और जन्म होने पर जन्म कल्याणक मनाया। फिर दीक्षा कल्याणक होने के बाद आदिनाथजी ने छः मास तक घोर तपस्या की। छः माह के बाद चर्या (आहार) विधि के लिए आदिनाथ भगसान ने अनेक ग्राम नगर, शहर में विहार किया किन्तु जनता व राजा लोगों को आहार की विधि मालूम न होने के कारण भगवान को धन, कन्या, पैसा, सवारी आदि अनेक वस्तु भेंट की। भगवान के यह सब अंतराय का कारण जानकर आहार ग्रहण नहीं किया आगे समिति से विहार करते हुए ग्राम-नगर में भ्रमण करते-करते कुरुजांगल नामक देश में पधारे। वहाँ हस्तिनापुर नाम के नगर में कुरुवंश के शिरोमणि महाराजा सोम राज्य करते थे। उनके श्रेयांस नाम का एक भाई था। उसने सर्वार्थसिद्धि नामक स्थान से चयकर यहाँ जन्म लिया था।

एक दिन रात्रि के समय सोते हुए उसे रात्रि के आखिरी भाग में कुछ स्वप्न

आये। उन स्वपनों में मंदिर, कल्पवृक्ष, सिंह, वृषभ, चन्द्र, सूर्य, समुद्र, आग, मंगल द्रव्य आदि अपने राजमहल के समक्ष स्थित हैं ऐसा उस स्वप्न में देखा। तदनंतर प्रभात बेला में उठकर उक्त स्वप्न अपने ज्येष्ठ भ्राता से कहे, तब ज्येष्ठ भ्राता सोमप्रभ ने अपने विद्वान् पुरोहित को बुलाकर स्वप्नों का फल पूछा। पुरोहित ने जवाब दिया- हे राजन् ! आपके घर श्री आदिनाथ भगवान पारणा के लिये पधारेंगे, इससे सबको आनन्द हुआ। इधर भगवान आदिनाथ आहार हेतु ईर्यासमितिपूर्वक भ्रमण करते हुए उस नगर के राजमहल के सामने पधारे तब सिद्धार्थ नाम का कल्पवृक्ष ही मानो अपने सामने आया है- ऐसा सबको भास हुआ। राजा श्रेयांस को आदिनाथ भगवान का श्रीमुख देखते ही उसी क्षण अपने पूर्वभव में श्रीमती वज्रजंघ की अवस्था में एक सरोवर के किनारे दो चारण मुनियों को आहार दिया था- उसका जाति स्मरण हो गया। अत: आहार दान की समस्त विधि जानकर श्री आदिनाथ भगवान को तीन प्रदक्षिणा देकर पड़गाहन किया व भोजनगृह में ले गये।

'प्रथम दान विधि कर्ता' ऐसा वह दाता श्रेयांस राजा और उनकी धर्मपत्नी सुमतीदेवी व ज्येष्ठ बंधु सोमनाथ राजा अपनी पत्नी लक्ष्मीमति सहित आदि सबों ने मिलकर श्री आदिनाथ भगवान को सुवर्ण कलशों द्वारा तीन खण्डी (बंगाली तोल) इक्षुरस नवधा भक्तिपूर्वक आहार में दिया। तीन खण्डी में से एक खण्डी इक्षुरस तो अंजुली में होकर निकल गया और दो खण्डी रस पेट में गया। इस प्रकार भगवान आदिनाथ की आहारचर्या निरन्तराय सम्पन्न हुई। इस कारण उसी वक्त स्वर्ग के देवों ने अत्यंत हर्षित होकर पंचाश्चर्य (रत्नवृष्टि, पुष्पवृष्टि गन्धोदक वृष्टि, देव दुंदुभि, बाजों का बजना व जय जयकार शब्द का होना) वृष्टि हुई और सभी ने मिलकर अत्यंत प्रसन्नता मनाई। आहारचर्या करके वापिस जाते हुए भगवान आदिनाथ ने सब दाताओं को 'अक्षयदानस्तु' अर्थात् दान इसी प्रकार कायम रहे, इस आशय का आशीर्वाद दिया। यह आहार वैशाख सुदी तीज को सम्पन्न हुआ था।

जब आदिनाथ निरन्तराय आहर करके वापिस विहार कर गये उसी समय से अक्षय तीज नाम का पुण्य दिवस प्रारंभ हुआ। इसी को आखातीज भी कहते हैं। यह दिन हिन्दु धर्म में भी बहुत पवित्र माना जाता है। इस रोज अनबूझा मुहूर्त मानकर

शादी विवाह एवं मंगल कार्य प्रचुर मात्रा में होते हैं। श्रेयांस राजा ने आदि तीर्थंकर को आहार देकर दान की उन्नति की, दान को प्रारंभ किया। इस प्रकार दान की उन्नति व महिमा समझकर भरत चक्रवर्ती, अकम्पन आदि राजपुत्र व सपरिवार सहित श्रेयांस व उनके सह राजाओं का आदर के साथ सत्कार किया। प्रसन्नचित्त हो अपने नगर को वापिस आये। उक्त सर्व वृत्तांत (कथा) सुप्रभनाम के चारणमुनि के मुख से पृथ्वीदेवी ने एकाग्र चित्त से श्रवण किया। वह बहुत प्रसन्न हुई। उसने मुनि को नमस्कार किया तथा उक्त अक्षय तीज व्रत को ग्रहण करके सर्वजन परिजन सहित अपने नगर को वापिस आये। पृथ्वीदेवी ने उस व्रत को विधि अनुसार सम्पन्न किया। पश्चात् यथाशक्ति उद्यापन किया। चारों प्रकार के दान चारों संघ को बाँटे। मन्दिरों में मूर्तियाँ विराजमान की। चमर, छत्र आदि बहुत से वस्त्राभूषण मन्दिरजी को भेंट चढ़ाये।

उक्त व्रत के प्रभाव से उसने 32 पुत्र और 32 कन्याओं को जन्म दिया। साथ ही बहुत-सा वैभव और धन कंचन आदि ऐश्वर्य समृद्ध होकर बहुत काल तक अपने पति सहित राज्य का भोग किया और अनंत ऐश्वर्य को प्राप्त किया। पश्चात् वह दम्पत्ति वैराग्य प्रवर होकर जिन दीक्षा धारण करके तपश्चर्या करने लगे और तपोबल से मोक्ष सुख को प्राप्त किया। अस्तु! हे भविक जनो ! तुम भी इस प्रकार अक्षय तृतीया व्रत को विधिपूर्वक पालन कर यथाशक्ति उद्यापन कर अक्षय सुख प्राप्त करो। यह व्रत सब सुखों को देने वाला है व क्रमश: मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

इस व्रत की विधि इस प्रकार है-

यह व्रत वैशाख सुदी तीज से प्रारंभ होता है। उस दिन शुद्धतापूर्वक एकासन करें या 2 उपवास या 3 एकासन करें।

इसकी विधि यह है कि व्रत की अवधि में प्रात: नैत्यिक क्रिया से निवृत्त होकर मन्दिरजी को जावे। मन्दिरजी में जाकर शुद्ध भावों से भगवान के दर्शन स्तुति करें। पश्चात् आदिनाथ भगवान की प्रतिमा को सिंहासन पर विराजमान कर कलशाभिषेक करें। नित्य नियम पूजा भगवान आदि तीर्थंकर (आदिनाथ) की पूजा एवं पंचकल्याणक का मण्डलजी मंडवाकर मण्डलजी की पूजा करें। तीनों काल (प्रात: मध्याह्न, सांय)

निम्नलिखित मंत्र का जाप्य करें एवं सामायिक करें।

मंत्र- **ऊँ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं आदिनाथ तीर्थंकराय नमः स्वाहा।** प्रातः सायं णमोकार मंत्र का शुद्धोच्चारण करते हुए जाप्य करें।

व्रत के समय में गृहादि समस्त क्रियाओं से दूर रहकर स्वाध्याय, भजन, कीर्तन आदि में समय यापन करें। रात्रि में जागरण करें। दिनभर जिनचैत्यालय मे ही रहें। व्रत अवधि में ब्रह्मचर्य से रहें। हिंसादि पाँचों पापों का अणुव्रत रूप से त्याग करें। क्रोध, मान, माया, लोभ, कषायों को शमन करें। पूजनादि के पश्चात् प्रतिदिन मुनीश्वरादि चार प्रकार के संघ को चारों प्रकार का दान देवें, आहार करावें फिर स्वयं पारणा करें। प्रतिदिन अक्षय तीज व्रत की कथा सुने व सुनावें।

इस प्रकार विधिपूर्वक व्रत को 5 वर्ष करें। व्रत पूर्ण होने पर यथाशक्ति उद्यापन करें। भगवान आदिनाथ की प्रतिमा मंदिरजी में भेंट करें तथा चार संघ को चार प्रकार का दान देवें।

इस प्रकार शुद्धतापूर्वक विधिवत् व्रत करने से सर्वसुख की प्राप्ति होती है तथा साथ ही क्रम से अक्षय सुख अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है।

4. अक्षय फल दशमी व्रत कथा

ऊँकार हृदय धरुँ, सरस्वती शिरनाय।
अक्षयदशमी व्रत कथा, भाषा कहूँ बनाय।। 1 ।।

इसी राजगृही नगर में मेघनाद नाम के राजा की रानी पृथ्वीदेवी अत्यन्त रूप और शीलवान थी, परन्तु कोई पूर्व पाप के उदय से पुत्र विहीन होने से सदा दुःखी रहती थी। एक दिन अति आतुर हो वह कहने लगी- हे भर्तार ! क्या कभी मैं कुलमण्डन स्वरूप बालक को अपनी गोद में खिलाऊँगी ? क्या कभी ऐसा शुभोदय होगा कि जब मैं पुत्रवती कहाऊँगी ?

अहा ! देखो, संसार में स्त्रियों को पुत्र की कितनी अभिलाषा होती है ? वे इस ही इच्छा से दिन-रात व्याकुल रहती अनेकों उपचार करती और कितनी ही तो (जिन्हें धर्म का ज्ञान नहीं है) अपना कुलाचरण भी छोड़कर धर्म तक से गिर जाती

हैं। यह सुनकर राजा ने रानी से कहा- प्रिये ! चिन्ता न करो, पुण्य के उदय से सबकुछ होता है। हम लोगों ने पूर्वजन्मों से कोई ऐसा ही कर्म किया होगा कि जिसके कारण निःसंतान हैं। इस प्रकार से राजा-रानी परस्पर धैर्य बंधाते काल व्यतीत करते थे।

एक दिन उनके शुभोदय से श्री शुभंकर नाम के मुनिराज का शुभागमन हुआ, सो राजा-रानी उनके दर्शनार्थ गये। उनकी वन्दना करने के अनन्तर धर्म श्रवण करके राजा ने पूछा-

हे प्रभु ! आप त्रिकाल ज्ञानी है, आपको सब पदार्थ दर्पणवत् प्रतिभाषित होते हैं, सो कृपाकर यह बताईये कि किस कारण से मेरे घर पुत्र नहीं होता है ? तब श्रीगुरु ने भवांतर की कथा विचार कर कहा- राजा ! पूर्व जन्म में इस तुम्हारी रानी ने मुनिदान में अन्तराय किया था, इसी कारण से तुम्हारे पुत्र की अन्तराय हो रही है। तब राजा ने कहा- प्रभु ! कृपया कोई यत्न बताईये कि जिससे इस पापकर्म का अन्त आवे।

यह सुनकर श्री मुनिराज बोले- वत्स ! तुम अक्षय (फल) दशमी व्रत करो। श्रावण सुदी 10 को पौषध करके श्री जिन मंदिर में जाकर भाव सहित पूजन विधान करो और **'ऊँ ह्रीं श्रीं क्लीं श्री आदिनाथजिनेन्द्रायनमः'** इस मंत्र का जाप्य करो। यह व्रत दस वर्ष तक करके उद्यापन करो। दस-दस उपकरण श्री मन्दिरजी में भेंट करो। दस शास्त्र लिखाकर साधर्मियों को भेंट करो और दीन-दुःखी जीवों पर दया दान करो। विद्यादान देवो, अनाथों की रक्षा करो, जिससे शीघ्र ही पाप का नाश हो, सातिशय पुण्य लाभ हो। इत्यादि विधि सुनकर राजा-रानी आए और विधिपूर्वक व्रत पालन करके उद्यापन किया।

सो इस व्रत के माहात्म्य तथा पूर्व पाप के क्षय होने से राजा को सात पुत्र पाँच कन्याएँ हुई। इस प्रकार बहुत काल तक राजा दया धर्म को पालन करते हुए मनुष्योचित्त सुख भोगते रहे। पश्चात् समाधिमरण करके पहिले स्वर्ग में देव हुए और वहाँ से चयकर मनुष्य भव लेकर मोक्षपद प्राप्त किया। इस प्रकार और भव्य जीव यदि श्रद्धा सहित यह व्रत पालेंगे तो उन्हें भी उत्तमोत्तम सुखों की प्राप्ति होवेगी।

अक्षय दशमी व्रत किया, मेघनाद नृप सार।
'दीप' रहीं पंचम गती, नमूँ त्रिलोक सम्हार।।

5. आकाश पंचमी व्रत कथा

द्वादशांगवाणी नमूँ, धरूँ हृदय शुभ ध्यान।
कथाऽऽकाश पंचमी तनी, कहूँ स्वपर हित जान।।

आर्य खण्ड के सोरठ देश में तिलकपुर नाम का एक विशाल नगर था। वहाँ महीपाल नाम का राजा और विचक्षणा नामक रानी थी। उसी नगर में भद्रशाल नाम का व्यापारी रहता था। उसकी नन्दा नाम की स्त्री से विशाला नाम की पुत्री उत्पन्न हुई।

यद्यपि वह कन्या अत्यंत रूपवान थी, तथापि उसके मुख पर सफेद कोढ़ हो जाने से सारी सुन्दरता नष्ट हो गई थी। इसलिये उसके माता-पिता तथा वह कन्या स्वयं भी रोया करती थी, परन्तु कर्मों से क्या वश है ? निदान- माता के उपदेश से पुत्री धर्मध्यान में रत रहने लगी, जिससे कुछ दु:ख कम हुआ। एक दिन एक वैद्य आया और उसने सिद्धचक्र की आराधना करके औषधि दी, जिससे उस कन्या का रोग दूर हो गया। तब उस भद्रशाल ने अपनी कन्या इसी वैद्य को ब्याह दी। पश्चात् वह पिंगल वैद्य उस विशाला नाम की वणिक पुत्री के साथ कितने ही दिन पीछे देशाटन करता हुआ, चित्तौड़गढ़ की ओर गया। वहाँ पर भीलों ने उसे मारकर सब धन लूट लिया। निदान विशाला वहाँ से पति और द्रव्य रहित हुई नगर के जिनालय में गई और जिनराज के दर्शन करके वहाँ तिष्ठे हुए श्रीगुरु को नमस्कार करके बोली- प्रभु ! मैं अनाथनी हूँ, पति भी मारा गया और द्रव्य भी लुट गया। अब मुझे कुछ नहीं सूझता है कि क्या करूँ, कृपाकर कुछ कल्याण का मार्ग बताईये। तब मुनिराज ने कहा- बेटी सुनो, यह जीव सदैव अपने ही पूर्वकृत कर्मों का शुभाशुभ फल भोगता है। तू प्रथम जन्म में इसी नगर में वेश्या थी। तू रूपवान तो थी ही तथा गायन विद्या में भी निपुण थी।

एक समय सोमदत्त नाम के मुनिराज यहाँ आये। यह सुनकर नगर के लोग वंदना को गये और बहुत उत्साह से उत्सव किया। जैसे सूर्य का प्रकाश उल्लू को अच्छा नहीं लगता, उसी प्रकार कुछ मिथ्यात्वी विधर्मी लोगों ने मुनि से वाद-विवाद किया और अन्त में हारकर वेश्या (तुझे ही) को मुनि के पास ठगने के लिए (भ्रष्ट करने को) भेजा। तूने पूर्ण स्त्री चरित्र फैलाया, सब प्रकार रिझाया, शरीर का आलिंगन भी किया। परन्तु जैसे सूर्य पर धूल फेकने से सूर्य का कुछ बिगड़ता ही नहीं,

किन्तु फेकनें वाले का ही उल्टा बिगाड़ होता है, उसी प्रकार मुनिराज तो अचल मेरूवत स्थिर रहे और तू हार मानकर लौट आई। इससे इन मिथ्यात्वी अधर्मियों को बड़ा दु:ख हुआ और तुझे भी बहुत पश्चाताप हुआ। इस कृत्य से तुझे कोढ़ हो गया सो दु:खित अवस्था में मरकर तू चौथे नरक गई। वहाँ से आकर तू यहाँ वणिक के घर पुत्री हुई है। यहाँ भी तुझे सफेद कोढ़ हुआ था। सो पिंगल वैद्य ने तुझे अच्छा किया और उसी से तेरा पाणिग्रहण भी हुआ था।

पश्चाताप पूर्व पाप के उदय से चोरों ने उसे मार डाला और तू उससे बचकर यहाँ तक आई है। अब यदि तू कुछ धर्माचरण करेगी तो शीघ्र ही इस पाप से छूटेगी। इसलिये सबसे प्रथम तू सम्यग्दर्शन को स्वीकार कर अर्थात् श्री अर्हंतदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और दयामयी जिन भगवान के कहे हुए धर्मशास्त्र के सिवाय अन्य मिथ्यादेव, गुरु और धर्म को छोड़ जीवादिक सात तत्वों का श्रद्धान कर और सम्यग्दर्शन के नि:शंकित आदि आठ अंगों का पालन करके उसके 25 मल दोषों का त्यागकर, तब निर्मल सम्यग्दर्शन सधेगा। इस प्रकार सम्यक्त्वपूर्वक श्रावक के अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रह परिमाण आदि 12 व्रत को पालन करते हुए आकाश पंचमी व्रत को भी पालन कर। यह व्रत भादो सुदी 5 को किया जाता है। इस दिन चार प्रकार का आहार त्यागकर उपवास धारण करें और अष्ट प्रकार के द्रव्य से श्री जिनालय में जाकर भगवान का अभिषेकपूर्वक पूजन करें। पश्चात् रात्रि के समय खुले मैदान में या छत (अगासी) पर बैठकर भजनपूर्वक जागरण करें और यदि उस समय उस स्थान पर वर्षा आदि के कारण कितने ही उपसर्ग आवें तो सब सहन करें, परन्तु स्थान को न छोड़ें।

तीनों समय महामंत्र नवकार के 108 जाप करें। इस प्रकार 5 वर्ष तक करें। जब व्रत पूरा हो जावे तो उत्साह सहित उद्यापन करें।

छत्र, चमर, सिंहासन, तोरण, पूजन के बर्तन आदि प्रत्येक 5-5 नग मंदिर में भेंट करें और कम से कम पाँच शास्त्र पधरावें। चार प्रकार के संघ को चारों प्रकार का दान देवें और भी विशेष प्रभावना करें। इस प्रकार विशाला कन्या ने श्रद्धापूर्वक बारह व्रत स्वीकार किये और इस आकाश पंचमी व्रत को भी विधि सहित पालन

किया। पश्चात् समाधिमरण कर वह चौथे स्वर्ग में मणिभद्र नाम का देव हुआ।

वहाँ उसने देवांगनाओं सहित क्रीड़ा करते हुए अनेक तीर्थों के दर्शन, पूजा, वंदना तथा समवशरण आदि की वंदना की। इस प्रकार सात सागर की आयु पूर्ण कर उज्जैन नगर में प्रियंगुसुन्दर नामक राजा के यहाँ तारामती नामक रानी से सदानंद नामक पुत्र हुआ। बहुत काल तक राज्योचित सुख भोगे। पश्चात् एक दिन नगर के बाहर वन में मुनिराज के दर्शन कर और उनके मुख से संसार से पार उतारने वाला धर्म का उपदेश सुनकर उसने वैराग्य को प्राप्त होकर जिन दीक्षा अंगीकार की और शुक्लध्यान के बल से केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षपद प्राप्त किया।

इस प्रकार विशाला नाम की वणिक कन्या ने व्रत के प्रभाव से स्वर्ग और मोक्ष पद प्राप्त किया। यदि श्रद्धा सहित अन्य जीव यह व्रत पालेंगे तो क्यों न उत्तम सुखों को प्राप्त होवेंगे ? अवश्य होंगे।

सूता विशाला वणिक व्रत, आकाश पंचमी सार।
स्वर्ग मोक्ष सम्पत्ति लही, 'दीप' नमावत भाल।।

6. कर्म निर्जरा व्रत कथा

उज्जयिनी नगरी के समीप में एक छोटा-सा गाँव था। वहाँ बलभद्र नाम का एक जागीरदार था। उसके सात पुत्र और सात पुत्रवधुएँ थी। इनके साथ वह आनन्द से रहता था।

एक दिन एक महामुनीश्वर उस गाँव के नगरकोट के समीप में ध्यान करने को खड़े हो गये। उस जागीरदार की यशोमति नाम की छोटी बहू ने अंधेरे में ही गोबर उठाकर कोट के बाहर डाल दिया। वह गोबर मुनिराज के ऊपर गिर पड़ा। उजाला होने पर जागीरदार शौच के लिए बाहर गया, देखा कि हमारी बहू ने मुनिराज के ऊपर भूल से गोबर डाल दिया है। तब उसने गरम पानी लेकर मुनिराज के शरीर को धोया और हाथ जोड़कर क्षमायाचना की। मुनिराज का ध्यान छूटने पर हाथ जोड़कर नमस्कार करता हुआ कहने लगा कि हे मुनि ! मेरी छोटी बहू ने आप के ऊपर अज्ञानपने से गोबर डाल दिया है, उसके लिए मुझे क्षमा करें। तब मुनिराज कहने लगे

कि हे भव्य तुम्हारा कोई दोष नहीं है। हमारे ही पूर्व कर्मों का उदय है। ऐसा कहते ही आशीर्वाद देकर जंगल को चले गये।

इधर यशोमति पापकर्म के उदय से तीव्र रोग से ग्रसित होकर मर गई और उज्जयिनी नगर में वैश्य के घर में उत्पन्न हुई। उसके जन्म लेते ही उसके माँ-बाप दोनों ही मर गये। तब एक गृहस्थ ने उसका पालन-पोषण किया। जब वह पाँच वर्ष की हुई तब वह पालन करने वाला भी मर गया। फिर श्रीमती आर्यिका के निकट उसका पालन-पोषण होने लगा, लोग उसको कर्मी नाम से पुकारते थे।

एक दिन उस गाँव के मन्दिर में श्रुतसागर नामक महाऋद्धिधारी चारण मुनिश्वर आये, नगर के लोग उन मुनिराज के दर्शन के लिए गये। वह कर्मी भी वहाँ गई। सब लोग मुनिराज की प्रदक्षिणा देकर धर्मोपदेश सुनने के लिए वहाँ बैठ गये, वहीं कर्मी मुनिराज के चरणों में पड़कर रोने लगी। मुनिराज अपने अवधिज्ञान से उसका भवान्तर जानकर कहने लगे कि हे कन्ये ! तुमने पूर्वभव में एक मुनिराज के ऊपर गोबर डाला था, उस पाप से ही तुमको ये दुःख भोगने पड़ रहे है। इसके कारण ही तुम्हारे माता-पिता और पालन करने वाले मर गये। अब तुम इस कर्मनिर्जरा के लिए, कर्मनिर्जरा व्रत यथाविधि पालन करो और व्रत का उद्यापन करो, तब तुमको ऐहिक सुख के साथ परमार्थिक सुख की भी प्राप्ति होगी। ऐसा कहकर मुनिराज ने व्रत की विधि कह सुनाई।

लड़की ने व्रत को भक्तिपूर्वक ग्रहण किया। मुनिराज वहाँ से चले गये। कर्मी कुमारी ने श्रावक-श्राविकाओं के सहारे से व्रत को पालन करना प्रारम्भ किया। एक दिन उज्जयिनी नगरी के राजा का राजकुमार अकस्मात् सर्प के काटने से मृतप्राय हो गया। उस समय तक उसका विवाह नहीं हुआ था। राजकुमार की माता को बहुत दुःख हुआ। रानी अपने पति को कहने लगी कि हे राजन् ! आप अपने पुत्र का विवाह संस्कार हुए बिना दहन क्रिया नहीं करना। तब राजा ने मंत्री को बुलाकर कहा कि हमारे लड़के का विवाह हुए बिना दाह-संस्कार नहीं होगा, इसलिए किसी कन्या की खोज करके लाना चाहिए।

तब मरे हुए राजकुमार को कन्या कौन देगा- विचार करते हुए सब लोग

चिन्तामग्न हुए। तब मंत्रियों ने एक गाड़ी में स्वर्ण-रत्नादि भरकर नगर में सूचना करवाई कि राजा के मरे हुए पुत्र को जो कोई अपनी कन्या देगा, उसको यह सारा धन दिया जायेगा। ऐसी सूचना करते-करते सेवक लोग मंदिर के निकट आये।

यह सूचना कर्मी ने भी सुनी और आर्यिका माताजी के पास जाकर कहने लगी कि हे माताजी ! मैं उस मृतक राजकुमार के साथ विवाह करूँगी। इस धन से भगवान की पूजा करूँगी। तब आर्यिका माताजी ने उसको कहा कि जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो उस समय कर्मी सेवकों के पास जाकर कहने लगी कि मैं राजपुत्र के साथ विवाह करूँगी, यह धन मेरी माँ को दे दो। सेवक ने सब धन माँ को सौंप दिया तथा उस कर्मी को साथ लेकर राज दरबार में चल दिये।

राजा को बहुत आश्चर्य हुआ। उसी समय विवाह मण्डप तैयार कर कर्मी के साथ अपने मृतक राजकुमार का विवाह कर दिया। बाद में राजपुत्र की शवयात्रा निकाली गई। उसी समय भयंकर बारिस होने लगी, रास्ते में खूब पानी भरने लगा, रास्ता पानी से बन्द हो गया। तब सब लोग उस राजकुमार के शव को रास्ते में ही छोड़कर अपने रजवाड़े वापस आ गये। शव के पास किंकर लोगों की स्थापना कर दी थी। मात्र कर्मी अपने मृतक पति के साथ वहाँ रही।

उस दिन कर्मी के व्रत का दिन था। उसको याद आया तो उसने भक्ति से भाव पूजा वहीं बैठकर की। तब उसकी दृढ़भक्ति को देखकर पद्मावती देवी का आसन कम्पायमान हुआ। तब अवधिज्ञान से उस कन्या की सर्व परिस्थिति जानकर पद्मावती उसी क्षण वहाँ आई और अपना दिव्य रूप प्रकट कर कहने लगी कि हे बालिके तुम्हारे पास कोई द्रव्य नहीं है तो भी तुमने यह झूठी पूजा क्यों आरम्भ कर रखी है? द्रव्य के अभाव में तुमको कोई भी फल नहीं मिलने वाला है।

तब कन्या ने पूछा कि हे भगवती ! आप कौन है ? आप का परिचय क्या है ? तब पद्मावती देवी कहने लगी कि हे कन्या ! तुम डरो मत मैं पद्मावती देवी हूँ तुम्हारी पंच परमेष्ठी भगवान के ऊपर दृढ़भक्ति देखकर मैं यहाँ आई हूँ। तुम्हारे पर मैं प्रसन्न हुई हूँ। तुझे जो वर माँगना हो वह माँग लो।

तब वह कर्मी कहने लगी कि देवी ! मेरी द्रव्य लोभ से मृत राजपुत्र के साथ

शादी हुई है। राजपुत्र को आज ही प्रात:काल में सर्प ने काट खाया है और वह मरणासन्न है। सो अब आपको जो अच्छा लगे वैसा कर दो, मेरा भविष्य आपके हाथ में है। तब पद्मावती देवी ने राजकुमार को निर्विष कर दिया और अपने स्थान पर वापस चली गई। राजकुमार ने जिन्दा होते ही पूछा कि यह सब क्या है, मुझे यहाँ कौन लाया ? तब कर्मी ने सब वृत्तांत आद्योपांत कह सुनाया। रक्षक लोगों ने यह सब चमत्कार देखकर राजा को सब समाचार कह सुनाये।

ऐसा सुनकर उन सबको बहुत आश्चर्य हुआ। तत्काल वृषभसेन राजा, गुणसेना रानी, मंत्री आदि बहुत लोग राजपुत्र के निकट आये। राजा को अपने प्रिय पुत्र को देखते ही बहुत आनन्द आया। तब अपनी बहू को पूछा कि यह कैसे हुआ। तब कर्मी ने सब हकीकत ज्यों की त्यों कह सुनाई और कहा कि यह सब कर्मनिर्जरा व्रत का प्रभाव है। व्रत का प्रभाव देखकर जैन धर्म के ऊपर दृढ़ विश्वास सब लोगों को हुआ। यह महासती है, ऐसा कहते हुए सब लोगों ने कर्मी की बहुत-बहुत प्रशंसा की और राजा अपने राजकुमार एवं उसकी रानी कर्मी को हाथी पर बैठाकर राजशाही ठाठ से अपने राजमंदिर में लेकर गया।

वह वृषभसेन राजा परिवार के साथ में सुख से राज्य करने लगा। थोड़े दिन राज्य करके सब लोग जिनदीक्षा लेकर अन्त में समाधिमरण करके अच्युत स्वर्ग में देव हुए। वहाँ वे चिरकाल तक सुख भोगने लगे।

7. कवलचंद्रायण (कवलाहार) व्रत कथा

पूर्व में भूमण्डल में चन्द्रसा कमलाय नामक प्रजापालक राजा था, जिसकी पतिव्रता रानी का नाम विनयश्री था। राजा प्रजापालन न्यायनीति से करते थे। एक दिन राजा-रानी वन उपवन में क्रीड़ा करते थे तो वहाँ उन्होंने एक स्थान पर श्री शुभचन्द्र नामक मुनि महाराज को देखा तो दोनों ने वहीं जाकर मुनिश्री की वंदना की और उनके चरण में विनय से बैठे। फिर राजा ने मुनिश्वर से पूछा- महाराज! श्री कवलचंद्रायण नामक व्रत कैसे करना चाहिये, उसकी विधि क्या है ? पूर्व में किसने यह व्रत करके उत्तम फल प्राप्त किया था ? यह कृपा करकेबतलाईये। तब मुनिराज बोले-

कवलचन्द्रायण व्रत एक माह का होता है। वह किसी भी महिने में इस प्रकार किया जा सकता है- प्रथम अमावस्या के दिन उपवास करना, फिर एकम के दिन एक ग्रास, दूज के दिन दो ग्रास, इस प्रकार चौदस को 14 ग्रास लेकर पूनम को उपवास करें। फिर वदी 1 को 14, दूज को 13, इस प्रकार घटाते-घटाते जाकर वदी 14 को एक ग्रास आहार लेकर अमावस्या को उपवास करें तथा इन दिनों में आरम्भ व परिग्रह त्याग करके श्री मन्दिर में श्री चन्द्रप्रभ का अभिषेक करके श्री चन्द्रप्रभ की पूजा देव शास्त्र, गुरु पूजा विनयपूर्वक करें। वह दिन धर्मसेवन में तथा शास्त्र स्वाध्यायादि में व्यतीत करें। प्रतिपदा को पारणा के दिन किसी पात्र को भोजन कराकर पारणा करें और अपनी शक्ति अनुसार चारों प्रकार का दान करें और यथाशक्ति उद्यापन भी करें जिसमें 30 फल व 30 शास्त्र बाँटे।

श्री महावीर प्रभु राजा श्रेणिक से कहते हैं- राजन् ! महातपस्वी श्री बाहुबलिजी ने इस कवलचन्द्रायण व्रत को किया था, जिसके प्रभाव से उनको केवलज्ञान प्राप्त हुआ था तथा श्री ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मी व सुन्दरी ने भी यह व्रत किया था, जिसके प्रभाव से वे दोनों स्त्रीलिंग छेदकर अच्युत स्वर्ग में यतीन्द्र हुए थे और वहाँ से चयकर मनुष्य भव लेकर मुनि पद लेकर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया था। अतः जो कोई मुनि, आर्यिका, श्रावक-श्राविका यह व्रत करेंगे वे यथा शक्ति स्वर्ग मोक्ष को प्राप्त करेंगे जो पंच पाप, सात व्यसन और और चार कषायों को त्यागकर शुद्ध भाव से इस व्रत को करेंगे वे एक-दो भव धारण करके मोक्ष को जावेंगे।

8. केवलज्ञान व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र के पुष्कलावती देश में पुष्करण नाम का अत्यन्त रमणीय नगर है। वहाँ पहले यशोधर नाम का एक बलवान राजा अपनी यशोमती रानी तथा वज्रदंत पुत्रादिक के साथ में अत्यंत सुख के साथ राज्य करता था। जब राजपुत्र यौवनावस्था को प्राप्त हुआ तब चौसठ कलाओं में अत्यंत निपुण हो गया।

एक दिन वनपालक ने राजा को एक कमल पुष्प लाकर दिया। राजा ने कमल को देखा, उस कमल में एक काला भ्रमर मरा हुआ था। मरे हुए भ्रमर को देखकर राजा के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। अपने पुत्र वज्रदंत को राज सिंहासन पर बैठाकर वन में गया और एक निर्ग्रन्थ मुनीश्वर के पास जिन दीक्षा लेकर घोर तपश्चरण करके घातिया कर्मों का नाश कर केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया। इन्द्र ने गंधकुटी की रचना की, देवों ने आकर भक्ति उत्साह से ज्ञानोत्सव मनाया।

इधर वज्रदंत की आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ, पिता को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। यह दोनों ही समाचार एक साथ सुनकर राजा को बहुत आनन्द हुआ। सिंहासन के नीचे उतरकर सात पग चलकर भगवान को नमस्कार किया, पुरजन-परिजन साथ में लेकर पैदल ही भगवान के दर्शन के लिए गया। वहाँ जाकर गंधकुटी की तीन प्रदक्षिणा देकर मनुष्यों के कोठे में जाकर बैठ गये। भगवान का उपदेश सुनकर हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए कहने लगा कि हे भगवान ! हमारी आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है सो क्या कारण है ?

तब भगवान कहने लगे कि राजन् ! आपने पूर्वभव में केवलज्ञान व्रत यथाविधि पाला था, उसके पुण्य से आज आपको चक्ररत्न की प्राप्ति हुई है। ऐसा सुनते ही राजा को बहुत आनन्द हुआ और केवलज्ञान व्रत की विधि क्या है, पुनः विचार करने लगा। भगवान ने राजा को सब विधि कह सुनाई। राजा ने अत्यंत हर्षपूर्वक पुनः उस व्रत को स्वीकार किया और नगर को वापस चला आया। आगे कालानुसार व्रत को पूर्ण करके व्रत का उद्यापन किया। इस व्रत के प्रभाव से बहुत दिनों तक चक्रवर्ती की विभूति का सुख भोगकर अन्त में जिन दीक्षा ग्रहण की और घोर तपश्चरण करके मोक्ष गये।

९. कोकिला पंचमी व्रत कथा

ऊँकार वाणी नमूँ, स्याद्वाद् मय सार।
जा प्रसाद सन्मति मिले, कथा कहूँ सुखकार।।

कुरुजांगल देश में गंगा नदी के किनारे राजनगर है। वहाँ का राजा वीरसेन न्याय परायण और धर्मात्मा था। इसी नगर में दो वणिक श्रेष्ठि रहते थे- एक का नाम धनपाल और दूसरे का नाम जिनभक्त था।

धनपाल सेठ के धनमती नाम की सेठानी से धनभद्र नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ और जिनभक्त सेठ के घर जिनमती नाम की कन्या उत्पन्न हुई सो कर्मयोग से इन दोनों वर-कन्या (धनभद्र और जिनमती) का पाणिग्रहण संस्कार भी हो गया। तब जिनमती अपने पति के साथ ससुराल गई और गृहस्थी की रीति के अनुसार अपने पति के साथ नाना प्रकार के सुख भोगने लगी, परन्तु पूर्व कर्म के संयोग से जिनमती और उसकी सासु में अनबन रहने लगी।

कुछ काल के अनन्तर धनपाल सेठ कालवश हुआ, तब जिनमती ने सासु से कहा-

माताजी ! पति का क्रियाकर्म कीजिये और दानादिक शुभ कर्म करिये। इस पर सासु ने ध्यान नहीं दिया, किन्तु उल्टा उसने बहु से रीस करके पूजा होम आदि का सामान जो बहु ने इकट्ठा कर रखा था रात्रि को उठकर भक्षण कर लिया सो तिल आदि पदार्थों के भक्षण करने से उसे अजीर्ण हो गया और वह उदीरणा मरण करके अपने ही घर में कोकिला हुई।

जिनमती अपने पति धनभद्र सहित सुख से कालक्षेप करने लगी। उसकी सासु जो कोकिला हुई थी, सो हर समय अपने पूर्व बैर के कारण जिनमती के ऊपर वीट (मल) कर दिया करती थी, इस कारण जिनमती बहुत दुःखी रहने लगी। एक दिन भाग्योदय से श्री मुनिराज विहार करते हुए वहाँ आ गये सो जिनमती स्नान कर पवित्र वस्त्र पहिनकर श्रीगुरु के दर्शन को गई और भक्तिपूर्वक वंदना करके शांतिपूर्वक सत्यार्थ देव, गुरु, धर्म का व्याख्यान सुना, पश्चात् नतमस्तक होकर बोली।

हे प्रभु ! यह कोकिला नाम का न जाने कौन दुष्ट जीवधारी है, जो मुझे निशदिन दुःख देता है। तब श्रीगुरु ने कहा- यह तेरी सासु धनमती का जीव है। इसने पूर्वभव में पूजा-होम आदि का सामान नैवेद्य, तिल आदि भक्षण किया, जिससे यह अजीर्ण रोग से आयु की उदीरणा कर मरी और कोकिला हुई है, सो उसी भव के बैर के कारण यह तुझे कष्ट पहुँचाती है। तब जिनमती ने कहा- स्वामीजी ! यह पाप कैसे छूट सकता है ?

श्री मुनिराज ने उत्तर दिया- बेटी ! संसार में कुछ भी कठिन नहीं है। यथार्थ में सब काम परिश्रम से सरल हो जाते हैं। तुम अर्हंतदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और दयामयी धर्म पर श्रद्धा रखकर, कोकिला पंचमी व्रत पालन करो तो निःसंदेह यह उपद्रव दूर हो जायेगा।

इसके लिये तुम आषाढ़ बदी पंचमी से 5 मास तक प्रत्येक कृष्ण पक्ष की पंचमी को, इस प्रकार एक वर्ष की पाँच-पाँच पँचमी पाँच वर्षों तक करो।

अर्थात् इन दिनों में प्रोषध धारण कर अभिषेकपूर्वक जिन पूजा करो और धर्मध्यान में धारणा-पारणा सहित सोलह प्रहर व्यतीत करो। सुपात्रों में भक्ति तथा दीन-दुःखी जीवों को करूणापूर्वक दान देवो, पश्चात् उद्यापन करो। पाँच जिनबिंब पधराओ, पाँच शास्त्र लिखाओ, पाँच वर्ण का पंचपरमेष्ठी का मण्डल माँडकर श्री जिनपूजा विधान करो। पाँच प्रकार का पकवान बनाकर चार संघ को भोजन कराओ। पाँच ध्वजा चैत्यालय में चढ़ाओ। पाँच चन्दोवा, पाँच अछार, पाँच छत्र, पाँच चमर आदि पाँच-पाँच उपकरण बनवाकर मंदिर में भेंट चढ़ाओ। विद्यालय बनवावो, श्राविका शालायें खोलो, रोगी जीवों के रोग निवारणार्थ औषधालय नियत करो। इस प्रकार शक्ति प्रमाण चतुर्विध दानशालाएँ खोलकर स्व पर हित करो तथा श्रद्धासहित व्रत उपवास करो।

यह सुनकर जिनमती ने मुनि को नमस्कार करके व्रत लिया और उसकी सासु जो कोकिला हुई थी, उसने भी अपने भवांतर की कथा गुरुमुख से सुनकर अपनी आत्मनिन्दा की और शुभ भावों से मरकर स्वर्ग में देव हुई। जिनमती और धनभद्र भी व्रत के प्रभाव से स्वर्ग में देव हुए।

अब वहाँ से आकर विदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष जायेंगे। इस प्रकार जिनमती और धनभद्र ने कोकिला पंचमी व्रत पालन कर उत्तम गति का बंध किया, सो अन्य नर-नारी यह व्रत करें।

तो क्यों न उत्तम पदको प्राप्त होवेंगे, अवश्य ही होवेंगे।

धनभद्र अरु जिनमती, कोकिला पंचमी सार।
कियो व्रत शुभ बंधकर, जासे मुक्ति मंझार।।

10. गणधरवलय व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मंगलावती नामक देश के रत्नसंचय नगर में सोमवाहन नामक राजा अपनी पत्नी विनयावती के साथ सुख से राज्य करता था। उस राजा का चंद्राभ नाम का राजकुमार अपनी भार्या चन्द्रमुखी के साथ रहता था।

एक बार वनमाली ने एक कमल पुष्प राजा को भेंट में चढ़ाया। राजा ने उस पुष्प को हाथ में उठाकर देखा तो उस कमल में एक मरा हुआ भ्रमर था। मरे हुए भ्रमर को देखकर राजा सांसारिक शरीर से विरक्त हो गया और अपना राज्य अपने पुत्र को देकर एक मुनिराज के पास जाकर दीक्षा ग्रहण करके तपःश्चरण से मोक्ष को गया।

इधर चंद्राभ कुमार को राज्य प्राप्त होते ही अहंकारवश सप्तव्यसन में आसक्त हो गया और पाप करने लगा। एक दिन कुछ दुर्जनों के साथ शिकार खेलने जंगल में गया। वहाँ एक पेड़ के नीचे अभयघोष नामक मुनिराज को देखते ही द्वेष से उन मुनिराज के ऊपर उपसर्ग करने लगा। उसने समझा कि यह मुनि मेरे शिकार में बाधक बनेगा, इसलिए उन मुनिराज को वहाँ से जबरदस्ती उठाकर अन्यत्र भेज दिया।

उस पाप के उदय से कलिंग देश के राजा कालयवन ने आकर चन्द्राभ के ऊपर आक्रमण कर दिया और राज्य को अपने हाथ में लेकर चन्द्राभ को उस राज्य से उसकी पत्नी सहित भगा दिया। चन्द्राभ वहाँ से निकलकर मलयाचल पर्वत की एक गुफा में छुपकर बैठ गया। उस गुफा में युगंधर नामक मुनिराज ध्यानस्थ बैठे थे। चन्द्राभ कुमार और उसकी पत्नी ने मुनिराज को देखा, दोनों ही मुनिराज के पास जाकर बैठ गये और हाथ जोड़कर विनय करने लगे। जब मुनिराज ने ध्यान छोड़ा तो राजा कहने लगा- हे मुनिराज ! मेरी प्रार्थना यह है कि मेरा राज्य मेरे हाथ से कौन से पाप के कारण गया ?

मुनिराज कहने लगे कि हे राजन् ! तुमने अभयघोष मुनिराज को जबरदस्ती तिरस्कार करके निकाल दिया था। उसी पाप के कारण तुम भी राज्य च्युत हो गये हो और यह विकट स्थिति तुम्हारे सामने आयी है। तब चन्द्राभ राजा को अपने किये पर बहुत पश्चात्ताप हुआ और वह मुनिराज के चरणों को पकड़कर अपने पापों के उद्धार का कारण पूछने लगा।

तब मुनिराज करुणाबुद्धि से उसको संबोधित करते हुए कहने लगे कि हे राजन्! तुम पापों को दूर करने के लिए गणधरवलय व्रत करो और उसकी विधि भी कह सुनाई। तब राजा ने संतुष्ट होकर उस व्रत को स्वीकार किया। अन्त में वह राजा अपनी पत्नी सहित अपने ससुराल में वापस आ गया। व्रत का अच्छी तरह से पालन करने लगा। इतने में मलयाचल प्रदेश का राजा स्वर्गस्थ हो गया। उसको कोई संतान नहीं थी। मंत्री मण्डल ने विचारकर अपने राजा का पट्ट हाथी छोड़ा। वह हाथी घूमता हुआ चन्द्राभ के पासा आया और उसका अभिषेक करके अपने ऊपर बैठाकर नगर में ले गया। नगरवासी नवीन राजा की प्राप्ति से बहुत खुश हुए और चन्द्राभ को राज सिंहासन पर बैठाकर राज्याभिषेक कर दिया। राजा चन्द्राभ भी राज्य प्राप्त होने के बाद न्यायनीति से राज्य करने लगा।

कुछ काल के बाद अपने पूर्व राज्य के ऊपर चढ़ाई करके कालयवन को हराकर अपना राज्य प्राप्त किया और सुख से रहने लगा। गणधरवलय व्रत को और भी अच्छी तरह से पालन करने लगा, व्रत के पूर्ण होने पर उद्यापन किया। अन्त में समाधिमरण कर स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ की आयु पूर्ण कर वह देव जम्बूद्वीप के अपर विदेह में सीता नदी के किनारे दक्षिण तट पर पद्म देश में सिंहपुरी नामक सुन्दर नगर है, उस नगर में पुरुषदत्त राजा की रानी विमलमति के गर्भ में आया।

जन्मते ही उसका नाम अपराजित रखा। पुत्र के बड़ा होने पर राज्यभार पुत्र को देकर राजा ने दीक्षा ले ली तथा कर्म काटकर मोक्ष को गया। इधर अपराजित राजा ने भी बहुत काल तक राजसुख भोगकर अन्त में राज्य का त्यागकर विमलवाहन केवली के पास जाकर दीक्षा ले ली और घोर तपःश्चरण कर केवली गणधर बना। अन्त में मोक्ष को गया।

11. गरुड़पंचमी व्रत कथा

वीतराग पद वंदके, गुरु निर्ग्रन्थ मनाय।
गरुड़पंचमी व्रत कथा, कहूँ सबहि सुखदाय।।

जम्बूद्वीप संबंधी भरतक्षेत्र के विजयार्ध पर्वत की दक्षिण दिशा में रत्नपुर नाम

का नगर है। वहाँ गरुड़ नाम का विद्याधर राजा अपनी गरुड़ा नाम की रानी सहित सानंद राज्य करता था। वह राजा अति श्रद्धा और भक्तिपूर्वक सदैव अकृत्रिम चैत्यालयों की पूजा वंदना करता था।

एक दिन मार्ग में इसके पूर्वभव के बैरी ने अपना बदला लेने के हेतु इसकी विद्या छीन ली और इसे भूमि पर गिरा दिया। सो वह राजा अपने स्थान को जाने में असमर्थ हुआ। उद्यान में भ्रमण करता था कि सौभाग्य से उसे निर्ग्रन्थ परमगुरु का अचानक दर्शन हो गया। राजा श्रीगुरु को देखकर गद्‌गद् होकर विनय सहित नमस्कार कर पूछने लगा- हे प्रभु ! मैं मंदभागी विद्याविहीन हुआ भटक रहा हूँ। कृपा करके मुझे कोई ऐसा यत्न बताईये कि जिससे मैं पुनः विद्या प्राप्त कर स्वस्थान तक जा सकूँ।

यह सुनकर श्रीगुरु ने कहा- हे भद्र ! धर्म के प्रसाद से सब काम स्वयमेव सिद्ध होते हैं। कहा है- 'धर्म करत संसार दुःख, धर्म करत निर्वाण। धर्म पन्थ साधे बिना, नर तिर्यंच समान'। इसलिये तू सम्यक्त्व सहित 'गरुड़पंचमी व्रत' पालन कर।

देखो इसका फल इस प्रकार है-

मालव देश में चिंच नाम का एक ग्राम है। वहाँ नागगौड़ नामी एक मनुष्य रहता था। उसकी स्त्री का नाम कमलावती था। उसके महाबल, परबल, राम, सोम और भोम ऐसे 5 पुत्र और चारित्रमती नाम की एक कन्या थी। नागगौड़ ने अपनी चारित्रमती कन्या को ग्राम के धनदत्त गौड़ के पुत्र मनोरमण के साथ ब्याह दी। ये दोनों नवदम्पत्ति सुख से रहने लगे।

बहुत दिन पश्चात् इनके शांति नाम का एक बालक हुआ। फिर एक दिन सुगुप्त नाम के मुनि चर्या (भिक्षा) हेतु नगर में पधारे। उन्हें देखकर चारित्रमती को अत्यानन्द हुआ और उन्हें भक्तिपूर्वक पड़गाहकर प्रासुक भोजन-पान कराया।

मुनिराज ने भोजन के अनन्तर 'अक्षयनिधि' यह शब्द कहे। इतने ही में एक आदमी ने आकर चारित्रमति को उसके पिता के बीमार होने की खबर दी। यह सुनकर चारित्रमती ने श्रीगुरु से पूछा- हे नाथ ! मेरे पिता को कौनसी व्याधि हुई है ? तब श्रीगुरु ने कहा- पुत्री ! तेरे बाप के खेत में एक बड़ का झाड़ था, उसके नीचे एक साँप की बामी थी। उस बामी में एक पार्श्वनाथ और दूसरी नेमिनाथ स्वामी की प्रतिमा

थी जिनकी पूजा हमेशा भवनवासी देव करते थे। तेरे बाप ने इस झाड़ को कटवाकर बामी को नष्ट कराया है।

इनसे उन भवनवासी देवों ने क्रोधित होकर विषैली दृष्टि से तेरे पिता को देखा है। इससे वह मूर्छित हो गया है। तब चारित्रमती ने पूछा- हे नाथ ! अब क्या यत्न करना चाहिये, जिससे पिताजी को आराम मिले। तब श्रीगुरु ने कहा- पुत्री श्रद्धापूर्वक गरुड़पंचमी व्रत पालन कर, इससे तेरे पिता की मूर्छा दूर होकर वह स्वस्थ हो जावेगा।

इस व्रत की विधि इस प्रकार है कि श्रावण सुदी पंचमी को उपवास करना। तीनों काल में सामायिक करना। मन्दिर में जाकर श्री जिनेन्द्र का अभिषेक पूजन करना, फिर होम (हवन) करना। अर्हन्त प्रभु के 5 मंगल गान भजन जागरण करना। आरती करना व आशीर्वाद बोलना।

इस प्रकार पाँच वर्ष तक यह व्रत पालना, पश्चात् उद्यापन करना। यदि उद्यापन की शक्ति न होवे तो द्विगुणित (दूना) व्रत करना।

उद्यापन की विधि इस प्रकार है कि आरती, थाली, कलश, धूपदान, चमर, चन्दोवा, अछार, शास्त्र आदि उपकरण पाँच-पाँच लाकर जिनालय में भेंट देवें और घण्टा, पानी के लिये घड़ा, झारी मन्दिर में पधरावे व अष्ट द्रव्य भाव सहित अभिषेकपूर्वक पूजन करें। पाँच श्रावक तथा श्राविकाओं को भोजन करावें तथा दुःखित भूखित को करुणाबुद्धि से आहारादि चारों प्रकार के दान देवें।

चारित्रमती ने नमस्कार कर उक्त व्रत ग्रहण किया। पश्चात् गुरु ने कहा- पुत्री! यह व्रत तू अपने पीहर (पितृगृह) में जाकर करना और गन्धोदक अपने पिता के गले में लगाना, इससे वह मूर्छा रहित हो जायेगा और श्रावण सुदी 5 के दूसरे दिन श्रावण सुदी 6 को नेमिनाथ स्वामी का व्रत है, सो उस दिन अर्हन्त भगवान के छः अष्टक और छः माला जपना, पूजन अभिषेक करना, हवन करना और पूजनादि के पश्चात् ककड़ी नारियल शुभ फल प्रत्येक छः छः सौभाग्यवती स्त्रियों को देना। पश्चात् इसका भी उद्यापन करना अथवा दूना व्रत करना। इस प्रकार दोनों व्रत ग्रहण कर चारित्रमती अपने पिता के घर गई और यथाविधि व्रत पालन किया तथा अपने पिता को गन्धोदक लगाया, जिससे वह मूर्छा रहित हो स्वस्थ हो गया। यह चर्चा सब नगर

में फैल गई और इस प्रकार यह गरुड़ (नाग) पंचमी व्रत का प्रसार संसार में हुआ।

कुछ दिन बाद चारित्रमती घर (श्वसुर गृह) जाने लगी परन्तु पिता आग्रह से और ठहर गई।

एक दिन वह चारित्रमती अपने बाप के खेत में निर्मल सरोवर पर जाकर पूजा करने लगी। इस बीच में वे ही मुनिराज जिन्होंने व्रत दिया था, वहाँ भ्रमण करते हुए आ पहुँचे।

उन्हें देखकर चारित्रमती ने नमस्कार वंदना की और विनम्र हो धर्मश्रवण की इच्छा से वहीं बैठ गई। धर्मोपदेश सुनने के अनन्तर चारित्रमती ने अपने घर की कुशल पूछी। तब श्री मुनि ने अवधिज्ञान से विचार कर कहा- बेटी ! तेरे पुत्र को तेरी सौतन ने नदी में डाल दिया है। सो यदि तू श्रावण सुदी छठ का व्रत पालन करेगी, तो तुझे तेरा पुत्र मिल जायेगा।

यह सुनकर चारित्रमती घर आई और मन, वचन, काय से छठ का व्रत पालन किया। इससे कुछ दिन पश्चात् उसका पुत्र उसे मिला। इस प्रकार चारित्रमती ने मन, वचन, काय से व्रत पालन किये और विधि सहित उद्यापन किए, पश्चात् धर्मध्यान करती हुई अन्त में सन्यास मरण कर वह स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्ग में देव हुई और वहाँ से आकर राजपुत्र हुई।

पश्चात् राजपुत्र भी कारण पाकर वैराग्य को प्राप्त हुआ और दीक्षा लेकर शुक्लध्यान के बल से उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष पद प्राप्त किया। इस प्रकार व्रत का फल सुनकर गरुड़ विद्याधर ने मन-वचन-काय से व्रत पालन किया, जिससे उसे पुन: विद्या सिद्ध हो गई और वह मनुष्योचित्त सुख भोगकर अंत में वैराग्य को प्राप्त हो गया और दीक्षा ले तप करने लगा।

पश्चात् शुक्लध्यान के बल से केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्धपद पाया। इस प्रकार यदि अन्य भव्यजीव भी श्रद्धा सहित यह व्रत पालन करेंगे तो अवश्य ही उत्तम फल पावेंगे।

गरुड़ और चारित्रमती, अहिं पंचमी व्रत पाल।
लहो शुद्ध शिवपद सही, तिनहि नमूँ तिहुँ काल।

12. चन्दनषष्ठी व्रत कथा

देव नमो अरहन्त नित, वीतराग विज्ञान।
चन्दनषष्ठी व्रत कथा, कहूँ स्वपर हित जान।।

काशी देश में बनारस नाम का प्रसिद्ध नगर है, जिसको तेइसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवान ने अपने जन्म धारण करने से पवित्र किया था। उसी नगर में किसी समय एक सूरसेन नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम पद्मनी था।

एक दिन वह राजा सभा में बैठा था कि वनपाल ने आकर छ: ऋतुओं के फल-फूल लाकर राजा को भेंट किये। राजा इस शुभ भेंट से केवली भगवान का शुभागमन जानकर स्वजन और पुरजन सहित वंदना को गया और भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा दे नमस्कार करके बैठ गया।

श्री मुनिराज ने प्रथम ही मुनिधर्म का वर्णन करके पश्चात् श्रावक धर्म का वर्णन किया। उसमें भी सबसे प्रथम सब धर्मों का मूल सम्यग्दर्शन का उपदेश दिया कि वस्तुस्वरूप का यथार्थ श्रद्धान हुए बिना सब ज्ञान और चारित्र निष्फल है और वह वस्तुस्वरूप का श्रद्धान सत्यार्थ देव (अर्हन्त), सत्यार्थ गुरु (निर्ग्रन्थ) और दयामयी (जिन प्रणीत) धर्म से ही होता है।

अतएव प्रथम ही इनका परीक्षा पूर्वक श्रद्धान होना आवश्यक है। तत्पश्चात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रह त्याग से पाँच व्रत एकदेश पालन करे तथा इन्हीं के यथोचित पालनार्थ सप्तशीलों (तीन गुणव्रत व चार शिक्षाव्रतों) का भी पालन करे, इत्यादि उपदेश दिया। तब राजा ने हाथ जोड़कर पूछा- हे प्रभु ! रानी के प्रति मेरा अधिक स्नेह होने का क्या कारण है ? यह सुनकर श्री गुरुदेव ने कहा-

राजा ! सुनो, अवन्ती देश में एक उज्जैन नाम का नगर है। वहाँ वीरसेन नाम का राजा और रानी वीरमती थी। इसी नगर में जिनदत्त नामक एक सेठ थे। उसकी जयावती नाम की सेठानी से ईश्वरचन्द्र नाम का पुत्र भी था, जो कि अपनी मामा की पुत्री चंदना से पाणिग्रहण कर सुख से कालक्षेप करता था।

एक समय सेठ जिनदत्त और सेठानी जयावती कुछ कारण पाकर दिगम्बरी

दीक्षा ग्रहण कर मुनि-आर्यिका हो गये और तप के महात्म्य से अपनी-अपनी आयु पूर्ण कर स्वर्ग में देव-देवी हुए और पिता का पद प्राप्त करके ईश्वरचन्द्र सेठ भी चन्दना सहित सुख से रहने लगा।

एक दिन अतिमुक्तक नाम के मुनिराज मासोपवास के अनन्तर नगर में पारणा निमित्त आये, सो ईश्वरचन्द्र ने भक्ति सहित मुनि को पड़गाहकर अपनी स्त्री से कहा कि श्रीगुरु को आहार दो। तब चन्दना बोली- स्वामी ! मैं ऋतुवती हूँ, कैसे आहार दूँ। ईश्वरचन्द्र ने कहा कि गुपचुप रहो, हल्ला मत करो। गुरुजी मासोपवासी हैं, इसलिये शीघ्र पारणा कराओ।

चंदना ने पति के वचनानुसार मुनिराज को आहार दे दिया। श्री मुनिराज तो आहार करके वन में चले गये और यहाँ तीन ही दिन पश्चात् इस गुप्त पाप का उदय होने से पति-पत्नी दोनों के शरीर में गलित कुष्ट हो गया। जिससे वे दोनों अत्यंत दुःखी हुए और कष्ट से दिन बिताने लगे।

एक दिन भाग्योदय से श्री भद्र मुनिराज संघ सहित उद्यान में पधारे। नगर के लोग वन्दना को गये और ईश्वरचन्द्र भी अपनी भार्या सहित वन्दना को गया। भक्तिपूर्वक नमस्कार कर बैठा और धर्मोपदेश सुना पश्चात् पूछने लगा- हे दीनदयाल ! हमारे यहाँ कौन पाप का उदय आया है कि जिससे यह व्यथा उत्पन्न हुई। तब मुनिराज ने कहा- तुमने गुप्त कपटकर पात्रदान के लोभ से अतिमुक्तक स्वामी को ऋतुवती होने की अवस्था में भी आहार-पान व मन, वचन, काय शुद्ध है कहकर आहार दिया है, सो इसी पाप के कारण से यह असातावेदनीय कर्म उदय आया है।

यह सुनकर उक्त दम्पत्ति (सेठ-सेठानी ने) अपने अज्ञान कृत्य पर बहुत पश्चात्ताप किया और पूछा- प्रभु ! अब कोई उपाय इस पाप से मुक्त होने का बताईये तब श्रीगुरु ने कहा- हे भद्र ! सुनो, भादों बदी षष्ठी को चारों प्रकार के आहार का त्याग करके उपवास धारण करो तथा जिनालय में जाकर अभिषेक पूजन करो अर्थात् अष्टद्रव्य से छः अष्टक चढ़ावो अर्थात् छः पूजा करो। एक सौ आठ (108) बार णमोकार मंत्र का जाप करो। चारों संघों को चार प्रकार का दान देवो।

तीनों काल सामायिक, व्रत, अभिषेक, पूजन करो, घर के आरंभ व विषयकषायों का उपवास के दिन और रात्रिभर आठ प्रहर तथा धारणा-पारणा के दिन 4 प्रहर ऐसे सोलह प्रहरों तक त्याग करो।

इस प्रकार छः वर्ष तक यह व्रत करो, पश्चात् उद्यापन करो अर्थात् जहाँ जिनमन्दिर न हो वहाँ छः जिनालय बनवाओ, छः जिनबिंब पधरावो, छः जिनमन्दिरों का जीर्णोद्वार करावो, छः शास्त्रों का प्रकाशन करो। छः छः सब प्रकार के उपकरण मन्दिर में चढ़ाओ, छात्रों को भोजन करावो। चार प्रकार के (आहार, औषध, शास्त्र और अभय) दान देवो।

इस प्रकार दंपत्ति ने व्रत की विधि सुनकर मुनिराज की साक्षीपूर्वक व्रत ग्रहण करके विधि सहित पालन किया। कुछ दिन में अशुभ कर्म की निर्जरा होने से उनका शरीर बिलकुल निरोग हो गया और आयु के अंत में सन्यास मरण करके वे दम्पत्ति स्वर्ग में रत्नचूल और रत्नमाला नामक देव-देवी हुए। बहुत काल तक सुख भोगते और नन्दीश्वर आदि अकृत्रिम चैत्यालयों की पूजा-वन्दना करते कालक्षेप करते रहे।

अन्त में आयु पूर्णकर वहाँ से चयकर तुम राजा हुए हो और वह रत्नमालादेवी तुम्हारी पट्टरानी पद्मिनी हुई है। तुम दोनों का पूर्वभवों का सम्बन्ध होने से प्रेम विशेष हुआ है। यह वार्ता सुनकर राजा को भवभोगों से वैराग्य उत्पन्न हुआ। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देकर दीक्षा ले ली और घोर तपःश्चरण किया। तप के प्रभाव से थोड़े ही काल में केवलज्ञान प्राप्त करके वे सिद्ध पद को प्राप्त हुए। रानी पद्मिनी के जीव ने भी दीक्षा ली, वह भी तप के प्रभाव से स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें स्वर्ग में देव हुई। वहाँ से चयकर मनुष्य भव लेकर मोक्षपद प्राप्त करेगा।

इस प्रकार ईश्वरदत्त सेठ और चन्दना ने इस चंदनषष्ठी व्रत के प्रभाव से नर-सुर के सुख भोगकर मोक्ष प्राप्त किया और जो नर-नारी यह व्रत पालेंगे वे भी अवश्य उत्तम पद पावें।

चन्दनषष्ठी व्रत थकी, ईश्वरचन्द्र सुजान।
अरु तिस नारी चन्दना, पाया सुख महान।।

13. जिनगुणसम्पत्ति व्रत कथा

वन्दूँ आदि जिनेन्द्र पद, मन वच शीश नवाय।
जिनगुणसम्पत्ति व्रत कथा, कहूँ भव्य सुखदाय।।

धातकी खण्ड द्वीप के पूर्व मेरु संबंधी-अपर विदेह क्षेत्र में गांधिल देश और पाटलीपुत्र नाम का नगर है। वहाँ नागदत्त नाम का सेठ और उसकी सुमति नाम की सेठानी रहती थी। निर्धन होने के कारण अत्यन्त पीड़ित चित्त रहते और वन से लकड़ी का भारा लाकर बेचते थे। इस प्रकार उदरपूर्ति करते थे। एक दिन वह सुमति सेठानी भूख-प्यास की वेदना से व्याकुल होकर एक वृक्ष के नीचे थककर बैठी थी कि इतने ही में क्या देखती है बहुत से नर-नारी अष्ट प्रकार की पूजन के द्रव्य लिये हुए बड़े उत्साह से हर्ष सहित कहीं जा रहे हैं। तब सुमति ने आश्चर्य से उन आगन्तुकों से पूछा- क्यों भाई ! आप लोग कहाँ जा रहे हैं और काहे का उत्सव है ?

तब उत्तर मिला कि अंबरतिलक पर्वत पर पिहताश्रव नाम के केवली भगवान पधारे हैं और यह अष्ट प्रकार की द्रव्य पूजार्थ लिये जाते हैं। सुमति सेठानी यह शुभ समाचार सुनकर सहर्ष सब लोगों के साथ ही प्रभु की वंदना के निमित्त चल दी। इस प्रकार जब सब लोग पिहताश्रव स्वामी के निकट पहुँचे तो मन, वचन, काय से भक्तिपूर्वक भगवान की वंदना पूजा की और फिर एकाग्रचित्त कर धर्मोपदेश सुनने के लिये बैठ गये।

स्वामी ने देवपूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान, गृहस्थ के इन षट्कार्यों का उपदेश दिया। पश्चात् अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य (स्वदार संतोष) और परिग्रह, इन पंचाणुव्रतों तथा इनके रक्षक 4 शिक्षाव्रत और 3 गुणव्रत, इन सात शीलों को ऐसे बारह व्रतों का उपदेश किया और सबसे प्रथम कर्त्तव्य सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझाया।

इस प्रकार उपदेश सुनकर नर-नारी अपने-अपने स्थान को पीछे लौटे। तब सुमति सेठानी जो अत्यन्त दरिद्रता से पीड़ित थी, अवसर पाकर श्री भगवान से अपने दुःख की वार्ता कहने लगी- हे स्वामी ! दीनबन्धु, दयासागर भगवान ! मैं अबला

दरिद्रता से पीड़ित हो नितांत व्याकुल हुई कष्ट पा रही हूँ। कौन कारण से सम्पत्ति (लक्ष्मी) मुझसे दूर रहती है और वह कैसे मुझे मिले, जिससे मेरा दुःख दूर होकर मेरी प्रवृत्ति दान पूजादि रूप हो।

किसी कवि ने ठीक की कहा है- 'भूखे पेट न भक्ति होय धर्माधर्म न सूझे कोय'। इसी कहावत के अनुसार जब सब लोग धर्मोपदेश सुन रहे थे, तब वह दरिद्र सुमति सेठानी अपने दारिद्रय रूपी तत्त्व के विचार में ही निमग्न थी, जो कि अवसर मिलते ही झट से कह सुनाया।

स्वामी ने जिनकी दृष्टि में राजा और रंक समान हैं। उस सेठानी से चित्त को प्रसन्न करने वाले शब्दों में इस प्रकार समझाया-ऐ बेटी सुमति! सुन, पलासकूट नामक नगर में दिविलह नामक ग्रामपति रहता था। उसकी भार्या सुमति और पुत्री धनश्री रूप यौवन सम्पन्न थी। एक समय धनश्री पाँच-सात सखियों को लेकर वनक्रीड़ा के लिये नगर के उद्यान में गई, जहाँ पर एक वृक्ष के नीचे समाधिगुप्त नाम के मुनिराज ध्यान कर रहे थे। यह मदोन्मत्त धनश्री मुनिराज को देखकर निन्दायुक्त वचन कहने लगी और घृणाकर मुनिराज के ऊपर कुत्ते छोड़ दिये। इससे मुनिराज को बड़ा उपसर्ग हुआ, परन्तु वे धीर-वीर जिनगुरु अपने ध्यान से किंचित्मात्र भी च्युत न हुए।

किन्तु इस महापाप के कारण वह धनश्री मरकर सिंहनी हुई और सिंहनी मरकर तू धनहीन दरिद्रता नारी उत्पन्न हुई। जो कोई मूढ़ नर-नारी श्रीगुरु को उपसर्ग करते हैं, वे ऐसी ही नीच गति को प्राप्त होते हैं।

सुमति सेठानी अपने पूर्व भवांतर सुनकर बहुत दुःखी हो पश्चात्ताप करके रोने लगी। पश्चात् कुछ धैर्य धरकर हाथ जोड़कर पूछने लगी- हे स्वामी! मेरा यह महापाप किस प्रकार छूटेगा।

तब भगवान ने कहा कि यदि तू सम्यग्दर्शनपूर्वक जिनगुण सम्पत्ति व्रत पालन करे तो तेरा दुःख दूर होकर मनवांछित कार्य सिद्ध होगा। इस व्रत की विधि इस प्रकार है कि प्रथम ही सोलह-कारण भावनाएँ जो तीर्थंकर प्रकृति के आश्रव का कारण हैं, उन्हें 16, पंचपरमेष्ठी के पाँच, अष्ट प्रतिहार्य के आठ और 34 अतिशयों के

34, इस प्रकार कुल 63 उपवास या प्रोषध करें।

इन उपवास के दिनों में समस्त गृहारंभ को त्यागकर श्री जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक और पूजन विधान करें। दिन में तीन बार सामायिक व स्वाध्याय करें और उद्यापन की शक्ति न होवे तो दूना व्रत करें।

उद्यापन की विधि निम्न प्रकार हैं- श्रीफल, अखरोट, खारक, बादाम, द्राक्ष इत्यादि प्रत्येक प्रकार के 63 (त्रेसठ) फल सहित अष्ट द्रव्य से भगवान का महाभिषेक पूर्वक पूजन करें और जिनालय में चन्दोवा, चंवर, छत्र, झालर, घण्टादि उपकरण भेंट करें तथा त्रेसठ ग्रंथ लिखाकर श्रावक-श्राविकाओं में ज्ञानावरण कर्म के क्षय होने के लिए बांटे व जिनालय के सरस्वती भंडारों में ग्रंथ पधरावें, खूब उत्सव करें, अतिथियों को भोजन देवें व दीन-दुःखी का यथासंभव दुःख दूर करें, इत्यादि।

सुमति सेठानी इस प्रकार व्रत की विधि सुनकर घर आई और श्रद्धा सहित यह व्रत पालन करके शक्ति अनुसार उद्यापन भी किया। आयु के अंत में सन्यास मरण करके दूसरे स्वर्ग में ललितांग देव की पट्टरानी देवी हुई।

पुण्य के प्रभाव से वह स्वयंप्रभा देवी नाना प्रकार के सुखों को भोगती हुई। आयु पूर्णकर वहाँ से चयकर इसी जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह सम्बन्धी पुष्कलावती देश की पुण्डरीकनी नगरी में यज्ञदत्त चक्रवर्ती के लक्ष्मीमती नाम की रानी के गर्भ से श्रीमती नाम की पुत्री हुई, जो वज्रजंघ राजा के साथ ब्याही गई।

एक दिन ये दम्पत्ति वनक्रीड़ा को गये थे, सो वहाँ सर्पसरोवर के तट पर आये हुए चारण मुनि को आहार दान किया और मुनिदान के प्रभाव से ये दम्पत्ति भोगभूमि में उत्पन्न हुए। फिर वहाँ से चयकर श्रीमती के जीव ने जम्बूद्वीप में अवतार लेकर आर्यिका के व्रत धारण किये और सन्यासपूर्वक मरण कर स्त्रीलिंग छेदकर दूसरे स्वर्ग में देव हुआ।

फिर वहाँ से चयकर जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह वत्सकावती देश की सुसीमा नगरी में सुबुद्धि नाम राजा की मनोरमा रानी के केशव नाम पुत्र हुआ, सो उसने बहुत काल तक अपने पिता द्वारा प्रदत्त राज्य सुख न्याय-नीतिपूर्वक भोगा। पश्चात् कारण से वैराग्य को प्राप्त हुआ और सीमन्धरस्वामी के निकट जिन दीक्षा धारण करके दुर्द्धर

तपःश्चरण किया। तप के प्रभाव से सन्यास मरण कर सोलहवें स्वर्ग में देव हुआ।

वहाँ से बाईस सागर की आयु सुख से पूर्ण करके जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में पुष्कलावती देश की पुण्डरीकनी नगरी में कुबेरदत्त सेठ की अनन्तमती सेठानी के धनदेव नाम का पुत्र हुआ। एक दिन वह धनदेव चक्रवर्ती के साथ मुनिराज की वंदना को गया। स्वामी का उपदेश सुनकर उसने वैराग्य को प्राप्त होकर जिन दीक्षा धारण की और तप करके सन्यास मरण कर सर्वार्थसिद्धि में अहमिंद्र हुआ।

फिर वहाँ से चयकर भरत क्षेत्र के कुरुजांगल देश की हस्तिनागपुर नगरी में श्रेयांस नाम का राजा हुआ। बहुत काल राज्यसुख भोगने के पश्चात् श्री ऋषभदेव भगवान को आहार दान दिया, जिसके कारण दानियों में प्रसिद्ध प्रथम दानवीर कहलाया। जिसकी कथा आज तक प्रख्यात है और लोग उस दान के दिन (वैशाख सुदी 3) को अक्षय तृतीया या आखातीज कहते हैं और उत्सव मनाते हैं, क्योंकि सबसे प्रथम दान की प्रथा इन्हीं के द्वारा प्रचलित हुई है।

पश्चात् वे प्रसिद्ध दानी राजा श्रेयांस भगवान ऋषभदेव के मुख से धर्मोपदेश सुनकर जिन दीक्षा लेकर तप करने लगे और अपने शुक्लध्यान के प्रभाव से केवलज्ञान को प्राप्त होकर मोक्षपद प्राप्त किया। इस प्रकार सुमति नाम की दरिद्र सेठानी ने जिनगुणसम्पत्ति व्रत सम्यग्दर्शन सहित पालनकर अनुक्रम से मोक्षपद प्राप्त किया और भव्य जीव यदि पालें तो क्यों नहीं उत्तम फल पावेंगे ? अवश्य ही पावेंगे।

जिनगुण सम्पत्ति व्रत करो, सुमति वणिक नर नार।
नर सुर के सुख भोगकर, फेर हुई भवपार।।

14. णमोकार पैंतीसी व्रत

यह व्रत 1 वर्ष अर्थात् एक वर्ष और छः मास में समाप्त होता है और इस डेढ़ वर्ष अवधि के भीतर सिर्फ पैंतीस दिन ही व्रत के होते हैं। आषाढ़ सुदी 7 से यह व्रत शुरु होता है, जिसकी विधि इस प्रकार है-

1. प्रथम आषाढ़ सुदी 7 का उपवास करें। फिर श्रावण की सप्तमी 2, भादों

की सप्तमी 2 ,आश्विन की सप्तमी 2, इस प्रकार सात उपवास करें। पश्चात् कार्तिक कृष्ण पंचमी को, पौष कृष्ण पंचमी अर्थात् पाँच पंचमियों के पाँच उपवास करें। फिर पौष कृष्ण चतुर्दशी से चैत्र कृष्ण चतुर्दशी तक सात चतुर्दशियों के सात उपवास करें। फिर चैत्र शुक्ल चतुर्दशी से आषाढ़ कृष्ण चतुर्दशी तक सात चतुर्दशियों के सात उपवास करें। फिर श्रावण कृष्ण नवमी से अगहन कृष्ण नवमी तक नवमियों के नव उपवास करें। इस प्रकार 35 उपवास द्वारा यह व्रत पूरा करें। प्रतिदिन अभिषेक पूर्वक नवकार मंत्र पूजन करें, पश्चात् उद्यापन करें।

इस णमोकार मंत्र पैंतीसी व्रत के प्रभाव से तो गोपाल नामक ग्वाला चम्पानगरी में ऋषभदत्त सेठ के यहाँ सुदर्शन नाम का पुत्र हुआ था और यह निमित्त पाकर वैराग्य धारण कर उसने कर्मों का नाश कर मोक्ष प्राप्त किया।

15. दशलक्षण व्रत कथा

उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप जान।
त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य, मिल ये दशलक्षण धर्म बखान।।
ये स्वाभाविक आतम के गुण, जे नर धरैं सुधी गुणवान।
तिन पद वन्द्य कथा दशलक्षण, व्रत की कहूँ सुनो मन आन।। 1 ।।

धातकी खण्ड द्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में विशाल नाम का एक नगर है। वहाँ का प्रियंकर नाम का राजा अत्यंत नीतिनिपुण और प्रजावत्सल था। रानी का नाम प्रियंकरा था और इसके गर्भ में उत्पन्न हुई कन्या का नाम मृगांकलेखा था। इसी राजा के मंत्री का नाम मतिशेखर था। इस मंत्री के उसकी शशिप्रभा स्त्री के गर्भ से कमलसेना नाम की कन्या थी। इसी नगर के गुणशेखर नामक एक सेठ के यहाँ उसकी शीलप्रभा नाम की सेठानी से एक कन्या मदनवेगा हुई थी और लक्षभट नामक ब्राह्मण के घर चन्द्रभागा भार्या से रोहिणी नाम की कन्या हुई थी।

चे चारों (मृगांकलेखा, कमलसेना, मदनवेगा और रोहिणी) कन्याएँ अत्यंत रूपवान, गुणवान तथा बुद्धिमान थी। वे सदैव धर्माचरण में सावधान रहती थी। एक

समय बसंत ऋतु में ये चारों कन्याएँ अपने-अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर वनक्रीड़ा के लिए निकली। भम्रण करती-करती कुछ दूर निकल गई। ये वन की स्वाभाविक शोभा को देखकर आल्हादित हो रही थी कि उसी समय उनकी दृष्टि उस वन में विराजमान श्री महामुनिराज पर पड़ी और वे विनयपूर्वक उनको नमस्कार करके वहाँ बैठकर धर्मोपदेश सुनने लगी। पश्चात् मुनि तथा श्रावकों का द्विविध प्रकार उपदेश सुनकर वे चारों कन्याएँ हाथ जोड़कर पूछने लगी- हे नाथ ! यह तो हमने सुना, अब दया करके हमको ऐसा मार्ग बताईये कि जिससे इस पराधीन स्त्री पर्याय तथा जन्म-मरणादिक दुःखों से छुटकारा मिले। तब श्रीगुरु बोले- बालिकाओं ! सुनो, यह जीव अनादिकाल से मोहभाव को प्राप्त हुआ विपरीत आचरण करके ज्ञानावरणादि अष्टकर्मों को बांधता है और फिर पराधीन हुआ संसार में नाना प्रकार के दुःख भोगता है सुख यथार्थ में कहीं बाहर से नहीं आता है, न कोई भिन्न पदार्थ ही है, किन्तु वह (सुख) अपने निकट ही आत्मा में अपने ही आत्मा का स्वभाव है, सो जब तीव्र उदय होता है उस समय यह जीव अपने उत्तमक्षमादि गुणों को (जो यथार्थ में सुख-शांति स्वरूप ही है) भूलकर इनसे विपरीत क्रोधादि भावों को प्राप्त होता है और इस प्रकार स्वपर की हिंसा करता है। कदाचित् यह अपने स्वरूप का विचार करके अपने चित्त को उत्तमक्षमादि गुणों से रंजित करे तो निःसंदेह इस भव और परभव में सुख भोगकर परमपद (मोक्ष) को प्राप्त कर सकता है। तुम मन, वचन, काय से इस उत्तम दशलक्षण रूप धर्म को धारण करके यथाशक्ति व्रत पालो तो निःसंदेह मनवांछित (उत्तम) फल पाओगे।

भगवान ने उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्य ब्रह्मचर्याणि धर्मः' अर्थात् उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य, इस प्रकार ये धर्म के दसलक्षण बताये हैं। ये वास्तव में आत्मा के ही निजभाव हैं, जो क्रोधादि कषायों से ढँक रहे हैं।

उत्तम क्षमा, क्रोध के उपशम या क्षय होने से प्रगट होती है। इसी प्रकार उत्तम मार्दव मान के उपशम क्षयोपशम व क्षय से होता है। उत्तम आर्जव माया के नाश होने

से होता है। सत्य मिथ्यात्व (मोह) के नाश से होता है। शौच, लोभ के नाश से होता है। संयम विषयानुराग कम या नाश होने से होता है। तप इच्छाओं को रोकने (मन वश करने) से होता है। त्याग ममत्व (राग) भाव कम या नाश करने से होता है। आकिंचन्य निस्पृहता से उत्पन्न होता है और ब्रह्मचर्य काम विकार तथा उनके कारणों को छोड़ने से उत्पन्न होता है। इस प्रकार से दसों धर्म अपने प्रति घातक दोषों के क्षय होने से प्रगट हो जाते हैं।

(1) क्षमावान प्राणी कदापि किसी जीव से बैर-विरोध नहीं करता है और न किसी को बुरा-भला कहता है। किन्तु दूसरों के द्वारा अपने ऊपर लगाये हुए दोषों को सुनकर अथवा आये हुए उपद्रवों से भी विचलित चित्त नहीं होता है और उन दुःख देने वाले जीवों पर उल्टा करुणा भाव करके क्षमा कर देता है तथा अपने द्वारा किये हुए अपराधों की क्षमा माँग लेता है। इस प्रकार यह क्षमावान पुरुष सदा निर्बैर हुआ अपना जीवन सुख-शांतिमय बनाता है।

(2) इसी प्रकार मार्दव धर्मधारी नर के क्षमा तो होती ही है किन्तु जाति कुल, ऐश्वर्य, विद्या, तप और रूपादि समस्त प्रकार के मदों के नाश होने से विनयभाव प्रकट होता है अर्थात् वह प्राणी अपने से बड़ों में भक्ति व विनयभाव रखता है और छोटा में करुणा व नम्रता रखता है। सबसे यथायोग्य मिष्टवचन बोलता है और कभी भी किसी से कठिन शब्दों का प्रयोग नहीं करता है। इसी से यह मिष्टभाषी विनयी पुरुष सर्वप्रिय होता है और किसी से द्वेष न होने से सानन्द जीवन यात्रा करता है।

(3) आर्जव धर्मधारी पुरुष क्षमा और मार्दव धर्मपूर्वक ही आर्जवधर्म (सरलता) को धारण करता है। इसके जो कुछ बात मन में होती है सो ही वचन से कहता है एवं कही हुई बात को पूरी करता है। इस प्रकार यह सरल परिणामी पुरुष निष्कपट होने के कारण निश्चिंत तथा सुखी होता है।

(4) सत्यवान पुरुष सदैव जो बात जैसी है उसे वैसी ही जानता समझता है, वैसी ही कहता है, अन्यथा नहीं कहता, कहे हुए वचनों को नहीं बदलता और न कभी किसी को हानि व दुःख पहुँचाने वाले वचन बोलता है। वह तो सदैव अपने वचनों पर दृढ़ रहता है। इसके उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव ये तीनों धर्म अवश्य ही होते हैं।

वह पुरुष अन्यथा प्रलापी न होने से विश्वास पात्र होता है और संसार में सम्मान व सुख को प्राप्त होता है।

(5) शौचवान नर उपर्युक्त चारों धर्मों को पालता हुआ अपनी आत्मा को लोभ से बचाता है और जो पदार्थ न्यायपूर्वक उद्योग करने से उसके क्षयोपशम के अनुसार उसे प्राप्त होते हैं वह उसमें सन्तोष करता है और कभी स्वप्न में भी परधन हरण करने के भाव इसके नहीं होते हैं। यदि अशुभ कर्म के उदय से इसे कभी किसी प्रकार का घाटा हो जाये अथवा किसी प्रकार से द्रव्य चला जाये तो भी यह दुःखी नहीं होता और अपने कर्मों का विपाक समझकर धैर्य धारण करता है, परन्तु अपने घाटे की पूर्ति के लिए कभी किसी दूसरे को हानि पहुँचाने की चेष्टा नहीं करता है। इसको तृष्णा न होने के कारण सदा आनंद में रहता है और इसीलिए कभी किसी से ठगाया भी नहीं जाता है।

(6) संयमी पुरुष भी उक्त पाँचों व्रतों को पालता हुआ अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से रोकता है। ऐसी अवस्था में इसे कोई पदार्थ इष्ट व अनिष्ट प्रतीत नहीं होते हैं। क्योंकि विषयानुरागता के ही कारण अपने ग्रहण योग्य पदार्थ इष्ट और आरोचक व ग्रहण न करने योग्य अनिष्ट माने जाते हैं, सो इष्टानिष्ट कल्पना न रहने के कारण उनमें हेयोपादेय कल्पना भी नहीं रहती है, तब समभाव होता है। इसी से यह समरसी आनंद को प्राप्त होता है।

(7) तपस्वी पुरुष इन्द्रियों को वश करता हुआ भी मन को पूर्ण रीति से वश करता है और उसे यत्र-तत्र दौड़ने से रोकता है और किसी प्रकार की इच्छा उत्पन्न नहीं होने देता है। जब इच्छा ही नहीं रहती तो आकुलता किस बात की। वह अपने ऊपर आने वाले सब प्रकार के उपसर्गों को धीरतापूर्वक सहन करने में उद्यमी व समर्थ होता है। वास्तव में ऐसा कोई भी सुरनर या पशु संसार में नहीं जन्मा है जो इस परमतपस्वी को उसके ध्यान से किंचित्मात्र भी डिगा सके। इसलिए ही इस महापुरुष के एकाग्र चिंतानिरोध रूप धर्म व शुक्लध्यान होता है, जिससे यह अनादि से लगे हुए कठिन कर्मों का अल्प समय में नाश करके सच्चे सुखों का अनुभव करता है।

(8) त्यागी पुरुष के उक्त सातों व्रत तो होते ही हैं किन्तु उस पुरुष की आत्मा

बहुत उदार हो जाती है। यह अपने आत्मा से रागद्वेषादि भावों को दूर करने तथा स्वपर उपकार के निमित्त आहारादि चारों दान देता है और दान देकर अपने आपको धन्य व स्वसम्पत्ति को सफल हुई समझता है। यह कदापि स्वप्न में भी अपनी ख्याति व यश नहीं चाहता और न दान देकर उसे स्मरण रखता है अथवा न कभी किसी को प्रगट ही करता है। वास्तव में दान देकर भूल जाना ही दानी का स्वभाव होता है। इससे यह पुरुष सदा प्रसन्नचित्त रहता है और मृत्यु का समय उपस्थित होने पर भी निराकुल रहता है। इसका चित्त धनादि में फंसकर आर्त्त रौद्र रूप कभी नहीं होता और उसकी आत्मा सद्गति को प्राप्त होती है।

(9) आकिंचन्य-बाह्य आभ्यंतर समस्त प्रकार के परिग्रहों से ममत्व भावों को छोड़ देने वाला पुरुष सदैव निर्भय रहता है। उसे न कुछ सम्हालना और न रक्षा करनी पड़ती है। यहाँ तक कि वह अपने शरीर तक से नि:स्पृह रहता है। तब ऐसे महापुरुष को कौन पदार्थ आकुलित कर सकता है, क्योंकि वह अपने आत्मा के सिवाय समस्त परभावों या विभावों को हेय अर्थात् त्याज्य समझता है। इसी से कुछ भी ममत्व शेष नहीं रह जाता और समय-समय असंख्यात व अनन्तगुणी कर्मों की निर्जरा होती रहती है। इसी से यह सुखी रहता है।

(10) ब्रह्मचर्यधारी महाबलवान योद्धा सदैव उक्त नवव्रतों को धारण करता हुआ निरन्तर अपने आत्मा में ही रमण करता है। वह बाह्य स्त्री आदि से विरक्त रहता है। उसकी दृष्टि में सब जीव संसार में एक समान प्रतीत होते हैं और स्त्री, पुरुष व नपुसंकादि का भेद कर्म की उपाधि जानता है। यह सोचता है कि यह देह हाड़, माँस, मल, मूत्र, रुधिर, पीव आदि रागी जीवों को सुहावना सा लगता है। यदि वह चाम की चादर हटा दी जाये अथवा वृद्धावस्था आ जाये तो फिर इसकी ओर देखने को भी जी न चाहे, इत्यादि ऐसे घृणित शरीर में क्रीड़ा करना क्या है ? मानो विष्टा (मल) के क्रीड़ा व्रत उसमें अपने आपको फंसाकर चतुर्गति के दु:खों में डालता है। इस प्रकार यह सुभट काम के दुर्जय किले को तोड़कर अपनी अनंत सुखमई आत्मा में ही विहार करता है। ऐसे महापुरुषों का आदर सब जगह होता है और तब कोई भी कार्य संसार में ऐसा नहीं रह जाता है कि जिसे वह अखण्ड ब्रह्मचारी न कर सके।

तात्पर्य वह सबकुछ करने को समर्थ होता है।

इस प्रकार इन दस धर्मों का संक्षिप्त स्वरूप कहा, सो तुमको निरन्तर इन धर्मों को अपनी शक्ति अनुसार धारण करना चाहिए। अब इस दसलक्षण व्रत की विधि कहते हैं-

भादों, माघ और चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में पंचमी से चतुर्दशी तक 10 दिन पर्यंत व्रत किया जाता है। दसों दिन त्रिकाल सामायिक, प्रतिक्रमण, वंदना, पूजन, अभिषेक, स्तवन, स्वाध्याय तथा धर्मचर्चा आदि कर और क्रम से पंचमी को ऊँ ह्रीं अर्हन्मुखकमल समुद्गताय उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय नम: इस मंत्र का 108 बार जाप करें इस प्रकार दिन में 324 बार तीन काल सामायिक के समय जाप्य करें और इस उत्तम क्षमा गुण की प्राप्ति के लिए भावना भावें तथा उसके स्वरूप का बारम्बार चिन्तवन करें। इसी प्रकार छठमी को **ऊँ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तममार्दवधर्माङ्गाय नम: का जाप कर भाव भावें। फिर सप्तमी को ऊँ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमआर्जवधर्माङ्गाय नम:, अष्टमी को ऊँ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमआर्जवधर्माङ्गाय नम:, नवमी को ऊँ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमशौचधर्माङ्गाय नम:, दशमी ऊँ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमआर्जवधर्माङ्गाय नम:, एकादशी को ऊँ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमधर्माङ्गाय नम:, द्वादशी को ऊँ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तम त्यागधर्माङ्गाय नम:, त्रयोदशी को ऊँ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तम आकिंचन्यधर्माङ्गाय नम:, चतुर्दशी को ऊँ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तम ब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय नम:** इत्यादि मंत्रों का जाप करके भावना भावें।

समस्त दिन स्वाध्याय पूजादि धर्म कार्यों में बितावें। रात्रि को जागरण भजन करें। सब प्रकार के रागद्वेष व क्रोधादि कषाय तथा इन्द्रिय विषयों को बढ़ाने वाली विकथाओं का तथा व्यापारादि समस्त प्रकार के आरंभों का सर्वथा त्याग करें।

दसों दिन यथाशक्ति प्रोषधोपवास, बेला, तेला आदि करें। ऐसी शक्ति न हो तो एकासन, ऊनोदर तथा रस त्याग करके करें, परन्तु कामोत्तेजक, सचिक्कण, मिष्टगरिष्ठ (भारी) और स्वादिष्ट भोजनों का त्याग करें तथा अपना शरीर स्वच्छ

खादी के कपड़ों से ही ढकें। बढ़िया वस्त्रालंकार न धारण करें और रेशम, ऊन तथा फैन्सी विदेशी व मिलों के बने वस्त्र तो छुएँ भी नहीं, क्योंकि वे अनंत जीवों के घात से बनते हैं एवं कामादिक विकारों को बढ़ाने वाले होते हैं।

इस प्रकार यह व्रत दस वर्ष तक पालन करने के पश्चात् उत्साह सहित उद्यापन करें अर्थात् छत्र, चमर आदि अष्ट मंगल द्रव्य, जपमाला, कलश, वस्त्रादि धर्मोपकरण प्रत्येक दस-दस श्री मन्दिरजी में पधराना चाहिये तथा पूजा विधानादि महोत्सव करना चाहिये दुखित-भुखितों को भोजनादि दान देना चाहिये।

वाचनालय, विद्यालय, छात्रावास, औषधालय, अनाथालय, पुस्तकालय तथा दीन प्राणीरक्षक संस्थाएँ आदि स्थापित करनी चाहिए। इस प्रकार द्रव्य खर्च करने में असमर्थ हो तो शक्ति प्रमाण प्रभावनांग को बढ़ाने वाला उत्सव करें अथवा सर्वथा असमर्थ हो तो द्विगुणित वर्षों प्रमाण (20 वर्ष) व्रत करें। इस व्रत के फल से स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

इस उपदेश व व्रत की विधि सुन उन चारों कन्याओं ने मुनिराज की साक्षी पूर्वक इस व्रत को स्वीकार किया और निज घरों को गयी। पश्चात् दस वर्ष तक उन्होंने यथाशक्ति व्रत पालकर उद्यापन किया सो उत्तमक्षमादि धर्मों का अभ्यास हो जाने से उन चारों कन्याओं का जीवन सुख और शांतिमय हो गया। वे चारों कन्याएँ समाधिमरण करके महाशुक्र नामक दसवें स्वर्ग में अमरगिरि, अमरचूल, देवप्रभु और पद्मसारथी नामक महाऋद्धिक देव हुए।

वहाँ पर अनेक प्रकार के सुख भोगते और अकृत्रिम जिन चैत्यालयों की भक्ति वंदना करते हुए अपनी आयु पूर्ण कर वहाँ से चले, सो जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में मालवा प्रांत के उज्जैन नगर में मूलभद्र और पद्मकुमार नाम के रूपवान व गुणवान पुत्र हुए और भले प्रकार बाल्यकाल व्यतीत करके कुमारकाल में सब प्रकार की विद्याओं में निपुण हुए। पश्चात् इन चारों का ब्याह नन्दनगर के राजा इण तथा उनकी पत्नी तिलकसुन्दरी के गर्भ से उत्पन्न कलावती, ब्राह्मी, इन्दुगात्री और कंकू नाम की चार अत्यंत रूपवान तथा गुणवान कन्याओं के साथ हुआ और ये दम्पत्ति प्रेमपूर्वक कालक्षेप करने लगे।

एक दिन राजा मूलभद्र ने आकाश में बादलों को बिखरे देखकर संसार के विनाशक स्वरूप का चिन्तवन किया और द्वादशानुप्रेक्षा भायी। पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र को राज्यभार सौंपकर आप परम दिगम्बर मुनि हो गये। इन चारों पुत्रों ने यथायोग्य प्रजा का पालन व मनुष्योचित भोग भोगकर कोई एक कारण पाकर जिनेश्वरी दीक्षा ली और महान तपःश्चरण करके केवलज्ञान को प्राप्त हो, अनेक देशों में विहार करके धर्मोपदेश दिया। फिर शेष अघातिया कर्मों का भी नाश कर आयु के अंत में योग निरोध करके परमपद (मोक्ष) को प्राप्त हो गये।

इस प्रकार उक्त चारों कन्याओं ने विधिपूर्वक इस व्रत को धारण करके स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्ग तथा मनुष्य गति के सुख भोगकर मोक्षपद प्राप्त किया। इसी प्रकार जो और भव्य जीव मन, वचन, काय से इस व्रत को पालन करेंगे वे भी उत्तमोत्तम सुखों को प्राप्त होंगे।

मृगांकलेखादि कन्यायें, दसलक्षण व्रत धार।
'दीप' लहो निर्वाण पद, वन्दूं बारम्बार ।। 1 ।।

16. द्वादशी व्रत कथा

नमो शारदा पद कमल, स्याद्वाद् मय सार।
जो प्रसाद द्वादशी कथा, कहूँ भव्य हितकार।।

मालवा प्रदेश में पद्मावतीपुर नगर था। जहाँ नरब्रह्मा राजा अपनी विजयावती रानी सहित राज्य करता था। इस राजा को एक कुबड़ी कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम शीलावती पड़ा।

एक दिन शीलावती को रोती हुई देखकर राजा-रानी को अत्यन्त दुःख हुआ व अनेक प्रकार की चिन्ता करने लगे। फिर किसी दिन भाग्योदय से उसी नगर में श्रमणोत्तम नामक मुनिराज विहार करते हुए आये। यह सुनकर राजा अति प्रसन्न हो नगर के लोगों सहित वंदना को गया और स्तुति-वंदना के अनन्तर धर्मोपदेश श्रवण किया।

पश्चात् अवसर पाकर राजा ने पूछा- प्रभु ! मेरी पुत्री शीलावती को कौन पाप के उदय से यह दुःख प्राप्त हुआ है ? तब श्रीगुरु ने अवधिज्ञान से विचार कर कहा- ऐ राजा ! सुनो, अवन्ती देश में आडलपुर नगर है, वहाँ राजपुरोहित देहु शर्मा और उसकी कालमुरी नाम की कन्या थी।

एक दिन यह कन्या सखियों सहित वनक्रीड़ा निमित्त उपवन में गई और वहाँ आम के वृक्ष के नीचे परम दिगम्बर ऋषिराज को कायोत्सर्ग ध्यान करते हुए देखा। अपने रूपादिक मद से मदोन्मत्त उस कन्या ने मुनि की बहुत निन्दा की। कुत्सित शब्द भी कहने लगी कि यह नंगा, ढोंगी और अत्यन्त कामासक्त व्यभिचारी है। यह स्त्रियों को अपना गुप्त अंग दिखलाता फिरता है। यह लज्जा रहित हुआ कभी वन और कभी बस्ती में भटकता फिरता है और लंघने करके अपने को महात्मा बताता है, इत्यादि।

निंदा करते हुए मुनिराज पर मिट्टी, धूल आदि डाली, मस्तक पर थूका तथा और भी बहुत उपसर्ग किये। सो मुनि तो उपसर्ग जीतकर शुक्लध्यान के योग से केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त हुए और वह कन्या मरकर पहिले नर्क में गई, जहाँ बहुत दुःख भोगे।

वहाँ से निकलकर गधी हुई, सूकरी हुई, फिर हथिनी हुई, फिर बिल्ली हुई, फिर नागिन हुई, फिर चांडाल के घर कन्या हुई और वहाँ से आकर अब यह तुम्हारे घर पुत्री हुई है। इस पुत्री के भवांतर की कथा सुनकर राजा ने कहा- प्रभु ! इस पाप के निवारण करने के लिए कोई धर्म का अवलम्बन बताईये, तब श्रीगुरु ने कहा कि यदि यह द्वादशी का व्रत करे तो पाप का नाश होकर परमसुख को प्राप्त हो सकती है।

इस व्रत की विधि इस प्रकार है कि भादो सुदी 12 के दिन उपवास करें और संपूर्ण दिन धर्मध्यान में बितावें। तीनों काल सामायिक करें, जिन मंदिर में जाकर वेदी के सन्मुख पंचरंगों में तंदुल रंगकर साँथिया काढ़ें तथा मंडल बनावे। उस पर सिंहासन रख चतुर्मुखी जिन बिंब पधरावें, फिर अभिषेक करें, अष्ट द्रव्य से पूजन करें। भजन और जागरण कर स्वच्छ और सुंगधी पुष्पों से जाप देंवे। फिर जल से परिपूर्ण कलश

लेकर उस पर नारियल तथा नवीन कपड़े से ढांककर एक रकाबी में अर्घ्य सहित लेकर तीन प्रदक्षिणा देवें, धूप खेवें और कथा सुनें।

इस प्रकार श्रद्धायुक्त बारह वर्ष तक यह व्रत पालें। फिर उद्यापन करें अर्थात् नवीन चार प्रतिमा पधरावें अथवा चार महान शास्त्र लिखाकर जिनालय में पधरावें। कलश, छत्र, चमर, झारी, दर्पण आदि अष्टमंगल द्रव्य तथा अन्य आवश्यक उपकरण मंदिर में भेंट देवें चार प्रकार के संघ को भक्तियुक्त तथा दीन-दुःखियों को करुणाभाव से चारों प्रकार के दान देवें। जिसे उद्यापन की शक्ति न होवे तो दूना व्रत करना चाहिए।

इस प्रकार व्रत की विधि कहकर श्रीगुरु ने कहा- हे राजा ! तुम्हारी पुत्री शीलावती के अर्ककेतु और चन्द्रकेतु नाम के दो पुत्र होंगे। इनमें से अर्ककेतु निज बाहुबल से संग्राम में अनेक राजाओं को जीतकर प्रख्यात राजा होगा, पश्चात् संसार भोगों से विरक्त हो जिनदीक्षा लेकर परमतप करेगा। उसके साथ उसकी माता शीलावती भी दीक्षा लेगी और आयु के अन्त में समाधिमरणकर स्त्रीलिंग छेदकर बारहवें स्वर्ग में देव होगी।

वहाँ से आकर छत्रपति राजा होगी। फिर दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जावेगी। अर्ककेतु और चन्द्रकेतु भी मोक्ष जावेंगे। यह समाचार सुनकर राजा ने मुनि को नमस्कार किया और श्रद्धापूर्वक व्रत की विधि सुनकर घर आया। फिर मुनिराज के कहे प्रमाण व्रत पालन तथा उद्यापन विधिपूर्वक किया, जिससे भवांतरों के पापों का नाश हुआ। इस प्रकार द्वादशी व्रत का माहात्म्य है। जो कोई भव्य जीव श्रद्धा और भक्तियुक्त यह व्रत करेंगे और कथा सुनेंगे उनको अक्षयपुण्य और सुख की प्राप्ति होगी।

इस प्रकार द्वादशी कथा, पूरण भई सुखकार।
व्रतफल शीलावती लियो, अक्षय सुख भण्डार।।

17. निर्दोषसप्तमी व्रत कथा

सहित आठ अरु बीस गुण, नमूँ साधु निर्ग्रन्थ।
सप्तमी व्रत निर्दोष की, कथा कहूँ गुण ग्रन्थ।।

मगध देश के पाटली पुत्र (पटना) नगर में पृथ्वीपाल राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम मदनावती था। उसी नगर में अर्हदास नाम का एक सेठ रहता था, जिसकी लक्ष्मीमती नाम की स्त्री थी। दूसरा सेठ धनपति जिसकी स्त्री का नाम नन्दनी था। नन्दनी सेठानी के मुरारी नाम का एक पुत्र था, जो सांप के काटने से मर गया। इसलिये नन्दनी तथा उसके घर के लोग अत्यन्त करुणाजनक विलाप करते थे अर्थात् सब ही शोक में निमग्न थे।

नन्दनी तो बहुत शोकाकुल रहती थी। उसे ज्यों-ज्यों समझाया जाता था त्यों-त्यों अधिकाधिक शोक करती थी। एक दिन नन्दनी के रुदन (जिसमें पुत्र के गुणगान करती हुई रोती थी) को सुनकर लक्ष्मीमती सेठानी ने समझा कि नन्दनी के घर गायन हो रहा है। तब वह सोचने लगी कि नन्दनी के घर तो कोई मंगल कार्य नहीं है अर्थात् ब्याह व पुत्र जन्मादि उत्सव तो कुछ भी नहीं है तब किस कारण गायन हो रहा है ? अच्छा चलकर पूछूँ तो सही, क्या बात है ? ऐसा विचार कर लक्ष्मीमती सहज स्वभाव से हँसती हुई नन्दनी के घर गई और नन्दनी से हँसते-हँसते पूछा-हे बहिन ! तुम्हारे घर कहीं कोई मंगल कार्य है ऐसा तो सुना नहीं गया, तब यह गायन किसलिए होता रहता है। कृपया बताओ।

तब नन्दनी रीस करके बोली-अरी बाई ! तुझे हँसी की पड़ी है और मुझ पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा है। मेरा कुल का दीपक प्यारा, आँखों का तारा पुत्र सर्प के काटने से मर गया है, इसी से मेरी नींद, भूख-प्यास सब चली गई है। मुझे संसार में अंधेरा लगता है। दुखियों ने दुःख रोया, सुखियों ने हँस दिया। मुझे रोना आता और तुझे हँसना। जा जा ! अपने घर। एक दिन तुझे भी अतुल दुःख होवेगा, तब जानेगी कि दूसरे का दुःख कैसा होता है ?

इस पर लक्ष्मीमती अपने घर चली गई और नन्दनी ने उससे निःकारण बैर

करके सांप मंगाया और एक घड़े में रखकर लक्ष्मीमती के घर भिजवा दिया और कहला दिया कि इस घड़े में सुन्दर हार रखा है, सो तुम पहनो।

नन्दनी का अभिप्राय था कि जब लक्ष्मीमती घड़े में हाथ डालेगी तो सांप उसे काटेगा और वह दुःखियों की हँसी करने का फल पावेगी।

जब दासी लक्ष्मीमती के घर वह विषैला सांप का घड़ा लेकर गई और यथायोग्य सुश्रुषा के वचन कहकर घड़ा भेंट कर दिया। लक्ष्मीमती ने दासी को पारितोषिक देकर विदा किया और घड़े को उघाड़कर उसमें से हार निकालकर पहिन लिया (लक्ष्मीमती के पुण्य के प्रभाव से सांप का हार हो गया।) और हर्ष सहित जिनालय की वन्दना करने गई। मदनावती रानी ने उसे देख लिया और राजा से लक्ष्मीमती जैसा हार मंगा देने के लिये हठ करने लगी।

इस पर राजा ने अर्हदास सेठ को बुलाकर कहा- हे सेठ। जैसा हार तुम्हारी सेठानी का है वैसा ही रानी के लिये बनवा दो और जो द्रव्य लगे भण्डार से ले जाओ। तब अर्हदास श्रेष्ठि ने सेठानी से लेकर वही हार राजा को दिया। राजा के हाथ पहुँचते ही हार का पुनः सर्प हो गया।

इस प्रकार वह सांप अर्हदास के हाथ में हार और राजा के हाथ में सांप हो जाता था। यह देखकर राजा और सभाजन सभी आश्चर्ययुक्त हो हार का वृत्तांत पूछने लगे, परन्तु सेठ कुछ भी कारण न बता सका।

भाग्योदय से वहाँ मुनि संघ आया, सो राजा और प्रजा सभी वन्दना को गये। वन्दना कर धर्मोपदेश सुना और अन्त में राजा ने वह हार और सांप वाली आश्चर्य की बात पूछी। तब मुनिराज ने कहा- हे राजा ! इस सेठ ने पूर्वभव में निर्दोष सप्तमी का व्रत किया है, उसी के पुण्य फल से यह सांप का हार बन जाता है और तो बात ही क्या है। इस व्रत के फल से स्वर्ग और अनुक्रम से मोक्षपद भी प्राप्त होता है और इस व्रत की विधि इस प्रकार है, सो सुनो-

भादो सुदी 7 को आवश्यक वस्त्रादि परिग्रह रख शेष समस्त आरम्भ व परिग्रह का त्याग करके श्री जिनमंदिर में जावें और प्रभु का अभिषेक आरम्भ करें। अष्टद्रव्य से भाव सहित पूजन करें और स्वाध्याय करें। इस प्रकार धर्मध्यान में दिन

बितावें। पश्चात् दूसरे दिन हर्षोत्सव सहित जिनदेव पूजन अर्चन करके अतिथि को भोजन कराकर और दीन-दु:खियों को यथावश्यक दान देकर आप भोजन करें। इस प्रकार सात वर्ष तक यह व्रत करने के पश्चात् विधिपूर्वक उद्यापन करें और यदि उद्यापन की शक्ति न हो तो दूने वर्षों तक व्रत करें।

उद्यापन इस प्रकार करें- बारह प्रकार का पकवान और बारह प्रकार के फल तथा मेवा श्रावकों को बांटे। बारह-बारह कलश, झारी, झालर, चन्दोवा आदि समस्त उपकरण जिन मंदिर में चढ़ावें। बारह शास्त्र लिखाकर पधरावें और चतुर्विध दान करें।

राजा ने यह सब व्रत-विधान सुनकर स्वशक्ति अनुसार श्रद्धा सहित इस व्रत का पालन किया और अन्त में आयु पूर्ण कर (समाधि मरण कर) सातवें स्वर्ग में देव हुआ। जो भव्य जीव श्रद्धा सहित इस व्रत को पालेंगे तो वे भी उत्तमोत्तम सुखों को प्राप्त होंगे।

नरपति पृथ्वी पाल अरु, अरदास गुणवान।
व्रत सातम निर्दोष कर, लहो स्वर्ग सुखदान।।

18. पुष्पांजलि व्रत कथा

नमो सिद्ध परमात्मा, सकल सिद्ध दातार।
पुष्पांजलि व्रत की कथा, कहूँ भव्य सुखकार।।

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में सीता नदी के दक्षिण तट पर मंगलावती देश में रत्नसंचयपुर नाम का एक नगर है। वहाँ राजा वज्रसेन अपनी जयावती रानी सहित सानन्द राज्य करता था, परन्तु घर में पुत्र न होने के कारण उदास रहता था।

एक दिन वह राजा जब रानी सहित जिन मंदिर में दर्शन करने को गया तो वहाँ उसने ज्ञानसागर मुनिराज को बैठे देखा और भक्ति सहित उनकी पूजा वन्दना करके धर्मोपदेश सुना। पश्चात् अवसर पाकर विनय सहित राजा ने पूछा- हे प्रभो ! हमारी रानी के पुत्र न होने से वे अत्यन्त दु:खित रहती हैं, सो क्या इसके कोई पुत्र न होगा ?

तब मुनिराज ने विचार कर कहा- राजा ! चिंता न करो। इसके अत्यंत प्रभावशाली पुत्र होगा, जो चक्रवर्ती पद प्राप्त करेगा। यह सुनकर राजा-रानी हर्षित होकर घर आये और सुख से रहने लगे, पश्चात् कुछ दिनों के बाद रानी को शुभ स्वप्न हुए और एक देव स्वर्ग से रानी के गर्भ में आया नवमास पूर्ण होने पर रत्नशेखर नामधारी सुन्दर पुत्र हुआ। एक दिन रत्नशेखर अपने मित्रों के साथ जब क्रीड़ा कर रहा था तब उसे आकाश मार्ग से जाते हुए मेघवाहन नाम के विद्याधर ने देखा। देखते ही प्रेम से विवल होकर नीचे आया और राजपुत्र को अपना परिचय देकर उसका मित्र बन गया। ठीक है- 'पुण्य से क्या नहीं होता हैं' ? पश्चात् राजपुत्र ने भी उसे अपना परिचय देकर मेरुपर्वत की वन्दना करने की इच्छा प्रगट की। तब मेघवाहन बोला- हे कुमार ! हमारे विमान में बैठकर चलो, परन्तु रत्नशेखर ने यह स्वीकार नहीं किया और कहा कि मुझे ही विमान रचना की विधि या मंत्र बताओ।

विद्याधर ने ऐसा ही किया। विद्याधर की सहायता से रत्नशेखर ने 500 विद्याएँ साधी। पश्चात् मित्रों सहित ढाईद्वीप के समस्त जिन मंदिरों की वन्दनार्थ प्रस्थान किया, सो विजयार्द्ध पर्वत के सिद्धकूट चैत्यालय में पूजा स्तवन करके रंगमण्डप में बैठा था कि इतने में दक्षिण श्रेणी रथनुपुर नगर की राजकन्या मदनमंजूषा भी दर्शनार्थ सखियों सहित वहाँ आई और रत्नशेखर को देखकर मोहित हो गई, परन्तु लज्जावश कुछ कह न सकी और खेदचित्त होकर घर लौट गई। राजा-रानी ने उसके खेद का कारण जानकर स्वयंवर मण्डप रचा और सब राजपुत्रों को आमंत्रण दिया। शुभ तिथि में बहुत से राजपुत्र वहाँ आये, उनमें रत्नशेखर भी आया। जब कन्या वरमाला लेकर आई तो उसने रत्नशेखर के कण्ठ में यह वरमाला डाली। इस पर विद्याधर राजा बहुत बिगड़े कि यह विद्याधर की कन्या है, भूमि गोचरी को नहीं ब्याह सकती है। परन्तु रत्नशेखर ने उनको युद्ध के लिये तत्पर देख सबको थोड़ी देर में जीतकर यथास्थान विदा कर दिया। इनका पराक्रम देखकर बहुत से राजा इनके आज्ञाकारी हुए और वहीं इनको शुभोदय से चक्ररत्न की प्राप्ति भी हुई। तब छ: खण्डों को वश करके वे कुमार चक्रवर्ती पद से भूषित होकर निज नगर में आये और पितादि गुरुजनों से मिलकर आनन्द से राज्य करने लगे।

एक दिन राजा रत्नशेखर माता-पिता सहित सुदर्शनमेरु की वंदना को गये थे। बड़े भाग्योदय से दो चारण मुनियों को देखकर भक्तिपूर्वक वन्दना स्तुति कर धर्मोपदेश सुना और अवसर पाकर अपने भवांतरों का कथन पूछा तथा यह भी पूछा कि मदनमंजूषा और मेघवाहन का मुझ पर अत्यंत प्रेम किस कारण से था ?

तब श्रीमुनि ने कहा- राजा सुनो ! इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र आर्यखण्ड में मृणालपुर नाम का एक नगर है, वहाँ राजा जितार और कनकावती सुख से राज्य करते थे। इसी नगर में श्रुतिकीर्ति नाम का ब्राह्मण और उसकी बन्धुमती नाम की स्त्री रहती थी। इसके प्रभावती नाम की एक पुत्री थी, जिसने जैन गुरु के पास शिक्षा पाई थी।

एक दिन ब्राह्मण सपत्नी वनक्रीड़ा को गया। वहाँ पर उसकी स्त्री को सांप ने काटा और वह मर गई। तब ब्राह्मण अत्यंत शोक से विह्वल हो गया, उदास रहने लगा। यह समाचार पाकर उसकी पुत्री प्रभावती वहाँ आई और अनेक प्रकार से पिता को संबोधन करके बोली- पिताजी ! संसार का स्वरूप ऐसा ही है। इसमें इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग प्रायः हुआ ही करते हैं। यह इष्टानिष्ट कल्पना मोह भावों से होती है। यथार्थ में कुछ न इष्ट है, न अनिष्ट है इसलिये शोक का त्याग करो। पश्चात् प्रभावती ने अपने पिता को जैन गुरु के पास संबोधन कराकर दीक्षा दिला दी। सो ब्राह्मण ने प्रारम्भ में तपश्चरण किया, परन्तु पश्चात् चारित्र भ्रष्ट होकर मंत्र, यंत्र, तंत्रादि के व्यर्थ झगड़ों में फंस गया। विद्या के योग से नई बस्ती बसाकर उसमें घर बनाकर रहने लगा और विषयासक्त हो स्वच्छन्द प्रवर्तने लगा। तब पुनः प्रभावती उसे संबोधन करने के लिये वहाँ गई और कहा- पिताजी। जिन दीक्षा लेकर इस प्रकार का प्रवर्तन अच्छा नहीं है। इससे इस लोक में निंदा और परलोक में दुःख सहने पड़ेंगे। यह सुनकर ब्राह्मण कुपित हुआ और उसे वन में अकेली छोड़ दिया। वहाँ प्रभावती णमोकार मंत्र जपती हुई वन में बैठी थी, वहाँ वन देवी आई और पूछा- बेटी, तूँ क्या चाहती है ? तब प्रभावती ने कैलाश यात्रा करने की इच्छा प्रगट की।

यह सुनकर देवी ने उसे कैलाश पर पहुँचा दिया। प्रभावती वहाँ भादो सुदी

पांचम के दिन पहुँची थी, उस दिन पुष्पांजलि व्रत था। इसलिये स्वर्ग तथा पातालवासी देव भी वहाँ पूजन वन्दनादि के लिये आये थे। सो पद्मावती देवी ने प्रभावती का परिचय पाकर कहा- बेटी! तू पुष्पांजलि व्रत कर इससे तेरा सब दुःख दूर होगा। इस व्रत की विधि इस प्रकार है कि भादो, माघ, चैत्र सुदी 5 से 9 तक पाँच दिन नित्यप्रति पंचमेरु की स्थापना करके चौबीस तीर्थंकरों की अष्ट द्रव्यों से पूजा अभिषेक करे। पाँच अष्टक तथा पाँच जयमाला पढ़े और इस मंत्र का 108 बार जाप करे। पाँचम (पंचमी) का उपवास कर और शेष दिनों में रस त्यागकर ऊनोदर भोजन करे। हो सके तो 5 उपवास करें, रात्रि को जाप साधना एवं भजन जागरण करे। विषय कषायो को घटावे, ब्रह्मचर्य रखे और घर का आरम्भ त्यागे।

इस प्रकार पाँच वर्ष तक व्रत करके फिर उद्यापन करें, सो पाँच प्रकार के उपकरण पाँच-पाँच जिनालयों में भेंट देवें। पाँच शास्त्र पधरावें, पाँच श्रावकों को भोजन करावें, चारों प्रकार के दान देवें, इत्यादि। यदि उद्यापन करने की शक्ति न होवे तो दूना व्रत करें। इस प्रकार प्रभावती ने व्रत की विधि सुनकर सहर्ष स्वीकार किया और उसे यथाविधि 5 वर्ष तक पालन किया तथा उद्यापन भी किया। इससे उसे बहुत शांति हुई। पद्मावती देवी ने उसे विमान में बैठाकर उसके नगर मृणालपुर में पहुँचा दिया। वहाँ पहुँचकर प्रभावती ने स्वयंप्रभु गुरु के पास दीक्षा ली और तप करने लगी, तप के प्रभाव से उनकी बहुत प्रशंसा फैली।

यह प्रशंसा उसके पिता से सहन नहीं हुई और उसने उसे दुःख देने को विद्याएँ भेजी। सो विद्याएँ बहुत उपसर्ग करने लगी, परन्तु प्रभावती रंचमात्र भी नहीं डिगी और अन्त में समाधिमरण करके अच्युत स्वर्ग में देव हुई। वहाँ उसका नाम पद्मनाभ हुआ।

इसी बीच मृणालपुर की एक रूक्मणी नाम की श्राविका मरकर उसी देव की देवी हुई। वे दोनों सुखपूर्वक कालक्षेप करने लगे। एक दिन उस पद्मनाभ देव ने विचारा कि हमारा पूर्वजन्म का पिता मिथ्यात्व में पड़ा है, उसे संबोधन करना चाहिए। यह विचार कर उसके पास गया और अपना सब वृत्तांत कहा, सो सुनकर वह बहुत

लज्जित हुआ और सब प्रपंच छोड़कर शांतचित्त हुआ। पश्चात् जिनोक्त तपश्चरण किया और समाधि से मरण कर स्वर्ग में प्रभास देव हुआ। वह पद्मनाभदेव स्वर्ग ये चयकर तू रत्नशेखर चक्रवर्ती हुआ है और पद्मनाभदेव की देवी तेरी मदनमंजूषा नाम की पट्टरानी हुई हैं तथा प्रभासदेव वहाँ से चयकर यह तेरा मित्र मेघवाहन विद्याधर हुआ है।

हे राजा ! तूने पूर्वभव में पुष्पांजलि व्रत किया था, जिसके फल से स्वर्ग से सुख भोगकर यहाँ चक्रवर्ती हुआ और ये दोनों भी तेरे पूर्वजन्म के सम्बन्धी हैं। इससे इनका तुझ पर परम स्नेह है।

यह सुनकर राजा ने पुष्पांजलि व्रत धारण किया और यात्रा करके घर आया व विधि सहित व्रत किया, पश्चात् बहुत काल तक राज्य करके संसार से विरक्त होकर निज पुत्र को राज्यभार सौंपकर जिन दीक्षा ले ली। घोर तप करके केवलज्ञान प्राप्त किया तथा अनेक भव्य जीवों को धर्मोपदेश दिया, पश्चात् शेष कर्मों को नाश करके मोक्षपद प्राप्त किया। मदनमंजूषा ने दीक्षा ले ली, तप करके सोलहवें स्वर्ग में देव हुई। मेघवाहन आदि अन्य राजा भी यथायोग्य गतियों को प्राप्त हुए। इस प्रकार और भी भव्य जीव श्रद्धासहित यह व्रत पालेंगे तथा कषायों को कृश करेंगे तो वे भी उत्तमोत्तम पद को प्राप्त होंगे।

पुष्पांजलि व्रत पालकर, प्रभावती गुणमाल।
लहो सिद्ध पद अन्त में, नमो त्रियोग सम्हाल।।

19. चारित्रशुद्धि (बारह सौ चौंतीस) व्रत कथा

वन्दूँ आदि जिनेन्द्र पद, मन वच तन सिर नाय।
बारह सौ चौंतीस व्रत, कथा कहूँ सुखदाय।।

मगध देश में राजगृही नगर का स्वामी राजा श्रेणिक न्यायपूर्वक राज्य शासन करता था। इसकी परम सुन्दरी और जिनधर्मपरायण श्रीमती चेलना पट्टरानी थी, जब विपुलाचल पर महावीर भगवान का समवशरण आया तब राजा प्रजा सहित

वंदना को गया और वंदना स्तुति करके मनुष्यों की सभा में बैठकर धर्मोपदेश सुनने लगा।

पश्चात् राजा ने पूछा- हे प्रभु ! षोडशकारण व्रत से तो तीर्थंकर पद मिलता ही है, परन्तु क्या अन्य प्रकार से भी मिल सकता है, कृपाकर कहिये। तब गौतम स्वामी ने कहा- राजन् सुनो ! जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आर्यखण्ड में अवन्ती देश है, वहाँ उज्जयिनी नगरी है। जहाँ हेमवर्मा राजा अपनी शिवसुन्दरी रानी सहित राज्य करता था।

एक दिन राजा वनक्रीड़ा करने को वन में गया। वहाँ चारण मुनियों को देखकर नमस्कार किया तथा मन में समताभाव धरकर विनय सहित पूछने लगा- भगवान। कृपा करके बताईये कि मैं किस प्रकार तीर्थंकर पद प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करूँ ? तब श्रीगुरु ने कहा-

राजन् ! तुम बारह सौ चौंतीस व्रत करो। यह व्रत भादो सुदी 1 से प्रारम्भ होता है। 1234 उपवास तथा एकासन करना चाहिए। यह व्रत दस वर्ष और साढ़े तीन माह में पूरा होता है, यदि एकांतर करे तो 5 वर्ष पौने दो मास में ही पूर्ण हो जाता है। व्रत के दिन रस त्यागकर नीरस भोजन करें। आरम्भ परिग्रह का त्याग कर भक्ति और पूजा में निमग्न रहें और **'ऊँ ह्रीं असिआउसा चारित्रशुद्धिव्रतेभ्यो नमः'** इस मंत्र का 108 बार त्रिकाल जाप करें। जब व्रत पूरा हो जावे तब उद्यापन करें।

झारी, थाली, कलश आदि उपकरण चैत्यालय में भेंट करें चौसठ ग्रंथ पधरावें, चार प्रकार का दान करें तथा 1234 लाडू श्रावकों के घर बाँटे। पाठशालादि स्थापन करें और यदि उद्यापन की शक्ति न होवे तो दूना व्रत करें।

इस प्रकार राजा ने व्रत की विधि सुनकर उसे यथाविधि पालन किया व उद्यापन भी किया।

अन्त में समाधिमरण करके अच्युत स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ से चयकर वह विदेह क्षेत्र के विजयापुरी में धनंजय राजा के चन्द्रभान प्रभु नाम का तीर्थंकर पदधारी हुआ। उसके गर्भादिक पाँच कल्याणक हुए।

इस प्रकार राजा हेमवर्मा स्वर्ग के सुख भोगकर तीर्थंकर पद प्राप्त करके इस व्रत के प्रभाव से मोक्ष गया। इसलिये हे श्रेणिक ! तीर्थंकर पद प्राप्त करने के लिये यह व्रत भी एक साधन है।

यह सुनकर राजा श्रेणिक ने भी श्रद्धासहित इस व्रत को धारण किया और षोडशकारण भावनाएँ भी भायीं सो तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया। अब आगामी चौबीसी में वे प्रथम तीर्थंकर होकर मोक्ष जावेंगे। इस प्रकार भी जो भव्य जीव इस व्रत का पालन करेंगे वे भी उत्तमोत्तम सुखों को पाकर मोक्ष पद प्राप्त करेंगे।

बारह सौ चौंतीस व्रत, हेमवर्म नृप पाल।
नर सुर के सुख भोगकर, लहि मुक्ति गुणमाल।।

20. मुक्तावली व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में कच्छ नामक एक विस्तीर्ण देश है। उसके विजयार्द्ध पर्वत पर उत्तर श्रेणी में चक्रवालपुर नामक एक अत्यन्त मनोहर नगर है। वहाँ यशोधर नाम का राजा राज्य करता था। उसकी विजयावती नाम की सौन्दर्यवती स्त्री थी। उस राजा का सोमदत्त नाम का पुरोहित और मदनवेगा नाम की उसकी सुन्दर स्त्री थी। उस पुरोहित का एक विशाखदत्त नाम का पुत्र था। उसी नगर में विष्णुदत्त नाम का एक ब्राह्मण रहता था। ब्राह्मण की मदनमुखी नाम की रूपवान स्त्री थी, उसके कामसेना नाम की गुणवान कन्या उत्पन्न हुई। कन्या को विवाह के योग्य समझकर विवाह कर दिया।

एक दिन कामसेना अपनी सखी के साथ में बसंत ऋतु की क्रीड़ा करने को निकली। रास्ते में यशोभद्र नाम के दिगम्बर मुनि को देखकर मिथ्यात्व कर्म के उदय से ग्लानिपूर्वक निन्दा की। मुनि निन्दा के प्रभाव से अन्त से मरण कर छठे नरक में उत्पन्न होकर बाईस सागर पर्यन्त दुःख भोगने लगी।

वहाँ से निकलकर कपिल पुरोहित की स्त्री सुप्रभा के यहाँ उत्पन्न हुई। पैदा होते ही उसके माता-पिता मर गये, फिर वह घर-घर भिक्षा माँगकर भोजन करने

लगी। उसका शरीर दुर्गन्ध से युक्त था, इसलिए लोग उसको दुर्गन्धा के नाम से पुकारते थे। यौवनवती होने के बाद एक दिन वन में लकड़ी लेने गई वहाँ नाभिगिरि पर्वत के ऊपर गुफा में मनोगुप्ति नाम के महामुनिश्वर दृष्टिगत हुए।

तब दुर्गन्धा ने मुनिराज को नमस्कार किया और कहने लगी कि हे स्वामिन् ! मैंने कौन से पाप किये जिससे मेरा शरीर दुर्गन्धमय है? आप कृपा करके मुझे बताईए। तब मुनिराज कहने लगे कि हे कन्या ! तुमने पूर्वजन्म में मुनि निन्दा की है, इस कारण मरकर नरक में गई। वहाँ का दुःख भोगकर ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुई और दरिद्री होकर दुःख भोग रही हो।

यह पूर्वभव की वार्ता सुनकर दुर्गन्धा बहुत ही पश्चाताप करने लगी। मुनिराज को कहने लगी- हे भवोदधितारक ! अब मुझे मेरे पाप कर्म दूर हों ऐसा कोई उपाय बताइये। उस दुःखी दुर्गन्धा के वचन सुनकर मुनिराज कहने लगे कि हे बेटी ! तुम अपने किये हुए पापों को दूर करना चाहती हो तो मुक्ताली व्रत को विधिपूर्वक करो, जिससे तुम्हारा सर्व रोग नष्ट होकर सुख-सम्पत्ति प्राप्त होगी। ऐसा कहकर उसको व्रत का स्वरूप बताया। दुर्गन्धा को बहुत ही आनन्द आया। उसने खुशीपूर्वक व्रत को स्वीकार किया और अपने गाँव में वापस आ गई। आगे उसने यथाशक्ति व्रत को विधिपूर्वक पालन किया, उद्यापन किया। अन्त में समाधिपूर्वक मरण कर स्त्रीलिंग छेद करती हुई सौधर्म स्वर्ग में विभूतिशाली देव हुई। वहाँ दो सागर सुख का अनुभव कर इस जम्बूद्वीप के मिथिलापुर नाम के एक रम्य नगर में एवं पृथ्वीपाल नामक भद्र परिणामी राजा पृथ्वीदेवी रानी के गर्भ से पद्मरथ नामक बलिष्ठ पुत्र होकर जन्म लिया, थोड़े ही दिन में वह कुमार तारुण्य अवस्था को प्राप्त हुआ।

एक दिन चतुरंग सेना के साथ हाथी पकड़ने के लिए वन में गया था। तब वहाँ हाथी, सिंह, गाय, हरिण, लोमड़ी, कुत्ता आदि पशु अपना स्वाभाविक बैर छोड़कर शांतभाव से परस्पर क्रीड़ा करते हुए बैठे थे। यह देखकर कुमार को बहुत ही आश्चर्य हुआ। वहाँ उसे पर्वत की गुफा में बैठे एक निर्ग्रन्थ मुनि उसकी दृष्टि में आये। तब उसने सबके साथ वहाँ जाकर तीन प्रदक्षिणा लगाकर नमस्कार किया।

तब कुमार मुनिराज को कहने लगा कि हे स्वामिन ! आपके तपोबल का माहात्म्य जैसा है वैसा मैंने कहीं पर नहीं देखा। ऐसा मुनिश्वर ने सुना तब उन्होंने कहा कि हे युवराज ! हमारे तपोबल का ही ऐसा आश्चर्य है इस प्रकार तुम मत समझो। अंगदेश के चंपापुर नगर में मेरुपर्वत के समान आत्मध्यान में निश्चल रहने वाले और जिनके सर्वांग से मेघगर्जना के समान दिव्यवाणी प्रकट होती है तथा प्रात:काल के सूर्य की जैसे कांति होती है, वैसी उनकी कांति है। ऐसे भगवान श्री वासुपूज्य तीर्थंकर का समवशरण आकर ठहरा हुआ है। उन्हीं का यह प्रभाव है। कारण जहाँ तीर्थंकर रहते हैं वहाँ 100 योजन सुभिक्षता रहती है। इसलिए सर्व पशु-पक्षी परस्पर बैरभाव छोड़कर प्रेम से खेलते रहते हैं।

ऐसा सुनकर युवराज को बहुत आनन्द आया, तब यह कुमार महाराज को नमस्कार करके बड़ी उत्सुकता से लोगों के साथ अपने घर में वापस आया। दूसरे दिन अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर उत्साह से श्री वासुपूज्य तीर्थंकर का दर्शन करने को हाथी पर बैठकर निकल गया। उस समय उसके मनोबल की परीक्षा करने के लिए धनपूज्य और विश्वानुलोम नाम के दोनों देवों ने आकर नगर के कोटे का ध्वंस कर दिया। यह देखकर मंत्री वर्ग ने राजपुत्र को कहा कि हे स्वामिन् ! बहुत अपशकुन हो रहा है, आप कहाँ जा रहे हैं, रुको।

ऐसा सुनकर और देखकर भी भयभीत नहीं होता अपशकुनों की परवाह नहीं करता हुआ युवराज **ऊँ नमो भगवते वासुपूज्याय नमः** ऐसा उच्चारण करके आगे बढ़ा फिर उन दोनों देवों ने आगे झुककर युवराज का मार्ग रोकने के लिए सर्प के विषमिश्रित रक्त को रास्ते में भर दिया, तो भी युवराज **ऊँ नमो भगवते वासुपूज्याय नमः** कहता हुआ हाथी को वहाँ से आगे बढ़ा दिया। तब देव उस कुमार की दृढ़भक्ति को देखकर कुमार के सामने प्रत्यक्ष हुए और क्षमा माँगने लगे कि हमने आपका बड़ा अपराध किया है। आपकी भक्ति में बंधक हुए। ऐसा कहकर दोनों देवों ने राजकुमार से क्षमायाचना की। वह राजकुमार आतुरता से आगे चला और दूर से समवशरण को देखकर हाथी से नीचे उतरा अपने दोनों हाथों को जोड़ता हुआ समवशरण के द्वार पर जा पहुँचा **श्री वासुपूज्याय नमः** कहता हुआ समवशरण में

प्रवेश किया, गंधकुटी की तीन प्रदक्षिणा देकर तीर्थंकर को साष्टांग नमस्कार करके अष्टद्रव्य से भगवान की पूजा स्तुति करके मनुष्य के कोठे में जाकर बैठ गया।

भगवान का धर्मोपदेश सुनकर हाथ जोड़कर सुधर्म गणधर को कहने लगा- हे भवसागरोद्धारक दयानिधि स्वामिन् ! आज आप भवावली कहने की कृपा करें। गणधर स्वामिन् कहने लगे- हे कुमार ! तुम प्रथम भव में कामसेन पुरोहित की लड़की थे। दूसरे भव में छठे नरक में थे। तीसरे भव में ब्राह्मण के घर दुर्गन्धा होकर पैदा हुए और मुक्तावली व्रत को पालन करके देवपर्याय प्राप्त की। वर्तमान में तुम मिथिलापुरी के पृथ्वीपाल राजा के घर पद्मरथ नाम के पुत्र होकर जन्मे।

इस प्रकार अपने पूर्वभवों को सुनकर वैराग्य उत्पन्न हुआ, तब जिन दीक्षा धारण कर समवशरण में धर्मरथ नाम के गणधर बन गये। आगे घातिया कर्मों का नाश करके केवलज्ञानी हुए, फिर अघातिया कर्मों का भी नाश करके मोक्ष को गये।

इसलिए हे भव्यों ! आप श्री मुक्तावली व्रत को भक्तिभाव से यथाविधि पालन करो और उस व्रत का उद्यापन करो, तुमको भी सद्गति की प्राप्ति होगी।

21. मुकुटसप्तमी व्रत कथा

पंच परमपद प्रणत करि, शारद माथ नमाय।
मुकुटसप्तमी व्रत कथा, भाषा कहूँ बनाय।।

जम्बूद्वीप के कुरुजांगल देश में हस्तिनापुर नगर है। वहाँ के राजा विजयसेन की रानी विजयावती से मुकुटशेखरी और विधिशेखरी नाम की दो कन्याएँ थी। इन दोनों बहिनों में परस्पर ऐसी प्रीति थी कि एक दूसरी के बिना क्षणभर भी नहीं रह सकती थी। निदान राजा ने दोनों कन्याएँ अयोध्या के राजपुत्र त्रिलोकमणि को ब्याह दी।

एक दिन बुद्धिसागर और सुबुद्धिसागर नाम के दो चारण ऋद्धि मुनिराज आहार के निमित्त नगर में आये। राजा ने उन्हें विधिपूर्वक पड़गाहकर आहार दिया और धर्मोपदेश श्रवण करने के अनंतर राजा ने पूछा- हे नाथ ! मेरी इन दोनों पुत्रियों में परस्पर इतना विशेष प्रेम का कारण क्या है ?

तब श्री ऋषिराज बोले- इसी नगर में धनदत्त नामक एक सेठ था। उसके जिनवती नाम की एक कन्या थी और वहीं एक माली की कन्या भी थी। इन दोनों कन्याओं ने मुनि के द्वारा धर्मोपदेश सुनकर मुकुटसप्तमी व्रत ग्रहण किया था। एक समय ये दोनों कन्याएँ खेल रही थी कि इन्हें एक सर्प ने काट खाया, सो नवकार मंत्र का आराधन करके देवी हुई और वहाँ से चयकर तुम्हारी पुत्री हुई हैं। सो इनका स्नेह भवांतर से चला आ रहा है। इस प्रकार की कथा सुनकर दोनों कन्याओं ने प्रथम श्रावक के पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, इस प्रकार बारह व्रत लिये और पुनः मुकुटसप्तमी व्रत धारण किया। प्रतिवर्ष श्रावण सुदी सप्तमी को पौषध करती और **'ॐ ह्रीं क्लीं अर्हं श्री वृषभजिनेन्द्राय नमः'** मन्त्र का जाप्य करती तथा अष्टद्रव्य से श्री जिनालय जाकर भाव से जिनेन्द्र की पूजा करती थी।

इस प्रकार यह व्रत उन्होंने सात वर्ष तक विधिपूर्वक किया एवं विधिपूर्वक उद्यापन करके सात-सात उपकरण जिनालय में दिये। इस प्रकार उन्होंने व्रत पूर्ण किया और अन्त में समाधि करके सोलवें स्वर्ग में स्त्रीलिंग छेदकर इन्द्र और प्रतीन्द्र हुई। वहाँ पर देवोचित सुख भोगे और धर्मध्यान में विशेष समय बिताया। पश्चात् वहाँ से चयकर ये दोनों इन्द्र, प्रतीन्द्र, मनुष्य होकर कर्म का क्षय कर मोक्ष जावेंगे। इस प्रकार सेठजी तथा माली की कन्याओं ने सप्तमी व्रत पालकर स्वर्गों के अपूर्व सुख भोगे। अब वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जावेंगे। धन्य हैं! वे भव्य जीव जो भाव द्वारा यह व्रत धारण करेंगे, तो वे भी इसी प्रकार सुखों को प्राप्त करेंगे।

श्रेष्ठी अरु माली सुता, मुकुटसप्तमी व्रत धार।
भये इन्द्र प्रतिन्द्र द्वय, अरु हुई हैं भव पार।।

22. मेघमाला व्रत कथा

महावीर पद प्रणमि कर, गौतम गुरु सिर नाय।
कथा मेघमाला तनी, कहूँ सबहि सुखदाय।।

वत्सदेश कौशाम्बीपुरी में जब राजा भूपाल राज्य करते थे तब वहाँ पर एक

वत्सराज नाम का श्रेष्ठि और उसकी पद्मश्री नाम की सेठानी रहती थी। सो पूर्वकृत अशुभ कर्म के उदय से उस सेठ के घर में दरिद्रता का वास रहा करता था। इस पर भी इसके सोलह (16) पुत्र और बारह (12) कन्याएँ थी।

गरीबी की अवस्था में इतने बालकों का लालन-पालन करना और गृहस्थी का खर्च चलाना कैसा कठिन हो जाता है, इसका अनुभव उन्हीं को होता है जिन्हें कभी ऐसा प्रसंग आया हो या जिन्होंने अपने आस-पास रहने वाले दीन-दुःखियों की ओर कभी अपनी दृष्टि डाली हो। परमस्नेह करने वाले माता-पिता ही ऐसे समय में अपने प्यारे बालकों को अनुचित और कठोर शब्दों में केवल सम्बोधन ही नहीं करते हैं किन्तु उन्हें बिना मूल्य या मूल्य में बेच तक देते हैं।

प्राणों से प्यारी संतान, जिसके लिये संसार के अनेकानेक मनुष्य लालायित रहते हैं और अनेक यंत्र-मंत्रादि कराया करते हैं। हाय उस दरिद्रावस्था में वह भी भाररूप हो पड़ती है। वत्सराज सेठ इसी चिंता में चिंतित रहता था। जब ये बालक क्षुधातुर होकर माता से भोजन मांगते तो माता कठोरता से कह देती-जाओ मरो, लंघन करो, चाहे भीख मांगो। तुम्हारे लिये मैं कहाँ से भोजन दे दूँ ? यहाँ क्या रखा है जो दे दूँ ? सो वे नन्हें-नन्हें बालक झिड़की खाकर जब पिताजी के पास जाते, तब वहाँ से भी निराशा ही पल्ले पड़ती। हाय उस समय का करुण-क्रन्दन किसके हृदय को विदीर्ण नहीं कर देता है।

एक दिन भाग्योदय से एक चारण ऋद्धिधारी मुनि वहाँ आये। उन्हें देखकर वत्सराज सेठ ने भक्तिसहित पड़गाहा और घर में जो रूखा-सूखा भोजन शुद्धता से तैयार किया गया था, सो भक्ति सहित मुनिराज को दिया।

मुनिराज उस भक्तिपूर्वक दिये हुए स्वाद रहित भोजन को लेकर वन की ओर गये, तत्पश्चात् सेठ भी भोजन करके जहाँ श्री मुनिराज पधारे वहाँ खोजते-खोजते पहुँचा और भक्तिपूर्वक वंदना करके बैठा। श्रीगुरु ने उसे सम्यक्त्वादि धर्म का उपदेश दिया। पश्चात् सेठ ने पूछा- हे दयानिधि। मेरे दरिद्रता होने का कारण क्या है ? और अब यह कैसे दूर हो सकती है ? तब श्रीगुरु बोले- हे वत्स, सुनो ! कौशल देश

की अयोध्या नगरी में देवदत्त नामक सेठ की देवदत्ता नाम की सेठानी रहती थी। वह धन कण और रूप लावण्य कर संयुक्त तो थी परन्तु कृपण होने के कारण दान धर्म में धन लगाना तो दूर ही रहे किन्तु उल्टा दूसरे का धन हरण करने को तत्पर रहती थी। एक दिन कहीं से एक गृहत्यागी ब्रह्मचारी जो अत्यन्त हीन शरीर था, भोजन के निमित्त उसके घर आ गये। उसे देख सेठानी ने अनेक दुर्वचन कहकर निकाल दिया। वह कृपण कहने लगी- अरे जा जा, यहाँ से निकल। यहाँ तो घर के बच्चे भूखों मर रहे हैं, फिर दान कहाँ से करें ? जो चाहे सो यहीं चला आता है।

इतने ही में उसका स्वामी सेठ भी आ गया और उसने अपनी स्त्री की हाँ मे हाँ मिला दी। निदान कुछेक दिनों में वही हुआ। जैसी मनसा वैसी दशा हो गई अर्थात् उसका सब धन चला गया और वे यथार्थ में भूखों मरने लगे। अति तीव्र पाप का फल कभी-कभी प्रत्यक्ष ही दिख जाता है।

वे सेठ सेठानी आर्त्तध्यान से मरे सो एक ब्राह्मण के घर महिष (भैंस) के पुत्र (पाडा-पाडी) हुए। सो वहाँ भी भूख-प्यास की वेदना से पीड़ित हो पानी पीने के लिए एक सरोवर में घुसे थे कि कीच (कादव) में फंस गये और जब फड़फड़ाकर मरणोन्मुख हो रहे थे, तब उसी दयालु श्रावक ने आकर उन्हें णमोकार मंत्र सुनाया और मिष्ट शब्दों में संबोधन किया। सो वे पाड़ा-पाडी वहाँ से मरकर णमोकर मंत्र के प्रभाव से तुम मनुष्य भव को प्राप्त हुए, परन्तु पूर्व संचित् पापकर्मों का शेषांश रह जाने से अब तक दरिद्रता ने तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ा है।

ऐ वत्स ! यह दान न देने और यति आदि महात्माओं से घृणा करने का फल है। इसलिए प्रत्येक गृहस्थ को सदैव यथाशक्ति दान धर्म में अवश्य ही प्रवर्तना चाहिये। अब तुम सत्यार्थ देव अर्हंत, गुरु, निर्ग्रन्थ और दयामयी धर्म में श्रद्धान करो और श्रद्धापूर्वक मेघमाला व्रत का पालन करो तो सब प्रकार इस लोक और परलोक संबंधी सुखों को प्राप्त होवोगे।

यह व्रत भादो सुदी प्रतिपदा से लेकर आश्विन सुदी प्रतिपदा तक प्रतिवर्ष एक-एक मास करके पाँच वर्ष तक किया जाता है अर्थात् भादो सुदी पड़िमा से

आसोज सुदी पड़िमा तक (एक मास) श्री जिनालय के आंगन में (चौक में) सिंहासनादि स्थापन करें और उस पर श्री जिनबिंब स्थापन करके महाभिषेक और पूजन नित्य प्रति करें। श्वेत वस्त्र पहिनें, श्वेत ही चंदोवा बंधावें मेघधारा के समान 1008 कलशों से महाभिषेक करके पश्चात् पूजा करें।

पाँच परमेष्ठी का 108 बार जाप करें, पश्चात् संगीतपूर्वक जागरण भजन इत्यादि करें। भूमिशयन व ब्रह्मचर्य व्रत पालन करें। यथाशक्ति चारों प्रकार का दान देवें, हिंसादि पंच पापों का त्याग करें तथा एक मास पर्यन्त ब्रह्मचर्यपूर्वक एक भुक्त उपवास, बेला-तेला आदि शक्ति प्रमाण करें। निरन्तर षट्रसी व्रत पालें अर्थात् नित्य एक रस छोड़कर भोजन करें।

इस प्रकार जब पाँच वर्ष पूर्ण हो जावें तब शक्ति प्रमाण भाव सहित उद्यापन करें अर्थात् पाँच जिनबिंबों की प्रतिष्ठा करावें, पाँच महान ग्रंथ लिखावें, पाँच प्रकार पकवान बनाकर श्रावकों को पाँच घर देवें। पाँच-पाँच घण्टा, झालर, चंदोवा, चमर, छत्र, अछार आदि उपकरण देवें। पाँच श्रावकों (विद्यार्थियों) को भोजन करावें, सरस्वती भवन बनावें, पाठशाला चलावें इत्यादि और अनेकों प्रभावना बढ़ाने वाले कार्य करें।

इस प्रकार व्रत की विधि सुनकर सेठ सेठानी ने श्रद्धापूर्वक इस व्रत का पालन किया, सो व्रत के प्रभाव से उनका सब दारिद्र दूर हो गया और वे स्त्री-पुरुष सुख से काल व्यतीत करते हुए आयु के अन्त में संन्यासपूर्वक मरण कर दूसरे स्वर्ग में देव हुए। फिर वहाँ से चयकर वे पोदनपुर में विजयभद्र नाम के राजा और विजयावती नाम की रानी हुई, सो पूर्व पुण्य के प्रभाव से धन, धान्य, पुत्र, पौत्रादि सम्पत्ति के अधिकारी हुए। आयु के अन्तिम भाग (वृद्धावस्था) में दोनों राजा और रानी अपने पुत्र को राज्य का अधिकार देकर आप जिनेश्वरी दीक्षा ले तप करने लगे, सो तप के प्रभाव से आयु पूर्णकर राजा तो सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र हुआ और रानी भी स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुई। वहाँ से चयकर वे दोनों प्राणी मोक्ष पद प्राप्त करेंगे।

इस प्रकार मेघमाला व्रत के प्रभाव से देवदत्त और देवदत्ता नाम के कृपण सेठ और सेठानी भी मोक्ष पद पावेंगे तो यदि और नर-नारी श्रद्धासहित यह व्रत पालें तो अवश्य उत्तम फल पावेंगे।

मेघमाला व्रत धारणकर, सेठ सेठानी सार।
लहो स्वर्ग अरु लहेंगे, मोक्ष सुख अधिकार।।

23. मौनएकादशी व्रत कथा

घाति घात केवल लहो, लहो चतुष्क अनन्त।
सरल मोक्ष मग जिन कियो, वन्दूँ श्री अर्हंत।।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में कौशल्य देश है। उस में यमुना नदी के तट पर कौशांबी नाम की नगरी है। उसी नगर में परमपूज्य छठवें तीर्थंकर श्री पद्मप्रभजी का जन्मकल्याणक हुआ था। एक समय इसी नगर में हरिवाहन नाम का राजा और उसकी शशिप्रभा पट्टरानी थी।

राजपुत्र का नाम सुकौशल था। यह राजकुमार सर्वविद्या और कलाओं में निपुण होने पर भी निरन्तर खेल-तमाशे आदि क्रीड़ाओं में निमग्न रहता था और राजकाज की ओर बिलकुल भी ध्यान न देता था। इसलिये राजा को निरन्तर चिंता रहने लगी कि राजपुत्र राज्यकार्य में सहयोग नहीं देता है, तब भविष्य में कार्य कैसे चलेगा ? एक समय भाग्योदय से सोमप्रभ नाम के महामुनिराज संघ सहित विहार करते हुए इसी नगर के उद्यान में पधारे। राजा ने वनमाली द्वारा ये शुभ समाचार सुनकर पुरवासियों सहित हर्षित होकर श्रीगुरु के दर्शनों को प्रयाण किया और वहाँ पहुँचकर भक्तिभाव से वंदना स्तुति करके धर्मश्रवण की इच्छा से नतमस्तक होकर बैठ गया।

श्रीगुरु ने प्रथम मिथ्यात्व के छुड़ाने वाले और संसार से भय उत्पन्न कराने वाले ऐसे मोक्षमार्ग का व्याख्यान सुनाया, मुनि और श्रावक के धर्म को पृथक्-पृथक् करके समझाया और यह भी परम्परा से मोक्ष का कारण समझना चाहिए। यथार्थ में तो भव्य

जीवों को मुनिधर्म ही पालन करना चाहिए, परन्तु यदि शक्तिहीनता के कारण एकाएक मुनिधर्म न धारण कर सकें तो कम से कम प्रतिमारूप श्रावक का धर्म ही धारण करे और निरन्तर अपने भावों को बढ़ाता और शरीरादि इन्द्रियों तथा मन को वश करता जावे, तब ही अभीष्ट सुख को प्राप्त हो सकता है।

श्रावक धर्म केवल अभ्यास ही के लिये है। इसलिये इसी में रंजायमान होकर इति नहीं कर देना चाहिए किन्तु मुनिधर्म की भावना भाते हुए उसके लिये तत्पर रहना चाहिए। राजा ने उपदेश सुन स्वशक्ति अनुसार व्रत धारण किया और विशेष बातों का श्रद्धान किया। पश्चात् अवसर देखकर पूछने लगे- हे नाथ ! मेरा पुत्र विद्यादि में निपुण होने पर भी बाल क्रीड़ाओं में अनुरक्त रहता है और राज्य भोग में कुछ भी नहीं समझता है। अत: इसकी चिन्ता है कि भविष्य में राज्य स्थिति कैसी रहेगी ? राजा का प्रश्न सुनकर श्रीगुरु ने कहा- इसी देश के कूट नाम नगर में राजा रणवीर सिंह और उसकी त्रिलोचना नाम की रानी थी। इसी नगर में एक कुणबी रहता था। उसकी पुत्री तुंगभद्रा थी। इस भाग्यहीन कन्या के पापोदय से शैशव अवस्था में ही माता-पिता आदि बन्धु-बाँधव सब कालवश हो गये और यह अनाथनी अकेली अन्न-वस्त्र से वंचित हुई जूठन पर गुजारा करती समय बिताने लगी।

वह जब आठ वर्ष की हुई तो एक दिन घास काटने को वन में गई। वहाँ पिहिताश्रव मुनिराज के दर्शन हो गये। यह बालिका भी लोगों के साथ श्री गुरु को नमस्कार करके धर्मश्रवण करने लगी, परन्तु भूख की वेदना से व्याकुल होने से इसके कुछ भी समझ में नहीं आता था। तब इस दु:खित कन्या ने दु:ख से कातर होकर पूछा- हे दयानिधान गुरुदेव ! मैं जन्म से अनाथिनी अन्न वस्त्र तक का कष्ट पा रही हूँ। इसलिये कृपाकर ऐसा कोई उपाय बताईये कि जिससे मेरा दु:ख दूर होवे। तब श्रीगुरु ने कहा- हे पुत्री ! यह सब तेरे पूर्वजन्म के पाप का फल हैं। अब तू श्री जिनेन्द्र देव निर्ग्रन्थ गुरु, दयामयी धर्म पर श्रद्धा करके भाव सहित मौन एकादशी व्रत का पालन कर, जिससे तेरे पाप का क्षय होवे और संसार का अन्त आवे। सुन, इस व्रत की विधि इस प्रकार है-

पौष एकादशी को सोलह प्रहर का उपवास कर और ये सोलह प्रहर जिनालय में धर्मकथा, पूजाभिषेकादि, धर्मध्यान में व्यतीत कर तीनों काल सामायिक कर सोलह प्रहर मौन से रह अर्थात् मुँह से न बोल। हाथ, नाक, आँख आदि से संकेत भी न कर।

इस प्रकार जब सोलह प्रहर हो जावें तब द्वादशी के दोपहर को अभिषेक पूजा करके सामायिक व स्वाध्याय करें और फिर अतिथि (मुनि, गृहत्यागी) श्रावक तथा साधर्मी गृहस्थ व दीन, दुःखित, भूखित को भोजन कराकर आप पारणा करें। जो कोई व्रती पुरुष हों उनको नारियल या खारक, बादाम आदि बांटे। इस प्रकार ग्यारह वर्ष तक यह व्रत करके फिर उद्यापन करें। उद्यापन की शक्ति न होवे तो दूना व्रत करें। उद्यापन विधि इस प्रकार है कि शक्ति होवे तो श्री जिनमंदिर बनवायें। 24 भगवान की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करके पधरावें। घण्टा, झालर, चौकी, चन्दोवा, छत्र, चमर, शास्त्रादि 24-24 जिनालय में पधरावें। शास्त्र भंडार की स्थापना करें, ग्रन्थ वितरण करें, विद्यार्थियों को भोजन करावें, यथाशक्ति संघ को जिमायें। नारियल आदि साधर्मियों को बांटें, महापूजा विधान करें, दुःखी अपाहिजों को भोजन, वस्त्र, औषधि आदि दान करें। भयभीत जीवों को अभयदान दें। इत्यादि विधि सुन उस दरिद्र कन्या ने भावसहित व्रत पालन किया और अन्त समय संन्यास सहित णमोकार मंत्र का स्मरण करते हुए शरीर छोड़कर तेरे घर यह पुत्र हुआ है। यह पुत्र चरमशरीरी है। इसी से राज्यभोग में इसका चित्त नहीं लगता है, यह बहुत ही थोड़े समय घर रहेगा।

राजा इस प्रकार श्रीगुरु के मुख से अपने पुत्र का वृत्तांत सुनकर घर आया व संसार, देह भोगों से विरक्त होकर उसने अपने पुत्र का राज्य तिलक किया। पश्चात् पिहिताश्रव आचार्य के पास दीक्षा ले ली। इसके साथ और भी बहुत से राजाओं ने दीक्षा ली। राजा सुकौशल राज्य करने लगा, सो वह अल्पसंसारी राजनीति की कुटिलता को न जानता और सुखपूर्वक कालक्षेप करने लगा।

एक समय मतिसागर नाम भण्डारी ने श्रुतसागर नाम मंत्री से मंत्रणा की कि

राजा राजनीति से अनभिज्ञ है, इसलिये इसे कैद करके मैं तुम्हें राजा बनाये देता हूँ और मैं मंत्री होकर रहूँगा। परन्तु वह वार्ता मतिसागर के पुत्र और राजा के बालसखा द्वारा राजा के कान तक पहुँच गई। राजा ने मतिसागर को इस कुटिलता व धृष्टता के बदले अपमान सहित देश से निकाल दिया और श्रुतसागर को राज्यभार सौंपकर आप अपने पिता के पास गये और दीक्षा ले ली। यह मतिसागर भंडारी भ्रमण करते हुए दुःख से (आर्त्तभावों से) मरणकर सिंह हुआ, सो विकराल रूप धारण कर अनेक जीवों का घात करता हुआ विचरता था। उसी वन में विहार करते हुऐ वे हरिवाहन और सुकौशल स्वामी आ पहुँचे। सिंह ने इन्हें देखकर पूर्व बैर के कारण क्रोधित होकर शरीर को विदीर्ण कर दिया। वे मुनिराज उपसर्ग जानकर निश्चल हो शुक्लध्यान को धारण कर आत्मा में निमग्न हो गये, तब सिंह भी उपशांत होकर वहाँ से चला गया और वे मुनि अंतकृत केवली होकर सिद्धपद को प्राप्त हुए और सिंह मुनिहत्या के कारण मरकर नरक में घोर दुःख भोगने को चला गया। प्राणी निःसंदेह अपने ही किये हुए शुभाशुभ कर्मों का फल सुख व दुःख रूप भोगा करते हैं।

इस प्रकार एक दरिद्र कन्या ने भी मौन एकादशी व्रत श्रद्धा व भाक्तिपूर्वक पालन किया, जिसके फल से वह सुकौशल स्वामी होकर सकल कर्मों का क्षय कर सिद्ध पद को प्राप्त हुई। जो कोई भव्य जीव ज्ञान व श्रद्धापूर्वक यह व्रत करे तो अवश्य ही उत्तमोत्तम सुखों को पायेगा।

तुंगभद्र कन्या कियो, मौन व्रत चित्त धार।
पायो अविचल सिद्ध पद, किये काम सब छार।।

24. रत्नत्रय व्रत कथा

दाता सम्यक् रत्नत्रय, गुरुशास्त्र जिनराय।
कर प्रणाम वरणूं कथा, रत्नत्रय सुखदाय।।1।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान व्रत, इन बिन मुक्ति न होय।
तासों प्रथम हि रत्नत्रय, कथा सुनों भविलोय।। 2।।

जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में कच्छ नाम का एक देश और वीतशोकपुर नाम का एक नगर है। वहाँ एक अत्यन्त पुण्यवान वैश्रवण नाम का राजा रहता था, जो कि पुत्रवत् अपनी प्रजा का पालन करता था।

एक दिन वह (वैश्रवण) राजा बसंत ऋतु में क्रीड़ा के निमित्त उद्यान में यत्र-तत्र सानंद विचर रहा था कि इतने ही में उसकी दृष्टि एक शिला पर विराजमान ध्यानस्थ श्री मुनिराज पर पड़ी। सो तुरन्त ही हर्षित होकर राजा श्री मुनिराज के समीप आया और विनयपूर्वक नमस्कार करके बैठ गया। श्री मुनिराज जब ध्यान कर चुके तो उन्होंने धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया और इस प्रकार धर्मोपदेश देने लगे-

यह जीव अनादिकाल से मोहकर्मवश मिथ्या श्रद्धान, ज्ञान और आचरण करता हुआ पुनः पुनः कर्मबन्ध करके संसार में जन्म-मरणादि अनेक प्रकार के दुःखों को भोगता है, इसलिए जब तक इसे रत्नत्रय (जो कि आत्मा का निज स्वभाव है) की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक यह (जीव) दुःखों से छूटकर निराकुलता रूप सच्चे सुख व शांति को प्राप्त नहीं कर सकता, जो कि वास्तव में इस जीव का हितकारी है। इसलिए भगवान ने 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र को मोक्षमार्ग कहा है और सच्चा सुख मोक्ष अवस्था में ही मिलता है। इसलिए मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करना मुमुक्षु जीवों का परम्कर्त्तव्य है।

(1) पुद्गलादि परद्रव्यों से भिन्न निज स्वरूप का श्रद्धान (स्वानुभव) तथा उसके कारण स्वरूप सप्त तत्त्वों और सत्यार्थ देव, गुरु व शास्त्र का श्रद्धान होना सो सम्यग्दर्शन है। वह सम्यग्दर्शन अष्ट अंग सहित और 25 मल दोष रहित धारण करना चाहिए अर्थात् जिन भगवान के कहे हुए वचनों में शंका नहीं करना, संसार के विषयों की अभिलाषा न करना, मुनि आदि साधर्मियों के मलिन शरीर को देखकर ग्लानि न करना, धर्मगुरु के सत्यार्थ तत्त्वों की यथार्थ पहिचान करना, अर्थात् कुगुरु (रागी द्वेषी, भेषी, परिग्रही, साधु, गृहस्थ), कुदेव (रागी द्वेष, भंयकर), कुधर्म हिंसापोषक क्रियाओं की प्रशंसा भी न करना, धर्म पर लगते हुए मिथ्या आक्षेपों को दूर करना और अपनी बड़ाई व परनिन्दा का त्याग करना, सम्यक् श्रद्धान और चारित्र से डिगते हुए प्राणियों को धर्मोपदेश तथा द्रव्यादि देकर किसी प्रकार स्थिर करना,

धर्म और धर्मात्माओं में निष्कपट भाव से प्रेम करना और सर्वोपरि सर्वहितकारी श्री दिगम्बर जैनाचार्यों द्वारा बताये हुए पवित्र जिनधर्म का यथार्थ प्रभाव सर्वोपरि प्रकट कर देना, ये आठ अंग हैं।

इनसे विपरीत शंकादि आठ दोष- 1. जाति, 2. कुल, 3. बल, 4. ऐश्वर्य, 5. धन, 6. रूप, 7. विद्या और 8. तप इन आठ के आश्रित हो गर्व करना, सो आठ मद, कुगुरु, कुदेव, कुधर्म और कुगुरु सेवक, कुदेव आराधक तथा कुधर्म आराधक, ये छः अनायतन 1. देवमूढ़ता (लौकिक चमत्कारों के कारण लोभ में फंसकर रागी, द्वेषी देवों का पूजन) 2. लोकमूढ़ता (पहाड़ से गिरना, नदी स्नान में धर्म मानना आदि) और 3 गुरु मूढ़ता (कुलीन आडम्बरधारी गुरुओं की सेवा करना)। इस प्रकार ये पच्चीस सम्यक्त्व के दूषण हैं। इससे सम्यक्त्व का एकदेश घात होता है, इसलिए इन्हें त्याग देना चाहिए।

(2) पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को संशय, विपर्यय व अनध्यवसाय आदि दोषों से रहित जानना, सो सम्यग्ज्ञान है।

(3) आत्मा की निज परणिति (जो वीतराग रूप है) में ही रमण करना अर्थात् रागद्वेषादि विभाव भावों क्रोधादि कषायों से आत्मा को अलग करने व बचाने के लिये व्रत, संयम तपादिक करना, सो सम्यक्चारित्र है। इस प्रकार इस रत्नत्रय रूप मोक्ष मार्ग को समझकर और उसे स्वशक्ति अनुसार धारण करके जो कोई भव्यजीव तपश्चरण धारण करता है वही सच्चे (मोक्ष) सुख को प्राप्त होता है।

इस प्रकार रत्नत्रय का स्वरूप कहकर अब बाह्य व्रत पालने की विधि कहते हैं-

भादो, माघ और चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में, तेरस, चौदस और पूनम, इस प्रकार तीन दिन यह व्रत किया जाता है और 12 को व्रत की धारणा तथा प्रतिपदा को पारणा किया जाता है अर्थात् 12 को श्री जिन भगवान का पूजनाभिषेक करके एकासन (एक भुक्त) करें और फिर मध्याह्नकाल की सामायिक करके उसी समय से चारों प्रकार के (खाद्य स्वाद्य, लेह्य और पेय) आहार तथा विकथाओं और सब

प्रकार के आरम्भों का त्याग करें। इस प्रकार तेरस, चौदस और पूनम को तीन दिन पौषध (पौषधोपवास) करें और प्रतिपदा (पड़वा) को भी जिनदेव के अभिषेक पूजन के अन्तर सामायिक करके तथा किसी अतिथि, दु:खित व भूखित को भोजन कराकर भोजन करें। इस दिन भी एक भुक्त ही करना चाहिए।

इन व्रतों के पाँचों दिन में समस्त सावद्य (पाप बढ़ाने वाले) आरम्भ और विशेष परिग्रह का त्याग करके अपना समय सामायिक, पूजा, स्वाध्यायादि धर्मध्यान में बितावें। इस प्रकार यह व्रत 12 वर्ष तक करके पश्चात् उद्यापन करें। यदि उद्यापन की शक्ति न होवे तो दूना व्रत करें। यह व्रत की उत्कृष्ट विधि है।

यदि इतनी भी शक्ति न होवे तो बेला करें या कांजी आहार करें तथा आठ वर्ष करके उद्यापन करें यह मध्यम विधि है। जो इतनी शक्ति न होवे तो एकासना करके करें और तीन ही वर्ष या पाँच वर्ष तक करके उद्यापन करें। यह जघन्य विधि है। सो स्वशक्ति अनुसार व्रत धारण कर पालन करें। नित्य प्रतिदिन में त्रिकाल सामायिक तथा रत्नत्रय पूजन विधान करें और तीन बार इस व्रत का जाप्य 108 बार जपे 'ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नम:'।

इस प्रकार व्रत पूर्ण होने पर श्री जिनमंदिर में जाकर महोत्सवपूर्वक उद्यापन करें। छत्र, चमर, झारी, कलश, दर्पण, पंख, ध्वजा और ठमनी (ठौना) आदि मंगल द्रव्य चढ़ावें, चन्दोवा बँधावे और कम से कम तीन शास्त्र मंदिर में पधरावें। प्रतिष्ठा करें, उद्यापन के हर्ष में विद्यादान करें, पाठशाला, छात्रावास, अनाथालय, पुस्तकालय आदि संस्थाएँ ध्रौव्यरूप से स्थापित करें और निरन्तर रत्नत्रय की भावना भाते रहें।

इस प्रकार श्री मुनिराज ने राजा वैश्रवण को उपदेश दिया राजा ने उपदेश सुनकर श्रद्धापूर्वक इस व्रत को यथा विधि पूर्ण अवधि होने पर उत्साह सहित उद्यापन किया।

पश्चात् एक दिन वह राजा एक बहुत बड़े बड़ के वृक्ष को जड़ से उखड़ा हुआ देखकर वैराग्य को प्राप्त हुआ और दीक्षा लेकर अन्त समय समाधिमरण कर अपराजित नाम विमान में अहमिन्द्र हुआ और फिर वहाँ से चयकर मिथिलापुरी में

महाराज कुम्भराय के यहाँ सुप्रभावती रानी के गर्भ में मल्लिनाथ तीर्थंकर हुए, जो पंचकल्याणकों को प्राप्त होकर अनेक भव्य जीवों को मोक्षमार्ग में लगाकर परमधाम (मोक्ष) को प्राप्त हुए।

इस प्रकार वैश्रवण राजा ने व्रत पालन कर स्वर्ग और मनुष्यों के सुख को प्राप्त होकर मोक्ष पद प्राप्त किया और सदा के लिये जन्ममरणादि दु:खों से छूटकर अविनाशी स्वाधीन सुख को प्राप्त हुए। इसलिए जो नरनारी मन, वचन, काय से इस व्रत की भावना भाते हैं, रत्नत्रय को धारण करते हैं, वे भी राजा वैश्रवण के समान स्वर्गादि मोक्षसुख से प्राप्त होते हैं।

महाराज वैश्रवण ने, रत्नत्रय व्रत पाल।
लही मोक्ष लक्ष्मी तिनहिं, दोष नमै त्रैकाल।

25. रविवार व्रत कथा

काशी देश की बनारस नगरी का राजा महीपाल अत्यंत प्रजावत्सल और न्यायी था। उसी नगर में मतिसागर नाम का एक सेठ और गुणसुन्दरी नाम की उसकी स्त्री थी। इस सेठ के पूर्व पुण्योदय से उत्तमोत्तम गुणवान तथा रूपवान सात पुत्र उत्पन्न हुए।

उनमें छ: का तो विवाह हो गया था, केवल लघुपुत्र गुणधर कुंवारे थे। गुणधर एक दिन वन में क्रीड़ा करते विचर रहे थे, वहाँ उनको गुणसागर मुनि के दर्शन हो गये। वहाँ मुनिराज का आगमन सुनकर और भी बहुत लोग वन्दनार्थ वन में आये और सब स्तुति वन्दना करके यथास्थान बैठे। श्री मुनिराज उनको धर्मवृद्धि कहकर अहिंसादि धर्म का उपदेश करने लगे। जब उपदेश हो चुका तब साहूकार की स्त्री गुणसुन्दरी बोली स्वामी ! मुझे कोई व्रत दीजिये। तब मुनिराज ने उसे पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत का उपदेश दिया और सम्यक्त्व का स्वरूप समझाया और पीछे कहा- बेटी ! तू रविवार का व्रत कर। इस व्रत की विधि इस प्रकार है कि आषाढ़ मास के अंतिम रविवार से लेकर नव रविवारों तक यह व्रत करना चाहिये।

प्रत्येक रविवार के दिन उपवास करना या बिना नमक के अलोना भोजन एक बार (एकासना) करना, पार्श्वनाथ भगवान का अभिषेक पूजा करना, घर के सब आरम्भ का त्यागकर विषय और कषाय भावों को दूर करना, ब्रह्मचर्य से रहना, रात्रि जागरण भोजनादि करना और **'ऊँ ह्रीं अर्हं श्री पार्श्वनाथाय नमः'** इस मंत्र का 108 बार जाप करना। इस प्रकार नौ वर्ष तक यह व्रत करने के पश्चात् उद्यापन करना। प्रथम वर्ष नव उपवास करना, दूसरे वर्ष नमक बिना भात और पानी पीना, तीसरे वर्ष नमक बिना दाल-भात खाना, चौथे वर्ष बिना नमक की खिचड़ी खाना, पाँचवें वर्ष बिना नमक की रोटी खाना, छठे वर्ष बिना नमक दही-भात खाना और नववें वर्ष एक बार का परोसा हुआ नमक बिना भोजन करना, फिर दूसरी बार नहीं लेना और थाली में जूठन भी नहीं छोड़ना। नवधा भक्ति कर मुनिराज को भोजन कराना और नव वर्ष पूर्ण होने पर उद्यापन करना। नव-नव उपकरण मन्दिरों में चढ़ाना, नव शास्त्र लिखवाना, नव श्रावकों को भोजन कराना, नव-नव फल श्रावकों को बाँटना, समवशरण का पाठ पढ़ना, पूजन विधान करना आदि।

इस प्रकार गुणसुन्दरी व्रत लेकर घर आई और सब कथा घर के लोगों को कह सुनाई, तो घरवालों ने सुनकर इस व्रत की बहुत निंदा की। इसलिये उसी दिन से उस घर में दरिद्रता का वास हो गया। सब लोग भूखों मरने लगे। तब सेठ के सातों पुत्र सलाह करके परदेश को निकले और साकेत (अयोध्या) नगरी में जिनदत्त सेठ के घर जाकर नौकरी करने लगे और सेठ-सेठानी बनारस ही में रहे। कुछ काल के पश्चात् बनारस में अवधिज्ञानी मुनि पधारे, सो दरिद्रता से पीड़ित सेठ सेठानी भी वंदना को गये और दीन भाव से पूछने लगे- हे नाथ ! क्या कारण है कि हम लोग ऐसे रंक हो गये ? तब मुनिराज ने कहा- तुमने मुनि प्रदत्त रविव्रत की निंदा की है, इससे यह दशा हुई है। यदि तुम पुनः श्रद्धा सहित इस व्रत को करो तो तुम्हारी खोई हुई सम्पत्ति तुम्हें फिर मिलेगी। सेठ-सेठानी ने मुनि को नमस्कार करके पुनः रविव्रत लिया और श्रद्धा सहित पालन किया, जिससे उनको फिर से धन-धान्यादि की अच्छी प्राप्ति होने लगी।

परन्तु इनके सातों पुत्र साकेतपुरी में कठिन मजूरी करके पेट पालते थे। जब

एक दिन लघु भ्राता गुणधर वन में घास काटने को गया था। शीघ्रता से गट्ठा बाँधकर घर चला गया और हँसिया (दांतड़ु) वहीं भूल गया। घर आकर उसने भावज से भोजन माँगा। तब वह बोली- लालाजी ! तुम हँसिया भूल आये हो, सो जल्दी जाकर ले आओ पीछे भोजन करना, अन्यथा हँसिया कोई ले जायेगा तो सब काम अटक जायेगा। बिना द्रव्य नया दांतड़ा कैसे आयेगा ? यह सुनकर गुणधर तुरन्त ही पुनः वन में गया सो देखा कि हँसिया पर बड़ा भारी सांप लिपट रहा है। यह देखकर बहुत दुःखी हुआ कि दांतडा बिना लिये तो भोजन नहीं मिलेगा और दांतडा मिलना कठिन हो गया है। तब वह विनीत भाव से सर्वज्ञ वीतराग प्रभु की स्तुति करने लगे। उनकी एकाग्रचित स्तुति करने के कारण धरणेन्द्र का आसन हिला। उसने समझा कि अमुक स्थानों में पार्श्वनाथ जिनेन्द्र के भक्त को कष्ट हो रहा है। तब करुणा करके पद्मावती देवी को आज्ञा दी कि तुम जाकर प्रभुभक्त गुणधर का दुःख निवारण करो। यह सुनकर पद्मावती देवी तुरन्त वहाँ पहुँची और गुणधर से बोली-

हे पुत्र ! तुम भय मत करो। यह सोने का दांतड़ा और रतन का हार तथा रत्नमई पार्श्वनाथ प्रभु का बिंब भी ले जाओ, सो भक्ति भाव से पूजा करना। इससे तुम्हारा दुःख शोक दूर होगा। गुणधर देवी द्वारा प्रदत्त द्रव्य और जिनबिंब लेकर घर आये। प्रथम तो उनके भाई यह देखकर डरे कि कहीं यह चुराकर तो नहीं लाया है, क्योंकि ऐसा कौन सा पाप है जो भूखा नहीं करता है, परन्तु पीछे गुणधर के मुख से सब वृत्तांत सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

इस प्रकार दिनों-दिन उनका कष्ट दूर होने लगा और थोड़े ही दिनों में वे बहुत धनी हो गये। पश्चात् उन्होंने एक बड़ा मंदिर बनवाया, प्रतिष्ठा कराई, चतुर्विध संघ को चारों प्रकार का यथायोग्य दान दिया और बड़ी प्रभावना की।

जब यह सब वार्ता राजा ने सुनी, तब उन्होंने गुणधर को बुलाकर सब वृत्तांत पूछा और अत्यंत प्रसन्न हो अपनी परमसुन्दरी कन्या गुणधर को ब्याह दी तथा बहुत-सा दान दहेज दिया। इस प्रकार बहुत वर्षों तक वे सातों भाई राज्यमान्य होकर सानन्द वहीं रहे, पश्चात् माता-पिता का स्मरण करके अपने घर आये और मात-पिता से मिले। पश्चात् बहुत काल तक मनुष्योचित सुख भोगकर संन्यासपूर्वक

मरणकर यथायोग्य स्वर्गादि गति को प्राप्त हुए और गुणधर उससे तीसरे भव मोक्ष गये।

इस प्रकार व्रत के प्रभाव से मतिसागर सेठ का दारिद्र दूर हुआ और उत्तमोत्तम सुख भोगकर उत्तम-उत्तम गतियों को प्राप्त हुए। जो और भव्यजीव श्रद्धा सहित बारह वर्ष व्रतपूर्वक इस व्रत का पालन करेंगे, वे उत्तम गति पावेंगे।

यह विधि रविव्रत फल लियो, मतिसागर गुणवान।
दुःख दरिद्र नशो सकल, अन्त लहो निरवान।।

26. रोटतीज व्रत कथा

एक समय विपुलाचल पर श्री वर्धमान स्वामी समवसरण सहित पधारे। तब राजा श्रेणिक ने नमस्कार करके हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि महाराज ! रोट तीज व्रत कैसा है, इस व्रत से किसको लाभ हुआ और यह कैसे व किस विधि से किया जाता है, सो कृपा करके कहो।

तब वर्धमान स्वामी राजा श्रेणिक से कहते भये- राजन् ! एक समय उज्जयिनी नगरी में एक सागरदत्त नाम का सेठ रहता था। उसके छप्पन करोड़ दीनारों की लक्ष्मी थी। देशान्तरों में माल भरकर उसके प्रोहन (जहाज) जाते थे। उस सेठ के सात पुत्र थे। एक दिन श्री मंदिरजी में एक व्रती मुनिराज ने यति और श्रावक के धर्मों का वर्णन किया। श्रावकों ने अपनी शक्ति के अनुसार व्रत लिये। सागरदत्त की सेठानी ने भी प्रार्थना की कि महाराज मुझे भी ऐसा व्रत दीजिये जो कि एक साल में एक ही व्रत आवे और उसमें मैं कुछ खा सकूँ। श्री मुनिराज ने कहा कि हे सेठानी थोड़े से भी व्रत नियम इस पामर जीव को संसार से पार लगा देते हैं।

श्री चौबीसी व्रत जिसे रोट तीज भी कहते हैं। साल में एक वक्त करना होता है। भाद्रपद शुक्ला तृतीया (तीज) को सामायिक, स्नान, ध्यान करके चौबीस महाराज का पूजन विधान करना चाहिये।

एक वक्त छहों रस का त्याग करके एकमात्र और एक ही अन्न से उसी वक्त अन्न और पानी से अन्तराय रहित नियमपूर्वक करना चाहिये। इससे लक्ष्मी अटल

रहती है। व्रत के दिन विकथाओं का त्याग करके शील सहित धर्मध्यान में लीन रहना चाहिये। चार प्रकार का दान देना चाहिये। यह व्रत तीन, बारह व चौबीस वर्ष तक करना चाहिये। श्रावक के षट् कर्म का (देव पूजा, गुरु पूजा, स्वाध्याय, संयम, तप, दान) पालन करना चाहिये। घर आकर सेठानी ने अपने कुटुम्ब परिवार से व्रत लेने के विषय में कहा। कुटुम्ब परिवार ने कहा कि फूलों में रखकर कोमल चावल, घी, शक्कर, मेवा आदि उत्तम पदार्थों के मिश्रण से जो भोजन बनाया जाता है, वह खाया जाता है। ऐसा कठोर व्रत कैसे किया जायेगा। कुटुम्ब परिवार की निन्दा से सेठानी ने लिये हुए व्रतों का त्याग कर दिया। व्रत भंग के पापोदय से सर्व लक्ष्मी नष्ट हो गई। मोतियों का पानी हो गया। रत्नों व सोने-चाँदी के ढेर थे वो पत्थर कंकड़ों के ढेर हो गये। देशान्तरों से प्रोहन (जहाज) जहाँ के तहाँ रह गये। धन के अभाव में दास-दासियाँ सब भाग गये। दिन बड़े ही कष्ट में व्यतीत होने लगे। जब सेठ-सेठानी उनके सातों पुत्र और उनकी स्त्रियाँ इस प्रकार सोलह प्राणियों ने देशान्तर जाने का विचार किया और उज्जयिनी नगरी छोड़कर निकल गये।

हस्तिनापुर में सागरदत्त सेठ की पुत्री परनाई थी। संकट के कुछ दिन काटने की इच्छा से हस्तिनापुर जाकर पुत्री को खबर पहुँचाई कि हमारे ऊपर संकट पड़ गया है, सो तेरे पास मदद के लिये आये हैं। हमारे संकट के कुछ दिन के लिये सहायक होना चाहिये। पुत्री ने ऐसी बात सुनकर खबर लाने वाले का कहा कि मेरे ससुराल वाले यह कहने लग जावेंगे कि हमारा धन चोरी-चोरी कर पीहर पहुँचा देती है। अत: मेरे से ऐसा कष्ट नहीं सहा जायेगा, इसलिये ये कष्ट के दिन दूसरी जगह बितावें और थाली में दाल भात भोजन की सामग्री, एक वक्त का भोजन और उसमें पाँच रत्न रखकर छिपाकर भेज दिये। सेठ के पापोदय और सेठानी के व्रत भंग के दोष से वो थाल मिट्टी का बर्तन, भोजन साम्रगी कीड़ों सहित और मोहरों के कोयले बन गये। ऐसा होने पर उसी जगह छोड़ दिये और बसंतपुर ससुराल थी वहीं कुछ समय कष्ट के दिन काट देने की इच्छा से गये। उस दिन सागरदत्त सेठ के साले रामजी सेठ के यहाँ जीमनवार थी। इस जीमनवार की खबर सुनकर उन्होंने विचार किया कि इस वक्त रामजी सेठ के यहाँ जीमने वाले बड़े-बड़े लोग आये होंगे, ऐसी गरीबी अवस्था

में हमारा वहाँ पहुँचना ठीक नहीं होगा। रात के वक्त अंधेरे में चलेंगे। कई दिनों की भूख से सभी अधीर हो रहे थे। सागरदत्त सेठ की स्त्री ने कहा कि शांति के लिये मैं जाकर थोड़ा-सा चावलों का पानी (मांड) जो मकान के पिछवाड़े से नाले में गिर रहा है ले आती हूँ। यह कहकर वहाँ जाकर एक मटकी (हाँडी) मकान के नीचे रख दी। मकान के ऊपर रामजी सेठ की स्त्री खड़ी देख रही थी। उसने अपनी ननद को ऐसी गरीब हालत में देखकर विचार किया कि इनका धन नष्ट हो गया है और अब यहाँ हमको सताने आये हैं। ऐसा विचार करते हुए जिस नाले से चावल का मांड जा रहा था उस नाले में एक पत्थर सरका दिया। वो पत्थर पड़ने से नीचे रखी हुई मटकी (हाँडी) फूट गई और चावल का गरम-गरम मांड सेठानी के पैरों पर गिरा, जिससे वह जल गई। पुत्र खबर पाकर कपड़े की झोली में डालकर उठा ले गये।

अयोध्या में सागरदत्त का मित्र रहता था। सेठ अपने कुटुम्ब को दूसरे ठिकाने छोड़कर अकेला ही अपने मित्र से मिलने गया। मित्र ने भली-भाँति आदर सम्मान किया और धैर्य देते हुए कहा कि हे मित्र संतोष धारण करो। हमारे धन को तुम अपना ही समझकर यहाँ रहो। तुम कुटुम्ब को दूसरे ठिकाने को छोड़कर क्यों आये ? क्या इस घर को तुमने दूसरा समझा था।

दोनों को आपस में रात के वक्त महल में दुःख-सुख की बात करते हुए आधी रात व्यतीत हो गई मित्र तो उठकर दूसरे ठिकाने सोने को चला गया और सागरदत्त सेठ वहाँ ही रहा। उस वक्त वहाँ चित्राम का मँडा हुआ मोर था। उसके गले में सोने का हार लटक रहा था। पापोदय से चित्राम का मँडा हुआ मोर उस हार को निगल रहा था और सेठ पड़े-पड़े देख रहे थे। सेठ ने विचार किया कि दिन निकलते ही मुझे यह चोरी का कलंक लगेगा और मैं इसे कैसे सहूँगा। ऐसा विचार कर वह रात्रि में ही चला गया और अपने कुटुम्ब से जाकर सब हकीकत कही।

उधर मित्र ने बहुत अफसोस किया मैं बहुत सेवा करने वाला था वह चला क्यों गया ? वहाँ से चलकर चम्पापुरी में समुद्रदत्त सेठ के घर पहुँचकर अपने दुःख की सब हकीकत कही। सेठ ने हर एक प्राणी को दो सेर खाई के गले हुए जौ और दो पैसे भर कड़वा तेल रोज की मजदूरी में रख लिया। स्त्रियाँ घर का काम करती थी

और पुरुष दुकान का काम करते थे। समुद्रदत्त सेठ की स्त्री ने सबको कहा कि हर एक काम सफाई से करना क्योंकि कल व्रत का दिन है।

सागरदत्त के छोटे बेटे की स्त्री ने पूछा कि कल कौन-सा व्रत है और इससे क्या होता है और कैसे किया जाता है। समुद्रदत्त सेठ की स्त्री ने व्रत की उपरोक्त विधि बताते हुए कहा कि इससे लक्ष्मी बढ़ती है। सागरदत्त की पुत्रवधू ने व्रत पर दृढ़ श्रद्धा करते हुए अपने भाग्य की जौ का नैवेद्य बनाकर सबके साथ गुप्त रीति से ले गई और चढ़ाते हुए प्रार्थना की कि हे प्रभु ! हम तो रत्नों का नैवेद्य चढ़ाने लायक थे, परन्तु आज हमारी ऐसी संकटापन्न स्थिति है कि मैं उपवास करके अपने भाग्य का नैवेद्य बनाकर आपको अर्पण कर रही हूँ और करुणा भरी पुकार करी। व्रत में दृढ़ श्रद्धा की वजह से इतना पुण्य उपार्जन हुआ कि चढ़ाया हुआ नैवेद्य तुरन्त ही सुवर्णों का बन गया और पंचों को खबर मिलने पर वे लोग आश्चर्य करने लगे।

उस तरफ समुद्रदत्त सेठ की स्त्री ने एक बड़ा रोट बनवाकर सागरदत्त की स्त्री को देते हुए कहा कि भौजाई यह रोट आज तुम्हारे बच्चों को दे देना। उसने पूछा कि ननदजी आज कौन-सा त्यौहार हैं कि आज उत्सव मनाया जा रहा है। उसने कहा- आज चौबीसी व्रत अर्थात् रोट तीज व्रत है और इससे कभी संकट नहीं आता है।

यह सुन व्रत पर श्रद्धा होने से और भूल का पश्चात्ताप होने से पुण्य का उदय हुआ, जिसके प्रभाव से हाथ में रखा हुआ रोट तुरन्त ही स्वर्ण का बन गया। स्वर्ण का रोट देखकर लोभ उत्पन्न होने से समुद्रदत्त सेठ की स्त्री ने कहा कि भौजाई आटा और सुवर्ण का रोट दोनों पास रखे थे सो गलती से यह स्वर्ण का रोट आ गया है और गेहूँ का वहीं रह गया है। यह सुवर्ण का रोट मुझे वापिस दे दो। गेहूँ का रोट मैं तुम्हारे लिये ले आती हूँ। यह रोट समुद्रदत्त सेठ की स्त्री के हाथ में जाते ही गेहूँ का बन गया तब समुद्रदत्त की स्त्री कहने लगी कि भौजाई अब तुम्हारे पुण्य का उदय आ गया है, जिससे तुम्हारे हाथ में आते ही स्वर्ण का रोट बन जाता है।

उधर सागरदत्त ने व्यापार धन्धा किया, जिससे वापिस करोड़पति हो गये। वहाँ से रवाना होकर मित्र के घर अयोध्या आये। मित्र ने जैसा सम्मान पहले किया था वैसा ही प्रेमपूर्वक अब भी किया।

लेकिन नौकर लोग कहने लगे कि यह तो वही सेठ है जो पहले मोर के गले से हार निकालकर ले गये थे। उसी द्रव्य से कमाई करके करोड़पति बनकर आये हैं और अब भी कुछ लेने आये हैं। इनकी चौकस रखना। रात के वक्त उसी चित्रशाला में दोनों मित्र दुःख-सुख की बात कर रहे थे। उस वक्त वो ही मँडा हुआ मोर उस हार को वापिस उगलने लगा। तब सबको बुलाकर दिखाया कि एक दिन वो था जब चित्राम का मोर हाल निगल गया था और आज यह दिन है कि चित्राम का मोर हार उगल रहा है। वहाँ कुछ दिन रहकर सेठ अपनी ससुराल बसंतपुर आये। रामजी सेठ खबर पाकर लेने आये। बहन ने कहा कि भाई तुम हमारे धन को देखकर ही हमें लेने आये हो, अगर हमें चाहते तो संकट में पहले मदद करते। उस वक्त भोजाई ने माँड भी नहीं लेने दिया। गरम-गरम चावलों के मांड से पत्थर गिराया, जिससे मेरा अंग जला जो अभी तक अच्छा नहीं हुआ। रामजी सेठ ने कहा बहिन उस वक्त तुम्हारे पापोदय से कुबुद्धि सूझती थी। इस प्रकार समझाकर उन्हें ससम्मान अपने घर ले गये।

कुछ दिन बात हस्तिनापुर में अपनी पुत्री के यहाँ चले गये। पुत्री खबर पाकर बहुत-सी सहेलियों को साथ लेकर गाजे-बाजे के साथ अगवानी को आई। भाईयों ने कहा कि हे बहन उस दिन को याद कर जब हम संकटग्रस्त आये थे तो तू एक दिन भी रखने को राजी न थी, न मिलने ही को आई, बल्कि ठीकरे में कीड़े और कोल भरकर भेजे थे जिन्हें हम यहाँ छोड़ गये थे। बहन ने कहा कि भाईयों मैंने तो भोजन ही भेजा था। तुम्हारे पापोदय से ऐसा बन गया। अगर मैं मिलने को उस अवस्था में आती तो मेरी ससुराल और तुम्हारी दोनों की बदनामी होती। सागरदत्त सेठ ने अपनी पुत्री को धन, जेवर देकर विदा किया। वहाँ से अपने देश उज्जैन को वापिस आ गये। जो लक्ष्मी पहले विलुप्त हो गई थी वह सब अपनी अवस्था में मिली। दास-दासी, नौकर-चाकर सब मिले। देशांतरों के प्रोहन जो जहाँ के तहाँ रुक गये थे वे सब पुण्य के प्रभाव, व्रत पर दृढ़ श्रद्धा से आ मिले। इससे हे जीवो व्रत भंग को महादोष समझकर हर एक को व्रत दृढ़ श्रद्धा से करना चाहिये और उसकी कथा वाचना, सुनना, अनुमोदन करना चाहिये। चाहे कोई भी व्रत करने वाले को पूजा, दान, सामायिक जरूर ही करना चाहिये।

ऊँ ह्रीं वृषभादि-महावीर-पर्यन्त चतुर्विंशति-तीर्थंकर अ सि आ उ सा नमः स्वाहाः। जाप 108 करें।

27. रोहिणी व्रत कथा

वन्दूँ श्री अर्हन्त पद, मन वच शीश नमाय।
कहूँ रोहिणी व्रत कथा, दुःख दारिद्र नश जाय।।

अंग देश में चम्पापुरी नामक नगरी का स्वामी माधव नाम का राजा था। उसकी परम सुन्दरी लक्ष्मीमती नाम की रानी थी। उसके सात गुणवान पुत्र और एक रोहिणी नाम की कन्या थी। एक समय राजा ने निमित्तज्ञानी से पूछा कि मेरी पुत्री का वर कौन होगा ? तब निमित्तज्ञानी ने विचार कर कहा कि हस्तिनापुर का राजा विगतशोक और उसकी रानी विद्युतश्रवा का पुत्र अशोक तेरी पुत्री के साथ पाणिग्रहण करेगा।

यह सुनकर राजा ने स्वयंवर मण्डप रचाया और सब देशों के राजकुमारों को आमंत्रण पत्र भेजे। जब नियत समय पर राजकुमार एकत्रित हुए। कन्या रोहिणी एक सुन्दर पुष्पमाला लिये हुए सभा में आई। सब राजकुमारों का परिचय पाने के अनन्तर अंत में राजकुमार अशोक के गले में वरमाला डाल दी। राजकुमार अशोक रोहिणी से पाणिग्रहण कर उसे घर ले गया और बहुत काल तक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत किया।

एक समय हस्तिनापुर के वन में श्री चारण मुनिराज आये। यह समाचार सुनकर राजा निज प्रिया सहित श्रीगुरु की वंदना को गया और तीन प्रदक्षिणा दे दण्डवत नमस्कार करके बैठ गया। पश्चात् श्रीगुरु के मुख से तत्त्वोपदेश सुनकर राजा हर्षित मन को पूछने लगा- स्वामी ! मेरी रानी इतनी शांतचित्त क्यों है ? तब श्रीगुरु ने कहा- सुनो, इसी नगर में वस्तुपाल नाम का राजा था और उसका धनमित्र नाम का मित्र था। उस धनमित्र के एक दुर्गन्धा कन्या उत्पन्न हुई। उस कन्या को देखकर माता-पिता निरन्तर चिंतावान रहते थे कि इस कन्या को कौन वरेगा ? जब वह कन्या सयानी हुई तब धनमित्र ने उसका ब्याह धन का लोभ देकर एक श्रीषेण नाम के लड़के (जो कि उसके मित्र सुमित्र का पुत्र था) से कर दिया।

वह सुमित्र का पुत्र श्रीषेण अत्यन्त व्यसनासक्त था। एक समय वह जुए में सब धन हार गया, तब चोरी करने किसी के घर में घुसा। उसे यमदण्ड नामक कोतवाल ने पकड़ लिया और दृढ़ बन्धन से बाँध दिया। इसी कठिन अवसर में धनमित्र ने श्रीषेण से अपनी पुत्री के ब्याह करने का वचन ले लिया था। इसीलिए श्रीषेण ने उससे ब्याह तो कर लिया, परन्तु वह स्वस्त्री के शरीर की अत्यंत दुर्गन्ध से पीड़ित होकर एक ही मास में उसे परित्याग करके देशांतर को चला गया। निदान वह दुर्गन्धा अत्यन्त व्याकुल हुई और अपने पूर्व पापों का फल भोगने लगी। इसी समय अमृतसेन नाम के मुनिराज इसी नगर के वन में विहार करते हुए आये। यह जानकर नगर के सभी लोग वंदना को गये और धनमित्र भी अपनी दुर्गन्धा कन्या सहित वन्दना को गया। सो धर्मोपदेश सुनने के अनन्तर उसने अपने पुत्री के भवांतर पूछे। तब श्रीगुरु ने कहा- सोरठ देश में गिरनार पर्वत के निकट एक नगर है। वहाँ भूपाल नामक राजा राज्य करता था। उसके सिन्धुमती नाम की रानी थी। एक समय बसन्तऋतु में राजा रानी सहित वनक्रीड़ा को गया। मार्ग में श्रीमुनिराज को देखकर राजा ने रानी से कहा कि तुम घर जाकर श्रीगुरु के आहार की विधि लगाओ।

राजाज्ञा से यद्यपि रानी घर तो गई तथापि वनक्रीड़ा के समय वियोगजनित संताप से तप्त उस रानी ने इस वियोग का सम्पूर्ण अपराध मुनिराज के माथे मढ़ दिया और जब वे आहार को बस्ती में आये तो पड़गाहकर कडुवी तुम्बी का आहार दिया, जिससे मुनिराज के शरीर में अत्यन्त वेदना उत्पन्न हो गई और उन्होंने तत्काल प्राण त्याग कर दिये।

नगर के लोग यह वार्ता सुनकर आये और मुनिराज के मृतक शरीर की अन्तिम क्रिया कर रानी के इस दुष्कृत्य की निन्दा करते हुए निज-निज स्थान को चले गये। राजा को भी इस दुष्कृत्य की खबर लग गई तो उन्होंने रानी को तुरन्त ही नगर से बाहर निकाल दिया।

इसी पाप से रानी के शरीर में उसी जन्म में कोढ़ उत्पन्न हो गया, जिससे शरीर गल-गलकर गिरने लगा तथा शीत, उष्ण और भूख प्यास की वेदना से उसका चित्त विह्वल रहने लगा। इस प्रकार वह रौद्र भावों से मरकर नर्क में गई। वहाँ पर भी मारन,

ताड़न, छेदन, भेदन, शूली रोहणादि घोरान्घोर दुःख भोगे। वहाँ से निकल कर गाय के पेट में अवतार लिया और अब यह तेरे घर दुर्गन्धा कन्या हुई है। यह पूर्व वृत्तांत सुनकर धनमित्र ने पूछा- हे नाथ ! कोई व्रत विधानादि धर्म कार्य बताईये जिससे यह पातक दूर होवे। तब स्वामी ने कहा- सम्यग्दर्शन सहित रोहिणी व्रत पालन करो अर्थात् प्रति मास में रोहिणी नाम का नक्षत्र जिस दिन होवे, उस दिन चारों प्रकार के आहार का त्याग करे और श्री जिन चैत्यालय में जाकर धर्मध्यान सहित सोलह पहर व्यतीत करे अर्थात् सामायिक, स्वाध्याय, धर्मचर्चा, पूजा, अभिषेकादि में काल बितावे और स्वशक्ति अनुसार दान करे।

इस प्रकार यह व्रत 5 वर्ष और 9 दिन तक करे। पश्चात् उद्यापन करे अर्थात् छत्र, चमर, ध्वजा, पाटला आदि उपकरण मंदिर में चढ़ावे। साधुजनों व साधर्मी तथा विद्यार्थियों को शास्त्र देवे, वेष्टन देवे, चारों प्रकार के दान देवे और जो द्रव्य खर्च करने की शक्ति न हो तो दूना व्रत करे। दुर्गन्धा ने मुनिश्री के मुख से व्रत की विधि सुनकर श्रद्धापूर्वक उसे धारण कर पालन किया और आयु के अन्त में संन्यास सहित मरण कर प्रथम स्वर्ग में देवी हुई। वहाँ से आकर माधव राजा की पुत्री और तेरी परमप्रिया स्त्री हुई हैं। इस प्रकार रानी के भवांतर सुनकर राजा ने अपने भवांतर पूछे-

तब स्वामी ने कहा- तू प्रथम भव में भील था। तूने मुनिराज पर घोर उपसर्ग किया था। सो तू वहाँ से मरकर पाप के फल से सातवें नरक गया। वहाँ से तैतीस सागर दुःख भोगकर निकला। सो अनेक कुयोनियों में भ्रमण करता हुआ तूने एक वणिक के घर जन्म लिया। सो अत्यंत घृणित शरीर पाया। लोग दुर्गन्ध के मारे तेरे पास न आते थे। तब तूने मुनिराज के उपदेश से रोहिणी व्रत किया, उसके फल से स्वर्ग में देव हुआ। फिर वहाँ से चयकर विदेह क्षेत्र में अर्ककीर्ति चक्रवर्ती हुआ। वहाँ से दीक्षा ले तप करके देवेन्द्र हुआ और स्वर्ग से आकर तू अशोक नामक राजा हुआ है। राजा अशोक यह वृत्तांत सुनकर घर आया और कुछ काल तक सानन्द राज्य भोगा। पश्चात् एक दिन वहाँ वासुपूज्य भगवान का समवशरण आया सुनकर राजा वंदना को गया और धर्मोपदेश सुनकर अत्यंत वैराग्य को प्राप्त हो जिन दीक्षा ली। रोहिणी रानी ने भी दीक्षा ग्रहण की। सो राजा अशोक ने तो उसी भव में शुक्लध्यान

से घातिया कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष गये तथा रोहिणी आर्या भी समाधिमरण कर स्त्रीलिंग छेद, स्वर्ग में देव हुई। अब वह देव वहाँ से चयकर मोक्ष प्राप्त करेगा। इस प्रकार राजा अशोक और रानी रोहिणी, रोहिणी व्रत के प्रभाव से स्वर्गादि के सुख भोगकर मोक्ष को प्राप्त हुए। इसी प्रकार अन्य भव्य जीव भी श्रद्धासहित यह व्रत पालेंगे वे भी उत्तमोत्तम सुख पावेंगे।

व्रत रोहिणी रोहिणी कियो, अरु अशोक भूपाल।
स्वर्ग मोक्ष सम्पत्ति लही, 'दीप' नवावत भाल।।

28. लब्धिविधान व्रत कथा

प्रथम नमूँ जिन वीर पद, मुनि गुरु गौतम पाय।
लब्धि विधान कथा कहूँ, शारद होहु सहाय।।

काशी देश में वाराणसी नाम की नगरी का महाप्रतापी विश्वसेन राजा था। उसकी रानी का नाम विशालनयना था। एक दिन राजा ने कौतुकपूर्ण हृदय से नाटक का खेल करवाया। नाटक के पात्रों ने राजा को प्रसन्नार्थ अनेक प्रकार गीत, नृत्य, हाव-भाव, विभ्रमादिक पूर्वक नाटक का खेल खेलना आरम्भ कर दिया। राजा-रानी और सब पुरजन अपने योग्य आसनों पर बैठकर सहर्ष अभिनय देखने लगे। उन नाटक के पात्रों के विविध भेष और हाव-भावों से रानी का चित्त चंचल हो उठा और वह चमरी और रंगी नाम की अपनी दो सखियों सहित घर से निकल पड़ी तथा कुसंग में पड़कर अपना शीलधर्मरूपी भूषण खो बैठी। वह ग्रामोग्राम भ्रमण करती हुई वेश्या कर्म करने लगी।

जीवों के भाव तथा कर्मों की गति विचित्र है। देखो रानी रनवास के सुख छोड़कर गली-गली की कुत्ती हो गई। सत्य है, इन नाटकों से कितने घर नहीं उजड़े? रानी जैसी की यह दशा हुई तो अन्य जनों का कहना ही क्या है ? राजा भी अपनी प्रियतमा के वियोगजनित दुःख को न सह सकने के कारण पुत्र को राज्य देकर वन में चला गया और इष्टवियोग (आर्त्तध्यान) से मरकर हाथी हुआ। वन में भटकते -

भटकते एक समय किसी पुण्य संयोग से श्री मुनिराज का दर्शन हो गया और धर्मबोध भी मिला, जिससे वह हाथी सम्यक्त्व को प्राप्त करके अणुव्रत पालन करने लगा और आयु के अंत में मरकर पाटलीपुत्र नगर में महीचन्द्र नाम का राजा हुआ।

यह महीचन्द्र राजा एक दिन वनक्रीड़ा को गया। इसके पुण्योदय से वहाँ (उद्यान में) श्री मुनिराज के दर्शन हो गये। तब सविनय साष्टांग नमस्कार करके राजा धर्मश्रवण की इच्छा से वहाँ बैठ गया। इतने में कानी, कुबड़ी और कोढ़ी ऐसी तीन कन्याएँ अत्यन्त दुःखित हुई वहाँ आई। उन्हें देखकर राजा महीचन्द्र को मोह उत्पन्न हुआ। जब राजा ने श्रीगुरु से अपने मोह उत्पन्न होने का कारण पूछा, तब श्रीगुरु ने इनके भवांतर का संबंध कह सुनाया कि राजन् ! तू अब से तीसरे भव में बनारस का राजा विश्वसेन था और रानी तेरी विशालनयना थी। नाटक का अभिनय देखते हुए नाटककार पात्रों के हावभावों से चंचलित होकर तेरी रानी अपनी रंगी और चमरी नामक दो दासियों सहित निकलकर कुपथगामिनी हो गई।

सो वे तीनों वेश्याकर्म करती हुई एक समय किसी राजा के पास कुछ याचना को जा रही थी कि रास्ते में परम दिगम्बर मुनिराज को देखकर अपने कार्य के साधन में अपशकुन मानने लगी और रात्रि समय मुनिराज के पास आकर अपने घृणित स्वभावानुसार हाव-भाव दिखाने और मुनिराज के ध्यान में विघ्न करने लगी। परन्तु जैसे कोई धूल फेंककर सूर्य को मलीन नहीं कर सकता है, उसी प्रकार से वे कुलटाएँ श्री मुनिराज को किंचित् भी ध्यान से न चला सकी। सत्य है क्या प्रलय की पवन कभी अचल सुमेरु को चला सकती है ? स्त्री चरित्र के साथ स्त्रियों की प्यारी रात्रि भी पूर्ण हुई। प्रातःकाल हुआ। सूर्य उदय होते ही वे दुष्टनी विफल मनोरथ होकर वहाँ से चली गयी और यहाँ मुनिराज के निश्चल ध्यान के कारण देवों ने जय-जयकार शब्द करके पंचाश्चर्य किये।

निदान वे तीनों मुनि पर उपसर्ग करने के कारण गलित कोढ़ को प्राप्त हुई और उनका रूप, कला, सौन्दर्य सब नष्ट हो गया तथा आयु के अन्त में मरकर पाँचवे नरक गई। बहुत काल तक वहाँ से दुःख भोगकर उज्जैनी के पास ग्रामपलास नाम के

एक गृहस्थ की पुत्रियाँ हुई हैं, सो छोटी अवस्था में माता-पिता मर गये।

पूर्व पाप के कारण ये तीनों प्रथम कुरुपां, कानी, कुबडी, कोढ़ी और तिस पर भी भंड वचन बोलने वाली हैं। इसलिये ग्राम से बाहर निकाल दी गई हैं। वहाँ से भटकती हुई यहाँ आई हैं। तू अपनी पट्टरानी के वियोग से दु:खित होकर मरा, सो हाथी हुआ। तब श्री मुनिराज के उपदेश से सम्यक्त्व सहित पंचाणुव्रत पालन करके मरा, सो स्वर्ग में देव हुआ और देव पर्याय से आकर यहाँ महीचन्द्र नाम का राजा हुआ है। इनका तेरा पूर्वजन्मों का सम्बन्ध होने से तुझे यह मोह हुआ है। तब राजा ने कहा- महाराज ! क्या कोई उपाय ऐसा है कि जिससे ये कन्याएँ पापों से छूटे ? तब श्रीगुरु ने कहा- राजन् ! सुनो, यदि वे श्रद्धापूर्वक लब्धि विधान करें तो सहज ही पाप से छुटकारा पावेंगी। इस व्रत की विधि इस प्रकार है-

भादो, माघ और चैत्र सुदी एक से तीज तक यह व्रत एक वर्ष में ऐसे 5 वर्ष तक करें, पश्चात् उद्यापन करें अथवा दुगुना व्रत करें। व्रत के दिनों में या तो तेला करे या एकांतर उपवास करे या एकासना ही नित्य करें और श्री महावीर स्वामी का प्रतिमा की अभिषेक पूर्वक पूजनार्चन करें।

तीनों काल सामायिक करें। **'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री महावीर स्वामिने नमः'** यह 108 जाप करें। जागरण और भजन करें।

उद्यापन की विधि- जब व्रत पूर्ण हो जावे तब सकल संघ को भोजन करावें और संघ में चार प्रकार का दान करें। शास्त्रों का प्रचार करें, पूजन के उपकरण व शास्त्र श्री जिनालय में पधरावें इत्यादि।

इस प्रकार व्रत की विधि और फल सुनकर उन तीनों कन्याओं ने राजा की सहायता से व्रत पालन किया और समाधिमरण कर पाँचवें स्वर्ग में देव हुई। राजा महीचन्द्र भी दीक्षा धर तप करके स्वर्ग गया।

विशालनयना नामक रानी का जीव जो देव हुआ था, मगधदेश के वाडवनगर में कश्यप गौत्रीय सांडिल्य नाम ब्राह्मण की सांडिल्या स्त्री के गौतम नाम का पुत्र हुआ था तथा चमरी व रंगी के जीव भी देव पर्याय से चयकर मनुष्य हो तप कर उत्तम गति को प्राप्त हुए।

जब श्री महावीर भगवान को केवलज्ञान हुआ परन्तु वाणी नहीं खिरी इसका कारण इन्द्र ने जाना कि गणधर बिना वाणी नहीं खिरती है, सो इन्द्र गौतम ब्राह्मण के पास 'त्रैकाल्यं द्रव्य षट्कं' इत्यादि नवीन श्लोक बनाकर साधारण भेष में गया और उसका अर्थ पूछा।

जब गौतम उसका अर्थ लगाने में गड़बड़ाया तब इन्द्र उसे भगवान के समवशरण में ले आया, सो मानस्तम्भ देखते ही गौतम का मान भंग हो गया और उन्होंने प्रभु के सम्मुख जाकर नमस्कार करके दीक्षा ली। सो जिनकथित चारित्र के प्रभाव से उसे चारों ज्ञान हो गया और वह भगवान के गणधरों में प्रथम गणधर हुए। बहुत काल जीवों को संबोधन किया और महावीर प्रभु के पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त करके निर्वाण पद को प्राप्त हुआ। उन गौतम स्वामी को हमारा नमस्कार हो।

लब्धि विधान व्रत फल थी, विशालनयना नार।
गणधर हो लह मोक्षपद, किये कर्म सब क्षार।

29. श्रावणद्वादशी व्रत कथा

प्रणमूँ श्री अरहन्त पद, प्रणमूँ शारद माय।
श्रावण द्वादशी व्रत कथा, कहूँ भव्य हितदाय।।

मालवा प्रांत में पद्मावतीपुर नामक एक नगर था, वहाँ का राजा नरब्रह्मा और रानी विजयवल्लभा थी। इनके शीलवती नाम की एक अति कुरुपा, कानी, कुबड़ी कन्या उत्पन्न हुई। ज्यों-ज्यों वह कन्या बड़ी होती थी त्यों-त्यों माता-पिता को चिंता बढ़ती जाती थी।

एक दिन वे राजा-रानी इस प्रकार चिंता कर रहे थे कि इस कुरुपा कन्या से पाणिग्रहण कौन करेगा ? कि पुण्य योग से उन्हें वनमाली द्वारा यह समाचार मिला कि उद्यान में श्रवणोत्तम नाम के यतीश्वर मुनिराज देश-देशातंरों में विहार करते हुए आये हैं। राजा उत्साह सहित स्वजन और पुरजनों को साथ लेकर श्रीगुरु की वंदना के लिये वन में गया और तीन प्रदक्षिणा देकर प्रभु को नमस्कार करके यथायोग्य स्थान में बैठा। श्रीगुरु ने धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया और मुनि-श्रावक के धर्म

का उपदेश देकर निश्चय, व्यवहार व रत्नत्रय धर्म का स्वरूप समझाया। पश्चात् राजा ने नतमस्तक हो पूछा- हे प्रभो ! यह मेरी पुत्री किस पाप के उदय से ऐसी कुरूपा हुई?

तब श्रीगुरु ने कहा- अवंती देश में पांडलपुर नाम का नगर था। वहाँ का राजा संग्राममल्ल और रानी वसुन्धरा थी। उसी नगर में देव शर्मा नामक पुरोहित और उसकी कालसुरी नाम की स्त्री थी। इस ब्राह्मण के अत्यन्त रूपवान एक कपिला नाम की कन्या थी। एक दिन यह कपिला अपनी सखियों के साथ अठखेलियाँ करती हुई वनक्रीड़ा के लिये नगर के बाहर गई। वहाँ श्री परम दिगम्बर साधु को देखकर उनकी अत्यंत निंदा की और घृणा की दृष्टि से वह सखियों से कहने लगे- देखों री बहनों, यह कैसा निर्लज्ज पापी पुरुष है कि पशु के समान नग्न फिरा करता है और अपना गुप्त अंग स्त्रियों को दिखाता है। लोगों को ठगने के लिये लंघन करके वन में बैठा रहता है। धिक्कार है इसके नरजन्म पाने को। इत्यादि अनेकों कुवचन कहकर मुनि के मस्तक पर धूल डालकर थूक भी दिया।

अनेकों उपसर्ग आने पर भी श्री मुनिराज तो ध्यान से किंचित्मात्र भी विचलित न हुए और समभावों से उपसर्ग जीतकर केवलज्ञान प्राप्त कर परमपद को प्राप्त हुए, परन्तु यह कपिला जिसने मदोन्मत्त होकर श्री योगीराज पर उपसर्ग किया था, मरकर प्रथम नरक में गई। वहाँ से निकलकर गधी हुई, फिर हथिनी, बिल्ली, नागिन, चांडालनी हुई और वहाँ से मरकर तुम्हारे घर पुत्री हुई है। सो हे राजा ! इस प्रकार मुनि निन्दा के पाप से इसकी यह दुर्गति हुई। राजा ने यह भवांतर का वृत्तांत सुनकर पूछा- हे नाथ ! इसका यह पाप कैसे छूटे सो कृपाकर कहिये? तब स्वामी ने कहा- राजा ! सुनो, संसार में ऐसा कौन-सा कार्य है कि जिसका उपाय न हो। यदि मनुष्य अपने पूर्व कर्मों की आलोचना निंदा व गर्हा करके आगे को उन पापों से परांग-मुख होकर पुनः न करने की प्रतिज्ञा करें और पूर्व पापों की निर्जरार्थ व्रतादिक करें तो पापों से छूट सकता है। इसलिये यह पुत्री सम्यक्त्वपूर्वक श्रावण शुक्ला द्वादशी व्रत को धारण करे तो इस कष्ट से छूट सकती है। इस व्रत की विधि निम्न प्रकार है- श्रावण सुदी एकादसी को प्रातःकाल स्नानादि करके श्री जिन पूजा करें पश्चात् भोजन करके

सामायिक के समय द्वादशी व्रत के उपवास की धारणा (नियम) करें। इसी समय से अपना काल धर्मध्यान में बितावें और द्वादशी को भी नियमानुसार उठकर नित्य क्रिया से निवृत्त हो श्री जिन मंदिर में जाकर उत्साह सहित अष्टद्रव्य से पूजन करे अर्थात् पाठ और मंत्रों को स्पष्ट बोलकर प्रासुक अष्टद्रव्य चढ़ावे और णमोकार मंत्र (35 अक्षर) का 108 बार जाप करके सामायिक, स्वाध्यायादि धर्मध्यान में काल बितावें। फिर त्रयोदशी को इसी प्रकार अभिषेक पूर्वक पूजनादि करने के पश्चात् किसी अतिथि व दीन-दुःखी को भोजन दान करने के बाद भोजन करें। इस प्रकार एक वर्ष में एक बार करें। यह व्रत बारह वर्ष तक करें, पश्चात् उत्साह सहित उद्यापन करे।

उद्यापन में चार मुखी प्रतिमा की प्रतिष्ठा करावें अथवा जहाँ मन्दिर हो वहाँ चार महान् ग्रंथ लिखाकर जिनालय में पधरावें। वेष्टन चौकी, छत्र, चमरादि उपकरण चढ़ावें। परोपकार में द्रव्य खर्च करें। व्यापार रहितों को व्यापारार्थ पूँजी लगा देवें, पठनाभिलाषियों को छात्रवृत्ति देकर पढ़ने को भेजें, रोगी को औषधि, निःसहाय दीनों को अन्न, वस्त्र, औषधि देवें। भयभीत जीवों को भयरहित करें मरते को बचावे इत्यादि और यदि उद्यापन की शक्ति न हो तो दूना व्रत करें।

इस व्रत के फल से यह तेरी कन्या यहाँ से मरण करके तेरे ही घर अर्ककेतु नाम का पुत्र होगा और उनसे छोटा चन्द्रकेतु होगा। चन्द्रकेतु युद्ध में मरकर पीछे अर्ककेतु का पुत्र होगा पश्चात् अर्ककेतु कितने काल राज्य करके अन्त में माता सहित जिन दीक्षा लेगा तथा समाधिमरण करके बारहवें स्वर्ग में महर्द्धिक देव होगा और मनुष्य भव लेकर तप के योग से केवलज्ञान को प्राप्त हो मोक्षपद प्राप्त करेगा। इसकी माता विजयवल्लभा प्रथम स्वर्ग में देवी होगी। चन्द्रकेतु का जीव भी अवसर पाकर सिद्धपद को प्राप्त करेगा। इस प्रकार राजा व्रत की विधि और उसका फल सुनकर घर आया और उसकी कन्या ने यथाविधि व्रत पालन करके श्रीगुरु के कथनानुसार उत्तमोत्तम फल प्राप्त किये। इस प्रकार और भी जो स्त्री पुरुष श्रद्धा सहित इस व्रत को पालन करेंगे वे भी इसी प्रकार फल पावेंगे।

श्रावण द्वादशी व्रत कियो, शीलव्रती चित्त धार।
किये अष्ट विधि नष्ट सब, लह्यो सिद्धपद सार।।

30. श्रुतस्कन्ध व्रत कथा

श्रुतस्कन्ध वन्दूँ सदा, मन वच शीश नवाय।
जा प्रसाद विद्या लहूँ, कहूँ कथा सुखदाय।। 1 ।।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में एक अंग नाम का देश है। उसके पाटलीपुत्र (पटना) नगर में राजा चन्द्ररुचि की पट्टरानी चन्द्रप्रभा के श्रुतशालिनी नाम की एक अत्यंत रूपवान कन्या थी। इस कन्या को जिनमति नाम की आर्या के पास पढ़ने भेजा, जिससे वह थोड़े ही दिनों में विद्या में निपुण हो गई। एक दिन इस कन्या ने अपनी ही बुद्धि से चौकी पर श्रुतस्कन्ध मण्डल बनाया। इसे देखकर आर्या को आश्चर्य हुआ और कन्या की बहुत प्रशंसा की। उन्होंने समझा कि अब वह विद्या में निपुण हो चुकी है, इसलिये उसे सहर्ष राजा के पास घर जाने की आज्ञा दी। राजा कन्या को विदुषी देखकर बहुत हर्षित हुआ और आर्या की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा विनय भाव निवेदित किया।

एक दिन इसी नगर के उद्यान में श्री 108 वर्द्धमान मुनि आये। यह समाचार सुनकर राजा अपने परिवार तथा पुरजनों सहित उत्साहपूर्वक वंदना को गये और भक्तिपूर्वक वंदना करके मुनि चरणों के निकट बैठ गये। मुनिराज ने धर्मवृद्धि कहकर धर्म का स्वरूप समझाया, जिसे सुनकर लोगों ने यथाशक्ति व्रतादिक लिये। राजा ने कन्या की ओर देखकर पूछा- हे ऋषिराज ! यह कन्या किस पुण्य से ऐसी रूपवान और विदुषी हुई है ? तब मुनिश्री बोले- इसी जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह सम्बन्धी पुष्कलावती देश में पुण्डरीकनी नगरी है। वहाँ के राजा गुणभद्र और रानी गुणवती थी। एक समय वह राजा-रानी सपरिवार सीमन्धरस्वामी की वंदना को गये और यथायोग्य भक्ति, वंदना करके नरकोठे में बैठे, पश्चात् सप्त तत्त्व और पुण्य पाप का स्वरूप सुनकर श्रीगुरु से पूछा- हे प्रभु ! कृपा कर श्रुतस्कन्ध व्रत का क्या स्वरूप है? सो समझायें। तब गणधर महाराज ने कहा- श्री जिनेन्द्र भगवान की दिव्यध्वनि सातिशय निरक्षरी (वाणी) मेघ की गर्जना के समान ऊँकार रूप भव्य जीवों के हितार्थ उनके पुण्य अतिशय के कारण और भगवान की वचन वर्गणा के उदय से खिरती है। इसे सर्व सभाजन अपनी-अपनी भाषाओं में समझ लेते हैं। इस वाणी को

ज्ञानधारी गणनायक मुनि अल्पज्ञानी जीवों के संबोधनार्थ (आचारांग, सूत्रकृतांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातकथांग,उपासकाध्ययनांग, अन्तकृद्दशांग, अनुत्तरोपपादकदशांग प्रश्नव्याकरणांग, सूत्रविपाकांग और दृष्टिप्रवादांग) इस प्रकार द्वादशांग रूप से कथन किया। फिर इन्हीं के आधार से और मुनियों ने भी भेदाभेदपूर्वक देश भाषाओं में कथन किया हैं। यह जिनेन्द्र वाणी समस्त लोकालोक के स्वरूप और त्रिकालवर्ती पदार्थों को प्रदर्शित करने वाली समस्त प्राणियों के हितरूप मिथ्या मतों की उत्थापक, पूर्वा पर के विरोध से रहित अनुपमेय है। अतः जो भव्यजीव इस वाणी को सुनकर हृदयरूप करता अथवा उसकी भावना भाकर व्रत संयम धारण करता है, वह भी अनेक शास्त्रों का पारगामी हो जाता है। इस व्रत की विधि इस प्रकार है कि भादो मास में नित्य श्री जिन चैत्यालय में श्रुतस्कन्ध मण्डल मांडकर श्रुतस्कन्ध पूजन विधान करें और एक मास में उत्कृष्ट 16, मध्यम 10 और जघन्य 8 उपवास करें। पारणा के दिन यथाशक्ति नीरस व एक-दो आदि रस छोड़कर एक भुक्ति करें। इस प्रकार यह व्रत बारह वर्ष तक अथवा पाँच वर्ष तक करें, पीछे उद्यापन करें। बारह-बारह उपकरण घण्टा, झालर, पूजा के बर्तन, छत्र, चमर, चन्दोवा, चौकी, वेष्टनादि मंदिर में भेंट करें। शास्त्र लिखवाकर जिनालय में पधरावें तथा श्रावकों को भेंट देवें और शास्त्र-भण्डारों की सम्हाल करें। नवीन सरस्वती भवन बनावें तथा सर्वसाधारणजनों को श्री जिनवाणी का उपदेश करें और करावें। इस प्रकार यह व्रत धारण करने से अनुक्रम से केवल ज्ञान की प्राप्ति होकर सिद्धपद प्राप्त होता है।

जाप्य नित्य दिन में तीन बार जपें- **'ऊँ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतस्याद्वाद-नयगर्भितद्वादशांग श्रुतज्ञानाय नमः'** और भावना भावें। इस प्रकार राजा गुणभद्र और गुणवती रानी ने व्रत की विधि सुनकर भाव सहित धारण किया और भावना भायी। सो अन्त समय समाधिमरण कर अच्युत स्वर्ग में इन्द्र-इन्द्राणी हुए। वहाँ से वह रानी का जीव (इन्द्राणी) चयकर यह तेरे श्रुतशालिनी नाम की कन्या हुई।

इस प्रकार गुरुमुख से भवांतर सुनकर उस कन्या ने पुनः श्रुतस्कन्ध व्रत धारण किया और चारित्र के प्रभाव से विषय-कषायों को अतिशय मंद किया और अन्त समय में समाधि से मरण कर स्त्रीलिंग को छेदकर इन्द्र पद प्राप्त किया और वहाँ

से अनुपम सुख भोगकर अपरविदेह कुमुदवती देश के अशोक पुर में पद्नाभ राजा की पट्टरानी जितपद्मा के गर्भ से नयन्धर नाम तीर्थंकर हुआ। साथ ही चक्रवर्ती और कामदेव पद को भी सुशोभित किया। बहुत समय तक नीतिपूर्वक प्रजा का पालन किया। पश्चात् एक दिन इन्द्र धनुष को आकाश में विलीन होते देख वैराग्य उत्पन्न हुआ। सो अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आश्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म-वैराग्य को दृढ़ करने वाली इन बारह भावनाओं का चिंतवन कर दीक्षा ग्रहण की और कितने काल तक उत्कृष्ट संयम पालकर शुक्लध्यान के योग से केवलज्ञान प्राप्त किया। तब देवों ने समवशरण की रचना की। इस प्रकार अनेक देशों में विहार करके भव्य जीवों को वस्तु स्वरूप का उपदेश दिया और आयु के अन्त समय में अघातिया कर्मों को नाश करके अविनाशी सिद्ध पद प्राप्त किया। इस प्रकार और भी जो नर-नारी भाव सहित व्रत का पालन करेंगे तो अवश्य ही उत्तम पद को प्राप्त हावेंगे।

श्रुतशालिनी कन्या कियो, श्रुतस्कन्ध व्रत सार।
'दीप' कर्म सब नाश कर, लहो मोक्ष सुखकार।।

31. शीलव्रत कथा

सब द्वीपों में श्रेष्ठ जम्बूद्वीप में कौशल देश स्वर्ग से भी सुन्दर था। वहाँ का राजा पद्मसेन व उसकी पत्नी कंचनमाला थी। राजा बड़ा ही धर्मप्रेमी, प्रजाहित तत्पर, न्यायी और चतुर था।

यहीं पर एक सेठ महिपाल रहता था। वह भी धनाढ्य था। उसकी सम्पत्ति 16 कोटि दीनार की थी। उसकी पत्नी गुणमाला भी गुणीव शील सम्पन्न थी। उसके सुखानन्द नामक पुत्र का जन्म हुआ। जन्म का दिन श्रेष्ठी ने बड़े उत्सव के साथ मनाया। पुत्र हुआ, दिन-दिन वह बढ़ने लगा। थोड़े ही दिन में वह सब विद्याओं में पारंगत हुआ। विद्यापूर्ण होने पर घर वापस आया। इस नगरी के पश्चिम में उज्जयिनी नामक नगर था। वहाँ नगर श्रेष्ठी महिदत्त, उसकी शीलवती पत्नी श्रीमती, उसकी लड़की मनोरमा थी। वह बहुत सुन्दर तथा गुणवान थी। आठवें वर्ष उसे आर्यिका के

पास पढ़ने भेजा। थोड़े ही दिन में उसने सब विद्याएँ सीख ली। मनोरमा 16 वर्ष की हो गई तो उसके पिताजी को शादी की चिन्ता हुई। श्रेष्ठी ने ब्राह्मण को एक हार दिया और कहा- जो इस हार की कीमत द्वादश कोटि कहे उसके गले में हार डालना, वही मेरी लड़की का पति होगा।

ब्राह्मण हार लेकर निकला। वह नाना देशों में गया, पर कोई भी हार का सच्चा पारखी नहीं मिला। तब ब्राह्मण हार को लेकर महीपाल के पास गया और उस हार की कीमत पूछी। उसने 12 कोटि दीनार बतायी और खजांची को कहा कि इनको जितना चाहिए उतना धन दो और हार खरीद लो। तब पुरोहित ने कहा- श्रेष्ठी मैं हार बेचने नहीं आया हूँ। जो इसकी सही कीमत बतायेगा उसके साथ हमारे श्रेष्ठी अपनी लड़की का विवाह करेंगे।

श्रेष्ठी को उसकी बात समझ में नहीं आयी। तब विप्र ने कहा कि श्रेष्ठी ने यह हार देकर मुझे भेजा है कि जो इसकी सही कीमत करेगा उसी के साथ उसकी लड़की की शादी करायी जावेगी। तब सुखानन्द को बुलाया गया और ब्राह्मण ने उसके गले में यह हार पहना दिया। महीपाल ने बड़ा भारी महोत्सव किया और ब्राह्मण को बहुत धन देकर सम्मान किया। मनोरमा की शादी शुभ मुहूर्त्त में हो गई। जब वह ससुराल जा रही थी तब उसके पिताजी ने कहा- तुझे अच्छा घर मिला है। तेरा भाग्य बहुत ही अच्छा है। इसलिए तू अपना जैन धर्म छोड़ना नहीं और तूने जो व्रत लिया है उसका पालन कर शीलव्रत का पालन करना, वही संसार में श्रेष्ठ है। ऐसा मान तू तो गुणी है। सुख से जा और आनन्द से रह, जिससे दोनों कुलों का उद्धार हो। वहाँ पर वह सुख से रहने लगी, पर उसका पति थोड़ा उदासी से रह रहा था। तब मनोरमा ने पूछा कि नाथ आप उदास क्यों है ? सुखानन्द ने कहा कि पिताजी की कमाई पर कितने दिन रहूँगा ? मुझे भी कुछ व्यापार- धन्धा करना चाहिए। घर बैठकर धन्धा होगा नहीं।

दूसरे दिन सुखानन्द पिताजी के पास गया और अपने विचार प्रकट किये। पिताजी ने कहा- हे बालक ! अपनी सम्पत्ति कम है क्या! तू आनन्द से रह और सुख भोग। पर सुखानन्द ने कहा- कोई भी कर्त्तव्य करके दिखाने से ही मेरे मन में

शान्ति मिलेगी। उद्योग के बिना जीना निरर्थक है। पिता ने विचारकर उसे परदेश जाने की आज्ञा दी और कहा- जाते समय तेरी सुख-सुविधा की सब सामग्री ले जा। धन भरपूर ले जा, जिससे तू उस पर अपना धन्धा कर सके। सुखानन्द ने निकलने की पूरी तैयारी की। निकलते हुए उसे मनोरमा ने समझाया कि स्त्री की जात बड़ी चंचल होती है, इसलिए आप उनसे दूर रहें तथा उनको माता व पुत्री समान देखना। शीलव्रत का पालन करना, इतनी ही इस दासी की विनती है। फिर वह जिन मंदिर के दर्शन कर 500 शूर सिपाहियों को लेकर हंसद्वीप को गया। व्यापार के लिए योग्य स्थान देखकर उसने व्यापार शुरू किया। इधर मनोरमा अपने 16 श्रृंगार सहित जिन मंदिर में गयी। रास्ते में राजकुमार की दृष्टि उसके ऊपर गयी। वह उसके रूप को देखकर पागल हो गया। यह सुन्दरी मुझे कैसे मिलेगी ? ऐसी उसको चिन्ता हुई। अतः उसने घर जाकर चतुर दासी को उसके पास भेजा। दासी ने मनोरमा को नाना प्रकार के भाषण से उसका मन चलायमान करना चाहा। पर मनोरमा का मन थोड़ा भी चलायमान नहीं हुआ और उल्टा दासी को चाबुक से मारकर भगा दिया। दासी राजमहल में गयी व सब समाचार राजकुमार को बता दिया। उसने कहा- यह बात मेरे वश की नहीं है। वहाँ मुझे मार भी खानी पड़ी है। इसलिए यह काम मैं नहीं कर सकती हूँ।

दासी को मनोरमा का बर्ताव अपमानजनक लगा। अपमान की सुई उसे लगी। उसने उसका बदला लेना चाहा। इसलिए वह मनोरमा की सास को कुछ-कुछ भिड़ाने लगी, जिससे उसकी सास के मन में शंका उत्पन्न हो गई। वह कहने लगी कि पति नहीं है तो भी ये इतनी सजधज के क्यों जाती है ? अब उसको पूरा संशय होने लगा और दासी उसमें तेल डालने लगी। अब उसमें आग लगने की देर क्या थी? सास ने दासी की बात मान ली। मनोरमा को बुलाया और उसे कहा- तुम अब इतनी सज कर क्यों जाती हो और श्रेष्ठी से नमक मिर्ची लगाकर कहा कि मनोरमा को घरसे बाहर निकालना चाहिए। तब ससुर ने रथ सजाकर मनोरमा को ले जाने हेतु सारथी से कहा और सब बात समझा दी। सारथी मनोरमा को लेकर जंगल में गया। मनोरमा से कहा- हे! बहिन तुम यहीं रुको। मुझे यहीं छोड़ने को कहा है। आपके ऊपर चरित्र

भ्रष्ट होने का आरोप लगाया है।

मनोरमा ने कहा- मुझे इस संसार में दो ही जगह है। एक तो पतिगृह दूसरा पितृगह। पति के घर से बाहर निकाला है इसलिए अब मुझे पितृगृह छोड़ें। सारथी को दया आ गई इसलिए वह उसे उज्जयिनी लाया और महीपाल को खबर दी। महीपाल को संशय हुआ कि क्यों घर से निकली है। जब उसे सब बात मालुम हुई तो अपने यहाँ उसने उसे आश्रय नहीं दिया। तब सारथी उसे वापस जंगल में ले गया। उसने उसे भयानक जंगल मे छोड़ा। उसकी आँखों में आँसू आ गये। उसने कहा- बहिन ! तुम व्यर्थ शोक मत करो। वह बोली- मेरे कर्म ही उदय में आये है, कुछ उपाय नहीं। यह सब मुझे भोगना ही पड़ेगा। आप अब जाएँ।

एक दिन वहाँ राजगृह का युवराज वन क्रीड़ा के लिए आया। उसकी दृष्टि मनोरमा पर पड़ी, उसका सौन्दर्य देखकर वह पागल हो गया। उसने मनोरमा को जबरदस्ती उठाकर रथ में बिठा दिया और अपने घर ले आया। अपने पर संकट आया जानकर उसने अन्न-पानी का त्याग कर दिया। वह विचार करने लगी कि यह मेरे कर्मों का दोष है और मन में पंचपरमेष्ठी का ध्यान और चिंतन करने लगी। इधर इन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ। उसने अवधि ज्ञान लगाया और जान लिया मनोरमा पर संकट है, उसके शील की रक्षा करनी है। यदि उसकी रक्षा नहीं हुई तो वह अपने प्राण त्याग देगी और शील की कीमत संसार में नहीं रहेगी। इसलिए एक देव से कहा कि उसकी रक्षा के लिए तुम जाओ। तब इन्द्र की आज्ञा से देव ने ब्राह्मण का रूप बनाया तथा मनोरमा जिस महल में थी उस महल में गया और उसकी रक्षा के लिए दरवाजे पर खड़ा रहा इतने में राजकुमार वहाँ आया। वह महल के अन्दर जाने लगा तो उस ब्राह्मण ने उसे जाने नहीं दिया। कुमार को गुस्सा आया। दोनों के बीच में वहाँ झगड़ा हुआ। ब्राह्मण ने उसे उठाकर जमीन पर फेंक दिया और उसके हाथ पैर बाँधकर चाबुक से मारा तब उसका विलाप सुनकर गाँव के सब लोग एकत्रित हो गये।

मारने वाला किसी को दिखाई नहीं दिया, पर राजकुमार को कोई मार ही रहा था। अन्त में ब्राह्मण ने कहा- कुमार जाओ, मनोरमा से माफी माँगो। यदि उसने माफ

कर दिया तो तुम मुक्त हो जाओगे। तब वह राजकुमार मनोरमा के पास गया और माफी माँगने लगा। मनोरमा सोचने लगी कि ऐसा क्यों हुआ ? शायद धर्म ने ही सहायता की होगी इसके सिवाय मेरा कौन होगा। उसने कुमार को माफ किया और ब्राह्मण से कहा- इसे मुक्त कर दो। देव ने अपना सच्चा रूप प्रकट कर, नम्रतापूर्वक अभिवादन किया और बोला- देवी ! तुम्हारे जैसी पतिव्रता नारी और कोई नहीं है। इन्द्र की आज्ञा से मैं आपकी रक्षा के लिए आया हूँ। अब आप जरा भी चिन्ता न करें। आज से आपकी रक्षा का भार मेरे ऊपर है। इतना कहकर वह चला गया। फिर राजकुमार ने उसे रथ में बैठाकर वन में छोड़ दिया। वन में आकर वह णमोकर मंत्र का जाप करने लगी।

ऐसे कई दिन निकल गये तब एक दिन काशी देश से बनारस के प्रवासी प्रवास करते-करते इस वन में आये। मनोरमा को देखकर उससे पूछा- बाला तू कौन है और किसकी पुत्री है और इस वन में अकेली कैसे आयी है ?

मनोरमा ने अपनी कहानी बतायी। तब धनदत्त ने कहा- मैं तेरा मामा धनदत्त हूँ, अब तुम हमारे घर चलो। ऐसा कहकर अपने घर ले गये। वहाँ वह अपना समय धर्म-ध्यानपूर्वक बिताने लगा। सुखानंद ने नगर में आते ही नौकर को घर भेजकर हाल मालूम किया। नौकर ने आकर सारी हकीकत श्रेष्ठी को कह सुनाई। यह सुनकर उसके मन पर भारी आघात हुआ। उसने सबको घर जाने की आज्ञा दी व स्वत: मनोरमा की खोज करने को अकेला ही चल पड़ा। घूमता-घूमता वह वाराणसी आया। उधर मामा के घर मनोरमा से भेंट हुई। पति के आने से मनोरमा को आनन्द हुआ। इस प्रकार सुख से कई दिन निकल गये तब वह मनोरमा से कहने लगा- चलो अब हम अपने घर जायेंगे, यहाँ कितने दिन रहेंगे। तब मनोरमा ने कहा- मेरे ऊपर ससुर ने शीलभंग का दोष लगाया है और मुझे घर से बाहर निकाला है। वह दोष दूर नहीं होगा तब तक मैं घर कैसे जा सकती हूँ। उसकी यह बात सुनकर वह भी वहीं रहने लगा।

राजा ने महीपाल को बुलाया और उससे कहा कि सही बात क्या है वह मुझे बताओ, यदि नहीं बताया तो तुम्हें सजा होगी। तब महीपाल ने कहा- मुझे तो पूरी

बात मालूम नहीं है, पर आपकी दासी के कहने पर उसकी सास ने मनोरमा पर आरोप लगाकर घर से निकाल दिया है। तब राजा ने दासी को बुलाया और कहा कि सच्ची बात क्या हुई है उसे बताओ। दासी घबरा गयी कि यदि सच बताती हूँ तो राजकुमार की मुसीबत होगी। वह ऐसा सोच ही रही थी कि राजा ने कहा- सच बताओ नहीं तो तुम्हें सूली पर चढ़ाऊँगा। मरने के भय से दासी ने सच्ची बात राजा को बता दी। वह बात सुनकर राजा व महीपाल को आश्चर्य हुआ। राजा ने राजकुमार को बुलाकर उसको राज्य से बाहर निकाल दिया। महीपाल भी आकर अपनी पत्नी से बोला कि तेरे कहने पर मैंने निर्दोष मनोरमा को घर से बाहर निकाल दिया है। महीपाल बहुत विलाप करने लगा और कहने लगा- यदि मैंने मनोरमा को नहीं ढूँढा तो राजा मुझे दण्ड दिये बिना नहीं रहेगा। ऐसा कहकर वह देश-विदेशों में ढूँढने निकला। घूमते-घूमते वह बनारस में आया और धनदत्त के घर उसकी मनोरमा से भेंट हुई। सुख-दु:ख की बातचीत करके महीपाल ने अपनी गलती की माफी माँगी व उसको घर चलने की विनती की। तब मनोरमा ने कहा- मुझ पर कलंक लगा है, जब तब वह दूर नहीं होगा तब तक मैं अपने घर की एक भी सीढ़ी नहीं चढूँगी। हाँ मैं आपके साथ आऊँगी पर गाँव के बाहर रहूँगी। राजा को उसके आने की बात मालूम हुई। उसके कहे अनुसार राजा ने न्याय करने का निश्चय किया और दरबार में बुलाया। देवों को भी अवधिज्ञान से यह बात मालूम हुई, जिससे उन्होंने सोचा कि यदि इस समय शील का माहात्म्य नहीं बताया तो लोगों को इसका महत्व ज्ञात नहीं होगा।

उन्होंने नगर के बाहर के दरवाजे बंद किये, वह दरवाजा किसी से भी नहीं खुले यह बात नगर के अन्दर-बाहर सब जगह फैल गई। इतना ही नहीं यह बात राजा के कान में भी गयी। दरवाजे खोलने के लिए सबने बहुत प्रयत्न किये, पर सब व्यर्थ गये। राजा को बड़ी चिन्ता हुई। राजा ने अन्न-पानी त्याग किया। सारी जनता चिन्ताग्रस्त थी। दो दिन निकल गये फिर राजा को स्वप्न में आकर देव ने कहा- राजन् ! जो कोई स्त्री पतिव्रता होगी उसके अँगूठे के स्पर्श मात्र से दरवाजा खुलेगा, नहीं तो कितना भी प्रयत्न किया जाये व्यर्थ जायेगा। दूसरे दिन राजा ने पूरे राज्य में कहलवा दिया। हजारों स्त्रियाँ दरवाजे खोलने के लिए गयी, सब व्यर्थ गया। अन्त

में मनोरमा का नम्बर आया। उसके स्पर्श से ही दरवाजे खुल गये।

स्वर्ग के देवों ने उसका जय-जयकार किया व पुष्पवृष्टि की और उसके शील के गीत गाये। इस प्रकार मनोरमा अपने दोषों को दूर कर ससुर के घर गयी।

शील का उत्तम रीति से पालन करना चाहिए। इसी से जीव का कल्याण है। शीलव्रत का पालन मोक्ष है।

32. सुगन्धदशमी व्रत कथा

वीतराग के पद प्रणमि, प्रणमि जिनेश्वर दान।
कथा सुगन्ध दशमीं तनी, कहूँ परम सुखदान।।

जम्बूद्वीप के विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में शिव मंदिर नाम का एक नगर है। वहाँ का राजा प्रियंकर और रानी मनोरमा थी। वे अपने धन-यौवन आदि के ऐश्वर्य में मदोन्मत्त हुए जीवन के दिन पूरे करते थे। धर्म किसे कहते हैं, वह उन्हें मालूम भी न था।

एक समय सुगुप्त नाम के मुनिराज कृश शरीर दिगम्बर मुद्रायुक्त आहार के निमित्त बस्ती में आये। उन्हें देखकर रानी ने अत्यंत घृणापूर्वक उनकी निन्दा की और पान की पीक मुनि पर थूक दी। सो मुनि तो अन्तराय होने के कारण बिना ही आहार लिये पीछे वन में चल गये और कर्मों की विचित्रता पर विचार कर समभाव धारण कर ध्यान में निमग्न हो गये।

परन्तु थोड़े दिन पश्चात् रानी मरकर गधी हुई, फिर सूकरी हुई, कूकरी हुई, वहाँ से मरकर मगध देश के बंसततिलक नगर में विजयसेन राजा की रानी चित्रलेखा की दुर्गन्धा नाम की कन्या हुई। सो इसके शरीर से अत्यन्त दुर्गन्ध निकला करती थी।

एक समय राजा अपनी सभा में बैठा था कि धनपाल ने आकर समाचार दिया कि हे राजन् ! आपके नगर के वन में सागरसेन नाम के मुनिराज चतुर्विध संघ सहित पधारे हैं। यह समाचार सुनकर राजा प्रजा सहित वन्दना को गया और भक्तिपूर्वक नतमस्तक हो राजा ने स्तुति वंदना की। पश्चात् मुनि तथा श्रावक धर्मों के उपदेश

सुनकर सबने यथाशक्ति व्रतादिक लिये। किसी ने केवल सम्यक्त्व ही अंगीकार किया। इस प्रकार उपदेश सुनने के अनन्तर राजा ने नम्रतापूर्वक पूछा-

हे मुनिराज ! यह मेरी कन्या दुर्गन्धा किस पाप के उदय से ऐसी हुई है, सो कृपाकर कहिये। तब श्रीगुरु ने उसके पूर्व भवों का समस्त वृत्तांत मुनि की निन्दादिका कह सुनाया, जिसको सुनकर राजा और कन्या सभी को पश्चात्ताप हुआ। निदान राजा ने पूछा- प्रभो ! इस पाप से छूटने का कौन सा उपाय है ? तब श्रीगुरु ने कहा-

समस्त धर्मों का मूल सम्यग्दर्शन है, सो अर्हन्तदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और जिनभाषित धर्म में श्रद्धा करके उनके सिवाय अन्य रागी-द्वेषी देव-भेषी गुरु, हिंसामय धर्म का परित्याग कर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह प्रमाण इन पाँच व्रतों को अंगीकार करें और सुगन्ध दशमी का व्रत पालन करें, जिससे अशुभ कर्म का क्षय होवे।

इस व्रत की विधि इस प्रकार है कि भादो सुदी दशमी के दिन चारों प्रकार के आहारों का त्यागकर समस्त गृहारम्भ का त्याग करें और परिग्रह का भी प्रमाण कर जिनालय में जाकर श्री जिनेन्द्र की भाव सहित अभिषेक पूर्वक पूजा करें, सामायिक स्वाध्याय करें। धर्मकथा के सिवाय अन्य विकथाओं का त्याग करें। रात्रि में भजनपूर्वक जागरण करें पश्चात् दूसरे दिन चौबीस तीर्थंकरों की अभिषेकपूर्वक पूजा करके अतिथियों (मुनि व श्रावक) को भोजन कराकर आप पारणा करें। चारों प्रकार दान देवें। इस प्रकार दस वर्ष तक यह व्रत पालन कर पश्चात् उद्यापन करें।

अर्थात् चमर, छत्र, घण्टा, झारी, ध्वजा आदि दस-दस उपकरण जिन मंदिरों में भेंट देवें और दस प्रकार के श्रीफल आदि फल दस घर के श्रावकों को बाँटें। यदि उद्यापन की शक्ति न होवे तो दूना व्रत करें।

उत्तम व्रत उपवास करने से, मध्यम काँजी आहार और जघन्य एकासन करने से होता है।

इस प्रकार राजा प्रजा सबने व्रत की विधि सुनकर अनुमोदना की और स्वस्थान को गये। दुर्गन्धा कन्या ने मन, वचन, काय से सम्यक्त्वपूर्वक व्रत को

पालन किया। एक समय दसवें तीर्थंकर श्री शीतलनाथ भगवान के कल्याण के समय देव तथा इन्द्रों का आगमन देखकर उस दुर्गन्धा कन्या ने निदान किया कि मेरा जन्म स्वर्ग में होवे, सो निदान के प्रभाव से यह राजकन्या स्वर्ग में अप्सरा हुई और उसका पिता राजा मरकर दसवें स्वर्ग में देव हुआ।

वह दुर्गन्धा कन्या अप्सरा के भव से आकर मगध देश के पृथ्वीतिलक नगर में राजा महिपाल की रानी मदनसुन्दरी के मदनावती नाम की कन्या हुई, सो अत्यन्त रूपवान और सुगंधित शरीर हुई। कौशाम्बी नगरी के राजा अरिदमन के पुत्र पुरुषोत्तम के साथ इस मदनावती का ब्याह हुआ। इस प्रकार वे दम्पत्ति सुखपूर्वक कालक्षेप करने लगे।

एक समय वन में सुगुप्ताचार्य नाम के आचार्य संघ सहित आये, सो वह राजकुमार पुरुषोत्तम अपनी स्त्री सहित वंदना को गया तथा और भी नगर के लोग वंदना को गये। स्तुति नमस्कार आदि करके अनन्तर श्रीगुरु के मुख से जीवादि तत्वों का उपदेश सुना। पश्चात् पुरुषोत्तम ने कहा- हे स्वामी ! मेरी यह मदनावती स्त्री किस कारण से ऐसी रूपवान और अति सुगन्धित शरीर है ? तब श्रीगुरु ने मदनावती के पूर्व भवांतर कहे और सुगन्धदशमी के व्रत का महात्म्य बताया तो पुरुषोत्तम और मदनावती दोनों अपने भवांतर की कथा सुनकर संसार देहीभोगों से विरक्त हो दीक्षा लेकर तपश्चरण करने लगे।

इस प्रकार तपश्चरण के प्रभाव से मदनावती स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें स्वर्ग में देव हुई। वहाँ बाईस सागर सुख से आयु पूर्ण करके अन्त समय चयकर मगध देश के वसुन्धरा नगरी में मकरकेतु राजा के यहाँ देवी पट्टरानी के कनककेतु नाम का सुन्दर गुणवान पुत्र हुआ।

पिता के दीक्षा ले लेने पर कितने काल राज्य करके वह भी अपने मकरध्वज पुत्र को राज्य दे दीक्षा लेकर तत्पःश्चरण करके और देश-विदेशों में विहार करके अनेक जीवों को धर्म के मार्ग में लगाने लगे। इस प्रकार कितने काल कनककेतु मुनिनाथ को केवलज्ञान हुआ और बहुत काल तक उपदेश रूपी अमृत की वृष्टि

करके शेष अघाति कर्मों का नाश कर परमपद मोक्ष को प्राप्त हुए।

इस प्रकार सुगन्ध दशमी का व्रत पालकर दुर्गन्धा भी अनुक्रम से मोक्ष को प्राप्त हुई। भव्य यह व्रत पाले तो अवश्य ही उत्तमोत्तम सुखों को पावेंगे।

सुगन्ध दशमी व्रत कियो, दुर्गन्धा ने सार।
सुर-नर के सुख भोग के, अनुक्रम गई भवपार।।

33. सोलहकारण व्रत कथा

षोडशकारण भावना, जो भाई चित्त धार।
कर तिन पद की वन्दना, कहूँ कथा सुखकार।।

जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्र के मगध (बिहार) प्रांत में राजगृही नगर है। वहाँ के राजा हेमप्रभु और रानी विजयावती थी। इस राजा के यहाँ महाशर्मा नामक नौकर था और उसकी स्त्री का नाम प्रियंवदा था। इस प्रियंवदा के गर्भ से कालभैरवी नामक एक अत्यन्त कुरूपी कन्या उत्पन्न हुई, जिसे देखकर माता-पितादि स्वजनों तक को भी घृणा होती थी।

एक दिन मतिसागर नामक चारणमुनि आकाश मार्ग से गमन करते हुए उसी नगर में आये, तो उस महाशर्मा ने अत्यंत भक्ति सहित मुनिश्री को पड़गाहकर विधिपूर्वक आहार दिया और उसने धर्मोपदेश सुना। पश्चात् युगल कर जोड़कर विनययुक्त हो पूछा- हे नाथ ! यह मेरी काल भैरवी नाम की कन्या किस पापकर्म के उदय से ऐसी कुरूपी और कुलक्षणी उत्पन्न हुई, सो कृपाकर कहिये ? तब अविधिज्ञान के धारी श्री मुनिराज कहने लगे- वत्स ! सुनो- उज्जैन नगरी में एक महिपाल नाम का राजा और उसकी वेगावती नाम की रानी थी। इस रानी से विशालाक्षी नाम की एक अत्यंत सुन्दर रूपवान कन्या थी, जो कि बहुत रूपवान होने के कारण बहुत अभिमानी थी और इसी रूप के मद में उसने एक भी सद्गुण न सीखा। अहंकारी (मानी) नरों को विद्या नहीं आती है।

एक दिन वह कन्या अपनी चित्रसारी में बैठी हुई दर्पण में अपना मुख देख रही

थी कि इतने में ज्ञानसूर्य नाम के महातपस्वी श्री मुनिराज उसके घर से आहार लेकर बाहर निकले। इस अज्ञानी कन्या ने रूप के मद से मुनि को देखकर खिड़की से उनके ऊपर थूक दिया और बहुत हर्षित हुई।

परन्तु पृथ्वी के समान क्षमावान श्री मुनिराज तो अपनी नीची दृष्टि किये हुए ही चले गये। यह देखकर राजपुरोहित इस कन्या का उन्मत्तपना देख उस पर बहुत क्रोधित हुआ और तुरन्त ही प्रासुक जल से श्री मुनिराज का शरीर प्रक्षालन करके बहुत भक्ति से वैयावृत्य कर स्तुति की। यह देखकर वह कन्या बहुत लज्जित हुई और अपने किये हुए नीच कृत्य पर पश्चाताप करके मुनिश्री के पास गई और नमस्कार करके अपने अपराध की क्षमा माँगी। श्री मुनिराज ने उसको धर्मलाभ कहकर उपदेश दिया। पश्चाताप वह कन्या वहाँ से मरकर तेरे घर यह काल भैरवी नाम की कन्या हुई है। इसने पूर्वजन्म में मुनि की निन्दा व उपसर्ग करके जो घोर पाप किया है उसी के फल से यह ऐसी कुरूपा है, क्योंकि पूर्व संचित कर्मों का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं होता है। इसलिए अब इसे समभावों से भोगना और आगे को ऐसे कर्म न बंधे ऐसा समीचीन उपाय करना योग्य है। अब पुनः वह महाशर्मा बोला- हे प्रभो ! आप ही कृपाकर कोई ऐसा उपाय बताईये कि जिससे यह कन्या इस दुःख से छूटकर सम्यक् सुखों को प्राप्त होवे।

तब श्री मुनिराज बोले- वत्स ! सुनो- संसार में मनुष्यों के लिये कोई भी कार्य असाध्य नहीं है, सो भला यह कितना सा दुःख है ? जिनधर्म के सेवन से तो अनादिकाल से लगे हुए जन्म-मरणादि दुःख भी छूटकर सच्चे मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है और दुःखों से छूटने की तो बात ही क्या है ? वे तो सहज ही में छूट जाते हैं। इसलिये यदि यह कन्या षोडशकारण भावना भावे और व्रत पाले। तो अल्पकाल में ही स्त्रीलिंग छेदकर मोक्ष-सुख को पावेगी। तब वह महाशर्मा बोला हे स्वामी ! इस व्रत की कौन-कौन भावनाएँ हैं और विधि क्या है ? सो कृपाकर कहिये। तब मुनिराज ने इन जिज्ञासुओं को निम्न प्रकार षोडशकारण व्रत का स्वरूप और विधि बताई।

(1) संसार में जीव का शत्रु मिथ्यात्व और मित्र सम्यक्त्व है। इसलिये मनुष्य

का कर्तव्य है कि सबसे प्रथम मिथ्यात्व (अतत्त्व श्रद्धान या विपरीत श्रद्धान) को वमन (त्याग) करके सम्यक्त्व रूपी अमृत का पान करें। सत्यार्थ (जिन) देव, सच्चे (निर्ग्रन्थ) गुरु और सच्चे (जिनभाषित) धर्म पर श्रद्धा (विश्वास) लावें। पश्चात् सप्त तत्त्वों तथा पुण्यपाप का स्वरूप जानकर इनकी श्रद्धा करके अपनी आत्मा को पर पदार्थों से भिन्न अनुभव करें और इनके सिवाय अन्य मिथ्या देव, गुरु व धर्म को दूर ही से इस प्रकार छोड़ दें जैसे तोता अवसर पाकर पिंजरे से निकल भागता है। ऐसे सम्यक्त्वी पुरुषों के प्रशम (मंद कषाय स्वरूप समभाव अर्थात् सुख व दुःख में समुद्र सरीखा गंभीर रहना, घबराना नहीं), संवेग (धर्मानुराग सांसारिक विषयों से विरक्त हो धर्म और धर्मयत्नों से बढ़ाना) अनुकंपा (करुणा दुःखी जीवों पर दयाभाव करके उनकी यथाशक्ति सहायता करना) और आस्तिक्य (श्रद्धा-कैसा भी अवसर क्यों न आवें, तो भी अपने निर्णय किये हुए सन्मार्ग में दृढ़ रहना) ये चार गुण प्रकट हो जाते हैं। उन्हें किसी प्रकार का भय व चिंता व्याकुल नहीं कर सकती। वे धीर-वीर सदा प्रसन्नचित्त ही रहते हैं। कभी किसी चीज की उन्हें प्रबल इच्छा नहीं होती। चाहे वे चारित्रमोह कर्म के उदय से व्रत न भी ग्रहण कर सकें तो भी व्रत और व्रती संयमीजनों में उनकी श्रद्धा, भक्ति व सहानुभूति अवश्य रहती है, जो मोक्षमार्ग की प्रथम सोपान (सीढ़ी) है। इसलिये इसे ही 25 मल दोषों से रहित और अष्ट अंग सहित धारण करो। इसके बिना ज्ञान और चारित्र सब निष्फल (मिथ्या) है, यही दर्शनविशुद्धि नाम की प्रथम भावना है।

(2) जीव (मनुष्य) जो संसार में सबकी दृष्टि से उतर जाता है, उसका प्रधान कारण केवल अहंकार (मान) है। सो कदाचित् वह अपनी समझ में भले ही अपने आपको बड़ा माने परन्तु क्या कौआ मन्दिर के शिखर पर बैठ जाने से गरुड़ पक्षी हो सकता है ? कभी नहीं। किन्तु सर्व ही प्राणी उससे घृणा ही करते हैं और कदाचित् उसके पूर्व पुण्योदय से उसे कोई कुछ न भी कह सकें तो भी वह किसी के मन को बदल नहीं सकता है। सत्य है-जो ऊपर को देखकर चलता है वह अवश्य ही नीचे गिरता है। ऐसे मानी पुरुष को कभी कोई विद्या सिद्ध नहीं होती है, क्योंकि विद्या विनय से आती है। मानी पुरुष चित्त में सदा खेदित रहता है, क्योंकि वह सदा सबसे

सम्मान चाहता है और ऐसा होना असंभव है। इसलिये निरन्तर सबको अपने से बड़ों में सदा विनय, समान (बराबरी वाले) पुरुषों में प्रेम और छोटों में करुणाभाव से प्रवर्तना चाहिये। सदैव अपने दोषों को स्वीकार करने के लिये सावधानी पूर्वक तत्पर रहना चाहिये और दोष बताने वाले सज्जन का उपकार मानना चाहिये। क्योंकि जो मानी पुरुष अपने दोषों को स्वीकार नहीं करता उनके दोष निरन्तर बढ़ते ही जाते हैं और इसलिये वह कभी उनसे मुक्त नहीं हो सकता। इसलिये दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और उपचार इन पाँच प्रकार की विनयों का वास्तविक स्वरूप विचार कर विनयपूर्वक प्रवर्तन करना, सो विनय-सम्पन्नता नाम की दूसरी भावना है।

(3) बिना मर्यादा अर्थात् प्रतिज्ञा के मन वश नहीं होता जैसा कि बिना लगाम (बाग, रास) के घोड़ा या बिना अंकुश के हाथी, इसलिये आवश्यक है कि मन व इन्द्रियों को वश करने के लिये प्रतिज्ञा रूपी अंकुश पास में रखना चाहिये तथा अहिंसा (किसी भी जीव का अथवा अपने भी द्रव्य तथा भाव प्राणों का घात न करना अर्थात् उन्हें न सताना), सत्य (यथार्थ वचन बोलना, जो किसी को भी पीड़ाजनक न हों), अचौर्य (बिना दिये हुये परवस्तु का ग्रहण न करना), ब्रह्मचर्य (स्त्रीमात्र का अथवा स्वदार बिना अन्य स्त्रियों के साथ विषय मैथुन सेवन का त्याग) और स्व-पर आत्माओं का विषय कषाय उत्पन्न कराने वाले बाह्य आभ्यन्तर परिग्रहों का त्याग या प्रमाण (सम्पूर्ण परिग्रहों का त्याग या अपनी योग्यता या शक्ति अनुसार आवश्यक वस्तुओं का प्रमाण करके अन्य समस्त पदार्थों से ममत्वभाव त्याग करना, इसे लोभ को रोकना भी कहते है), इस प्रकार ये पाँच व्रत और इसकी रक्षार्थ सप्तशीलों (3 गुणव्रतों और 4 शिक्षाव्रतों) का पालन करे तथा उक्तशील और व्रतों के अतिचारों (दोषों) को भी बचावें। इन व्रतों के निर्दोष पालन करने से न तो राज्यदंड कभी होता है और न पंचदण्ड ही होता है और ऐसा व्रती पुरुष अपने सदाचार से सबका आदर्श बन जाता है। इसके विरुद्ध असदाचारी जनों को इस भव में और परभव में अनेक प्रकार दण्ड व दुःख सहने पड़ते हैं, ऐसा विचार करके इस व्रतों में निरन्तर दृढ़ होना चाहिये, यह शीलव्रतेष्वनतिचार भावना है।

(4) मिथ्यात्व के उदय से हिताहित का स्वरूप बिना जाने यह संसारी जीव

सदैव अपने लिये सुख प्राप्ति की इच्छा से विपरीत ही मार्ग ग्रहण कर लेता है, जिससे सुख मिलना तो दूर रहा, उल्टा दुःख का सामना करना पड़ता है। इसलिये निरन्तर ज्ञान सम्पादन करना परमावश्यक है। क्योंकि जहाँ चर्मचक्षु काम नहीं दे सकते हैं वहाँ ज्ञानचक्षु ही काम देते हैं। ज्ञानी पुरुष नेत्रहीन होने पर भी अज्ञानी आँख वालों से अच्छा है। आज्ञानी न तो लौकिक कार्यों ही में सफल होते हैं और न ही परलौकिक कुछ साधन कर सकते हैं। वे ठौर-ठौर ठगाये जाते हैं और अपमानित होते हैं। इसलिये ज्ञान उपार्जन करना आवश्यक है। ऐसा विचार करके निरन्तर विद्याभ्यास करना व कराना, सो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग नाम की भावना है।

(5) इस संसारी जीवों में से प्रत्येक जीव के विषयानुरागता इतनी बढ़ी हुई है कि कदाचित् इसको तीन लोक की समस्त सम्पत्ति भोगने को मिल जाये तो भी इसकी इच्छा के असंख्यातवें भाग की पूर्ति न हो, सो जीव संसार में अनन्तानन्त हैं और लोक के पदार्थ जितने हैं उतने ही हैं। सभी जीवों की अभिलाषा ऐसी ही बढ़ी हुई है। तब यह लोक की सामग्री किस-किस की कितने-कितने अंशों में पूर्ति कर सकती है ? अर्थात् किसी की नहीं। ऐसा विचार कर उत्तम पुरुष अपनी इन्द्रियों को विषयों से रोककर मन को धर्मध्यान में लगा देते हैं। इसी को संवेग भावना कहते हैं।

(6) जब तक मनुष्य किसी भी पदार्थ में ममत्व अर्थात् यह वस्तु मेरी है ऐसा भाव रखता है तब तक वह कभी सुखी नहीं हो सकता है, क्योंकि पदार्थों का स्वभाव नाशवान है। जो उत्पन्न हुए सो नियम से नाश होंगे और जो मिले हैं सो बिछुड़ेंगे। इसलिये इन पदार्थों को (जो इसे पूर्व पुण्योदय से प्राप्त हुए हैं) अपने आप ही छूट जाने से पहिले ही छोड़ देवें, ताकि वे (पदार्थ) उसे न छोड़ने पावें, तो निःसन्देह दुःख आने का अवसर ही न आवेगा। ऐसा विचार करके जो आहार, औषध, शास्त्र (विद्या) और अभय इन चार प्रकार के दानों को मुनि, आर्यिका, श्रावक-श्राविकाओं (चार संघों) में भक्ति से तथा दीन-दुःखी नर-पशुओं को करुणा भावों से देता है तथा अन्य यथावश्यक कार्यों (धर्मप्रभावना व परोपकार) में द्रव्य खर्च करता है उसे ही दान या शक्तितस्त्याग नाम की भावना कहते हैं।

(7) यह जीव स्व-स्वरूप भूला हुआ इस घृणित देह में ममत्व करके इसके

पोषणार्थ नाना प्रकार के पाप करता है, तो भी यह शरीर स्थिर नहीं रहता। दिनों-दिन सेवा और सम्हाल करते-करते क्षीण होता जाता है और एक दिन आयु की स्थिति पूर्ण होते ही छोड़ देता है। ऐसे नाशवन्त और घृणित शरीर में ममत्व (राग) न करके वास्तविक सच्चे सुख की प्राप्ति के अर्थ इसको लगाना (उत्सर्ग करना) चाहिये ताकिइसका जो जीव के साथ अनंतानन्त बार संयोग तथा वियोग हुआ करता है, सो फिर ऐसा वियोग हो कि फिर कभी भी संयोग न हो सके अर्थात् मोक्षपद की प्राप्ति हो जावे। इसमें यही सार है, क्योंकि स्वर्ग-नर्क या पशु पर्याय में जो सम्यक् और उत्तम तपश्चरण पूर्ण हो ही नहीं सकता है, इसलिये मनुष्य को श्रेष्ठ अवसर प्राप्त हुआ है। ऐसा समझकर अपनी शक्ति व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों का विचार करके अनशन, ऊनोदर, व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश से छः बाह्य और प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छः अभ्यन्तर, इस प्रकार बारह तपों में प्रवृत्ति करना सो सातवीं शक्तितस्तप नाम की भावना कहलाती है।

(8) जीव मात्र के कल्याण करने वाले सम्यक् धर्म की प्रवृत्ति धर्मात्माओं से होती है और धर्मात्माओं से सर्वोत्तम सम्यक् रत्नत्रय के धारी परम दिगम्बर साधु हैं। इसलिए साधु वर्गों पर आये हुए उपसर्गों को यथासंभव दूर करना सो साधु-समाधि नाम की भावना है।

(9) साधु समूह तथा अन्य साधर्मीजनों के शरीर में किसी प्रकार की रोगादिक व्याधि आ जाने से उनसे परिणामों में शिथिलता व प्रमाद आ जाना संभव है इसलिये साधर्मी साधु (साधु व गृहस्थ) जनों की भक्ति भाव से उनको दर्शन तथा चारित्र में स्थिर रखने तथा दीन-दु:खी को धर्म मार्ग में लगाकर उनके दु:ख दूर करने के लिये उनकी सेवा तथा उपचार करने को वैयावृत्यकरण भावना कहते हैं।

(10) अरिहंत भगवान के द्वारा ही मोक्षमार्ग का उपदेश मिलता है, क्योंकि वे प्रभु केवल कहते ही नहीं हैं किन्तु स्वयं मोक्ष के सन्निकट पहुँच गये हैं। इसलिये उनके गुणों में अनुराग करना, उनकी भक्तिपूर्वक पूजन, स्तवन तथा ध्यान करना सो अर्हद्भक्ति भावना है।

(11) बिना गुरु के सच्चे ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, इसलिये सच्चे निरपेक्ष और हित उपदेशक समस्त संघ के नायक दीक्षा-शिक्षादि देकर निर्दोष धर्ममार्ग पर चलने वाले आचार्य महाराज के गुणों की सराहना करना व उनमें अनुराग करना सो आचार्य भक्ति नाम की भावना है।

(12) अल्पश्रुत अर्थात् अपूर्ण आगम के जानने वाले पुरुषों के द्वारा सच्चे उपदेश की प्राप्ति होना दुर्लभ ही क्या ? असंभव ही है। इसलिये समस्त द्वादशांग के पारगामी श्री उपाध्याय महाराज की भक्ति तथा उनके गुणों में अनुराग करना सो बहुश्रुत भक्ति नाम की भावना है।

(13) सदा अर्हन्त भगवान के मुखकमल से प्रगटित मिथ्यात्व के नाश करने तथा सब जीवों के हितकारी, वस्तु स्वरूप को बताने वाला श्री जैन शास्त्रों का पठन-पाठनादि अभ्यास करना सो प्रवचन भक्ति नाम की भावना है।

(14) मन, वचन, काय की शुभाशुभ क्रियाओं को योग कहते हैं। इन ही योगों के द्वारा शुभाशुभ कर्मों का आस्रव होता है। इसलिये यदि ये आस्रव के द्वार (योग) रोक दिये जायें, तो संवर (कर्मास्रव बन्द) हो सकता है और संवर करने का उत्तमोत्तम उपाय सामायिक, प्रतिक्रमण आदि षडावश्यक है। इसलिये उन्हें नित्य प्रतिपालन करना चाहिये। पद्मासन या अर्द्ध पद्मासन से बैठकर या सीधे नीचे को हाथ करके खड़े होकर मन, वचन, काय से समस्त व्यापारों को रोक कर चित्त को एकाग्र करके एक ज्ञेय (आत्मा) में स्थिर करना सो समभाव रूप 1- सामायिक है। अपने किये हुए दोषों को स्मरण करके उन पर पश्चाताप करना और उनको मिथ्या करने के लिये प्रयत्न करना सो 2-प्रतिक्रमण है। आगे के लिये दोष न होने देने के लिये यथाशक्ति नियम करना (दोषों को त्याग करना) सो 3-प्रत्याख्यान है। तीर्थंकरादि अर्हन्त आदि पंच परमेष्ठियों तथा चौबीस तीर्थंकरों के गुण कीर्तन करना सो 4-स्तवन है। मन, वचन, काय शुद्ध करके चारों दिशाओं में चार शिरोनति और प्रत्येक दिशा में तीन-तीन आवर्त ऐसे बारह आवर्त करके अष्टांग नमस्कार करना तथा तीर्थंकरों की स्तुति करना सो 5-वंदना है और किसी समय विशेष का प्रमाण करके उतने समय तक एकासन से स्थिर रहना तथा उतने समय के भीतर शरीर से

मोह छोड़ देना, उस पर आये हुए समस्त उपसर्ग व परिषहों को समभावों से सहन करना सो 6-कायोत्सर्ग है। इस प्रकार विचार कर इन छहों आवश्यकों में जो सावधान होकर प्रवर्तन करता है। सो परम संवर का कारण आवश्यक परिहाणि नाम की भावना है।

(15) काल-दोष के अथवा उपदेश के अभाव से संसारी जीवों के द्वारा सत्य धर्म पर अनेकों आक्षेप होने के कारण उसका लोप-सा हो जाता है। धर्म लोप होने से जीव भी धर्मरहित होकर संसार में नाना प्रकार के दुःखों को प्राप्त होते हैं। इसलिये ऐसे समयों में येन-केन-प्रकारेण समस्त जीवों पर सत्य (जिन) धर्म का प्रभाव प्रगट कर देना, सो मार्गदर्शन करने शास्त्रों के प्रकाशन व प्रसारण से, शास्त्रों के अध्ययन व अध्यापन करने कराने से, विद्वानों की सभायें कराने, अपने आप सदाचरण पालने, लोकोपकारी कार्य कराने, दान देने, यात्रा संघ निकालने व विद्या मंदिरों की स्थापना तथा प्रतिष्ठादि करने, सत्य व्यवहार यथाशक्ति प्रभावनोत्पादक कर्मों की प्रवर्तना सो मार्ग प्रभावना नाम की भावना है।

(16) संसार में रहते हुए जीवों की परस्पर सहायता व उपकार की आवश्यकता रहती है, ऐसी अवस्था में यदि निष्कपट भाव से अथवा प्रेमपूर्वक सहायता न की जाये तो परस्पर यथार्थ लाभ पहुँचना दुर्लभ ही है। इतना ही नहीं किन्तु परस्पर के विरोध से अनेकानेक हानियाँ व दुःख होना संभव हैं, जैसे हो भी रहे हैं। इसलिये यह परमावश्यक कर्तव्य है कि प्राणी परस्पर (गाय का अपने बछड़े पर जैसा कि निष्कपट और प्रगाढ़ प्रेम होता है) वैसा ही निष्कपट प्रेम करें। विशेषकर साधर्मियों के संग तो कृत्रिम प्रेम कभी न करें। ऐसा विचार कर जो साधर्मियों तथा प्राणी मात्र से अपना निष्कपट व्यवहार रखते हैं उन्हें प्रवचन-वात्सल्य नाम की भावना कहते हैं।

यह 16 भावनायें यदि केवली श्रुतकेवली के पादमूल के निकट अन्तःकरण से चिन्तवन की जाये तथा तदनुसार प्रवर्तन किया जायें तो इनका फल तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव का कारण है। आचार्य महाराज इस प्रकार सोलह भावनाओं का स्वरूप कहकर अब व्रत की विधि कहते हैं- **भादो, माघ और चैत्र बदी 1 से**

आश्विन, फाल्गुन और वैशाख बदी 1 तक (1 वर्ष में तीन बार) पूरे एक मास तक यह व्रत करना चाहिये।

इन दिनों तेला, बेला आदि उपवास करें अथवा नीरस व एक, दो, तीन रस त्यागकर ऊनोदरपूर्वक अतिथि या दीन-दुःखी नर या पशुओं को भोजनादि दान देकर एक भुक्ति करें। अंजन, मंजन, वस्त्रालंकार विशेष धारण न करें। शीलव्रत (ब्रह्मचर्य) रखें नित्य षोडश कारण भावना भावें और यंत्र बनाकर पूजाभिषेक करें। त्रिकाल सामायिक करें और **(ऊँ ह्रीं दर्शन - विशुद्धि विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचार-अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग-संवेग-शक्तितस्त्याग-शक्तितस्तप-साधुसमाधि-वैयावृत्यकरण-अर्हद्भक्ति, आचार्यभक्ति-उपाध्यायभक्ति-प्रवचनभक्ति-आवश्यकापरिहाणि-मार्गप्रभावना-प्रवचनवत्सल्यादि-षोडशकारणेभ्यो नमः)।** इस महामंत्र का दिन में तीन बार (108 बार जाप) करें। इस प्रकार इस व्रत को उत्कृष्ट सोलह वर्ष, मध्यम 5 अथवा दो वर्ष और जघन्य 1 वर्ष करके यथाशक्ति उद्यापन करें अर्थात् सोलह उपकरण श्री मन्दिरजी में भेंट दें और शास्त्र व विद्यादान करें। शास्त्र भण्डार खोलें, सरस्वती मंदिर बनावें, पवित्र जिन धर्म का उपदेश करें और करावें इत्यादि। यदि द्रव्य खर्च करने की शक्ति न हो तो व्रत द्विगुणित करें। इस प्रकार ऋषिराज के मुख से व्रत की विधि सुनकर कालभैरवी नाम की उस ब्राह्मण कन्या ने षोडशकारण व्रत स्वीकार करके उत्कृष्ट रीति से पालन किया, भावना भायी और विधिपूर्वक उद्यापन किया। पीछे वह आयु के अंत में समाधिमरण द्वारा स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें (अच्युत) स्वर्ग में देव हुई।

वहाँ से बाईस सागर आयु पूर्ण कर वह देव, जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र सम्बन्धी अमरावती देश के गंधर्व नगर में राजा श्रीमंदिर की रानी महादेवी के सीमन्धर नाम का तीर्थंकर पुत्र हुआ, जिसने योग्य अवस्था को प्राप्त कर राज्योचित सुख भोग जिनवरी दीक्षा ली और घोर तपश्चरण कर केवलज्ञान प्राप्त करके बहुत जीवों को धर्मोपदेश दिया तथा आयु के अन्त में समस्त अघाति कर्मों का भी नाश कर निर्वाण पद प्राप्त किया।

इस प्रकार इस व्रत को धारण करने से कालभैरवी नाम की ब्राह्मण कन्या से सुर नर भवों के सुखों को भोगकर अक्षय अविनाशी स्वाधीन मोक्ष सुख प्राप्त कर लिया। तो जो अन्य भव्यजीव इस व्रत को पालन करेंगे उनको भी अवश्य ही उत्तम फल वह प्राप्ति होवेगी।

षोडशकारण व्रत धरो, कालभैरवी सार।
सुरनर के सुख 'दीप' लह, लहो मोक्ष अधिकार।।1।।

34. त्रिकाल तृतीया व्रत कथा

इस भरत क्षेत्र के मगध देश में कांची नगर है। वहाँ पिंगल नाम का एक गुणवान नीतिवान् पराक्रमी राजा राज्य करता था। उस राजा की सागरलोचना नाम की अत्यंत रूपवती, लावण्यवती, गुणवती पट्टरानी थी। उसके एक सुमंगल नाम का बड़ा प्रतापी राजकुमार था। इस प्रकार प्रजाजनों का पालन करता हुआ राजेश्वर्य भोगता था।

एक दिन युवराज सुमंगल नगर के बाहर उद्यान में गया। वहाँ पूर्णसागर नाम के मुनिराज अवधिज्ञान समन्वित पधारे। युवराज ने मुनिराज को देखते ही तीन प्रदक्षिणा लगाई और साष्टांग नमस्कार किया। धर्मोपदेश सुनने के बाद कहने लगा कि हे मुनिराज ! आपकी अत्यंत मोहक मुद्रा को देखकर मन में आपके प्रति मेरा मोह उत्पन्न हो रहा है, इसका कारण क्या है आप कहिये ? तब मुनिराज ने अपने अवधिज्ञान से सब वृत्तांत जानकर कहने लगे कि हे राजपुत्र ! हमसे तुम्हारा मोह क्यों उत्पन्न हो रहा है मैं सब भव प्रपंच कहता हूँ, सुनो। करुजांगल देश में हस्तिनापुर नाम का नगर है, उसमें कामुक नाम का एक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम कमललोचना था। उसके विशाखादत्त नाम का सुन्दर पुत्र था। राजा का वरदत्त मंत्री था जो बहुत होशियार था। मंत्री की पत्नी का नाम विशालनेत्री था। उसके गर्भ से विजयसुन्दरी नामक गुणवान सुन्दर पुत्री का जन्म हुआ। इन सबके साथ राजा अपना राज्य सुख आनन्द से भोगता था। उस मंत्री की कन्या विवाह के योग्य हो गई तब राजा के पुत्र विशाखादत्त के साथ विवाह कर दिया। दोनों ही आनन्द से अपना समय

निकालने लगे। कुछ समय बाद कर्मयोग से राजपुत्र को रोग ने घेर लिया और वह मर गया।

सबको बहुत दुःख हुआ। एक दिन ज्ञानसागर नाम के महामुनीश्वर आहार के लिए राजभवन में आये। राजा ने भक्ति से मुनिराज को आहार दिया। मुनिराज से हाथ जोड़कर विनय से राजा ने राजपुत्र के मर जाने की दुःखवार्ता कह सुनाई। मुनिराज राजा को सद्बोध देकर जंगल में वापस चले गये। विजयसुन्दरी पति के वियोग से अत्यंत शोकाकुल रहने लगी। एक दिन शांतिमति नाम की एक विदुषी आर्यिका राजभवन में आई। रानी ने माताजी को निरंतराय आहार दिया। उन आर्यिका माताजी ने राजकुमार के वियोगजनित होने वाले दुःख से दुःखी राज्य परिवार को उद्बोधन देकर शांत किया। राजकुमार की पत्नी को पास बुलाकर सांत्वना दिया और कहने लगी कि हे बेटी ! दुःख करने से कुछ काम नहीं चलेगा। दुःख निवारण के लिए अब तुम त्रिकाल तृतीया व्रत करो। इस व्रत का पालन करने से सब दुःखों का निवारण होता है।

ऐसा कहकर माताजी ने व्रत की विधि बतलाई। आर्यिका माताजी के मुख से सर्व व्रत विधि सुनकर विजयसुन्दरी का बहुत समाधान हुआ और उसने भक्तिपूर्वक व्रत को ग्रहण किया और व्रत का पालन करने लगी। व्रत समाप्त होने पर उद्यापन किया तथा अन्त में मरकर स्त्रीलिंग का छेद करती हुई सोलहवें स्वर्ग में देव हुई। आयुष्य समाप्त होने के बाद कांची नगर के पिंगल नामक राजा के यहाँ तुम सुमंगल होकर उत्पन्न हुए हो और मैं वही शांतिमति आर्यिका का जीव हूँ। तुमको मैंने व्रत प्रदान कर संबंध जोड़ा था। मैं मरकर देव हुआ, और वहाँ से मनुष्य होकर मुनि हुआ हूँ। इस प्रकार तुम्हारा और हमारा पूर्व भव का संबंध है। इसलिए तुमको मेरे पर मोह उत्पन्न हुआ है। तुम इसी भव से मोक्ष जाने वाले हो। यह सब सुनकर युवराज ने शीघ्र ही श्रावक व्रत ग्रहण किया और पुनः अपने नगर में वापस आ गया। एक समय कमल के अन्दर मरे हुए भ्रमर को देखकर युवराज को वैराग्य उत्पन्न हुआ। जंगल में जाकर मुनिश्वर के पास जिनदीक्षा ग्रहण की और घोर तपश्चरण की शक्ति से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ तथा अघातिया कर्मों का भी क्षय करके शाश्वत सुख को प्राप्त किया।

35. त्रिलोकतीज व्रत कथा

वन्दों श्री जिनदेव पद, वन्दूँ गुरु चरणार।
वन्दूँ माता सरस्वती, कथा कहूँ हितकार।।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र सम्बन्धी कुरुजांगल देश में हस्तिनापुर नामक एक अतिरमणीक नगर है। वहाँ के राजा कामदुक और रानी कमललोचना थी और उनके विशाखदत्त नाम का पुत्र था। उस राजा के वरदत्त नाम का एक मंत्री था, जिसकी विशालाक्षी पत्नी से विजय सुन्दरी नामक एक बहुत सुन्दर कन्या थी। उसका पाणिग्रहण राजपुत्र विशाखदत्त से किया था। कुछ दिन बात राजा कामदुक की मृत्यु होने पर युवराज विशाखदत्त राजा हुआ। एक दिन राजा अपने पिता के वियोग से व्याकुल हो उदास बैठा था कि उसी समय उस ओर विहार करते हुए श्री ज्ञानसागर नाम के मुनिवर पधारे। राजा ने उनको भक्तिपूर्वक नमस्कार करके उच्चासन दिया, तब मुनिश्री ने धर्मवृद्धि कह आशीष दिया और इस प्रकार संबोधन करने लगे- राजा ! सुनो, यह काल (मृत्यु), सुर (देव), नर, पशु आदि किसी को भी नहीं छोड़ता है। संसार में जो उत्पन्न होता है सो नियम से नष्ट होता है। ऐसी विनाशवान वस्तु के संयोग-वियोग में हर्ष-विषाद ही क्या ? यह तो पक्षियों के समान रैन (रात्रि) बसेरा है। जहाज में देश-देशांतर के अनेक लोग आ मिलते हैं, परन्तु अवधि पूरी होने पर सब अपने-अपने देश को चले जाते हैं। इसी प्रकार ये जीव एक कुल (वंश-परिवार) में अनेक गतियों से आकर एकत्रित होते हैं और अपनी-अपनी आयु पूर्ण कर संचित कर्मानुसार यथायोग्य गतियों में चले जाते हैं। किसी की यह सामर्थ्य नहीं कि क्षणमात्र भी आयु को बढ़ा सके। यदि ऐसा हो तो बड़े-बड़े तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि पुरुषों को कोई क्यों मरने देता ? मृत्यु से यद्यपि वियोगजनित दुःख अवश्य ही मोह के वश मालूम होता है, तथापि उपकार भी बहुत होता है। यदि मृत्यु नहीं होती तो रोगी रोग से मुक्त न होता, संसारी कभी सिद्ध न हो सकता, जो जिस दशा में होता उसी में रह जाता। इसलिये यह मृत्यु उपकारी भी है, ऐसा समझकर शोक तजो। इस शोक से (आर्त्तध्यान से) अशुभ कर्मों का बन्ध होता है, जिससे अनेकों जन्मांतरों तक

रोना पड़ता है। रोना बहुत दुःखदाई है।

मुनि के उपदेश से राजा को कुछ धैर्य बँधा। वे शोक तजकर प्रजा पालन में तत्पर हुए और मुनिराज भी विहार कर गये। एक दिन रानी ने संयम भूषण आर्यिका के दर्शन करके पूछा- माताजी! मेरे योग्य कोई व्रत बताईये, जिससे मेरी चिंता दूर होवे और जन्म सुधरे। तब आर्यिकाजी ने कहा- तुम त्रैलौक्य तीज व्रत करो। भादो सुदी 3 को उपवास करके चौबीस तीर्थंकरों के 72 कोठे कर मंडल माँडकर तीन चौबीसी पूजा विधान करो और तीनों काल 108 जाप **(ऊँ ह्रीं भूत वर्तमान भविष्य काल सम्बन्धिचतुर्विंशतितीथङ्करेभ्यो नमः)** जपें। रात्रि को जागरण करके भजन व धर्मध्यान में काल बितावें। इस प्रकार तीन वर्ष तक यह व्रत कर पीछे उद्यापन करें अथवा द्विगुणित व्रत करें। उद्यापन करने के समय तीन चौबीसी का मण्डल माँडकर बड़ा विधान पूजन करें और प्रत्येक प्रकार के उपकरण श्री मन्दिरजी में भेंट करें चारों संघ को चार प्रकार का दान देवें। शास्त्र लिखकर बाँटें। इस प्रकार रानी ने व्रत की विधि सुनकर विधिपूर्वक इसे धारण किया। पश्चात् आयु के अन्त में समाधिमरण करके सोलहवें स्वर्ग में स्त्रीलिंग छेदकर देव हुई। वहाँ नाना प्रकार के देवोचित्त सुख भोगे तथा अकृत्रिम जिन चैत्यालयों की वंदना आदि करते हुए तथा धर्मध्यान में समय बिताया। वहाँ से चयकर मगधदेश के कंचनपुर नगर में राजा पिंगल और रानी कमललोचना के सुमंगल नाम का अति रूपवान तथा गुणवान पुत्र हुआ। वह राजपुत्र एक दिन अपने मित्रों सहित वनक्रीड़ा को गया। वहाँ पर परम दिगम्बर मुनि को देखकर उसे मोह उत्पन्न हो गया। मुनि की वन्दना करके पाद निकट बैठा और पूछने लगा- हे प्रभो! आपको देखकर मुझे मोह क्यों उत्पन्न हुआ ?

तब श्रीगुरु कहने लगे- वत्स ! सुन, यह जीव अनादिकाल से मोहादि कर्मों से लिप्त हो रहा है और क्या जाने इसके किस-किस समय के बाँधे हुए कौन-कौन कर्म उदय में आते हैं, जिनके कारण यह प्राणी कभी हर्ष व कभी विषाद को प्राप्त होता है।

इस समय जो तुझे मोह हुआ है इसका कारण यह है कि तीसरे भव में तूँ हस्तिनापुर के राजा विशाखदत्त की भार्या विजयसुन्दरी नाम की रानी थी। तुझे संयम

भूषण आर्यिका ने सम्बोधन करके त्रैलोक्य तीज का व्रत दिया था, जिसके प्रभाव से तूँ स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्ग में देव हुआ और वहाँ से चयकर यहाँ राजा पिंगल के यहाँ सुमंगल नाम का पुत्र हुआ है। वह संयम भूषण आर्यिका का जीव वहाँ से समाधिमरण करके स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ से चयकर यहाँ मैं मनुष्य हुआ हूँ, सो कोई कारण पाकर दीक्षा लेकर विहार करता हुआ यहाँ आया हूँ। इसलिये तुझे पूर्व स्नेह के कारण यह मोह हुआ है।

हे वत्स ! यह मोह महादुःख का देने वाला त्यागने योग्य है। यह सुनकर सुमंगल को वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसने इस संसार को विडम्बना रूप जानकर तत्काल जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। कितने ही काल तक घोर तपश्चरण करके केवलज्ञान को प्राप्त होकर मोक्ष पद प्राप्त किया। इस प्रकार विजयसुन्दरी रानी ने त्रैलोक्य व्रत को पालन कर देवों और मनुष्यों के उत्तम सुखों को भोगकर निर्वाद पद प्राप्त किया। यदि और भी भव्य जीव श्रद्धा सहित यह व्रत पालें तो वे भी ऐसी उत्तम गति को प्राप्त होवेंगे।

विजयसुन्दरी व्रत किया, तीज त्रिलोक महान।
सुरनर के सुख भोगकर, 'दीप' लहा निर्वाण।। 1 ।।

श्री सरस्वती स्तोत्र

चन्द्रार्क-कोटि-घठितोज्ज्वल-दिव्यमूर्ते, श्री चन्द्रिका कलित निर्मल शुभ्रवस्त्रे।
कामार्थदायि कलहंस समाधि रूढे, वागीश्वरिप्रतिदिनं मम रक्ष देवि।।1।।
देवा सुरुेन्द्र नतमौलिमणि प्ररोचि, श्री मंजरी निविड रंजित पादपद्मे।
नीलालकेप्रमदहस्ति समानयाने, वागीश्वरि प्रतिदिनंममरक्ष देवि।।2।।
केयूरहार मणिकुण्डल मुद्रिकाद्यैः, सर्वांगभूषण नरेन्द्र मुनीन्द्र वंद्ये।
नानासुरत्न वर निर्मल मौलियुक्ते, वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि।।3।।
मंजीर-कोत्कनक-कंकण-किंकणीनां, कांच्याश्च झंकृत रवेणविराजमाने।
सद्धर्म वारिनिधि संतति वर्द्धमाने, वागीश्वरि प्रतिदिनं रक्ष देवि।।4।।
कंकेलिपल्लव विनिंदित पाणियुग्मे, पद्मसमान वक्रो।
जैनेन्द्र वक्त्र भवदिव्य समस्त भाषे, वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्षदेवि।।5।।

अर्द्धेन्दुमण्डितजटा ललित स्वरूपे, शास्त्र प्रकाशिनि समस्त कलाधिनाथे।
चिन्मुद्रिका जपसराभय पुस्तकांके, वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि।।6।।
डिंडीरपिंड हिम-शंख-सिताभ्रहारे, पूर्णेन्दु बिम्बरुचि शोभित दिव्यगात्रे।
चांचल्यमान मृगशावललाट नेत्रे, वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवित।।7।।
पूज्ये पवित्र-करणोत्रत कामरूपे, नित्यं फणीन्द्र गरुडाधिप किन्नेन्द्रैः।
विद्याधरेन्द्र सुरयक्ष समस्त वृन्दैः, वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि।।8।।
(इति श्री सरस्वती स्तोत्र)

श्री सरस्वती नाम स्तोत्र

सरस्वत्याः प्रसादेन, काव्यं कुर्वन्ति मानवाः।
तस्मान्निश्चल भावेन, पूजनीया सरस्वती।।1।।
श्री सर्वज्ञ-मुखोत्पन्ना, भारती बहुभाषिणी।
अज्ञान निमिरं हन्ति, विद्या बहुविकासिनी।।2।।
सरस्वती मया दृष्टा, दिव्या कमललोचना।
हंसस्कन्ध समारूढा, वीणा पुस्तक धारिणी।।3।।
प्रथमं भारती नाम, द्वितीयं च सरस्वती।
तृतीयं शारदा देवी, चतुर्थं हंसगामिनी।।4।।
पंचमं विदुषांमाता, षष्ठं वागीश्वरि तथा।
कुमारी सप्तमं प्रोक्तं, अष्टमं ब्रह्मचारिणी।।5।।
नवमं च जगन्माता, दशमं ब्राह्मिणी तथा।
एकाएंश तुं ब्रह्माणी, द्वादशं वरदा भवेत्।।6।।
वाणी त्रयोदशं नाम, भाषाचैव चतुर्दशं।
पंचदशं च श्रुतदेवी, षोडशं गौर्निगद्यते।।7।।
एतानि श्रुतनामानि, प्रातरुत्थाय यः पठेत्
तस्य संतुष्यति माता, शारदा वरदा भवेत्।।8।।
सरस्वती नमस्तुभ्यं, वरदे काम रूपिणी।
विद्यारंभ करिष्यामि, सिद्धिर्भवतु में सदा।।9।।
(इति श्री सरस्वती नाम स्तोत्र)